बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

प्रधान संपादक

गिरीश्वर मिश्र

संपादक

अशोक मिश्र

आज की कहानी

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन
अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक
अंक : 57 (अप्रैल-जून 2018) ISSN- 2348-4586
प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :
संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554, ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : राजेश कुमार यादव
ईमेल- rajeshkumaryadav97@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09975467897

© **संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित**
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :
प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव
फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :
प्रकाशन विभाग, **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय** के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

यह अंक : रु. 200/-
सामान्य अंक : 75/- वार्षिक शुल्क रु. 300/-, द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/-, द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डॉलर/7 ब्रिटिश पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 8 डॉलर/5 ब्रिटिश पाउंड
आवरण : प्रीड़ा क्रिएशन्स

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHIANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA.

मुद्रक : क्विक ऑफसेट ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 (फोन : 011-22824606, मो. 9811388579)

अनुक्रम

आरंभिक
समय से संवाद 5
हिंदी कहानियां
ठेकेदार / *चित्रा मुद्‌गल* 8
सौ बार जनम लेंगे / *संजीव* 20
धुंधलके में / *नवनीत मिश्र* 27
बहादुर को नींद नहीं आती / *धीरेंद्र अस्थाना* 35
चीफ की नाक/ *हरीश पाठक* 43
अल्लाह नदारद / *जयनंदन* 55
तीन / *आकांक्षा पारे* 60
कुमार साहब / *अजय नावरिया* 66
महाभीम का जीवन/ *अभिज्ञात* 74
आने वाली नस्लों की खातिर... / *अमिता नीरव* 76
बाजार / *अमिताभ शंकर राय चौधरी* 87
यहां एक कॉफी हाउस हुआ करता था... / *बसंत त्रिपाठी* 92
सफर लंबा है / *बाबूराम त्रिपाठी* 95
पार्टी / *दामोदर खड़से* 101
कब ले बीती अमावस के रतिया/ *गीताश्री* 107
गुब्बारे / *कबीर संजय* 117
हाइड एंड सीक / *मनीषा कुलश्रेष्ठ* 124
तितलियां / *मनोज कुमार पांडेय* 135
पूनम की रात/ *मनीष वैद्य* 142
सांझी छत / *मनीष कुमार सिंह* 149
हरि अनंत हरि, कथा अनंता / *निर्मला तोदी* 155
वेताल का जीवन कितना एकाकी/ *पंकज सुबीर* 163
एक झरना जमींदोज / *प्रज्ञा* 179
एक कल्चर कार्यशाला का मध्यांतर / *राजेंद्र लहरिया* 187
खतरनाक / *राकेश तिवारी* 196
टाइम बम / *राकेश कुमार सिंह* 206
समाधि लेख / *राकेश मिश्र* 212

नया पुर्जा/ *रिजवानुल हक* 221
बैराग के खाते में/ *संतोष श्रीवास्तव* 227
जल के लिए जालसाजी / *सुषमा मुनीन्द्र* 233
घर का चिराग / *संजय कुंदन* 241
वह सुबह के लिबास में शब थी / *संदीप मील* 253
यात्रा / *उर्मिला शिरीष* 259
कहां गया भुईयां / *तेजिन्दर* 266
झूलाघर/ *उषा शर्मा* 272
सायों के साए / *उपासना* 276

अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियां

संस्कृत
मुस्कान की लकीर / *राधावल्लभ त्रिपाठी (अनु. : बलराम शुक्ल)* 281
उर्दू
कड़वा तेल / *गजनफर (अनु. : फरहत कमाल)* 286
मराठी
पंचनामा/ *दीपध्वज कासोदे (अनु. : भगवान वैद्य 'प्रखर')* 290
मलयालम
वेबसाइट / *चंद्रमति (अनु. : एस. तंकमणि अम्मा)* 297
उड़िया
जख्म / *पारमिता सतपथी (अनु. : राजेंद्र प्रसाद मिश्र)* 303
गुजराती
वे लोग / *हिमांशी शेलत (अनु. : मालिनी गौतम)* 312
पंजाबी
तुम नहीं समझ सकते/ *जिन्दर (अनु. : सुभाष नीरव)* 317

विदेशी भाषाओं की कहानियां

रूसी
बिन खिले/ *चेखव (अनु. : हरिवंश)* 325
जापानी
सातवां आदमी / *हारुकी मुराकामी (अनु. : सुशांत सुप्रिय)* 334
जर्मनी
अदृश्य संग्रह (जर्मनी में महंगाई के दौर का एक वाकया)/*स्टीफन स्वाइग (अनु. : ओमा शर्मा)* 347
कैरेबियन
छोरी/ *जमैका किंकेड (अनु. : यादवेंद्र)* 356
पुर्तगाली
दारियु के प्रति/ *रूदाल्तोन ट्रेविसों (अनु. : गरिमा श्रीवास्तव)* 359
फारसी
यहया / *सादिक चूबक (अनु. : अजीज महदी)* 361
बल्गारियाई
तार पर/ *योर्दान योवकोव (अनु. : इलियाना आंगेलोवा)* 363

समय से संवाद

इक्कीसवीं शताब्दी का अठारहवां बरस बीत रहा है। हिंदी की कहानी का प्रस्थान बिंदु यदि हम 1901 को मान लें तो एक विधा के रूप में हिंदी कहानी लगभग एक सदी पार पहुंच रही है। सर्जनात्मक साहित्य की एक लोकप्रिय विधा के रूप में नई और पुरानी पीढ़ियों के अनेक लेखक इसमें शामिल हैं। इस बीच हिंदी की कहानी अनेक मुकामों से गुजरी है और देश का आम जन भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मोर्चों पर लड़ता, भिड़ता, जूझता, आगे बढ़ता रहा है। सामाजिक पटल पर दृश्य बदलते रहे। आजादी के बाद देशवासियों को जो उम्मीदें थीं वे अधूरी ही रहीं। इमरजेंसी, जेपी की संपूर्ण क्रांति, राममंदिर बाबरी मस्जिद विवाद, मंडल कमीशन की सिफारिशों ने कई तरह के परिवर्तन की शुरुआत की। इस बीच राजनीति में पिछड़ों, दलितों का उभार हुआ। 1991 के दौर में उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण ने सामाजिक आर्थिक लैंडस्केप को नए आयाम दिए। देश ने वैश्विक पटल पर छलांग लगाने की कोशिश शुरू की।

इन घटनाओं का असर था कि सामाजिक गठन का ताना-बाना बदलना शुरू हुआ। लोगों के जीवन क्षितिज का विस्तार हुआ। विदेश की आवाजाही बढ़ने लगी। डालर, यूरो, येन का खेल बढ़ने लगा। शहरों की भीड़ बेतहाशा बढ़ने लगी। गांव टूटने लगे। मध्य वर्ग और संभ्रांत वर्ग की कशमकश ने नए रूप लेने शुरू किए। कहानी विधा आज भी सर्वाधिक आ रहे नए लेखकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। हिंदी कहानी का दायरा बढ़ा है। विभिन्न व्यवसायों, वर्गों, दलित, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े लोगों ने भी कहानियों की दुनिया में प्रवेश किया। एक बहुलता भरा यथार्थ कथा समय का यथार्थ बन रहा है। कहानियां न सिर्फ लिखी जा रही हैं बल्कि हस्तक्षेप और बदलाव को भी रेखांकित कर रही हैं।

आज कहानीकारों के सामने उपभोक्तावाद, बाजारीकरण, विज्ञापन, सूचना तंत्र का संजाल है तो जीवन भी थकाने, खिझाने वाला होता जा रहा है। बहुत कुछ बदला है। भूख, अन्याय, शोषण, बेरोजगारी, अनाचार, अंधविश्वास, सामाजिक भेदभाव अभी भी कम नहीं हुए हैं। हां गांवों और कस्बों पर शहरों और बड़े शहरों की मेट्रो संस्कृति असर डाल रही है। संयुक्त परिवार दरक रहे हैं। परिवारों और रिश्तों में भी अविश्वास की घटनाएं बढ़ रही हैं। कुल मिलाकर आज रचनाकारों के सामने अलग किस्म का मंजर उभर रहा है। वर्तमान में हम उपभोक्तावादी समाज बन रहे हैं। रहन-सहन, पहनावा से लेकर आचरण और व्यवहार के स्तर

पर भी बाजार हावी हो चला है। उपभोक्तावादी पीढ़ी माल कल्चर में रंगती जा रही है। बड़े शहर की चमक-दमक के साथ आम आदमी दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए बारह-तेरह घंटे खटता रहता है। आज सरकारी से लेकर निजी क्षेत्र तक नौकरियों का टोंटा हमारी युवा पीढ़ी को निराश कर रहा है।

तकनीक ने मनुष्य का जीवन सरल किया है पर अकेलापन भी बढ़ा है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्र, तेलंगाना, पंजाब के कई जिलों में किसानों ने बड़ी संख्या में खेती में कर्ज से न उबर पाने पर आत्महत्या की है।

आज की कहानी मनुष्य के जीवन संघर्षों, उसके अकेलेपन, पीड़ा और समय के जटिल यथार्थ पर पैनी नजर रखे हुए है। कहानियों में सब कुछ दर्ज हो रहा है। दूसरी ओर लिखने, छपने की बदलती प्रौद्योगिकी कहानियों को लेकर कुछ सवाल भी खड़ी कर रही है। क्या कहानी अपनी पठनीयता खो रही है या फिर कहानी में विवरणों की भरमार है? आज अखबारी घटनाओं के आधार पर विवरणात्मकता में डूबी संवेदनाहीन, पात्र विहीन कहानियां भी लिखी जा रही हैं जिनमें कहानीपन की कमी खटकती है। इसके साथ ही कहानी के शिल्प से भी छेड़छाड़ की जा रही है। ऐसी भी कहानियां प्रकाशित हो रही हैं जिनमें विमर्श को जबर्दस्ती कहानी का हिस्सा बनाया जा रहा है। नए कहानीकारों की कहानियों में यह कुछ ज्यादा ही नजर आ रहा है। भाषा और तकनीक की चमक दमक में संवेदना का सिरा नदारद है। शिल्प और वर्णनात्मकता में भी काफी बदलाव है। पर कुछ है कि हिंदी का पाठक कहानियों से नहीं जुड़ पा रहा है। एक प्रश्न यह भी है कि हमारी संवेदनशीलता, मनुष्यता की सहजता क्या चुक रही है? आज हिंदी कहानी से गांव गिरांव, खेल, विज्ञान, युद्ध, तकनीक जैसे विषय क्यों गायब हो रहे हैं?

'बहुवचन' के 'आज की कहानी' अंक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह भी है कि वरिष्ठ कहानीकारों ने हमारे निवेदन को स्वीकारा। हमें श्रीमती चित्रा मुद्‌गल, संजीव, नवनीत मिश्र, तेजिन्दर, जयनंदन, तथा अनेक चर्चित व युवा रचनाकारों ने कहानियां दीं। धीरेंद्र अस्थाना पर विशेषांक की खबर का कुछ ऐसा असर हुआ कि उन्होंने खुद के लेखन में आया अवरोध चौदह साल 'बाद बहादुर को नींद आती है' कहानी लिखकर तोड़ा। तेजिन्दर ने भी लगभग दस साल बाद 'कहां गया भुईयां' कहानी लिखी तो हरीश पाठक ने 'चीफ की नाक' कहानी लिखकर अपनी चुप्पी तोड़ी। यह बहुवचन के लिए प्रसन्नता की वजह है।

यह अकारण नहीं है कि हिंदी कहानी विधा में हाल के बरसों में स्त्री कहानीकारों की बड़ी संख्या सृजनरत है। आज की स्त्री कथाकार स्त्री के खिलाफ सामाजिक अन्याय, असमानता, रूढ़िवादी परंपराओं के नाम पर हो रहे दोमुंहेपन को सशक्त ढंग से दर्ज कर रही हैं। इन कहानीकारों ने अपनी घर-गृहस्थी की दुनिया से बाहर निकलकर साहित्य में न सिर्फ दस्तक दी है बल्कि प्रतिरोध भरी कहानियां लिखकर कहानी के बहुवचन को मजबूत बनाया है।

बहुवचन का सैंतीसवां अंक वर्ष 2013 में 'कहानी का दूसरा समय' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था इस विशेषांक की अपार सफलता के पांच साल बाद 'बहुवचन' का 'आज की कहानी' विशेषांक पाठकों के लिए प्रस्तुत है। अंक को बहुआयामी बनाने के उद्देश्य से हिंदी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं में लिखी जा रही कहानियों को भी शामिल किया गया है। कोशिश है कि पाठकों को भारतीय व अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में लिखी जा रही कहानियों से रू-ब-रू होने का मौका मिल सके। अंक को तैयार करने के दौरान माननीय कुलपति महोदय ने गहरी रूचि ली, कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिससे अंक को यह रूप मिल सका। इस बीच वरिष्ठ हिंदी कवि केदारनाथ सिंह एवं व्यंग्यकार सुशील सिद्धार्थ, कथाकार अशोक गुप्ता नहीं रहे। इन सभी को श्रद्धांजलि!

अंक पाठकों को कैसा लगा यह पत्र लिखकर, एसएमएस संदेश से, तथा ईमेल भेजकर अवगत कराने का कष्ट करें। आपके सुझावों व प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

अशोक मिश्र

हिंदी

ठेकेदार

चित्रा मुद्गल

कच्ची-पक्की रोटियां पेट में पंसारी के बांट सी भारी हो रही हैं।

कोई उपाय नहीं था।

सिंकती तो कैसे सिंकती!

बातियों वाले स्टोव की बातियां कडुवा धुंआ छोड़ रही थीं।

मिट्‌टी के तेल सा गंधाता दमघोंटू धुंआ! मुर्झाती आंच तवे के पीठ से चिपक उसे गर्माती तो कैसे?

रामेसुर कक्का ने उसकी मुश्किल भांपकर टोका था। -'लोई भारी कर लो चकले पर। मिट्‌टी का तेल खत्म हो रहा है स्टोव की टंकी में।' फिर अपनी परेशानी बयान की थी उन्होंने।

इस समय मिट्‌टी के तेल का इंतजाम होने से रहा जो भी इंतजाम हो सकेगा संझा बेरिया घर लौटती में ही हो सकेगा। कबाड़ी की दुकान से बोतल खरीदनी होगी। उसी बोतल में नुक्कड़ के जैन स्टोर से मिट्‌टी का तेल भरवाना होगा। उसके आने के ठीक एक रोज पहले तड़के घर का दरवाजा खुला पाकर ससुरी बिलरिया घर में घुस आई और मिट्‌टी के तेल की अधभरी बोतल लुढ़का गई। चिंदी से फर्श पर फैले तेल को निचोड़ने की बड़ी कोशिश की उन्होंने मुल्ला उसने ज्यादा फर्श भूखी प्यासी थी सो चुल्लू भर तेल नहीं बटुरा। उनके अकेले की खातिर लीटर भर की बोतल हफ्ता भर चल जाती है। अब खर्च दो-गुना हो जाएगा खाना भी तो दुगना बनेगा। अनाज पानी दुगना लगेगा सो अलग।

चिंता की कोई बात नहीं। उन्होंने स्वयं को आश्वस्त किया था या उसे ढांढ़स दिया था, कौन बूझे। बहरहाल उन्होंने उसकी मजबूरी स्वीकारी थी। उनके भरोसे जब वह दिल्ली शहर आ ही गया है तो एक से दो भले 'धंधे पर से लौटने में घर काटने नहीं दौड़ेगा। कोई तो होगा घर में एक दूजे की बांट जोहने वाला। 'लरिका मेहरिया बिना कोठरी जेल लगती है, छेदी।'

दिल्ली आए हुए और मयूर विहार फेज-1 से सटे इस चिल्ला गांव के गजेंद्र सिंह गूजर के ठियां एक कमरा किराए पर लेकर रहने वाले जवार के घुमंतू रामेसुर नाई के घर पहुंचे हुए उसे अभी हफ्ता पूरा नहीं हुआ।

पहले दो रोज शमेसुर कक्का उर्फ रामेसुर नाई ने सुबह-सांझ खुद ही खाना बनाकर हुलस-हुलस कर खिलाया था उसे।

समझाया भी था।

चूल्हा फूंकना और बातियों वाले स्टोव पर खाना बनाना-अलाहदा बात है। जितनी फुर्ती से वह स्टोव जलाना सीख लेगा उतनी जल्दी वह दिल्ली शहर की आबोहवा में खुद को खपा लेगा।

आराम से रहे छेदी। सही ठिकाने डेरा डाला है उसने। गांव-जवार का अपनापा मामूली बात नहीं। शहर में दुर्लभ है यह अपनापा। इधर उन्हें भी कोठरी का बढ़ा हुआ किराया आखर रहा है। दूर घर ले लें तो जमे जमाए हजामत के ग्राहकों से नाता टूट जाएगा। अब चिंता कटी। साथ रहेंगे तो खर्च पानी बांट लेंगे। मिल बांटकर पहले भी औरों के साथ गुजर हो सकती थी, नहीं हुई तो इसी सोच विचार के चलते कि बड़के बेटवा को दिल्ली लाना है। दिल्ली में पढ़ाना है। दुनिया भर से लोग बाग बच्चों को दिल्ली पढ़ने भेजते हैं। एक नए नोखे का उनका बड़का है कि प्रत्येक कक्षा में नींव मजबूत करने पर तुला है। महतारी ऊपर से उसे दुधमुंहा बनाए हुए है।

रामेसुर कक्का ने अगली रात सुझाया था उसे।

बूडा खायी नदी सी मुसीबतें गले तक चढ़ी हुई हैं। काम-काज इस इलाके में लगभग नदारद ही समझो।

पड़पड़गंज से लेकर अशोक नगर तक बस्तियां एक-दूसरे पर बिछ चुकी हैं। यमुना पुस्ता को सरकार छूने से रही। खेती बारी की जमीन ठहरी।

रोजी का डौल आसानी से है कहीं तो, केवल इंदिरापुरम् के आस-पास।

टेंट में जमापूंजी होती थोड़ी-बहुत तो निश्चित ही तनिक भी डांवाडोल हुए उसे वहीं और ठिकाना खोज लेने के लिए कहते।

साहबों की कालोनियां बहुत हैं मगर साहबों की कालोनी के साहब लोग फुटपाथों पर किराए का ठेला नहीं लगाने देते। उनकी ऊंची रिहाइश का शो मारा जाता है। उनकी कॉलोनियों का शो बनाए रखना म्यूनिसपैलिटी भी अपना धर्म समझती है। चौका बासन की चाकरी मेहरारूओं को खूब मिल जाती है। वह ठहरा तगड़ी कद काठी वाला फिलाटों में कौन घुसने देगा उसे।

-'बिना नकदी के एक काम हो सकता है?'

-'करेंगे न!'

- 'करोगे तो कहें...'

- 'कहा न करेंगे। बइैठ के खाने तो आए नहीं यहां।'

- 'शुरुआत में अमेठी से आए के हमको भी करना पड़ा था मजबूरी में।'

- 'मजबूरी न होती तो हम काहे देहरी छोड़ते...।'

अम्मा लपकर आ खड़ी हुई थी आँखों के सामने।

-'चुपचुप, मजबूरी न भकुर देना लाला। पेट में पचाए रहना।'...

- 'सुने थे.... तुम भी किसी के यहां काम से लगे हुए थे, छेदी।'

दिल धड़का इतनी जोर से कि छाती के ऊपर 'धक', 'धक' होने लगी।

बात बतानी होगी।

- 'जिऊ ऊब गया रहा वहां। खूंटे की भैंसिया हो रहे थे। छूट थी हुआं तो बस, गड़ही में नहाने भर की।'

- 'परदेस का लालच मुंबई ढकेल रहा था। अम्मा बोलीं, जाना हो तो फिर दिल्ली न चले जाओ। जवार के रामेसुर नाई हैं हुआं।'

प्रसन्न हुआ। झूठ बोलते हुए जुबान रत्ती भर नहीं लटपटाई।

अगले पल ही स्वयं को ललकारा उसने- 'पूरा झूठ कहां बोला? फिर उसके झूठ से किसी और का नुकसान होने से रहा!'

रामेसुर कक्का उठके कमरे की दीवार से टिकी फोल्डिंग खटिया उठाने लगे तो वह भी उठकर खटिया बिछवाने में उनकी मदद करने लगा।

कक्का काम बता क्यों नहीं रहे?

खटिया चौड़ी थी। जब से आया है। न उन्होंने उसे साथ सो रहने का आग्रह किया न उसने कोई उत्सुकता जताई कि नीचे सोना उसके लिए कष्टदायक होगा। गांव में नाई ऐसी हिम्मत नहीं कर सकते। साथ लाया खेस बिछा लिया था फर्श पर और उनसे ओढ़ने को चादर मांग ली थी। चादर शायद एक ही थी उनके भर के लिए सो उन्होंने अपना घिसा तहमद आगे बढ़ा दिया था। तहमद में उसकी देह क्या अटती सो उसने तहमद बिछाकर खेस ओढ़ लिया था। होली जले महीना होने को आया है मगर रात जाने पूस का दामन क्यों पकड़े बैठी हुई है। गांठ लिया है मन में। मजूरी मिलते ही एक दो कंबल खरीद लेगा अपने लिए।

कक्का खर्राटे भरने लगे इसके पहले उसने उन्हें टोहने की कोशिश की।

- 'काम बताया नहीं आपने, काक्का?'

फोल्डिंग खटिया पर रामेसुर कक्का उसकी ओर करवट हुए।

-'हम झिझक गए....'

-'देखो छेदी .... जवार में कुछ उल्टा-पुल्टा न पो देना हमारे खिलाफ।'

-'हम पर विश्वास नहीं का! काम तो बताओ। कोई जबरई थोड़े ही है।'

-'ढोलक बजा लेते हो?'

-विस्मित हुआ- 'माने?'

-'माने, गवनई में मेहरिया ढोलक बजाती हैं न!'

- 'हां, बजाती हैं।'

-तुमने बजाई है कभी?'

- फाग में एकाध दफे बजाया है।'

सिखा दिया जाए तब बजा लोगे न।'

अजीब सिरफिरे हैं रामेसुर कक्का! भांड़ है वह? ढोल मंजीरे से उसे मतलब? जानते नहीं। ठकुरन की औलादें नाचती नहीं, नचवाती हैं।

असमय उसके बप्पा स्वर्ग सिधार गए। खेत खलिहान पितआउत बाबा हड़प गए। बेबस हो चाकरी करनी पड़ गयी गौरीगंज वाले नेताजी के ठियां!'

अम्मा फिर आ खड़ी हुई आँखों के सामने- चुप, चुप लाल।....

- किस सोच में पड़ गए, छेदी?'

समय की नजाकत ने घेरेबंदी की।

- 'सीख काहे नहीं लेंगे।'

फोल्डिंग खटिया हिली। कक्का ने पांव नीचे हिलगा लिए।

उनके उठकर बैठते ही वह भी बिछे तहमद से उठ लिया।

पक्की फर्श जगह जगह से उघड़ी हुई है। पीठ में भसके खपरैलों सी चुभती है। तहमद में बिछावन का दम है नहीं। करवट भरते ही बटुर जाता है। रामेसुर कक्का का स्वर सहसा खुसफुसाहट में बदल गया।

बात उस तक तो पहुंचे मगर दीवारें न सुन पाए।

कक्का बताने लगे।

यह इलाका छोटा नहीं है। पास में पड़पड़गंज है। पड़पड़गंज के दाहिने चले जाएंगे तो आगे रेलवे लाइन के किनारों से सटी गझिन बस्ती है- मंडावली।

उत्पाती इलाका है मंडावली।

चौरासी के दंगों में हुए खून खराबे को अंजाम देने में सबसे अव्वल। वहीं रहती हैं पुष्पा बुआ। उस इलाके के हिजड़ों की मंडली की सरदार।

देश को आजादी दिलाने वाली पुरानी राजनीतिक पार्टी के एक जबर नेता की बहुत करीबी।

उनके जिंदा रहते पुष्पा बुआ की इलाके पर जबरदस्त पकड़ थी।

परसों अचानक पुष्पा बुआ से उनकी भेंट हो गई। चिल्ला गांव से लगे सांई बाबा के मंदिर की सीढ़ियों के नीचे दलबल के साथ।

उन्हें देखते ही पुष्पा बुआ की बांछें खिल गई। हुलसकर तालियां बजाते हुए उलाहना दिया उन्होंने। - 'आए हाय कमीने हज्जाम के। तैने तो मरे सुध लेनी ही छोड़ दी। पहले तो छठे-छमासे दाढ़ी मूंछ मूंडने के बहाने झांक जाया करता था। हो गया अब ईद का चाँद। दिन भूल गया अपने तू?'

साफ झूठ जड़ा उन्होंने। महीने भर के लिए गांव गए हुए थे बुआ। चारा काटते गडांसा मेहरारू के अंगूठे पर पड़ गया था।

ताली पीट पुष्पा बुआ ने उनके पखौरे पर धौल जमाई- हाय, हाय तो तू गया था लुगाई के पेटीकोट का नाड़ा बांधने। बांध आया?'

पुष्पा बुआ की चुटकी ने उन्हें अपनी मेहरारू के पास पहुंचा दिया। फुरहरी सी व्याप गई शरीर में। जाने कब बाना बंत बनेगा गांव जाने का।

बुआ कैसे आयीं इस ओर?

बुआ ने अपने लाचारी की गिरह खोली।

-'आए हैं अर्जी लगवाने। विधायकजी के दाहिने हाथ बलविंद सिंहजी के पास। सो लगा आए।

बेरोजगार जवान जहीनों को भत्ता देने की सोच रही सरकार। विधवाओं और बूढ़ा, बुढ़वों को पेंशन दे ही रही है तो भला हमारी बिरादरी किसके आसरे जिए? ढ़ली उमर हम भटकने से रहे। ऊपर से राह चलते हाथ पसारो तो मुंह पर आँखन से थूकते हैं लोग। हाय, हाय हमारी कौन भूल। कहीं कान रख गलती विधाता ने की है। सरकार सुधारे। पेंशन हमें भी चाहिए गुजर-बसर के लिए।

- ना सुनी, तो जंतर-मंतर पर धरना देंगे। बाबा रामदेव से जा रहे हैं हरिद्वार बात करने।'

- 'चलो छोड़ो। हमारी कहानी। तू बता अपनी खैरियत। ऐऽऽ, तेरा उस्तुरा चल रहा है न! न चल रहा हो तो कौन सरम। आ जाना हमारे ठिकाने।

वो हुसैन ढोलकिया था न, जिसकी थाप पर तुम भी ठुमकियां भरने लगते थे- गाजियाबाद में टिरक के नीचे आ गया।

कच्ची ले गयी उसे अपने पल्लू में बांध। करमजला पूरी बोतल उतार लेता था....

अक्ल का ठीकरा, कभी समझाए समझा नहीं।

बुआ की आँखें भरभरा आई।

बताते हुए रामेसुर कक्का ने कुछ पल की चुप्पी ओढी। हुसैन की दर्दनाक मौत के जिक्र से मन भारी हो आया होगा।

फिर मुंह खोला।

-'सुनो छेदी। गलत न समझना कि तुम हम पर भारी पड़ रहे हो इसलिए सलाह दे रहे हैं। खाली बैइठने से अच्छा है। पुष्पा बुआ के पास ढोलकिया का काम घर लो।

तीन-चार हजार नकदी जुड़ जाएगा तब काम छोड़ देना। गांव रिक्शा चला लेना। चलाने को अभी भी चला सकते हो मगर फिर वही बात। ठेकेदार के पास से बिना डिपासन के रिक्शा मिलने से रहा।

उड़ा रखा है हिजड़ों के बारे में आए-बाएं। पुष्पा बुआ उसूलों वाली है। नाजायज कामों से दूर।

विचार कर लो। वही होगा जो तुम चाहोगे।'

कक्का फोल्डिंग खटिया पर पसर गए।

मजबूरी में किसी मनई का गूं खाना पड़ जाए तो वह दूसरे को कैसे सीख दे सकता है किंतु तुम पर भी मजबूरी सी टंगी हुई है, छूटते ही तुम भी गूं खा लो!

वह भी लड़िका बच्चा वाले कक्का सुझा रहे हैं।

भगवान न करे कल को उनका बड़का पढ़ाई लिखाई को अंगूठा दिखा बुरी सोहबत में कुछ दाएं-बांए कर बैठा और जेहल की हवा खाने के डर से डर से भाग अनजाने सहर में किसी के आसरे जा टिके, वहीं कोई उसे ऐसी गिरी सलाह दे तो क्या उसे मान लेना चाहिए।...

कक्का सो चुके हैं। खर्राटे गवाही दे रहे हैं। उसकी नींद उड़ चुकी है। कक्का को नींद से झकझोरकर उठाया नहीं जा सकता। वरना उन्हें जगाकर कह देता मजबूरी है। तभी वह अपनी जाति बिरादरी का दंभ छोड़ ईंट-गारे का तस्ला ढो लेगा। चौकीदारी कर लेगा। पांव रिक्शा खींच रिक्शावाला कहला लेगा। कुछ भी, कैसा भी दो कौड़ी का काम कर लेगा लेकिन यह नहीं हो पाएगा कि किसी हिजड़े की शरण में जा गिरे। उनके पास आकर ठहरा है तो गांवों में नाई को नाई ठाकुर कहकर पुकारा जाता है। पुष्पा बुआ इतनी ही दूध की धोई हैं तो कोई पूछे कक्का से कि उन्हें काहे हुड़क मची उनसे जुदा हो अपना काम करने की। बकसिया उठाकर गली गली घूमने की।.....

सुबह उसने चाय का गिलास कक्का को पकड़ाते ही कह दिया उनसे। आसरा दिया है उसे तो उस पर एक किरपा और कर दें। कहीं से उसे ब्याज पर पंद्ररह सौ रुपिया उधार दिलवा दें।

दो रोज पहले कक्का ने ही बताया था उसे।

पंद्ररह सौ रुपिया डिपासन के भर कर ठेकेदार से रिक्शा किराए पर लिया जा सकता है।

तसवीरों वाला आई कारड भी बनवाना पड़ेगा। दो फोटो चाहिए होंगी। बीस रुपिया में तीन बन जाएगी उसकी।

चाय सुड़कते हुए कक्का गले से सूखे ही बने रहे। -'हूंअ' भर का क्या मतलब निकाले वह?

बात उसने फिर से दोहराई।

कक्का के बकसिया उठाते ही चौथी बार दोहराई।

अबकी असर हुआ उन पर। मुंह खुला उनका।

-'कुछ कहेंगे छेदी तो तुम फिर बैठे बिठाए नाखुश हो जाओगे। कहते नहीं हो मुला सच छिपाए छिपता थोड़े ही है।'

-'नाखुश काहे होंगे? रटा रटाया सा दोहराया उसने।'

-'समझो चिल्ले में कोई तुमको जानता नहीं ब्याज पर रकम किस भरोसे देगा? हमारे भरोसे! तो जान लो। लेन देन का व्यवहार चिल्ले में हमने कभी किया नहीं। सो खरी बात। ब्याज पर रकम पाने के लिए तुम्हें पुष्पा बुआ के ठियां मंड़ावली चलना होगा।

पक्का नहीं कह सकते। मुल्ला हो सकता है। हमरे भरोसे तुम्हें उधारी देने को राजी हो जाएं।

जा रहे हैं बगल में ही निर्माण विहार। लकवा मारे गुप्ता बाबू की दाढ़ी मूंछ बनाने। निर्माण के गेट पर चौकीदार तिवारी से पूछ लेंगे उसकी एजेंसी का अता पता चलकर तुम्हारा नाम लिखवा आएंगे। बताता है तिवारी, बाईस सौ तन्ख्वाह है महीने की आदमी एजेंसी वालों को सही चाहिए। गांव घर का अता-पता ले जांच पड़ताल होने के बाद ही रखते हैं।

डर काहे का। डरें बारदाती।'

अम्मा आँखों के सामने आ खड़ी हुईं।....

-'तुम तो कक्का, रिक्शे का जुगाड़ कर दो बस। रिक्शा ही चलाएंगे। रात-बिरात की डियूटी करनी पड़ती है चौकीदारी में।

-'ठीक है। लौटती बेर ठेकेदार के ठिकाने होते हुए आएंगे। फिर चलेंगे मंडावली।

हांअ.... पकड़ो दुई रुपिया पव्वा भर आलू अउर खाए भर की रोटी सेंक के धर लेना।'

घर आ के चलेंगे मंडावली।

कहकर कक्का निकल लिए।

नींद ने रात दुश्मनी निभाई। सो फोल्डिंग खटिया खोल के आराम से सोएगा तीन चार घंटा। सांझ से पहले खाना बनाकर रख लेगा। खटिया उड़न खटोला है। कमाई हाथ में आते ही फोल्डिंग खटिया भी खरीदेगा। अम्मा के लिए एक ठो गांव भी ले जाएगा।....

गांव! जाने कब जाएगा।.....

पच्चीस गज में बने दो तल्ले के छोटे से घर के आगे बने चबूतरे में आरामकुर्सी पर बैठे, खिजाब से बाल लाल किए अउर चेहरे पर इमरती सी केशरी मिठास रचाए जिसने ताली देते हुए रामेसुर कक्का का लहककर स्वागत किया, कक्का ने लपककर उसी के पांव छू लिए। उसे भी उनका पांव छूने का इशारा किया उन्होंने झिझका हिजड़े के? समझ गया। रामेसुर कक्का की यही पुष्पा बुआ हैं।

उसके पांव छूते ही पुष्पा बुआ ने आँखें मटका रामेसुर कक्का को झाड़ा। तू अब ढोलकिया लेकर

आया है?

अब जरूरत नहीं। ये अपना घासीराम जेल से लौट आया है। चौरासी में बंद हुआ अब जाके छूटा है तिहाड़ से। हुसैन का कमाल देखा है हज्जामिये तूने, घासीराम की थाप पड़ते ही ढोलक नाचती है ढोलक।'

घासीराम की ओर उसने दबी आँख से देखा।

बुआ की आरामकुर्सी से सटा बैठा, तपे तांबई चेहरे पर खूंखारियत अंजी आँखें उसके अबोले भी बहुत कुछ बोल रही थी।

चिलकी झुरझुरी को परे ढकेल वह प्रसन्न हुआ। पुष्पा बुआ को ढोलकिया मिल गया।

कक्का बुआ के गोड़ों से सट लिए। वह उनकी बगल में।

उल्टी रामायण बांचनी शुरू कर दी कक्का ने।

छेदी को बुआ के पास उनकी सेवा टहल की खातिर ही लेकर आए थे। घासीराम आ ही गया है जेहल से तो अब उसका क्या काम! बस, उनकी परेशानी बढ़ गई। कितने दिन बैठाकर खिलाएंगे छेदी को? विचार आया है उसे साइकिल रिक्शा न दिलवा दें किराए पर चलाने के लिए। रिक्शा मिलने में कौन सी मुश्किल। मुश्किल एक ही है। डिपासन का पंद्ररह सौ रुपिया। न छेदी के पास कानी कौड़ी है न उनके पास कोई डौल। गांव से लौटे हैं कुछ रोज पहले। मेहरारू को सौंप आए हैं जमा पूंजी। एक ही उपाय नजर आ रहा है। पुष्पा बुआ मदद कर दें तो समस्या का हल निकल आएगा।

उन्हीं का आसरा है। हाथ जोड़ दिया कक्का ने। देखा देखी उसने भी।

-'आय हाय, पैसे की ही तो मारामारी है।' बुआ ने ताली पीटी।

-'हम तो आपके भरोसे हैं बुआ।' कक्का गिड़गिड़ाए। 'उबार लो।'

सूद समेत मूल ईमानदारी से लौटाएगा छेदी, हम जिम्मा लेते हैं।'

-हज्जामिये, नेताजी क्या गए हमारी बरकत छिन गई। कमाई ठंडी पड़ी है। बच्चा गिरवाते ज्यादा हैं लोग पैदा कम करते हैं। गए नहीं थे उस दिन पेंशन की अर्जी देने।

तुम आए हो ठियां हमारी बात रखने की खातिर तो हमें भी तुम्हारे लिए सोचना ही होगा लौंडा गठा हुआ है लेकिन जरूरत अब रही नहीं।....

देखो, रामेसुर, सौ पर पचास रुपिया महीना सूद देना होगा। पंद्ररह सौ रुपिया के होंगे साठे सात सौ रुपिया महीना सूद रे। नागा हुआ तो सूद भी मूल में जुड़ जाएगा। फिर बढ़े मूल पर उसी हिसाब से सूद देना होगा। मंजूर तो बोलो।

हांअऽऽ कान खोल ले अपने। धोखा देने की जुर्रत महंगी पड़ेगी।'

पुष्पा बुआ ने घासीराम के सिर पर हाथ रखा तो घासीराम की आँखें उस पर आ अटकीं।

सांप की आँखों में उसकी छवि कैद हो गई।

कक्का ने पुष्पा बुआ के गोड़ों को श्रद्धा से छुआ। -'कभी भरोसा टूटा है जो आगे तोड़ेंगे बुआ।

रोजाना की कमाई डेढ़ दो सौ से कम न होगी। रिक्शा का किराया निकाल मूल और सूद की बकाया गुल्लक बनवा देंगे छेदी की। एकदम निश्चित रहें बुआ। आपका ही बच्चा है।'

रामेसुर कक्का ने उठते ही तीन बार बुआ के पांव छुए तो उसने भी आज्ञाकारी बालक की भांति

उनका अनुसरण किया।

साइकिल रिक्शे के पहिए तनिक भारी चल रहे हैं।

ग्रीस मांग रहे।

पहली कमाई से बिना भूले एक डिबिया ग्रीस खरीदकर लाकर रख देगा घर में।

अब जरूरत पड़ती ही रहेगी। भारी पैडल मन-मन भर के हो उठते हैं- खींचते दम फूलता है।

गोड ऊपर से चिलकते हैं। अम्मा पास हैं नहीं कि कडुवा तेल तताकर पिंडलियों में मल दें।

'जय-जय-जय हनुमान गोंसाईं, कृपा करो गुरुदेव की नाई।'

पैडल मारते हुए वह लगातार हनुमान चालीसा का जाप करता रहा।

पहला दिन है। अम्मा होती तो गुड़ की भेली का टुकड़ा मुंह में धर देंती। 'ठहर रे, मुंह मीठा किए बिना कैसे जाएगा।'

आज है सोम। कल है मंगल।

कौन ठिकाने मिलेंगे हनुमानजी? किसी से पूछ-पांछ माथा नवा आएगा। परसाद भी चढ़ा देगा। फिकर कैसी? कल तो हाथ छूछे रहेंगे नहीं।

बहुत कुछ बदल जाएगा।

सुबह पीतल के लंबोतरे गिलास में चाय सुकड़ते हुए उसे तनिक खिन्नता हुई थी।

गांव में लोग बदल रहे हैं। मगर रामेसुर कक्का वहीं के वहीं ठहरे हुए हैं। भला, गांव की बात और है। दिल्ली शहर में रहकर गिलास में चाय?

ढब बदलने से बदलता है। सुनकर रामेसुर फुन्न हो गए- 'खरीदने को तो हम आधा दर्जन रंग-बिरंगे कप खरीदकर रख लें मगर टूट-फूट का खर्च कौन बरदाश्त करेगा। दिल्ली शहर में पइसा जोड़ने आए हैं छेदी, उड़ाने नहीं।

बटिया पर पानी के हल्के छींटे दे-देकर उस्तुरे को लगातार धार देते हुए रामेसुर कक्का ने उसे प्रवचन से नहला डाला था। घर के सयाने की तर्ज पर।

अम्मा ने ही तो उनका अता-पता लाकर थमाया था और उसे रातोंरात घर से रवाना कर दिया था। -'सुन, अजुध्याजी से तुझे दिल्ली के लिए सीधी गाड़ी मिल जाएगी। फौरन निकरि ले। हाथ लग गया तो गौरीगंज वाले नेताजी तुझे जेहल करवाकर ही छोड़ेंगे।'

-'सो ऽऽ' कक्का उमंग से भरे हुए थे- सौ बात की एक बात गांठ बांध ले ओ छेदी। यहां तुम बस अपने काम से काम रखना। ज्यादा किसी से चूं चपड़ करना ठीक नहीं। इलाके से अभी कोई विशेष मुलाकात तुम्हारी हुई नहीं है। सो पते की सलाह है। फिलहाल मयूर विहार एक्स्टेंशनवा वाले मैट्रो स्टेशन से ही सवारियां ढोना तुम दिक्क नहीं होओगे। भल, आस पास की सवारियां होएंगी तो दिक्कत कैसी? किराया भी बंधा हुआ मिलेगा। मोलभाव की झिकझिक नहीं। जहां का रास्ता न जाना पहचाना हुआ हो तो बेझिझक अटपटाने की बजाए सवारी से ही पूछ लेना भैया, सीधे हाथ को निकलना है या दाएं-बाएं मुड़ना है।

विशेष बात एक अउर।

सवारी लड़की हो तो कान को हाथ लगाना, सीटी न बजाना।

दिल्ली सहर की लड़कियां राम भजो, ततैया होती हैं ततैया।

समझ में आया कुछ?

चुटकी से उस्तुरे की धार को छूकर रामेसुर कक्का ने धार की तेजी परखी। प्रवचन बदस्तूर जारी रखते हुए आसाराम बापू को मुकाबले में उतार दिया जाए तो शर्तियां उन्हें पछाड़कर ही दम लेंगे।

-'हाअं तो ऽ ऽ' ठीक पांच बजे तक रिक्शा मय भाड़े के ठेकेदार को लौटाना होगा।

न हो तो ऑटो रिक्शा चलाने वालों से टाइम पूछ लेना उनकी कलाई में घड़ी बंधी रहती है। घड़ी सवारी के हाथ में भी रहती है। यों तो दस-पंद्ररह मिनट इधर-उधर हो जाएं तो कउनो हर्जा नहीं। सवारी को अधबीच थोड़े ही उतर देंगे।'

सावधानी रखना भैये। रिक्शा खींचते-खांचते विपदा सी टूटी कउनो मरम्मत आन पड़ी तो जबानी एग्रीमेंट के मुताबिक उसका खर्चा अपनी अंटी से देना होगा।

मरम्मत में कोताही हुई नहीं कि खर्च से दस गुना दांण भरना पड़ेगा।

'समझ में आ रहा है न।'

एक और काम की बात। चक्कर मार लेने से कउनो हर्जा नहीं।

दुपहरिया में भूख लगे तो अपने चिल्ला गांव की इंटरी से जो सीधी सड़क मद्रासी मंदिर, वो क्या कहते हैं उसे गुरवायुर टेंपल गई है न, वहां पूजा पाठी दयालु तकरीबन रोजाना भिखारियों को हलवा पूड़ी के पैकेट बांटते हैं। भिखारी हमने मद्रासी मंदिर के सामने कम ही फटकते देखे हैं। रिक्शे वालों की पांत जरूर लगी दिखी। सो जैसे ही तुम्हें वहां दो-चार रिक्शे वाले खड़े दिखाई पड़ें, पट्ट से तुम भी रिक्शे समेट पांत में लग लेना।

पचास रुपिया सैकड़ा ब्याज पर तुमने डिपासन की रकम उठाई है पुष्पा बुआ से। हिजड़ों से वादाखिलाफी मंहगी पड़ती है। सो शौक छोड़ चुकता होने तक पाई-पाई दांत से पकड़ना।

समझ में आया कुछ।

रामेसुर कक्का के धाराप्रवाह प्रवचन को मैले पायजामे की जेब में खनकाते हुए, मुंह पर रह-रह भिनकती हुई सकुचाहट को उसने परे धकेला और मयूर विहार एक्सटेंशन मैट्रो स्टेशन की मुख्य सीढ़ियों से हटकर, ग्लैक्सो सोसाइटी से सटे फुटपाथ से सटी खड़ी लंबी रिक्शे की पांत में अपने रिक्शे समेत जा खड़ा हुआ।

पुल पर से आती-जाती मैट्रो की रफ्तार की सधी सुरीली 'सुर ऽ ऽ ऽ ऽ फुर ऽ ऽ ऽ ऽ' की रेशमी सरसराहट उसके जी को गमका गई।

किवाम और 120 नंबर बाबा छाप के साथ देशी पत्ते की गमकसी। पुल पर चढ़कर अभी तक खंभों पर टिका प्लेटफार्म नहीं देख पाया है। सुना है। सवारियों का रेला मैट्रो में चढ़ता उतरता है तो परियों के झुंड सा तैरता हुआ।

सवारियों की सुविधाओं के लिए फीडर बसें चलाई गई हैं।

शायद यही सोचकर दूरदराज की कालोनियों की सवारियों को मैट्रो तक पहुंचने में अड़चन न हो।

अड़चन फिर भी है। फीडर बसों की दिशाएं तय हैं।

उन दिशाओं से दूर, बहुत दूर भीतर बसी कालोनियों की सवारियों की मुश्किलें फीडर बसें हल नहीं कर पा रहीं।

ऐसे में रिक्शेवालों को मैट्रो स्टेशन के सौंदर्यीकरण को भुलाकर वहां खड़े हो सवारियों को लाने ले जाने की सुविधा, सहूलियत दे दी गयी है। विकास के साथ आमजन को जोड़कर चलने की तोहमत से भी तो दिनोंदिन अमीर हो रही सरकार का बचना जरूरी है न?

पांत छोटी नहीं हो रही, उसका नंबर आगे बढ़ रहा है। जैसे-जैसे सवारियां मैट्रो की सीढ़ियां उतर रिक्शा पकड़ने बढ़ती हैं। उसका भी नंबर जल्द ही आएगा। प्रसन्न मन ताने लेने लगा।

-'तू हमरी अटरिया रात काहे न आई गोरिया.... तू हमरी अटरिया...'

दिल्ली वाली छोकरियों को देख सीटी नहीं बजा सकता तो क्या गांव की गोरियों को भी याद न करे।

किवाम और 120 नंबर बाबा छाप के साथ देशी पत्ते की गमक फिर फुरफुराई।

ठेकेदार को रिक्शा सुपुर्द करते ही एक ठो बीड़ा खा लेगा घर की बगल में पान का ठेला लगाने वाले चौरसिया से।

ना, ना, ना, किवाम की गमक को रामेसुर कक्का से कैसे छिपाएगा!

तभी उसके निकट सहसा खाकी वर्दी का डंडा खटका।

-'अबे ओ ऽऽ मुंह बाए अगल बगल किसे ढूंढ़ रहा? नया नया दावत खाने आया है क्या दिल्ली शहर में।'

डंडा उसी के लिए खटका है। सांप सूंघ गया उसे।

-'आया तो आया मगर किसी से पूछे जांचे लाट साहब की औलाद-सीधे क्यू में आकर धंस लिया।'

-'कि... कि... क्यू? उसके होंठ में शब्द फड़फड़ाया।'

-'लाइन, लाइन नहीं समझता तू?'

उसने गर्दन घुमाकर रिक्शे की पांत की ओर देखा।

-'भुच्च जैसा खड़ा आँखें क्या पटपटा रहा। तेरी बिरादरी में से किसी ने बताया नहीं तुझे। 'क्यू' में खड़े होने का कुछ लगता है।

नहीं बताया तूझे तो मैं बताए देता हूं। जो सब देते हैं वही तुझे भी देना होगा। यही कोई मामूली सा....'

- हिम्मत बटोरकर पूछा उसने- 'माने साहब!'

- 'माने वसूली।'

- 'हमसे?'

- 'अब तेरे घर तो नहीं जाएंगे हम वसूलने।'

खाकी वर्दी की उंगलियों में डंडा चकरी की भांति घूमने लगा।

- 'रिक्शा कहां से लाया तू, ठेकेदार के पास से न, दिन भर रिक्शा चलाने का किराया भाड़ा देगा न तू उसे?'

- 'बोलता क्यूं नहीं देगा कि नहीं देगा।'

- 'दे- दे- दूंगा।'

- 'देगा न! तो जिस सड़क पर तू रिक्शा दौड़ाएगा, वह तुझे खैरात में चाहिए? बाप की है!'

- 'सस्साब....' अपनी हकलाहट को उसने बटोरने की कोशिश की- सड़क तो सरकार की है साहब।'

- 'सड़क सरकार ही है तो हम कौन हैं बे!'

- 'सरकारी आदमी..।'

- 'सरकारी आदमी न! तो समझ ले अक्ल के घूरे, हमें सरकार ने सड़क का इस्तेमाल करने वालों से टैक्स वूसली की जिम्मेवारी सौंपी है। जो सब देते हैं तुझे भी देना होगा वरना मैट्रो स्टेशन के सामने कल से तेरा रिक्शा खड़ा हुआ नजर नहीं आएगा। सोच ले।

मैट्रो तो छोड़, आसपास के इलाके में भी तू कहीं पैडल मारता हुआ दिख गया न, सीधे उठा कर हवालात में ठूंस दूंगा। चार्ज बाद में तय होगा।'

हवालात.... हवालात के डर से तो भागकर आया है यहां।

ठंडे पसीने से भीग आए पायजामे ने उसे भ्रमित किया, पेशाब तो नहीं छूट गयी कहीं उसकी।

सहमी नजर से उसने लंबी पांत से खड़े, कुछ सवारी लेकर चल दिए, कुछ नए आ जुड़े बिरादरी वालों की ओर उम्मीद भरी नजरों से देखा' खाकी वर्दी की अनीति के विरोध में कोई कुछ बोल क्यों नहीं रहा।

हाथ जोड़ वह कमर तक झुक आया- 'गरीब हैं साहब...'

- 'गरीब है, भिखारी तो नहीं है। भिखारी है तो जा, जाकर किसी मंदिर की सीढ़ियों पर बैठ जा। बहानेबाज। निकाल वसूली के पांच सौ रुपए।' समझ गया। जिबह हुए बिना नहीं छूटने का।

कमीज के भीतर पहनी बंडी की अंदरूनी जेब में, छाती से चिपके आखिरी सहारा पचास का मुड़ा तुड़ा मैला नोट निकालकर अंजुरी में धर, खाकी वर्दी के आगे कर दिया उसने।

'हुंह, पचास रूपट्टी! भिखारी समझ रखा है क्या हमको।' खाकी वर्दी को तीली लग गई। - 'ऊपर से नीचे तक बंटती है वसूली। मंहगाई के नाम पर फर्लांग भर का सवारियों से वसूलते हो दस की जगह बीस हमें दिखा रहे पचास का नोट?'

-'आखिन किरिया! झारा लई लो हमारा जो है सो यही है हमारे पास।'

भद्‌दी गाली देते हुए खाकी वर्दी ने किचकिचाकर डंडा फटकारा- 'जा, जाकर लौटा दे रिक्शा ठेकेदार को। कायदे कानून को धत्ता बताकर सड़क पर छुट्टा सांड़ सा मजे में रिक्शा खींचेगा तू, और हम हाथ पर हाथ धरे आँखें सेकते रहेंगे?'

पांव पकड़ लिए उसने खाकी वर्दी के।

गिड़गिड़ाया- 'रिक्शा नहीं लौटा सकते, साहब! सूद पर पइसा उठा के पंद्ररह सौ रुपये डिपासन दिए हैं ठेकेदार को। किराया ऊपर से देना होगा। कमायेंगे नहीं तो देंगे कहां से माई-बाप।'

-'ओ, हो, हो,.... पंद्ररह सौ रुपये डिपाजिट के दे आया ठेकेदार को, वसूली के पांच सौ रुपये भारी पड़ रहे तुझे?'

विरफा आया वह- 'काहे जबरई कर रहे साहब हमसे। सरकारो ठेकेदार है का जो हम गरीब गुरबा से सड़क की वसूली मांग रही। कल, कल तो पैदल चलने की वसूली मांगेगी साहब।'

खाकी वर्दी आपा खो बैठी।- 'कमीने कहीं के, सरकार से जबानदराजी की हिमाकत।'

हुमककर वर्दी ने एक डंडा उसकी बांयी टांग पर मारा। दूसरा वार किया रिक्शे के हैंडिल पर।

फिर रिक्शा पांत से बाहर खींच सड़क के दाहिने ओर इतनी जोर से धकेला कि रिक्शा मैट्रो स्टेशन के पिलर नंबर पीएफ 4 से जा टकराया।

सड़क पर आती-जाती गाड़ियां एक पल के लिए ठिठकीं। फिर पूर्ववत मैट्रो के पुल के नीचे से आवाजाही में व्यस्त हो गयीं।

टांग की चोट की बिलबिलाहट के बावजूद वह मैट्रो के खंभे से जा टकराए रिक्शे को बचाने लपका।

औंधे पड़े रिक्शे की साइकिल का डंडा बीच से टूट दो टुकड़ों में बंट गया था। पिछले दोनों पहिए पिचककर एक दूसरे के गले लगे हुए थे।

घंटी, उखड़कर सड़क के बीचों बीच आ लुढकी थी।

वह भकभकाकर फूट पड़ा- 'एक ही देश में दो लोक के प्राणी रहते हैं का अम्मा ऽ ऽ ऽ;

●

बहुवचन का एक और विशेषांक

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन आगामी अगस्त 2018 में मारीशस में किया जा रहा है। इस अवसर पर बहुवचन का जुलाई-सितंबर-2018 का अंक **'हिंदी का भविष्य और भविष्य की हिंदी'** विषय पर केंद्रित किया जा रहा है।

लेखकों से अनुरोध है कि- विदेशों में हिंदी का अध्ययन, अध्यापन और शोध, हिंदी व्याकरण की कठिनाइयां, प्रवासी क्षेत्रों में हिंदी, मीडिया की हिंदी और भाषागत बदलाव, सोशल मीडिया और हिंदी, टेक्नालाजी के साथ हिंदी की सहभागिता, सरकारी कामकाज में हिंदी के उपयोग आदि विषयों पर एक अध्येता के रूप में आप क्या सोचते हैं और भविष्योन्मुखी परिष्कार की दृष्टि से किन कदमों का उठाया जाना जरूरी है इस विषय पर तीन हजार शब्दों की सीमा में अपना आलेख 30-06--2018 तक संपादक कार्यालय bahuvchan.wardha@gmail.com को सीधे मेल करें।

सौ बार जनम लेंगे

संजीव

खिंचा हुआ गंदुमी चेहरा, एक आँख चढ़ी हुई, एक सामान्य, औसत कद, हाथ-पांव की उभरी हुई शिराएं.... उन्हें देखकर लगता है, वे किन्हीं पिछली लड़ाइयों के भटके हुए योद्धा हैं या ऐसे सिपाही जिसने जन्म लेने में देर कर दी, जन्म लेने से आज तक किसी अदृश्य घोड़े पर सवार, दाहिने हाथ में अदृश्य तलवार लिए युद्धभूमि में चले जा रहे हैं किन्हीं अदृश्य शत्रुओं का संहार करने के निमित्त. ... नाम रामफल!

रामफल को इनसानों की किस कैटेगरी में रखूं, इनसानों की या हैवानों की- आज तक समझ नहीं पाया।

इतना 'हेकड़' आदमी हमने देखा नहीं। कब क्या कर बैठे, कब किससे 'रार' मोल ले बैठे- कारण या अकारण कोई ठीक नहीं। कोई टोंकता तो पलटकर सवाल करते, 'आखिर इसमें मेरा क्या कसूर?' हम बच्चे पूछने का दुस्साहस करते तो कहते, 'अभी बच्चे हो, बड़े होने पर समझोगे।'

हमारे गांव शहजादपुर में बंदरों की खान थी। जहां देखिए, वहीं बंदर कब किस फल या फसल पर टूट पड़ें, कोई ठीक नहीं। बंदरों से तबाह और धर्मप्राण गांव! उन्हें हनुमानजी मानकर कोई खदेड़ता नहीं। रामफल का पहला एनकाउंटर बानरों से हुआ ऐन उनके ब्याह के बखत गलती से खरबूजे बो दिए। बंदरों का ख्याल न रहा। अब दिन-रात उनकी रखवाली में लगे रहते। अमूमन गांवों में ब्याह शाम या रात को होते। बियाह जरूरी है कि खरबूजे? जवाब है खरबूजे। बियाह आगे पीछे होता रहेगा सो बिना लगन के रामफल की जिद पर उनका ब्याह हुआ ऐन दुपहरिया में वह भी रामफल ससुराल नहीं गए क्या तो टैम नहीं है उनकी पत्नी को ही लेकर आए ससुराल वाले। वह बैशाख का महीना था। सीमांत तप रहा था। कहते हैं ऐसी तपती जेठ-वैशाख की दुपहरिया में कोई मुरदा ही जन्म लेता है या ब्याह करता है, रामफल से बड़ा मुरदा भला कौन हो सकता है। लगन की बावत पूछने पर कहते, 'सीता माई का बियाह तो सबसे उत्तम लगन में हुआ था कौन-सा दुःख नहीं झेला उन्होंने।'

जिद करके उंचास पर माड़ो (मंडप) गड़वाया था रामफल ने। विवाह में लोग चोर नजरों से दुल्हन को देखते हैं और रामफल देख रहे थे अपने खेत को जिसमें खरबूजे बोए थे उन्होंने। घंटे भर न बीते होंगे कि उन्हें चिलचिलाती दोपहरी में कुछ धब्बे उभरते दिखाई पड़े.... नाइन ने भावी पति-पत्नी की गांठ बांधी थी- पत्नी की चादर (ओढ़नी) और रामफल का अंगौछा! रामफल ने देखा कि बंदरों का

दल खरबूजे के खेत में आ गया है। फिर तो लोग 'हां, हां' कहकर रोकते रह गए और रामफल 'यह जा, वह जा' गांठ बंधी थी, सो दुल्हन भी घिसटा गई थोड़ी दूर तक।

एक तरफ रावण की तरह रामफल, दूसरी ओर बानरी सेना। नर-बानर के इस युद्ध में पहले तो रामफल हावी रहे फिर बंदरों ने उन्हें लिया खदेड़। शुकर था, गांव के लोग और बराती आ जुटे थे रामफल की सहायता के लिए। न आए होते तो क्या होता!

'अरे लगन बीती जा रही है बेटा!' पंडितजी चिंचियाये।

'कहां की लगन? कैसी लगन?' मुरहा के कौन मुंह लगे। पर यहां पंडित गलत थे और रामफल सही। खैर रामफल लौट आए। आते ही उन्होंने नाइन का इंतजार किए बिना खुद ही गांठ जोड़ते हुए दुलहिन से धीरे से पूछा, 'हमारे चलते घिसटा गई न! ज्यादा चोट तो नहीं लगी?'

पत्नी ने तत्काल क्या कहा, नहीं मालूम लेकिन बाद में जवाब दिया एक बेटा, एक बेटी हो जाने के बाद, 'मैं तो आज ही घिसटा ही रही हूं।' रामफल की माई या तो गठिया के दर्द से कराहती रहती या अपनी इस बड़की पतोहू पर बड़बड़ाती रहती। छोटके बेटे सरवन कुमार और छोटकी पतोहू से उनकी एक न पटती। विवाह के अगले साल ही अलगा बिलगी हो गई। रामफल को मिले ढाई बीघे खेत और एक 'देशी' भैंस तथा एक बैल। रामफल दूसरे का साझा बैल लेकर खेती करते रहे। बाप पहले ही उनके 'करतब' से साधू होकर कहीं चले गए थे, आज तक न लौटे। रामफल माई को खोना नहीं चाहते थे सो उनकी गाली को भी आशीर्वाद मानकर उनकी सेवा करते रहे। शादी के इतने दिन बाद उस बार भी खरबूजा बोया था उन्होंने फिर इधर कुआर में इस बार दूसरे किसानों ने आलू बोई और रामफल ने गोभी। दोनों में घाटा।

लोग-बाग तंज कसते, 'कहो रामफल खरबूजे और गोभी में तो मालामाल हो गए होंगे?'

रामफल खिंसियाई नजर से देखते।

'इस साल क्या पलान है?' कोई पूछता?

'सोचते हैं इस साल मछरी पालेंगे- गांव के लोगों की इजाजत हो तब?'

'पहले बानरों से इजाजत ले लो।'

'ले लिया। बानर मछली नहीं खाते, खासकर यहां के।'

'और हमलोग?'

'आपलोगों से कुछ भी नहीं छूटता!'

रामाज्ञा पंडित मंद-मंद मुस्काते हैं, 'अच्छा रामफल तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई कहां तक हुई है बचवा?'

'खींच-खांच के इंटर।'

'खींच-खांच के...?'

'हां पंडितजी, ऊ तो स्कूल के मास्टरों से पूछें। पहले तो फोर फेल रहे गदहिया गोल तक जानत के नाम से टुकारकर बोलावैं। हमही से छड़ी और साटा बनवा के हमही पर तोडैं। जान-बूझ के नंबर कम दें, चाहे फेल करें। कॉलेज में भी आपके भाई साहब तो प्रिंसिपल रहे पूछिए उनसे, एक दिन क्रोध में आकर लगे पीटने हम उही दिन से कहा, 'महाराज पालागी'।

'आपनि पढ़ाई रखो अपने पास।'

रामफल को याद आया, वे मदार और मेउड़ी का पात ढूंढ़ने आए थे, माई के बतास के लिए, खामखा अटक गए बतकही में।

इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस माई को कंधे पर बिठाकर कहां नहीं लिवा गए मगर रोग जस का तस। बस दो-चार दिन का फायदा, फिर दर्द लौट आवे। अब सवाल है, माई को पीठ या कंधे पर लाद कर ही क्यों, तो इसका सीधा-सा जवाब था, डॉक्टरों को दें, कि दवा-इंजेक्शन, की जांच-वांच को, कि रेल-बस का किराया-भाड़ा? बानरों को देखिए कैसे पेट-पीठ से चिपकाए इस डार से उस डार कूदते रहते हैं।'

रामफल बंदरों से रस्क करते मगर चलते ऊंट की तरह।

माई के इलाज के लिए क्या-क्या नहीं किया उन्होंने, झड़ाई, फुंकाई देहाती, आयुर्वेद, होमियोपैथी, एलोपैथी.... सब। खंचिया भर-भर की किताबें और प्रेसक्रिप्सन और विज्ञापन बटोरे। पेट साफ करने, हड्डियों, खून और नसों को ठीक रखने से लेकर किड़नी, फेफड़ा, लीवर, जरूरी विटामिंस। नाम बदल-बदल कर वही दवाएं उन्होंने सारी 'पैथी' खंगाल डाली। एक बीघा खेत बंधक रखने और हजारों रुपये का कर्ज लादकर जब कंगाल होने की स्थिति आ गई तो कहा- 'कौनहुं जतन देई नहिं जाना, ग्रसेसि न मोहिं कहा हनुमाना।'

बस सारी दवाओं को घोंटकर उन्होंने खुद डॉक्टरी का धंधा उठा लिया।

आश्चर्य! माई ठीक होने लगीं। अपनी ही दवाओं और इलाज से उन्होंने मेहरारू और बच्चों को ठीक किया। अलग-बगल, पास-पड़ोस को ठीक किया। 'डॉक्टर रामफल' हो गए। सस्ते में ही इलाज पाने के लिए दरवाजे पर भीड़ जमने लगी।

मछरी का 'जीरा' डाल दिया नंबरदार की 'गड़ही' ठेके पर लेकर बरखा बीती, जाड़ा आया। इस बीच इलाहाबाद में कुंभ आ लगा और माई ने कुंभ में स्नान करने की इच्छा जाहिर कर दी।

पत्नी एकबारगी चिढ़ गई, 'वैसे, खेत में सुग्गा हड़ाने को कहूंगी तो देह पिरोने लगेगी, का वो गठिया-बनास है और कुंभ नहाने को फट-से तैयार! इतनी भीड़ में दब-दबा गईं तो और आफत। फिर एक ही बेटा तो नहीं पैदा किया आपने, आप छोटके बेटे सरवन कुमार से क्यों नहीं कहतीं? खाली नाम-ए के सरवण हैं?'

उधर श्रवण कुमार एक चुप तो हजार चुप। रामफल ने न सरवण कुमार का इंतजार किया, न किसी गाड़ी-वाड़ी का, चुपचाप माई को उठाकर 'घोड़ाइयां' ली और पीठ पर लादे चल पड़े- सत्तू पिसान लोटा-डोरी लेकर 'कुंभ को'। ठंड भयंकर थी और अस्सी किलोमीटर की यात्रा पीठ पर चिपकाए-चिपकाए माई को नहवा ले आए। रामाज्ञा पंडित ने टिपोरी दागी 'रामफल को बानर योनि में पैदा होना था, गलती से मानुष योनि में पैदा हो गया। ऐसे में आदमी तनिक सुस्ता लेता है, पर नहीं, घर आए तो माई को चौकी पर बैठाकर पहुंचे सीधे 'गड़हिया' पर। बेटा तेजप्रताप गड़ही के किनारे बैठकर किताब पढ़ रहे थे। बाप को हठात् आया देखकर हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए 'बाबू, लगता है मछरी कोई चुरा ले गया।' ऐं... रामफल का जी धक-सा रह गया?

'तो तुम माई-पूत पहरा किस चीज का दे रहे थे?' रामफल गुस्से से काफूर। पत्नी लौट आई थी, कहा, 'ये लो, पांच दिन से रात-दिन हम माई-पूत रखवाली करते-करते 'सती' हो गए और उसका ये बख्सीस मिला?'

'तो फिर मछरिया ले कौन गया?'

'हम का जाने! अभी-अभी 'सोखा' के पास से आई रही हूं, पता लगाकर।

'मुंह न झौंस दिया चोर का तो असल बाप की बिटिया नहीं।'

रामफल अत्यंत दुखी हो गए- पानी भी नहीं पिया : सीधे जा पहुंचे ब्लाक। वहां पता चला कि दो तरह की मछलियां वे ले गए थे, उनमें से एक तरह की मछली दूसरी तरह की मछली को खा गई होगी।' चकरा गया सिर। अनाड़ी की तरह लगे ताकने, अब तक सुना था, मनई ही मनई को खाता है, अब भला बताओ, मछरी भी मछरी को खाने लगी!'

'हुंह! बीछी का मंतर न जाने, सांप के मुंह में अंगुरी डारै! कभी मछरी पाले होते तो न जानते मछरी का हाल! तुमसे तो अच्छा है सरवन, खेती-बारी अधिया पर उठाकर बंबई जा रहा है और एक तुम हो, दुनिया के सब काम तुम्हीं अकेले कर डालोगे! अपने साथ-साथ हमें भी जोते रहोगे।'

'सकल करम करि थके गोसाई! अब आगे क्या करोगे बाबू?' बेटे तेजप्रताप ने तंज किया।

'डॉक्टरी से फुसरत मिले तब न सोचूं।' झूठ नहीं कहा रामफल ने, वाकई डॉक्टर रामफल को 'डागडरी' से इन दिनों फुरसत नहीं मिलती। वे बने 'डॉगडर' तो पत्नी बनी डगडराइन और 'नर्स' और तेज प्रताप 'कंपाउंडर'। पैसे एक न लेते। जो श्रद्धा हो उसी डब्बे में डाल दो, एक छेदहा डब्बा रख दिया उन्होंने। सीरियस रोगों को वे कहते, 'लखनऊ, बनारस लेइ जाओ भैया, हमारे मान का नहीं है।' लेकिन छोटे-मोटे सर्दी, बुखार, जरी, झरी, फोड़ा-फुंसी वगैरह तो उनका हाथ लगते ही छू मंतर।

रात को मेहरारू छेदहा डब्बा खोलकर उलट देतीं। दुइ चार सौ आ ही जाते कुछ फटे-कटे नोट भी। इधर बाजार के दो एम.बी.बी.एस, दो बी.एम.एस. और दस रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर्स, माने झोलाछाप डॉक्टरों का धंधा चौपट हो गया। अब वे सैलाइन भी चढ़ाने लगे, फोड़े फुंसी का 'आपरेशन' भी, चोट-चपेट की मरहम पट्टी और बाँस का फट्टा-वट्टा बांधकर इलाज भी।

दूसरी तरफ खेती गड़बड़ाने लगी, माई पर यथोचित ध्यान न देने से माई रुष्ट रहने लगीं। उनकी बड़बड़ाहट बढ़ती गई। जरा भी ध्यान हटता कि खटिया पर लिटाए गए सेलाइन के बोतलों वाले मरीजों का इलाज करने को 'बंदर' आ जुटते। एक बंदर को रामफल ने डंडे से मार दिया तो वह लंगड़ाने लगा और गांव की पंचायत में उन्हें पांच सौ का दंड भरना पड़ा। भला हनुमानजी को ऐसे मारा जाता है। 'तो कैसे मारा जाता है?' रामफल ने पूछा और बंदरों की वह ही उदास हो गए। तीन साल जाते न जाते घर में 'गृह-कलेश' इतना बढ़ गया कि रामफल हतबुद्ध हो जाते- 'आखिर इसमें मेरा कसूर क्या है?'

गांव से उनका संबंध द्वंद्वात्मक था, दुश्मने जां भी वही जाने तमन्ना भी वही। लोग उनसे चिढ़ते भी थे और गांव में जब भी कोई समस्या अटकती तो सबसे अंत में रामफल की ही खोज होती। इधर शादियों में लड़कों द्वारा हीरों होंडा मोटरसाइकिलों की डिमांड बढ़ती जा रही थी। रामफल ने कई लड़कियों के बापों को यह कहकर मुक्ति दिलवाई कि लड़का मोटरसाइकिल चलाकर दिखा दे, तो उसकी डिमांड पर सोचा जाए। इस नुस्खे के निकष पर कइयों को मुक्ति दिलाई थी मगर एक बार खुद ऐसे फंसे कि मत पूछिए लड़के ने मोटरसाइकिल चला कर दिखा दी। अब तो लड़की के पिता के चेहरे पर हवाई उड़ने लगी पर रामफल तो रामफल थे। उन्होंने अपनी नई खरीदी मोटरसाइकिल

उसे थमा दी। घर आए तो बंदरों की जगह अपने परिवार ने ही घेर लिया।

'बेटा तेज प्रताप टुटही साइकिल से 'कालेज' जाता है और बाप ऐसा 'दानवीर' कि मोटरसाइकिल बांटता चलता है।' डगडराइन ने ताना मारा।

'डार से चूका बंदर और बात से चूका मनई।' रामफल ने पत्नी को समझाना चाहा पर समझा न पाए। झांव-झांव बढ़ती गई तो गोजी उठा ली।

बाप की गोजी को लपककर पकड़ लिया बेटे ने, बोला, 'बाबू, जैसे तुम्हारी माई तुम्हें पिराती हैं, वैसे मेरी माई भी मुझको पिराती हैं। खबरदार जो माई के ऊपर हाथ उठायेउ।'

रामफल ने बाइफोकल लेंस के पार से देखा, 'तेजप्रताप बड़ा हो गया है, फिर झुक गया। रख दी गोजी। वह रामफल की पहली हार थी।

इधर रामफल ने लक्षित किया कि उनके दवाखाने पर पहले की तरह भीड़ नहीं जुटती। कई तो कतराने लगे थे। गौर किया तो पाया कि कुछ केस खराब हो गए थे। मगर रामफल का तर्क था, ऐसा किस अस्पताल में नहीं होता। धीरे-धीरे उनके 'नर्सिंग होम' की सारी खाटें खाली हो गईं। कैसे टोंटा पड़ गया अचानक मरीजों का? दूसरी तरफ 'डगडराइन' ने एक झौली कटी-फटी नोटों को लाकर उलट दिया उनके सामने,

'इनका क्या करें?'

'अरे बैंक भिजवा देती।'

'बंक वाले ने कहा, इनको दाल में डाल कर 'साग पड़वा' बनाकर खा जाओ या बार कर ताप लो। नहीं चलेंगे।'

रामफल सोच में पड़ गए तो डगडराइन ने दूसरी समस्या रखी- 'अम्मा का क्या करोगे?'

'क्या हुआ अम्मा को?'

'तुम्हारी दवाई से फायदा नहीं हो रहा।'

'आला-वाला लगा कर देखा, डायरी छान मारी। मेटासिन दे दें, कि ऐन्टी बायटिक चला दें कि पहले जांच करा लें 104.5 टेम्परेचर है।

ताबड़तोड़ पानी की पट्टी चढ़ाने लगे। बुखार उतरा और थोड़ी देर बाद फिर लौट आया।

रामफल ने माई को लखनऊ ले जाकर दिखाना तय किया। रास्ते भर सोचते रहे माई की सेहत के प्रति यह चूक कैसे हुई। पिछले दिनों शहजादपुर के एक अनावश्यक विवाद में जोश में आकर कूद पड़े थे। विवाद सनातनी था- आरक्षण का। सवर्ण एक तरफ थे असवर्ण दूसरी तरफ। अपनी आदत से बाज न आने वाले रामफल दोनों पक्षों से एक ही बात कहते- 'आरक्षण जरूरी है, जो पिछड़ा है, उसे आरक्षण मिलना ही चाहिए। मगर, वहां एक 'मगर' बैठा है वो क्या कि वर्ण, वर्ग और लिंग- तीनों को ध्यान में रखकर आरक्षण हो।' आप लिंग मिटा नहीं सकते, भगवान की बनाई चीज है, उसके बिन सृष्टि असंभव है, पर वर्ण और वर्ग दोनों को मिटा सकते हैं। ये भगवान की बनाई चीजें नहीं हैं। मैं एक लड़का लाता हूं, क्या आप बता पायेंगे यह किस जाति का है और इसकी मूल संपत्ति कितनी होगी? नहीं न। हां बाकी चीजें...। रामफल के बाल खिचड़ी हो गए, मूंछें पक गईं। एक अजीब किस्म का गांभीर्य छा गया था उन पर। रामफल की बातें किसी की समझ में नहीं आतीं। पीठ पीछे लोग बोलते, 'साला पागल है।'

गांव भर से तीते हो गए रामफल। पवस्त भर से तीते हो गए रामफल।... और दूसरी ओर माई की तरफ पर्याप्त ध्यान न गया। दूसरे मरीजों की और भी पर्याप्त ध्यान न गया।

उजड़ गया नर्सिंग होम! मर गईं माई। खाट के पैताने बड़ी देर तक बैठकर रोते रहे रामफल। इक्के-दुक्के लोग जुटने लगे। औरतें थी। डगडराइन विलाप करने लगीं। सांत्वना देने वाले सांत्वना दे रहे थे। रामफल ने हथेलियों से आँसू पोंछ डाले-

मुझको बरबादी का कोई गम नहीं,

गम है बरबादी का क्यों चर्चा हुआ....?

माई को नीचे उतारा गया। रामफल ने कथरी उलट दी-

'अरे! दवाइयां ही दवाइयां बिछी थीं खाट पर कथरी के नीचे। उनके इस ज्ञान और सेवा का क्या मतलब...?'

रामफल ने माई को कंधे पर उठाया। लोग आशंकित। पता नहीं क्या करने वाला था वह सिरफिरा रामफल! चलते-चलते फावड़ा उठा लिया पीछे-पीछे गांव के स्त्री-पुरुष बच्चे-बच्चियों का हुजूम दौड़ता आ रहा था 'हां-हां? यह क्या कर रहे हो? रोकती-टोंकती ढेरों आवाजें? माई को रख कर खेत में फावड़े से एक गड़हा बनाया और माई को उसमें लिटा दिया। मिट्टी से 'माटी' को तोपने के बाद सिर उठाया तो देखा गांव के स्त्री-पुरुष बच्चे उन्हें डर कर ताक रहे हैं। गांव के लोग गोजी लेकर घेरकर खड़े हो गए।

पंडितजी ने कहा, 'बहुत अनीति सही हमने तुम्हारी रामफल बहुत लेकिन अब बर्दाश्त नहीं होता। तुमने हिंदू होकर मुसुरमानों की तरह कबर दे दी अपनी माई को?'

रामफल ने माटी की तरह झाड़ दिया आरोपों को। लगा, एक बार फिर घिर गए हैं बानरों से। कोई दांत निकाल रहा है, कोई धमका रहा है, खड़े हो गए, 'क्या गलत किया पंचों? क्या गलत किया? तुममें चाहे कोई हिंदू हो, चाहे मुसलमान, किसी ने फूंका, किसी ने गाड़ा, दिखती हैं किसी की माई कहीं?'

'और तुम्हारी माई दिख रही हैं?' रामाज्ञा पंडित ने तंज कसा।

'दिखेंगी, दिखेंगी पंडित महराज। फूंक देते तो मर जातीं सदा-सदा के लिए। मैंने अपनी माई को जिंदा रखा है। क्या गलत किया? वह तब भी मेरे साथ थीं, आज भी हैं और आगे भी रहेंगी।'

इस झाल से उन्हें जल्दी निकलना था। अपनी वर्ग, वर्ण और लिंग वाली थ्योरी की मीटिंग रखी थी। थोड़े ही दिनों में यह थ्योरी जड़ पकड़ने लगी थी। ऊंची जाति के नौजवान भी यदा-कदा आने लगे थे उनके बीच अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए वे महंथ जैसे दिखते। उम्र की तरह विचार भी परिपक्व ही रहे थे। बड़े-बड़ों की बोलती बंद हो जाती।

रामफल के दुश्मनों की संख्या बढ़ती गई। रामाज्ञा पंडित तो सरेआम कहते-

'नारि मुई गृह संपति नासी, मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी।

ते बिप्रन सन पांव पुजावहिं, उभयलोक निज हाथ नसावहिं।'

माई के मरने के साल बीतते न बीतते इस युद्ध में वे शहीद हो गए। किसने मारा, कुछ पता नहीं। पत्नी और बेटे ने उनकी इच्छा के अनुरूप ही उन्हें भी उनकी माई के कदमों की ओर उसी खेत में गड़हा खोदकर सुला दिया। कोई ब्रह्मभोज और शुद्धि न रामलखन ने किया था, न उनका

किया गया।

साल भर बाद सरवनकुमार अपने बाल-बच्चों के साथ गांव आए। उनके साथ झुकी कमर और पकी दाढ़ी मूंछों वाला एक अस्सी-पचासी साल का बूढ़ा भी था- उनका बाप। भादों का झापस लगा था। गोधुरिया का समय। निर्जन हो रहा था शहजादपुर। सरवन ने आते ही अपनी भौजाई से पूछा, 'माई, भैया नहीं दिखलाई पड़ रहे?'

भौजाई के बेटे तेजस्वी से कहा, 'इन्हें उनके पास ले जाओ। भेंट करा दो।'

गोधुरिया रक्ताभ हो रही थी, तेजस्वी उन्हें कहां लिवाये जा रहा था?

दादी और बाप की जगह जाकर खड़ा हो गया तेजस्वी।

'कहां है माई और भैया?

'ये रहे।'

'वहां तरोई के पीले-पीले फूल के सिवा कहां कुछ था?

गजब की फसल होती है वहां, गजब की। रामफल जैसे लोग मरते नहीं। हजार-हजार आँखों से ताक रहे होते हैं मां-बेटे- कभी फूल बनकर, कभी पत्ते बनकर, कभी फल बनकर...।

●

धुंधलके में

नवनीत मिश्र

.... अब तो बस यही है कि चुपचाप सब कुछ सहते रहो, पीठ पर लदी मोह की लादी उतारकर फेंकी नहीं जाती तो उसे बिना कुछ बोले ढोते रहो और सब तरफ से आँखें बंद किए रहो तभी सब कुछ अच्छा-अच्छा है। अभी जरा-सा किसी से कुछ कह दूं, जरा-सा किसी बात पर टोक दूं तो फिर देखिए, बाबूजी को 'बुढ़ऊ' बनते जरा देर नहीं लगेगी। तभी तो लगता है कि कंबल ने मुझे नहीं कंबल को मैंने पकड़ रखा है ... अब भरे-पूरे परिवार का यही सुख है कि सब अपनी मर्जी के मालिक-जिसके जो जी में आए करे- हद हो गई ...लौटने दो शाम को, जरा पूछूंगा कि बेटा, अपनी पत्नी जी से पूछकर जरा बताओ कि सारे गुंडे-बदमाश क्या घर में ही रहते हैं?...हद है... घर के भीतर तो मेरे और जेठ के सामने सिर पर पल्ला डाले घूमने का ढोंग और घर से बाहर निकलते ही ये नंगई। सड़क पर सब तुम्हारे देवर घूम रहे हैं?

आज सवेरे सब्जी लेकर लौटते हुए दोनों को सड़क पर देखा-मेरा तो सिर शर्म से झुक गया मगर उन नदीदों पर जैसे कोई असर ही नहीं कि सड़क पर इतने सारे लोग हैं। अरे, हम भी कोई बूढ़े ही नहीं पैदा हुए थे। हमको भी मालूम है कि राग-रंग क्या होता है- मगर ऐसी बेशर्मी तो कभी देखी क्या सोची भी नहीं थी। ऐसी जवानी फटी पड़ रही है? अरे, तुम्हारे घर नहीं है कि घर में कोई पाबंदियां हैं तुम पर कि क्या है? जितने समय घर पर रहेगा,बीवी के साथ कमरे में ही घुसा रहेगा ...रात में खाना खत्म हुआ नहीं कि दोनों की बनावटी अंगड़ाइयां और जम्हाइयां शुरू -'चलो भई सोया जाए ...' मां-बाप, जेठ-जिठानी सब बैठे हैं और दोनों कमरे के अंदर ...चढ़ गई दरवाजे की चिटखनी. ... और इसके बाद भी ये हाल है। अरे पति-पत्नी हो तो इसका क्या मतलब है? सड़कों पर अपने पति-पत्नी होने का डंका बजाते चलोगे? ये मंझले की बहू मोटरसायकिल पर पीछे बैठी कैसी गिरी पड़ रही थी मंझले की पीठ पर ...इनका तो बस नहीं चलता नहीं तो ये तो ...ये मरा टेलीविजन तो और चापर कर रहा है ...

कैसा जानवर समाज बनता जा रहा है- अभी उस दिन सब आँखें गड़ाए देख रहे थे, मैं तो उठ कर कमरे से बाहर निकल गया। जाने कौन सा धारावाहिक था- एक के बाद एक इतने तो आते चले जाते हैं, कहां तक नाम याद रखें- तो एक में मां अपनी बेटी को सिखा रही है कि वह अपने ब्वायफ्रेंड के साथ भाग जाए .... बेटी के जवान होने पर मांओं की नींद उड़ने की बात तो सुनी थी पर ये देखिए। वह एक कौन सा आता है जिसमें एक आदमी के मर जाने के बाद उसकी कोई रखैल

है जो उस मरे आदमी की संपत्ति पर हक जमाने आती है पूरे ठसके के साथ ...एक और आता है जिसमें बलात्कार-बलात्कार इतनी बार बोला जाता है जितनी बार मैं सांस भी नहीं ले पाता- यही मनोरंजन है। जब सारे समय आँखों के सामने यही सब चलता रहेगा तो और होगा भी क्या?

क्या कहो और किससे कहो? मन में चाहे जितनी खचेड़ मचाए रहो, कुढ़ते रहो सबेरे से शाम तक कौन पूछने आ रहा है? कभी सोचो तो लगता है कि मनुष्य के रूप में जीने को मिली जिंदगी के पहले बीस वर्षों के अलावा आदमी के हिस्से में आता ही क्या है? बीस वर्ष आदमी बनके जीने के बाद बीस वर्ष गधे की तरह घर-गृहस्थी में जुते रहो, उसके अगले बीस वर्ष दरवाजे पर चौकीदारी के लिए बंधे कुत्ते की तरह निगरानी करते गुर्राते रहो और अब ये बाकी बीस वर्ष किसी बूढ़े गिद्ध की तरह अपनी रफ्तार से भागी जा रही दुनिया को गरदन घुमा-घुमाकर लाचारी से देखते रहो, जब तक कि आँखें पथरा न जाएं देखते-देखते ....

मैं तो अब किसी से कुछ बोलता ही नहीं। जाओ चूल्हे-भाड़ में, जो जी में आए करो। जरा-सा कुछ बोल दो तो सब के सब एक तरफ से बुड़बुड़-बुड़बुड़ शुरू कर देंगे। और लड़कों-बहुओं को क्या कहूं, लड़कों की मां भी तो उन्हीं का पक्ष लेकर खड़ी हो जाती है। वह भी तो उनको समझाती रहती है कि 'इनकी तो आदत ही कुछ न कुछ बोलते रहने की', अब जैसे मैं कोई सिड़ी हूं जो हर समय कुछ न कुछ बोलता रहता हूं। कई बार उसे हँसी-हँसी में बताने की कोशिश की कि अब तुमको मेरे पाले में आकर खड़ा हो जाना चाहिए, मगर वह तो अभी बालों में मेंहदी लगाए अपने आपको उन्हीं के पाले का खिलाड़ी समझ रही हैं। कुछ दिन तो इसी पर खांय-खांय मची रही कि मैं बालों में डाई क्यों नहीं लगाता-उनको भी शायद लगता होगा साथ चलते हुए लोग देखेंगे तो उनकी अपनी उमर का भरम खुल जाएगा। अब क्या कहूं, दस कदम चलते ही पैर कांपने लगते हैं। उस दिन डॉक्टर ने आला लगाकर गहरी सासें लेने को कह दिया तो चार सांसों के बाद आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। एक दिन जरा-सा भीग गईं तो शाम होते-होते हरारत हो गई थी और बालों को रंगे ऐसे घूम रही हैं जैसे अभी सोलह साल की हों- अरे, बुढ़ापे का अपना ग्रेस होता है, हर चीज अपनी उम्र में ही अच्छी लगती है- मगर नहीं, भेड़ियाधसान है, जो सब कर रहे हैं, बिना सोचे-विचारे हम भी करते चलें। अपनी झुर्रियां देख देखिए, निचले जबड़े के बाहरी हिस्से में आगे से पीछे की ओर जाती झूलने को तैयार मांस की लकीर देख लीजिए, मेंहदी से लाल हो गए बाल देखिए और जरा बालों की, निकलकर झांक रहीं सफेद जड़ें भी देख लीजिए.......

एक वह बड़ा वाला है। वह तो पक्का अपनी मां का ही बिगाड़ा हुआ है। कभी जो ऐसा हो जाए कि सामने बैठा हूं तो दो घड़ी रूक जाए। आंधी की तरह सामने से गुजर जाएगा कि कहीं कुछ कहने के लिए रोक न लूं। अरे, बड़े-बुजुर्गों के पास से कुछ मिलता ही है, मगर ये क्यों रूकेंगे? शाम को आए दिन कुछ लफाड़िया किस्म के लोग आ जाएंगे और बोतल खुल जाएगी- मैंने तो अपने बाप के सामने कभी लौंग-इलायची तक नहीं डाली थी मुंह में- रात देर तक हो-हो चलती रहेगी। अपनी बीवी को भी उन्हीं शराबियों के बीच बिठा लेगा, और वह भी बेशर्मी से ही-ही, ठी-ठी करती रहेगी...पीने को मुफ्त की शराब और देखने के लिए सामने बैठी पल्ला उठाती-गिराती एक औरत हो तो फिर और किसी को चाहिए भी क्या? एक बार समझाने की कोशिश की थी तो कहने लगा बिजनेस डील में तो ऐसी पार्टियां करनी ही पड़ती हैं ...ठीक है फिर, करो बिजनेस डील। मगर एक

बात में अच्छी तरह जानता हूं कि ये जो हमेशा हवा के घोड़े पर सवार दिखाई देता है न, जिस दिन मुंह के बल गिरेगा उस दिन बाप ही याद आएगा ....'सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या किया' वाली हालत हो जाएगी ...अजी छोड़िए, ऐसे बहुत से शहसवार मैंने भी देख रखे हैं .....

कितना पैसा पीटता है क्या मैं जानता नहीं? लेकिन ऐसा पैसा जिस तरह आता है, उसी तरह जाता भी है। कोई सोचे कि ऐसे पैसे से बरकत होगी तो यह उसकी भूल है। क्या हुआ? पैसा भरा पड़ा है लेकिन औलाद का मुंह देखने को तरस गया। मैंने इतने साल नौकरी की, और कौन सी नौकरी ऐसी है जिसमें दो पैसे की गुंजायश न बन जाए। मगर नहीं, अपना ईमान अपने साथ। मैं तो अपनी कहता हूं....चकबंदी आफिस डायरेक्ट्रेट में एस.ओ.सी. सीट डील करता था। किसके हिस्से में कौन सा चक होगा उसमें एस.ओ.सी. की मर्जी चलती है लेकिन फाइल तो मेरे ही हाथों बनकर वहां तक पहुंचती थी। मैं एक बार चाह लेता तो आज लाखों में खेल रहा होता। लेकिन पूरा डायरेक्ट्रेट जानता था कि कामता गुरू किसी की एक पियाली चाय के रवादार नहीं हैं। आदमी की यही कमाई है। आदमी एक रोटी कम खाए लेकिन रात को चैन की नींद सोए तो ...ये जो आज बंदरों की तरह गालों में भरे जा रहे हैं-ठूंसे जा रहे हैं कि कल थोड़ा-थोड़ा निकाल के खाएंगे तो बाद में क्या तुम खाक खाओगे? अरे, तुम्हारी सारी उम्र तो अपनी नौकरी बचाने में ही निकल जाएगी-भला सोचे कोई, क्या दिल में लगी धुकधुकी किसी को पूरी उम्र जीने देती है?

वैसे मैंने अब किसी से भी कुछ कहना छोड़ दिया है कि तुम जानो तुम्हारा काम जाने-एक बार समझाना अपना फर्ज बनता था सो किया। उस पर भी सुनने को मिला था कि, 'जमाना कहां से कहां पहुंच गया है और आप जाने किस दनिया में जीते हैं।' मैं पूछता हूं- 'क्या अच्छी चीजों के लिए भी कभी जमाना बदल जाता है कि यह चीज पांच बरस पहले चला करती थीं,अब उसकी जगह यह नयी चीज आ गई है...क्या सदाचार, सच्चरित्रता, सच्चाई, ईमानदारी और परोपकार के लिए भी कोई एक जमाना हुआ करता है? लेकिन अब कौन जाने, और चीजों के साथ-साथ ये सब भी पुराने पड़ गए माल की तरह हो गई हों...आखिर चीजें हैं तो पुरानी और कंडम हो ही जाती होंगी।

अब देखिए न, पहले के जमाने में अपने को काटकर दूसरों को करने में ही सुख मिला करता था,अब दूसरों से झपटकर आप अपने को कितना भर लेते हैं सुख का यही पैमाना हो गया है...और यही बात है जो इन लड़कों की मां को कभी भूलती नहीं कि मेरी नौकरी के दौरान गांव में मेरे तीन-तीन भाई और उनके परिवार आकर मेरे पास रहते रहे उससे उसके अरमान पूरे नहीं हो सके। वही उस समय के अधूरे रह गए अरमानों को आज पूरा करने में जुटी हुई है वह...कभी-कभी बड़ी दया आती है...अरे, हर अरमान की एक उम्र होती है। उम्र निकल जाने के बाद वह अरमान दूर से दिखाई देने वाले सुंदर घोंसलों जैसे हो जाते हैं, जिनके पक्षी घोंसला छोड़कर जा चुके होते हैं लेकिन देखने पर लगता है जैसे वे अभी भी आबाद हों। उसे बहुतेरा समझाया कि जिस बीते समय को लेकर वह आज बिसूर रही है, उस समय सबको साथ लेकर चलना ही सबसे बड़ा अरमान हुआ करता था। मैं अपने भाइयों में सबसे बड़ा था। अब कैसे बताऊं कि बड़ा होना कितना कठिन होता है। दो छोटे भाई पढ़ रहे थे और उनसे बड़ा खेती करता था। अब बाढ़ में सब कुछ बह गया तो इसमें उन बेचारों का क्या दोष? क्या कह देता कि उनसे कि जाओ, तुम सब भूखे मरते हो तो मरो, मैं तो अपने परिवार के साथ आराम से मालपुआ भकोसूंगा? मैं उनका बड़ा भाई था, बाप की जगह था-मुझसे मदद लेना

उनका हक बनता था। ऐसे नहीं चारों भाइयों में जिंदगी भर प्रेम और सम्मान बना रहा कि तीनों मेरे पैताने ही खड़े होते थे... और एक ये तीनों हैं। एक महीने ग्वाले के हिसाब की जरा-सी गड़बड़ी से किसी एक की तरफ एक लीटर दूध के ज्यादा पैसे लग गए। उस दिन तो पूछिए मत। दूधवाले के सामने तीनों भाई और उनकी पत्नियां अपनी-अपनी हिसाब की कापियां लेकर मैदान में डंट गईं और फिर जो कुकरहांव मचा कि क्या कहूं.... एक कहे कि दूसरे ने लिया होगा, मैं पैसा क्यों दूं, दूसरा कहे कि तीसरे ने लिया होगा, मैं क्यों भरूं?- आखिर में संदेह का लाभ देते हुए दूधवाले ने ही जब एक लीटर दूध के पैसे बट्टे-खाते में डाले तब कहीं जाकर मामला शांत हुआ....

दोपहर होने को आई, अभी तक उनका कहीं पता नहीं है। माना कि खाना खिला के गई हो, सबके साथ खुद भी खा लिया होगा लेकिन क्या हमारा रिश्ता बस खाना खिलाने की चिंता का ही रह गया है? दस-साढ़े दस बजे तीनों बेटे और बहुएं काम पर निकलीं और उनके पीछे-पीछे वह भी चली गईं। अब नाक-मुंह रंगकर पास-पड़ोस में जाकर बैठने और परपंच करने का अरमान पूरा नहीं हुआ था तो पूरा कर लो,और क्या कहूं? अरे, पढ़ने-लिखने का अरमान रह गया होता,भगवत् भजन का अरमान पूरा नहीं हुआ होता या समाज सेवा का अरमान मन में रह गया होता तो चलो ठीक है लेकिन बुराई, बुराई और सिर्फ बुराई। क्या परनिंदा का अरमान रह गया था? अरे, किसी में सब कुछ बुरा ही बुरा नहीं होता, उसमें कुछ अच्छा भी होता है। मगर नहीं, जहां चार लोग जुटेंगे वहीं किसी पांचवें अनुपस्थित की बुराई शुरू...हर समय बुराई करने से आदमी का अपना तेज खत्म हो जाता है, मुंह अजीब फटे जूते जैसा निकल आता है। कभी किसी गाली न बकने वाले का चेहरा देखिए। कितना सौम्य, मन को शांति देने वाला मासूम-सा लगता है और वहीं बात-बात पर गाली बकने वाले का चेहरा देख लीजिए-गाली जैसे उसके चेहरे पर छपी दिखाई देने लगती है....अब इस समय बैठी होंगी कहीं, अपने पिता के दरवाजे पर बंधा करने वाले हाथी की दास्तान सुनाती...यहां मैं सारा दिन मुन्ने के पीछे-पीछे इस कमरे से उस कमरे अकेले लंगड़ाता घूमता रहता हूं...अरे घर में रहो, और कुछ नहीं होता तुमसे तो अपने अरमान पूरे न होने के लिए मुझे कोसो ही...अभी यही बात कहीं मजाक-मजाक में भी मुंह से निकल जाए फिर देखिए...गुस्सा भी तो सबको कितनी जल्दी आता है। बड़ा वाला तो पूरा का पूरा डिट्टो अपनी मां पर ही गया है। अभी उस दिन उससे बस इतना कहा था कि- 'बेटा दवा खरीदते समय जरा उसकी एक्सपायरी देख लेना,' बस जी इतने में तो ऐसा तिनक गया कि जाने मैंने क्या कह दिया हो। 'आप मुझे बच्चा समझते हैं?' 'मुझे सामान खरीदने की तमीज नहीं है?' 'क्या मेरा सारा काम करने आप आते हैं?' एल्लो, जरा सी एक बात पर पचासों बातें। उस दिन लाए तो थे दवा, क्या हुआ था? कहते-कहते जबान घिस गई कि बेटा डॉक्टर ने जो दवा लिखी है कुछ सोच-समझकर ही लिखी होगी, तू 'सब्स्टीट्यूट' के चक्कर में मत पड़। मगर नहीं, किसी मेडिकल रिप्रजेंटेटिव से सैंपल की गोलियां मिल जाती हैं मुफ्त में, तो काहे को पैसा खर्च करें। बाप जिए या मरे, इनकी बला से। वह तो जब डॉक्टर ने बताया कि सब्स्टीट्यूट वाली दवा में एक 'इंग्रीडियेंट' कम है जो रोग को ठीक करने की मुख्य दवा है,तब जाकर उसकी लिखी दवा आई। अब बुढ़ापा तो खुद में ही एक रोग है...जब तक कोई मरता नहीं है तब तक जिएगा ही क्या करेगा? और इन डॉक्टरों को क्या कहूं? एक बार पर्चे पर दवाएं लिखना जो शुरू करेंगे तो क्या मजाल कि पन्ना भरने से पहले उनकी कलम जरा रूककर सांस भी ले ले। अभी उस दिन डॉक्टर

को बताना चाहता था कि रिया खारिज न होने की वजह से पेट फूला-फूला-सा बना रहता है। डॉक्टर की जबान पर शेरो-शायरी थी और उंगलियां मेरी नब्ज पर। मेरा पूरा हाल सुनने से पहले ही वह सामने बैठे अपने तीन जूनियर डॉक्टरों को ग्यारह दवाओं का इमला बोल चुका था। मैं चुप रहा कि इतनी दवाएं खरीदने के लिए केमिस्ट के बिल का भुगतान करूंगा तो रिया, अपने आप खारिज हो जाएगी।

मैंने कहा न, यहां सब अपनी मर्जी के मालिक हैं। इतना कहा कि महोदय, ये कमोड मत लगवाइए, वह अपनी हिंदुस्तानी वाली ही ठीक है,मगर नहीं,जब तक अंग्रेजों की तरह अखबार पढ़ते हुए कुर्सी पर नहीं बैठेंगे तब तक उतरेगी ही नहीं...अरे दो में से कम से कम एक तो जमीन पर बैठने वाली रहने देते। कितना समझाया कि उकडूं बैठने से जब दबाव पड़ता है तो पेट ठीक से साफ होता है, मगर कौन सुनता है। सब कहने लगे कि आर्थराइटिस में कमोड आराम देता है, घुटने मोड़ने नहीं पड़ते। अब इतनी-सी बात बुद्धि में नहीं घुसती कि शरीर को तो जितना ही आराम दो वह उतना ही पसड़ता है। सुबह-शाम घुटने मोड़कर जरा देर बैठना होगा तो लचक बनी रहेगी नहीं तो जोड़ों को काठ होते क्या देर लगती है...किसको बताऊं कि गंदा पानी उछलकर लगता है तो जी घिना जाता है। एक तो वहां से उठकर भागने की जल्दी और ऊपर से वहां से आकर नहाए बिना काम नहीं चलता...अच्छी मुसीबत...मगर इतनी कब्जियत रहने लग गई कि नाक में दम। सवेरे टहलने के समय मिलने वाले लोगों में से एक ने बताया कि मेरे लिए हर्बोलेक्स लेना ठीक रहेगा। आयुर्वेदिक जुलाब है, दो-चार दिन लगातार भी ले लूंगा तो न तो कोई नुकसान होगा और न ही जुलाब की आदत पड़ेगी। बड़े वाले से कहा तो तो ले आया किसी से डलकोलेक्स की मुफ्त की गोलियां। अब मैं कहे जा रहा हूं कि मुझे हर्बोलेक्स ही ला दे, मगर वह अड़ा रहा कि दोनों एक ही हैं। अब पूछे कोई मूरख आदमी से कि एक आयुर्वेद की दवा है दूसरी एलोपैथी की-दोनों एक ही कैसे हो गईं?

अभी उस दिन मैंने हाथ जोड़े, विनम्रता की मूरत बने उस आदमी से कह दिया कि तुम सब तो मुझे एक जैसे ही चोर लगते हो तो यही बड़ा मुझे बांह पकड़कर अंदर खींचने लगा। वाह भइ, तुम जब किन्हीं दो चीजों को एक जैसी बताओ तो मुझे आँख मूंदकर मान लेना चाहिए लेकिन मैं ऐसी कोई राय नहीं दे सकता, क्यों भला? क्या गलत कह रहा था मैं कि आज तुम सत्ता में नहीं हो इसलिए सत्ता में बैठे लोगों को चोर बता रहे हो, कल तुम सत्ता में आ जाओगे तो तुम चोर हो जाओगे। क्या मैं कुछ गलत कह रहा था कि तुम मेरा वोट मांगने आए हो, मेरे वोट से कुर्सी पा जाओगे, तो यह पूछने का मेरा हक बनता है कि आज की तारीख में तुम्हारी अपनी कितनी संपत्ति है? यों कुर्सी पर बैठने के कुछ ही वर्षों बाद जब तुम्हारे घर में गद्दों और तकियों में भरी नोटों की गड्डियां बरामद होने की खबरें अखबारों में छपेंगी तभी मैं तुम्हारा क्या बिगाड़ लूंगा, लेकिन उस दिन एक चेहरा सामने मौजूद था उस पर अपना गुस्सा,अपना असंतोष तो जाहिर कर सकता था लेकिन ये सब ऐसे बेचैन हो उठे जैसे मैं इन्हीं सबको चोर कह रहा हूं। अब जरा देखिए, वह आदमी चाहे मजबूरी में ही सही, मेरी बात सुन रहा था, हो सकता था कि वह मेरी बात का कोई माकूल जवाब देता, हो सकता था कि मेरे और उसके बीच कोई बहस होती और हम किसी नतीजे पर पहुंचते या चलो मान लेता हूं कि हम किसी नतीजे पर नहीं ही पहुंचते-मगर ये सब-के-सब मुझे ही चुप कराने लगे, कोई बात आगे बढ़ने ही नहीं पाई। मैं पूछता हूं कि ये सब क्या देश और देशवासियों की सेवा के लिए मरे जा रहे हैं? आखिर यह बात मैं क्यों न मान लूं कि कल को कलफदार

कुर्ता-पाजामा पहने तीन करोड़ की शानदार कार पर सवार होकर मस्ती मारने के लिए तुम आज हाथ जोड़े नहीं घूम रहे हो? और फिर सौ की सीधी एक बात कि लोकतंत्र ने मुझे सवाल पूछने का अधिकार दिया है, उनकी जवाबदारी बनती है- तुम सब मुझे रोकने वाले कौन होते हो? असल में ये सब ठकुरसुहाती इसलिए कर रहे थे कि क्या जाने कल को यही आदमी कुछ बन जाए तो इनके काम आसानी से होने लगेंगे- अब कौन इनको समझाए कि वहां पहुंचकर आदमी अपने बाप का नहीं होता, इनका क्या होगा...भइ वाह, अच्छी आजादी आई ये। तुमको लूटने की और बाकियों को तिल-तिल मरने की खुली छूट मिल गई....और ये हैं कि मुझे ही चुप करा देना चाहते हैं। किसको कहूं-सब तो एक जैसे ही है। बस किसी से कुछ कहिए नहीं-सहते जाइए, पिटते जाइए तो आप बड़े अच्छे हैं-अरे, नहीं बनना मुझे ऐसा अच्छा.....

अभी उस दिन क्या हुआ? अमरूद खरीदते समय मैं सड़ा हुआ एक अमरूद पलड़े से उठाकर बाहर करूं और ठेलेवाला आँख बचाकर वही अमरूद फिर चढ़ा दे। दो-तीन बार यही हुआ, फिर मैंने डांटा तो कहता क्या है- 'तुम तो यार बड़े जिद्दी हो'। देखिए जरा, सड़ा माल लेने से इनकार करूं तो जिद्दी हूं- उसके बाप की उम्र का हूंगा फिर भी 'तुम' और 'यार' तो सह गया, लेकिन जब उसने कहा कि- 'लबर-लबर मत करो' तो मुझे उसके ऊपर बहुत तेज गुस्सा आ गया। मैंने तौलाए गए सारे अमरूद वापस उसके ठेले पर पलटते हुए कहा- 'जाओ, नहीं खरीदने तुमसे अमरूद।' ठेलेवाला मेरी बात सुनकर उपेक्षा से मुस्कुराया और दूसरी तरफ देखकर आवाजें लगाने लगा,उसे ग्राहकों की कौन कमी? जब आप किसी का नुकसान न कर सकते हों तो आपके गुस्से का भी कोई मतलब नहीं रह जाता। उस दिन छोटा वाला मुंह पर कह तो गया था कि- 'आपको खाने और सोने के अलावा और काम ही क्या है?' क्या कर लिया मैंने सिवाय दांत पीसने के? अभी यही बैंक में पंद्रह-बीस लाख जमा होते और एक भी धेला न मिलने का डर होता तो इसी छोटे को देखते- कैसा मुझे कांवर में उठाए-उठाए तीर्थाटन कराता घूमता-और ऐसी कोई बात भी नहीं- मैंने तो इतना भर कहा था कि खाना जरा जल्दी खा लिया कर, इससे हाजमा ठीक रहता है। बस जी, इतनी सी बात पर उखड़ गया-पता नहीं जरा-जरा सी बात पर इतना गुस्सा क्यों आने लगा है? जहां गुस्सा करना चाहिए वहां तो सन्नाटा खींच जाएंगे और एक छोटी-सी, तुम्हारे फायदे के लिए कही जा रही बात पर सिर भन्नाने लगेगा। मैंने भी सोचा कि आज कहा सो कहा, आइंदा किसी चीज के बारे में बोलूंगा ही नहीं-मुझे सबसे ज्यादा खला उसका यह कहना कि मुझे खाने और सोने के अलावा और कोई काम ही नहीं।

ये जो मंझला और उसकी बीवी मुन्ने को छोड़कर आराम से नौकरी करने जाते हैं तो किसके सहारे? इसी छोटे की बिटिया बस से स्कूल जाती है। उसे रोज सवेरे बस पर छोड़ने और दोपहर में सड़क से घर तक लाने की जिम्मेदारी कौन उठाता है? भूख से आंतें कुलबुलाने लगती हैं लेकिन उसे घर लिवा लाने से पहले कभी खाना नहीं खाता कि बुढ़ापे का शरीर, कहीं खाना खाने के बाद लेटने का मन हुआ तो लेट नहीं पाऊंगा क्योंकि बस-स्टैंड पहुंचने की चिंता लगी रहेगी.... और बस भी क्या कोई घड़ी देखकर ठीक टाइम पर रोज आ ही जाती है? कभी-कभी क्या लगभग रोज ही दस से पंद्रह मिनट तो सड़क पर खड़े रहना ही पड़ता है धूप में। छाता नहीं ले जा सकता क्योंकि बिटिया का भारी बस्ता मैं खुद ही उसकी पीठ से उतार कर अपने कंधे पर टांग लेता हूं-अब एक हाथ में उसका हाथ पकड़ूं या छाता? हाथ न पकड़ूं तो सड़क पर इधर-उधर भागने-दौड़ने लगती है। गर्मी

के दिनों में तो चलो ठीक है, लेकिन सर्दियों में सवेरे उसे लेकर बस-स्टैंड तक छोड़ने जाना कितना कष्टकर होता है....पहले जो रजाई रात भर गर्म रहा करती थी अब रात भर में मुश्किल से गर्म हो पाती है- उस पर एक दिन छुटकी बोली एक दिन कि, ये कनटोपा चढ़ाकर बंदर की तरह मेरे साथ मत चला कीजिए, मेरी सारी फ्रेंड्स मेरा मजाक बनाती हैं, आप पर यह जंचती नहीं है.... अब उससे क्या कहूं कि मेरी उम्र अब जंचने की नहीं बचने की है। यही तोतली बातें मोह की गलबहियां बनकर गले में झूली रहती हैं। दोनों बच्चों को खाना खिलाने के लिए उनके पीछे-पीछे कितना दौड़ना पड़ता है-हाथ-पैर चलते रहें इसके लिए बाजार-हाट भी कर लेता हूं- ये सिर्फ खाना और सोना है?

एक दिन दोपहर में जरा-सी आँख लग गई और वह मंझले का लड़का पानी में भीगने आंगन में चला गया। वह तो छुटकी होमवर्क कर रही थी, उसने जगाया कि मुन्ना पानी में भीग रहा है। हड़बड़ाकर उठा, उसका शरीर पोंछा और कपड़े बदले-कहना मानना तो एकदम सिखाया ही नहीं-ऐसे चिबिल्ले कि-भला मेरे मान के हैं ये बच्चे? इतना थका डालते हैं कि पूछिये मत। शाम को छुटकी ने मंझले को बताया तो जानते हैं वह क्या बोला- 'आपसे एक बच्चा भी नहीं रखा जाता?' ये देखिए, सौ दिन किए का कोई मान नहीं और एक दिन जरा-सी चूक हो गई तो सब किया-धरा मिट्टी।

अभी सबके मुंह सूज जाएंगे नहीं तो पूछना चाहिए कि अगर कोई आया या नौकर रखते तो खाना-कपड़ा तो उसे भी देते ही न? मगर यहां तो उल्टे मेरी पेंशन से ही घर के खर्च निपटाने की फिराक में रहते हैं सब.....सब मेरे ही बच्चे हैं, एक-एक पैसे का हिसाब नहीं करते बनता लेकिन यह जो चालाकी है,वह अच्छी नहीं लगती। ये क्या बात हुई कि अपने दोनों की तनख्वाहों का एक-एक पैसा दबाए रखो और अपने बीवी बच्चों की होटलबाजी पर खर्च करो और जब घर का दाल-चावल लाना हो बाप की पाई-पाई तक खर्च हो जाने तक उसके आगे हाथ फैलाते रहो...आदमी कैसा हो गया है?- ये मेरे बेटे तो सामने वाली कालोनी के उन लोगों जैसे हो गए हैं जिन्होंने अपने घर में तीन-तीन, चार-चार एयरकंडीशनर्स लगा रखे हैं। जब तक बिजली आती रहती है तक तक तो उससे बिजली खींचते रहते हैं और जब ट्रांसफार्मर चरमरा जाता है, और हर तरफ अँधेरा छा जाता है, तब उनके अपने जेनरेटर सेट चालू हो जाते हैं, जो सिर्फ उन्हीं को रोशनी देने के लिए होते हैं. ..मेरी हालत तो कंधों पर सीढ़ी लिए मीलों पैदल चलते रहने वाले उस लाइनमैन जैसी है जो ट्रांसफार्मर के बैठ जाने की वजह तो खूब जानता है लेकिन किसी से कुछ कह नहीं सकता...

अब आज लगता है कि आदमी को 'छोड़ना' आना चाहिए-जो समय के साथ धीरे-धीरे छोड़ते जाना नहीं सीख पाते वह मेरी ही तरह मोह में पड़े कीड़े की तरह बिलबिलाते रहते हैं। 'तू ऐसा मत कर', 'तू ऐसा कर ले'-क्यों भइ? सब बड़े हो गए, बाल-बच्चों वाले हुए, समझदार हो गए-कोई तो थामना नहीं चाहता और मैं हूं कि अपनी उंगली सबकी तरफ बढ़ाए रहता हूं...सबको करने देना था अपना-अपना...अरे कल मैं नहीं रहूंगा तो किसकी कौन सी दुनिया रुक जााने वाली है? अभी जब थोड़ा-बहुत हाथ-पैर चलते हैं तब तो यह हाल है, कल को कहीं बिस्तर से लग गया तो गू-मूत करने में कौन नहीं अनखाएगा....

दस बरस पहले जब रिटायरमेंट नजदीक आ रहा था, तभी सोचा था कि हम दोनों मथुरा-वृंदावन में कहीं किसी आश्रम में एक-एक लाख रूपया एकमुश्त जमा कर देंगे और बाकी जीवन वहीं शांति से रहेंगे। उस समय पैसा मिला था, उसमें से दो लाख यों निकल जाते, कुछ पैसा किसी आड़े वक्त

के लिए अपने पास रखकर बाकी पैसा बांट देता तीनों में और अपने लिए तो पेंशन थी ही। आश्रम में आनंद से पढ़ो-लिखो, घूमो फिरो, आश्रम के भंडारे में दाल-रोटी खाओ-प्रभु के गुन गाओ। मन में आए तो आश्रम में कुछ काम कर दो नहीं तो अपने कमरे में आराम करो...जिसे मन करता वहीं आश्रम में आकर मिलजुल लेता, नहीं मन करता तो जय-जय राम, सीता राम तुम अपने में खुश, हम अपने में। हारी-बीमारी कहीं से कोई याद करता, बुलाता तो दो-चार दिनों के लिए हो आता बाकी फिर अपनी मड़ैया...मगर वैसा हो नहीं सका...हम लोग अपना बुढ़ापा ठीक से 'प्लान' नहीं कर सके। वैसे यह तो बराबर मन में आता रहा कि जीवन में जितना रस-भोग था भोगा, बहुत ऊंची न सही जैसी भी थी ईमानदारी से नौकरी की, संतानें हुईं,सबको पढ़ा-लिखा दिया, सब काम पर लग गए, सबकी शादी-ब्याह कर दिए, नाती-पोते खिला लिए, जो बन पड़ा थोड़ा-थोड़ा रुपये-पैसे से भी कर दिया सबको, बहुत हो ली घर-गृहस्थी-छूटूं इस जंजाल से, मोहों और भटकावों से दूर करूं अपने आप को...मगर वैसा कुछ हो नहीं सका...हम बुढ़ापे की तैयारी करने में चूक गए। पिंजरे में बंद सुआ यही सोचता है कि जीवन में जब कभी चाहेगा उड़ जाएगा लेकिन कुछ समय बाद उड़ान भरने के लिए पंख साथ ही नहीं देते....सोचता था कि भरे-पूरे परिवार के मोह की चकाचौंध छोड़कर जब जाना चाहूंगा निकल जाऊंगा विदेह एकांत के धुंधलके में...लेकिन 'अभी तो यह भी बाकी है'- 'अभी तो यह भी नहीं हुआ','जरा यह भी हो जाता' और 'थोड़ा यह भी देख लेता' की लांय-लांय मन में मची रही... तो ठीक है...आँखें पथराने तक देखो जो देखने को मिलता है...

ये देखिए, अभी जरा देर पहले सोचा और बिजली चली गई। उठूं, पंखा बंद हो गया होगा, बच्चों को मच्छर काट रहे होंगे। आज दिन में दोनों सो गए थे। लेटा तो मैं भी इसी इरादे से था कि आज दोपहर में जरा देर मैं भी सो लूंगा, लेकिन मन जाने कहां-कहां भागता फिरता है...

उठकर खड़े होते ही सिर घूमने लगता है। डॉक्टर को दिखाया तो सिर का स्कैन कराने से लेकर टट्टी-पेशाब तक की जांच करवा डाली। सब ठीक निकला। कुछ समझ में तो आता नहीं इन डॉक्टरों को, बस एक्सपेरिमेंट करते रहते हैं मरीजों पर। और आखिर में जब कुछ नहीं समझ पाएंगे तो कह देंगे यह तो आपको 'सायकोलाजिकल' है। अब कोई पूछे, खड़े होते ही धरती डगमगाने लगती है, कमरे की दीवारें नाचने लगती हैं, कभी-कभी तो यहां तक हो जाता है कि कुछ पकड़ न लूं तो गिर पड़ूं-तब फिर? क्या, सायकोलाजिकल क्या है इसमें?

●

बहादुर को नींद नहीं आती

धीरेन्द्र अस्थाना

बिजली के खंभे के नीचे प्लास्टिक की कुर्सी पर बैठा बहादुर खंभे सा जाग रहा है। दूर निर्माणाधीन बिल्डिंग के मैदान में दिन भर हुडदंग मचाने वाले चारों कुत्ते भी सो गए हैं। सड़कों पर लगे खंभे अपने कमजोर, पीले उजास के साथ ऊंघ रहे हैं। पत्तों में सरसराहट तक नहीं है वे खामोश पेड़ों पर लटके स्तब्ध हैं। हर समय जागते रहने वाला मायावी शहर चालीस डिग्री टेंप्रेचर में अपने शरीर के छाले गिन रहा है। सूर्यकिरण बिल्डिंग के लगभग हर फ्लैट से एसी के चलने की आवाज बहादुर के कानों में पानी की समवेत बूंदों की तरह टपक रही है। शहर ने आज सुबह ही पंद्रह अप्रैल की संख्या के बाहर छलांग लगाई है।

दस साल से तो बहादुर इसी बिल्डिंग के बाहर खड़ा पूरी रात जागता है। उसे याद नहीं पड़ता कि इतनी जानलेवा गर्मी से उसका पाला पड़ा हो। बहादुर के केबिन में पंखा है लेकिन केबिन में बैठते ही नींद पंजे मारने लगती है। वह भूले से भी नींद के आगोश में नहीं जाना चाहता। बिल्डिंग के लोग बोलते हैं वाचमैन को सोने की पगार नहीं मिलती। वाचमैन जागता रहेगा तभी न बिल्डिंग के लोग भी चौन से सो पाएंगे। बिल्डिंग के चेयरमैन सतीश बहादुर के अलावा बहादुर को यहां का कोई सदस्य कभी नहीं भाया। अकेले सतीश साहब हैं जो उसे बहादुर कहकर बुलाते हैं वर्ना तो सब साले उसे वाचमैन-वाचमैन कहकर पुकारते, गरियाते और दुरदुराते रहते हैं। बहादुर दस साल से इस बिल्डिंग में कदमताल कर रहा है। इन दस सालों में उसके हालात में कोई बदलाव नहीं आया। हां, एक राहत जरूर है कि सोसाइटी ने उसे रहने के लिए कमरा, टॉयलेट और किचन दिया हुआ है। बिजली, पानी भी मुफ्त है। इस कारण बहादुर का काम चल जाता है। पगार के पूरे सात हजार रुपये वह गांव भेज देता है। नेपाल के पोखरा शहर के गांव, जहां उसकी पत्नी, उसकी मां और दो बच्चे रहा करते हैं। दोनों बच्चे कॉलेज की पढ़ाई कर रहे हैं। बहादुर का अपना खर्चा बिल्डिंग के दुपहियों और कारों को धोने से निकल जाता है। बहादुर के जीवन में हरदम बस एक ही आस टिमटिमाती है कि किसी तरह उसका बड़ा लड़का जंग बहादुर पढ़ाई पूरी करने के बाद किसी दफ्तर में काम पर लग जाए। वह दिन आया नहीं कि बहादुर तुरंत यह रात को जागने वाली लीचड़ नौकरी छोड़कर वापस गांव चला जाएगा। कितने-कितने अरमान लेकर आया था बहादुर इस हर समय जागने वाले शहर में। सारे अरमान यहां की गर्मी, सर्दी और बरसात में जल गए, ठिठुर गए, बह गए। शहर तो बड़ी बात है बहादुर ने तो सूर्यकिरण बिल्डिंग के बाहर का भी पूरा इलाका इन दस सालों में नहीं

देखा है। सहसा बहादुर को लगा कि पेशाब का आवेग नसों को झनझनाता हुआ पूरे बदन को कंपकंपा रहा है लेकिन टॉयलेट जाने के नाम पर वह डर गया। पता नहीं क्यों होता है ऐसा कि जब भी वह टॉयलेट जाता है, या चाय पीने जाता है तभी कोई न कोई सोसाइटी का मेंबर बिल्डिंग के बंद गेट के बाहर बाइक या कार का हॉर्न बजाने लगता है। थोड़ी भी देर होने पर मेंबर तड़ाक से बहादुर को गरिया देते हैं। हर चौथे रविवार सोसाइटी कमेटी की मीटिंग में बहादुर की पेशी होती है कि वह ड्यूटी के समय गेट पर नहीं था, अगर बिल्डिंग में चोरी हो गई तो कौन जिम्मेदार होगा। दो बार बिल्डिंग में चोरी हो भी चुकी है लेकिन दोपहर के समय इसलिए बहादुर दोनों बार बच गया। दिन के समय सिक्योरिटी एजेंसी का गार्ड तैनात रहता है बिल्डिंग में, जिसका खाना रहना सब एजेंसी वाले देखते हैं लेकिन ये गार्ड न तो कार वगैरह धोते हैं और न ही किसी मेंबर का कोई निजी काम करते हैं। ये सुबह आठ बजे से लेकर रात आठ बजे तक बिल्डिंग के गेट पर सिर्फ खड़े रहते हैं। बहादुर रात की ड्यूटी करने के बाद गाड़ियां साफ करता है। सोसाइटी के बिजली, पानी के बिल भरता है और सबसे खराब बात यह कि वह कमेटी के चेयरमैन, सेक्रेटरी, ट्रेजरर और कमेटी मेंबर्स की हथेली पर अनवरत् नाचता है। चेयरमैन सतीश बहादुर खाने पीने के शौकीन हैं इसलिए उनका कोई काम बहादुर को नहीं कचोटता। सतीश साहब अगर अपने लिए व्हिस्की की बॉटल मंगवाते हैं तो बहादुर को भी देसी जीएम के लिए पचास रुपये अलग से देते हैं। रात का बचा मुर्गा, मटन, पनीर, कीमा, आलू गोभी, पालक पनीर, कढ़ी, रोटी, पराठे बहादुर को सुबह-सुबह सौगात की तरह मिल जाते हैं। इससे बहादुर की नाश्ते-खाने की समस्या किसी हद तक दूर हो जाती है। बहादुर को इसीलिए सतीश साहब का काम करने में कोई उलझन नहीं लगती लेकिन बाकी लोग तो ऐसा बर्ताव करते हैं कि बाप रे बाप। सब बहादुर को अपना गुलाम जैसा समझते हैं। इन लोगों पर बहादुर को हरदम गुस्सा आया रहता है। बहादुर अपने जीवन और बिल्डिंग के मकड़जाल में उलझा झूल रहा था कि तभी गेट पर एक टैक्सी आती दिखी। बहादुर अलर्ट हो गया। चेयरमैन सतीश बहादुर उतर रहे थे। बहादुर चौक गया। रात दस बजे सो जाने वाले सतीश साहब रात डेढ़ बजे कहां से आ रहे हैं! बहादुर अदब से खड़ा हो गया।

'क्या बहादुर, कैसे हो?' सतीश बहादुर ने लड़खड़ाती आवाज में पूछा। बहादुर समझ गया साहेब किसी पार्टी-शार्टी से लौटे हैं।

'ठीक हूं साहेब' बहादुर तत्परता से बोला 'मालिक अगर दो मिनट गेट पर रूकें तो भागकर पेशाब कर आऊं'

'जाओ' सतीश साहब बहादुर के केबिन से टेक लगाकर खड़े हो गए। लौटने पर बहादुर उन्हें लिफ्ट के अंदर तक छोड़ आया। इस ग्यारह माले की बिल्डिंग में सतीश बहादुर छठे माले के पहले फ्लैट यानी 601 में रहते थे। फ्लैट में घुसकर सतीश साहब जूते मोजे और कपड़े उतार बेडरूम के बिस्तर पर ढह गए। उनकी पत्नी को जंगल, पहाड़, खंडहर घूमने का बड़ा शौक था सो वह हर गर्मियों की छुट्टियों में कहीं घूमने निकल जाती थी। इस बार वह एक पैकेज टूर के तहत कान्हा के जंगल में शेर से मिलने गई हुई थी। सतीशजी विपरीत सोच के थे। वह सोचते थे कि उन्हें क्या पागल कुत्ते ने काटा है जो वह पच्चीस हजार रुपये देकर शेर देखने जाएंगे। बोरीवली के नेशनल पार्क में शेरों को उन्होंने दसियों बार देखा था। लेकिन जनतांत्रिक सोच के तहत पति पत्नी ने जीवन जीना

चुना था वहां एक दूसरे की रुचियों के आगे किसी का अवरोध नहीं था। पत्नी को घूमने का शौक था सतीशजी को खाने-पीने का।

नींद में जाने से पहले सतीशजी ने सोचा- बच्चों की परवरिश में उनसे कोई चूक हो गई क्या? अगर नहीं तो ऐसा क्यों है कि उम्र के बासठवें पायदान पर वह इतने तन्हा हैं। अड़तीस और चौतीस साल के दो बेटों के पिता हैं वह। ऊपर से समृद्ध भीतर से दरिद्र। यह कैसा समाज हमने बना दिया है। दोनों बेटे खुद से कभी फोन नहीं करते। सतीश बहादुर करुणासिक्त होकर कभी फोन लगाते हैं तो घंटी बजकर कट जाती है। इसके बाद संदेश आता है- 'मीटिंग में हूं, फ्री होकर फोन करता हूं।' लेकिन दोनों बेटों की तरफ से फ्री होने के बाद वाला फोन कभी नहीं आता। सतीश साहब के दोस्त बताते हैं- 'वी ऑल आर इन सेम बोट। जमाना बदल गया है सतीश बाबू।' सोच की किसी दूसरी उपकथा के द्वार में नहीं घुस पाते सतीश साहब। वह लाईट बंद कर, एसी ऑन कर, चादर ओढ़ पलके बंद कर लेते हैं।

गेट पर खुद को जगाए रखने के प्रयत्न में बहादुर हलकान हुए जा रहा था। आज उसके पास कहीं से रात के खाने का पैकेट भी नहीं आया था। सो वह भूखे पेट हमाली कर रहा था। सतीश साहब को टैक्सी से उतरते देख सुबह मिलने वाले नाश्ते की उम्मीद भी दम तोड़ बैठी थी। इस आने वाली सुबह महीने के अंतिम रविवार की होगी। बहादुर की पेशी का स्थाई भाव। क्या मैं इस बिल्डिंग की नौकरी छोड़ नहीं सकता, बहादुर सोच रहा है। वाचमैन की जिंदगी में सुख नहीं होते क्या? बहादुर सोचता है और खुद से पूछता है- सुख क्या होता है? दो बच्चे पढ़ रहे हैं क्या यही सुख है? वह खुद एक कमरे में बिना किराया दिए रहता है, सोता है, क्या यही सुख है। बहादुर को नींद नहीं आती। उसकी नींद की कुर्बानी पर गांव में मां और बीवी बच्चे चैन से सोते हैं शायद यही सुख है। क्या किसी ने सुख को देखा है, बहादुर जानना चाहता है। क्या दो तीन और चार कमरों के घरों में रहने वाले सूर्य किरण बिल्डिंग के लोगों ने सुख को अपना चाकर बना रखा है। अगर हां तो इस बिल्डिंग के किसी फ्लैट से कोई महिला, कोई पुरुष या युवक-युवती कभी कभार छत से कूदकर क्यों मर जाता है? हर दो चार महीने में इस बिल्डिंग में पूछताछ करने पुलिस क्यों आती रहती है? बहादुर को कुछ समझ नहीं आता। यह तो बिलकुल नहीं कि रात के अँधेरे में कारों के पीछे खड़े-पड़े लड़के-लड़की किस सुख की तलाश में एक दूसरे पर हिलते-डुलते रहते हैं? ये अलग बात है कि ऐसी हरकतों से बहादुर को ज्यादा कमाई हो जाती है। ये लड़के-लड़की उसे सौ का नोट देकर अपने कारनामों की पहरेदारी में खड़ा कर देते हैं। बहादुर पहरेदार ही तो है न। तभी इंटरकॉम की घंटी बजी। बहादुर भागकर केबिन में गया। सातवें माले के तीसरे फ्लैट से फोन था- 'एंबुलेंस को बुला, बीवी को सिर में चोट लग गई है।'

बहादुर घबरा गया बोला- 'सर मेरे पास न तो नंबर है और न ही फोन में बैलेंस'

'फोन रख' 703 ने फोन पटक दिया। कुछ ही देर में बहादुर ने देखा एक एंबुलेंस गेट के पास आ रही है। उसी समय 703 की घायल औरत और उसके परिजन भी नीचे आ गए। बहादुर ने दरवाजा खोल दिया। एंबुलेंस घायल औरत और उसके परिजनों को लेकर निकल गई। बहादुर ने दरवाजा लॉक कर दिया और फिर से खंभे की तरह जागता खड़ा हो गया।

बिल्डिंग के सबसे खतरनाक लड़के ने गेट के खंभे से दारू की खाली बोतल टकराकर तोड़

दिया और अट्टाहास लगाने लगा। बहादुर दहशत से घिर गया। उस लड़के टिल्लू की विकराल हँसी देख बहादुर ने सोचा क्या यही सुख है? लेकिन दारू के खंबे से टूटे कांच की किरचें कल सुबह किसी के पांव में गड़ गईं और पांव में जख्म हुआ तो वह भी क्या कोई सुख होगा? बहादुर उलझ गया। टिल्लू के लिए गेट खोल वह विनम्रता से झुक गया।

'देखा' टिल्लू बोला

'हम अच्छे-अच्छों की मरोड़ देते हैं'

गेट का खंभा? इसकी मरोड़ दी! बहादुर फिर उलझ गया।

बहादुर को नींद नहीं आती। सबसे ज्यादा डर उसे नींद के चले आने से लगता है। इस अचानक चली आने वाली नींद ने उसे सोसाइटी के सदस्यों के सामने बहुत बेइज्जत किया है। उसके तीन मोबाइल इस नींद की ही भेंट चढ़े हैं। इन भेंटों के बाद तो उसने मोबाइल को जेब में रखना ही बंद कर दिया। गांव में फोन करना होता है तो कमरे पर जाकर फोन लाता है और बात करके वापस कमरे में रख आता है। गाढ़ी कमाई से खरीदे इस चौथे फोन की सुरक्षा को लेकर कुछ ज्यादा ही सतर्क रहता है बहादुर।

बहादुर की चेतना में पहले मोबाइल के गुम हो जाने की याद खट्ट से जल गई। शायद सुबह चार बजे का वक्त होगा। गेट पर मच्छर काट रहे थे इसलिए बहादुर ने केबिन में कछुआ छाप अगरबत्ती जलाई और बैठकर नेपाल समाचार पढ़ने लगा। बिल्डिंग में आने वाली तमाम गाड़ियां आ चुकी थीं। सड़कों पर सन्नाटा था। दो घंटे बाद उठकर बहादुर को फ्लैट नंबर 206, 304 और 703 की कारें साफ करनी थीं क्योंकि ये लोग सुबह सात बजे ड्यूटी पर निकल जाते थे। इस बिल्डिंग के सब लोग आपस में एक दूसरे को ज्यादा नहीं जानते थे लेकिन बहादुर सबको नाम और चेहरे से पहचानता है। इस कारण भी वह बिल्डिंग के लिए जरूरी बना हुआ है। दिन की ड्यूटी में तो कंपनी के गार्ड बदलते रहते हैं। कभी राम प्रसाद आता है, कभी भोले राम तो कभी शंकर सेठ पर रात की ड्यूटी का बहादुर कभी नहीं बदलता। पता नहीं कैसे बहादुर को झपकी लग गई। झपकी में वह पोखरा पहुंच गया। जहां उसका बड़ा बेटा जंग बहादुर बता रहा था कि 'पढ़ाई पूरी करते ही एक नामी कंपनी में उसे एरिया मैनेजर की पोस्ट पर काम मिल जाएगा। रहने के लिए वन बीएचके वाला फ्लैट भी मिलेगा। जंग बहादुर सपने में कह रहा था नौकरी मिलने के बाद आप वाचमैनी की नौकरी छोड़कर मेरे पास आ जाना बापू। मैं कोशिश करूंगा कि आपको भी अपनी कंपनी में कहीं फिट करा दूं। दस हजार तो महीने भर का आपको मिल ही जाएगा।'

इस सपने का सीना फाड़कर एक झन्नाटेदार झापड़ बहादुर के गाल पर बजा। चौंककर और घबराकर बहादुर की आँख खुली तो सामने टिल्लू खड़ा था। बहादुर की आँख में आँसू उतर आए। इतना कमजोर उसने खुद को कभी नहीं पाया था। गाल पर हाथ फिराते हुए वह रिरियाया- 'चांटा मार दिए साहेब?'

'अबे हम तो चांटा ही मारे हैं ससुर, कोई डकैत आ जाता तो गर्दन ही उड़ा जाता ससुर तुमको सोने की पगार मिलती है क्या?' नशे में धुत्त टिल्लू बहादुर को ज्ञान दे रहा था। बहादुर ने कमीज की जेब में हाथ डाला, मोबाइल गायब था। बहादुर चीखा- 'साहेब हमारा मोबाइल?'

'हमको क्या पता बे, कोई चुरा ले गया होगा।' टिल्लू ने इतराकर कहा और लिफ्ट के भीतर

घुस गया। बहादुर का चेहरा और दिल दोनों बुझ गए। वह उठा और बिल्डिंग की कुछ बत्तियां बुझाने चला गया। सुबह के पांच बज रहे थे। बिल्डिंग में आमदरफ्त बढ़ने वाली थी। फूल वाले, दूध वाले, पेपर वाले आने वाले थे। जिम वाले बिल्डिंग के लोग जाने वाले थे। एक छोटी सी झपकी ने बहादुर को दो हजार के मोबाइल की चपत लगवा दी थी। उसका दिल उससे छूटकर रोने को उतावला था। बाद में टिल्लू के विरोधी लड़के श्याम ने बताया कि बहादुर का मोबाइल टिल्लू ने ही बहादुर की जेब से निकाल लिया था और गली के अंत में मौजूद मोबाइल रिचार्ज की दुकान पर पांच सौ रूपये में बेच दिया था। सुनकर कैसा तो मन हो गया था बहादुर का। थू अमीर लोग। बहादुर ने हलक का सारा कड़वापन सड़क पर उलट दिया था। ऐसा नीच जीवन तुम्हारा। तुमसे तो लाख गुना हम अच्छे। तुम्हारे खोए हुए सड़क पर पड़े पर्स और मोबाइल हम लौटा देने वाले ठहरे।

चांटे की चमक के बाद बिल्डिंग की चाकरी से मन उचट गया बहादुर का। उसने दिन वाले गार्ड से पूछा- 'तुम्हारी कंपनी हमको नहीं रख सकती क्या?'

दिन के गार्ड ठाकुर ने ज्ञान दिया, कंपनी केवल उन लोगों को रखती है जिनका पर्मानेंट पता ठिकाना, आधार कार्ड पैन कार्ड वगैरह सब होता है। बहादुर तुम ज्यादा आराम से हो, हम कंपनी के लोग एक कमरे में दस के हिसाब से रहते हैं। हमारे टिफिन में सिर्फ दाल चावल होता है। तुम तो मुर्गा मटन भी खा लेते हो कभी-कभी। हमें जो पगार के सात हजार मिलते हैं उसमें से खाने रहने के दो हजार कंपनी काट लेती है। तुम पूरे सात हजार पाते हो, ऊपर से रहना मुफ्त, गाड़ियों की सफाई से कमाई अलग। हां इतना जरूर है कि हम पर कोई हाथ नहीं उठा सकता। तुम ठहरे गरीब की लुगाई, कोई भी तुम्हें लतिया देता है। तुम अनाथ हो बहादुर।

इस ज्ञान से बहादुर डर गया। दो जवान होते बेटों, मां और पत्नी के बावजूद बहादुर अनाथ है। उसे कोई भी लतिया सकता है। अपमान की इस सुबह बहादुर रूआंसा था। टिल्लू सूर्यकिरण बिल्डिंग के सेक्रेटरी परमानंद यादव का आवारा लड़का था वह बिल्डिंग के बाकी आवारा लड़कों का नेता टाइप भी था। खुद परमानंद यादव एक उभरते हुए नेता और बिल्डर थे। वह बात-बात में लोगों को गालियों से नवाजा करते थे। वह बिल्डिंग के लोगों से भी टेढ़ी भाषा में ही बात करते थे- 'ये चार महीने का मेनटेनेंस बाकी है। पैसा देना है या पानी का कनेक्शन काट दूं।'

बहादुर पानी छोड़ने चला गया। बिल्डिंग में हर माले पर उसकी सीटियां गूंजने लगी। उसकी सीटी सुनकर बाकी लोगों के साथ चेयरमैन सतीश बहादुर भी जागे। मुंह धोकर उन्होंने पानी की टंकी के नलों और आरओ मशीन को चालू कर दिया। दो गिलास पानी पिया और हॉल में टहलने लगे। आठ दस राउंड के बाद ही उन्हें हमेशा की तरह प्रेशर आ गया तो वे टॉयलेट में चले गए। जब तक वह फ्रेश होकर बाहर निकले दरवाजे पर दूध की थैली, फूलों का पैकेट और अखबार टंग चुके थे। सतीश साहब चाय नाश्ता तैयार करने के लिए किचन में घुस गए। पूरे पांच दिन उनकी यही दिनचर्या रहने वाली थी। पांच दिन कान्हां के जंगलों में बिताकर श्रीमती सतीश बहादुर वापस आएंगी तब तक सतीश साहब को यही दिनचर्या जीनी थी। श्रीमती सतीश बहादुर उर्फ सपना मैम सूर्यकिरण बिल्डिंग ही नहीं आसपास के तमाम इलाके की प्रख्यात शख्सियत थीं। वह पांचवीं से दसवीं तक के बच्चों को व्यक्तिगत ट्यूशन पढ़ाती थीं। ट्यूशन पढ़ाना उनका प्रोफेशन नहीं जुनून था। सतीश साहब कभी-कभी कहते थे- 'सौ साल बाद जब इस बिल्डिंग की खुदाई होगी तो अपनी

मेज पर तू ट्यूशन पढ़ाती मिलेगी।'

मुंबई के सुदूर उपनगर मीरा रोड़ के कनकिया रोड कहे जाने वाले लंबे रास्ते पर दाएं किनारे खड़ी सूर्यकिरण बिल्डिंग में जब सतीश साहब फ्लैट बुक कराने आए थे तो पत्रकार बिरादरी के उनके दोस्तों ने कहा था- 'कहां जंगल में रहने जा रहे हो?' मगर सतीश साहब की तंग जेब को इस बिल्डिंग का वन बीएचके फ्लैट सात लाख में खरीदना ही रास आया था। आज सतीश साहब सत्तर लाख के फ्लैट में बैठे हैं। मैक्डोनाल्ड के कॉर्नर से शुरू होकर उनका कनकिया वाला लंबा रास्ता मीरा रोड की खाड़ी पर समाप्त होता है। बीच में हैं कैफे कॉफी डे, सिनेमैक्स मल्टीप्लेक्स थिएटर, दसियों बैंकों के एटीएम, पांच बैंकों की शाखाएं, डेढ़ दर्जन बीयर बार एंड रेस्त्रा, बरिस्ता, रेमंड, बाटा, पैंटालून, पेपे जीन्स, करीम, दिल्ली दरबार, दो महंगे स्कूल और एक बड़ा सा पुलिस मुख्यालय। सतीश साहब एक राष्ट्रीय हिंदी दैनिक के मुंबई ब्यूरो चीफ रहे दस बरस। रिटायर हुए तो बिल्डिंग के लोग बोले अब आप संभालो यह झंझटिया राजकाज।

सतीश साहब ने भी सोचा पूरा दिन कहां व्यस्त रहेंगे तो सपना मैम के विरोध के बावजूद संभाल ली सूर्यकिरण बिल्डिंग की चेयरमैनशिप।

सतीश बहादुर इस जागते रहने वाले शहर में सन 1990 की 15 जून को दाखिल हुए थे। वह देश की राजधानी दिल्ली से देश की आर्थिक राजधानी मुंबई आए थे, यह सोचकर कि दो-चार साल गुजारकर वापस दिल्ली लौट जाएंगे, लेकिन रोजगार ने उन्हें यह मोहलत ही नहीं दी कि वे दिल्ली लौट पाते। सो थोड़ा सुभीता हुआ तो मीरा रोड़ की सूर्यकिरण बिल्डिंग में ठिकाना जमा लिया।

याद आता है सतीश साहब को। इसी बिल्डिंग से दोनों बेटों का विवाह कराया। शादी के बाद एक अपनी पत्नी के साथ गया कांदिवली के चारकोप इलाके में दूसरा गया अँधेरी में कि उसकी पत्नी का दफ्तर था अँधेरी के डीएन नगर में। बेटा था सिनेमेटोग्राफर तो उसका ज्यादातर कामकाज अँधेरी से ही ताल्लुक रखता था। बड़े की बीवी टीसीएस में मैनेजर, छोटे की बीवी जीटीवी में एचआर परसन। छोटा बेटा क्राइम रिपोर्टर। इस तरह सतीश बहादुर और उनकी पत्नी अपने सीनियर सिटीजन के दिनों को स्पर्श करने के साथ ही अकेले छूट गए।

सहसा सतीश साहब का मुंह कसैला हो आया। एक अकेला, उजाड़ और कमजोर जीवन बिताने के लिए ही चुना था उन्होंने इस मायावी शहर का बनैला एकांत। इस शहर में बिना किसी कारण कोई किसी को फोन तक नहीं करता। एक दूसरे के घर आने जाने की रवायत तो दूर की बात है। रिटायर होने के पौने दो साल होने को आए सतीश साहब को याद नहीं आता कि दो चार साहित्यिक समारोहों के आमंत्रण के अलावा कोई फोन आया हो। इसी कारण उन्होंने अपने पोस्टपेड मोबाइल को प्रीपेड में बदलवा दिया है और एमटीएनएल का लैंडलाइन कटवा दिया है। चाय नाश्ता करके सतीश बहादुर टहलने के लिए उतरे तो वाचमैन बहादुर ने रास्ता रोक लिया।

'बोलो बहादुर' सतीश बहादुर बोले।

'कैसे बोले साहेब, कल रात हमारा चौथा मोबाइल किसी ने चुरा लिया।'

'सो रहे थे क्या?' सतीश बहादुर ने पूछा।

'साहेब झपकी लगना इतना बड़ा गुनाह है क्या कि चार-चार मोबाइल बिल्डिंग वाले चुरा लें?'

'बहादुर क्या बोल रहे हो, बिल्डिंग वाले तुम्हारा मोबाइल क्यों चुराएंगे भला।'

'हमको सजा देने की खातिर साहेब।' बहादुर रूष्ट था, 'नींद आ जाना कोई गुनाह थोड़े ही है साहेब, हमारा मोबाइल दिलवा दो, टिल्लू भैया ने उठाया है।'

टिल्लू! सतीश साहब सहम गए। सेक्रेटरी का बदतमीज, बदजुबान, नशेड़ी बेटा।

'बात करता हूं' सतीश साहब ने कहा और निकट के पार्क की तरफ रवाना हो गए। वहां से उन्हें ग्यारह बजे तक लौट आना था क्योंकि साढ़े ग्यारह बजे खाना बनाने वाली सुप्रिया आ जाएगी।

महीने का अंतिम रविवार था। बहादुर की पेशी का दिन।

सूर्यकिरण बिल्डिंग हाउसिंग सोसाइटी की मैनेजमेंट कमेटी के पूरे पंद्रह सदस्य गार्डन में कुर्सियों पर जम गए थे। कुर्सियां बहादुर ने ही लगाई थीं। बीच में एक बड़ी सी मेज रख दी गई थी। दिन का गार्ड चाय समोसे लेने गेट के बाहर वाली दुकान सुमन स्वीट्स पर गया हुआ था।

'बोलो बहादुर' बिल्डिंग के सेक्रेटरी परमानंद यादव बोले और पेंट की जेब से बहादुर का कुछ रोज पहले गुम हुआ चौथा मोबाइल मेज पर रख दिया।

'साहेब यह आपके पास?' बहादुर चौक गया।

'इसे तुम्हारे केबिन की मेज की दराज से तब निकाला गया था जब तुम सो रहे थे' यादवजी ने दो टूक आरोप मढ़ा।

'इसका मतलब रात के समय कभी भी कोई हादसा बिल्डिंग में हो सकता है' यह ट्रेजरर गंगेश तिवारी थे।

'यह तो गलत बात है बहादुर' यादवजी बोले।

'बार-बार सोते पकड़े जाओगे तो कैसे चलेगा? सोसाइटी ने तुम्हें कितनी सारी सुविधाएं दे रखी हैं, बाहर किराए से घर लेकर रहोगे तो पूरी पगार उसी में खप जाएगी।'

बहादुर सिर झुकाए खड़ा था। क्या कहता।

आखिर चाय-समोसे के नाश्ते के बाद सभा इस फैसले के साथ बर्खास्त हुई कि आइंदा से बहादुर का सोता हुआ फोटो निकाला जाए और सजा के तौर पर हर बार दो सौ रुपये काट लिए जाएं। मतलब महीने में 5 बार सोता पकड़ा गया तो पगार में से हजार रुपये गुल।

बहादुर ने सोना छोड़ दिया।

उसके चेहरे पर एक स्थाई उदासी ने घर बना लिया। वह अपनी आत्मा के अंतिम कोनों अंतरों तक बुझता चला गया। उसका कभी कभी चहककर मटन चावल पकाने का उत्साह भी जाता रहा। गाड़ियां धोने में पहले वह अपना दिल लगा देता था। बड़े जतन से इस तरह कारों को धोता मानों वह खुद उन कारों का मालिक हो। अब साफ पता चलता कि कोई रोबोट है जो कारों को पोंछा मार रहा है। वह सारे ही काम यंत्रवत करने लगा। गुम हुआ चौथा मोबाइल उसे वापस मिल गया था जिसे उसने अपने टीन के बक्से में बंद कर दिया। गांव बात करनी होती तो चेयरमैन साहब के घर चला जाता। साहब होते तो साहब के फोन से, न होते तो सपना मैम साहब के फोन से बात कर लेता। इन दोनों के ही नंबर उसने गांव में छोड़ दिए थे। सूर्यकिरण बिल्डिंग में अब थोड़ा बहुत रागात्मक संबंध बहादुर को सतीश और सपना परिवार के बीच ही जलता बुझता समझ आता। सतीश साहब का काम वह अब भी राजी खुशी करता।

बिल्डिंग में रात जाती रही। सुबह आती रही। पुराने किराएदार जाते रहे, नए किराएदार आते

रहे। फूल उगते रहे, पत्ते झरते रहे। आम के पेड़ों में कच्चे आम लगते रहे, बहादुर उन्हें तोड़कर घर-घर पहुंचाता रहा। कभी कभी अपने लिए भी चटनी पीस लेता और दाल चावल के साथ चटखारे लेकर खाता।

लंबे समय बाद फिर किसी महीने का अंतिम रविवार आया। धीरे-धीरे कमेटी के सभी सदस्य कुर्सियों पर आकर बैठ गए। बहादुर हमेशा की तरह एक कोने में खड़ा रहा। दिन का गार्ड गेट पर ड्यूटी दे रहा था।

'क्या बहादुर?' सेक्रेटरी यादव ने परिहास किया- 'कई महीने से तुम सोते हुए नहीं पकड़े गए!'

'जी साहेब'

चाय समोसे का नाश्ता समाप्त हुआ तो सहसा बहादुर मुस्कुराने लगा। सब चौंक कर बहादुर की मुस्कुराहट को समझने का प्रयत्न करने लगे। बहादुर की मुस्कान हँसी में और फिर कातरता में ढलने लगी।

उसने जेब से चाबी का एक गुच्छा निकाला और मेज पर रख दिया- 'यह रही मेन गेट और टैरेस की चाबी।' फिर उसने एक और गुच्छा निकाला- 'यह रही चौक-बॉक्स की चाबियां।' फिर आखिरी दो चाबियां मेज पर रखता हुआ वह बोला- 'और यह मेरे रूम की दोनों चाबियां।'

'क्या हुआ?' दो तीन सदस्यों ने समवेत स्वर में पूछा। वैसे पूरी कमेटी ही अचंभे में थी।

'मैं आपका काम छोड़ रहा हूं साहेब' बहादुर हँस-हँस कर रो रहा था।

'क्यों' सेक्रेटरी परमानंद यादव ने गहरा आश्चर्य जताया।

बहादुर हाथ जोड़कर सबके सामने आधा झुक गया और गंभीर, पथरीली आवाज में बोला- 'क्योंकि वाचमैन को भी नींद आती है साहेब।'

चेयरमैन सतीश बहादुर को छोड़कर बाकी सब अपने क्रोध और बेचारगी में सन्निपात के रोगी की तरह कांपने लगे थे।

ठीक इसी समय वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे से सटी कांदिवली पूर्व की एक बिल्डिंग 'अंतरिक्ष' के सामने एक टैंपो से बहादुर का सपना उतर रहा था। जंग बहादुर का सामान।

●

चीफ की नाक

हरीश पाठक

यह पहली बार था।

प्रबल प्रताप की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? वह देश की एक बड़ी फाइनेंस कंपनी के जोनल चीफ के विशाल केबिन में खड़ा था, जहां ठंडी हवाएं रह-रहकर बरस रही थीं पर न जाने क्यों उसे अपने आसपास तेज-तेज गरम लपटों का अहसास हो रहा था।

वह हैरान था कि जोनल चीफ जैसे अधिकारी के आसपास बैठे लोगों को भी एफआईआर की ताकत नहीं मालूम थी, जबकि आज पूरे शहर में एक एफआईआर ने हंगामा मचाया हुआ था। शहर में हड़कंप था और जनता हैरान थी कि शहर के सबसे प्रतिष्ठित लंगर सिंह महाविद्यालय के संस्थापक ठाकुर लंगर सिंह पर उन्हीं के कॉलेज की एक प्राध्यापिका ने बलात्कार का आरोप लगाया है। यही खबर पूरे शहर में सुबह से चक्कर लगा रही है। चक्कर लगाती यह खबर परिवारों को डरा रही है और अखबारवालों को धमका रही है।

प्रबल प्रताप सीढ़ियां उतर रहा था पर उसके भीतर यह सवाल उबल रहा था कि चीफ साहब ने उसे सबके सामने किस- हैसियत से अपमानित किया? वह शहर के सबसे ज्यादा बिकनेवाले अखबार 'राष्ट्रप्रेम' का संपादक है, अखबार में छपनेवाली हर खबर का जिम्मेदार वह है। अखबार के आखिरी पन्ने पर उसका नाम भी जाता है। चीफ साब से उसका लेना-देना क्या? सिर्फ इतना कि वे उस 'सदानीरा फाइनेंस कंपनी' के मुखिया हैं, जो अखबार की पैतृक संस्था है और दोनों के मालिक बड़े साहब यानी ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' हैं।

फिर चीफ साहब ने उसे क्यों अपमानित किया? वह भी कई लोगों के सामने। वह यह भी भूल गए कि वे एक संपादक से बात कर रहे हैं जिससे मिलने से पहले शहर के डीएम और एसपी समय मांगते हैं।

प्रबल प्रताप के आगे सब कुछ धीरे-धीरे घूमने लगा।

वह आकर केबिन में बैठा ही था कि चिंता उर्फ चिंतामणि धड़धड़ाता केबिन में घुस आया। चिंता का चेहरा देख पता नहीं क्यों प्रबल प्रताप को अजीब सी चिढ़ होती है। जोनल चीफ का पीए चिंता पूरे कैंपस में दनदनाता घूमता है। माथे पर लंबा टीका 'श्री' जिसे वह समृद्धि की निशानी बोलता है, लगाए चिंता उसकी बुशर्ट का ऊपर का बटन हमेशा बटन रखता है, लोग उसे 'जोकर' कहते हैं।

चिंता ने आते ही कहा- ‘आधे घंटे से चीफ साहब आपको याद कर रहे हैं।

उसकी नजरें अखबार पर ही गड़ी थीं। उसने चिंता की तरफ देखा तक नहीं। ‘आता हूं’ उसके मुंह से बहुत धीरे-से निकला।

‘आप इन्हें जानते हैं?’ केबिन में पहुंचते ही चीफ साहब ने बगल में बैठे एक धोती कुर्ताधारी सज्जन की तरफ इशारा करते हुए कहा। आज आपने इनकी इज्जत धूल में मिला दी। जानते हैं बड़े साहब को जब यह पता चलेगा, तो आप यहां से खदेड़ दिए जाएंगे। तब क्या करेंगे? कौन आएगा आपके साथ? जानते हैं जी, कितना मुश्किल होता है बगैर नौकरी के जीना?

‘क्या हुआ’, वह संयत स्वर में बोला?

पूछ रहे हैं क्या हुआ? इतने भोले हैं? ये लंगर सिंहजी हैं जिनके गोरखपुर के आसपास तीन कॉलेज चलते हैं। शहर के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति और आपने छाप दिया कि किसी रश्मि कुमारी ने इन पर बलात्कार का आरोप लगाया है, वह भी पहले पन्ने पर, पहली खबर।

वह तो सारे, अखबारों की आज लीड है। फिर एफआईआर दर्ज हुआ है। गिरफ्तारी भी तय है। केवल हमारा ही अखबार थोड़े है ‘हिंदुस्तान’ और ‘जागरण’ में भी यह खबर पहले पन्ने पर है। हमने इतना भर ज्यादा छापा है कि इस कॉलेज में दो साल में तीन बलात्कार के मुकदमें दर्ज हुए हैं।

फिर शहर का सबसे बड़ा कॉलेज कैसे है?’ अबकी लंगर सिंह बोले।

प्रतिष्ठित कॉलेज था, अब नहीं है। बलात्कार की खबरों में आने के बाद रोज-रोज इसकी बदनामी हो रही है। विमला वर्मा वाले मामले में तो आपके एकाउंटेंट को दोषी भी पाया गया है, उसे सजा होना भी तय है। प्रबल प्रताप की आवाज गूंजी।

‘चुप रहो जी। आपने मुझसे तो पूछा होता। मैं इसी कंपनी का चीफ हूं। चीफ साहब जानते हैं लंगर सिंहजी से कंपनी को कितना फायदा है। आप लगातार बहस कर रहे हैं। ये एफआईआर क्या चीज है? फाड़कर फेंक दीजिए उसे। कागज का ही तो पुर्जा है। कमाल करते हैं खुद भी उससे डरे हुए हैं और हमको भी डरा रहे हैं।

आप एफआईआर का मतलब नहीं जानते, उसकी ताकत नहीं जानते तो मैं क्या करूं? आपके आसपास के लोग भी उसकी दहशत से वाकिफ नहीं है। यह कानून का वह हंटर है जिसकी धमक सबको हिला देती है। फिर मैं संपादक हूं, मुझे तय करना है क्या छपेगा, क्या नहीं? अखबार में मेरा नाम जाता है, अदालत में मेरी गवाही होती है आपकी नहीं। आप खबरों के बारे में मुझसे कुछ भी नहीं पूछ सकते। यह अधिकार सिर्फ ग्रुप एडीटर को है, आपको नहीं।’ प्रबल प्रताप एक सांस में बोल गया।

‘ग्रुप एडीटर कौन, वह बहरा? और वह क्या जाने फाइनेंस के गुर। पैसा तो हम लोग लाते हैं। खबरों से पैसा आता है क्या? जानते हो तुम्हारे अखबार का पैसा कहां से आता है? हमारी कंपनी ‘सदानीरा’ तुम जैसों को पाल रही है। वह तो बड़े साहब का मन है वरना काहे का अखबार, कैसी एफआईआर?’

‘यह तो बेहद बदतमीज आदमी है। आपसे बहस कर रहा है? इसे मुर्गा बना दीजिए हमारे सामने। हमारा मन शांत हो जाएगा। अदालत में तो हम देख ही लेंगे। कितनी रश्मि कुमारी हमारे

आगे पीछे घूमती रहती हैं। आप जानते नहीं हैं क्या?'

देर तक केबिन सन्नाटे की बांहों में कैद रहा। प्रबल प्रताप ने लगभग चीखते हुए कहा- 'आगे से मुझे मत बुलाइए। आपके बुलाने पर अब मैं आऊंगा भी नहीं'।

यह तो धमकी दे रहा है लंगर सिंह की आवाज गूंजी।

प्रबल प्रताप नीचे अपने केबिन में आ गया। उसने फोन उठाया और ग्रुप एडीटर का नंबर दबा दिया। जब-जब वह परेशान होता है, ग्रुप एडीटर का ही ऐसा कंधा है जिस पर वह अपना सिर टिका सकता है। बाबू तीर विजय (तीर विजय) सिंह जिन्हें वह बाबू साहब कहता है, फोन के दूसरी तरफ थे।

'बोलो प्रबल सर' उसके कानों ने सुना।

उसने पूरा किस्सा सुना दिया और उसे लगा बहुत देर से जो कुछ उसके भीतर उमड़-घुमड़ रहा था वह एक झटके में शांत हो गया।

पहले धीमे फिर दहाड़ते हुए बाबू साहब ने कहा- डरना मत प्रबल सर, मैनेजरों से संपादक नहीं डरते। उनका काम पैसा जुटाना है। जुटाते रहें। जहां से, जैसे भी जुटाएं। हमारा काम बेहतर अखबार निकालना है। निकाल रहे हैं। तब ही तो नंबर वन हैं। डरना मत। मैं बैठा हूं। मेरे रहते आपका कोई कुछ नहीं कर पाएगा। इसकी बदतमीजी बड़े साहब तक पहुंचाकर रहूंगा।'

फोन से टपके शब्द प्रबल प्रताप को ताकत दे गए। उसे लगा चीफ साहब के सामने झुकने का मतलब रोज-रोज झुकना है। उसकी समझ में ही नहीं आता कि ग्रुप एडीटर को बहरा, यूनिट हेड को टूटा और उसे हकला कहने वाला जोनल चीफ उत्तर प्रदेश के इस सबसे बड़े जोन का मुखिया क्यों और कैसे बना हुआ है? यह भी प्रबल प्रताप के समझ से परे है कि बड़े साहब उसे बेतहाशा पसंद भी क्यों करते हैं?

एक झटके में प्रबल प्रताप की नजर कंप्यूटर पर गयी- कंप्यूटर फिर बंद था। वह बड़बड़ाया। आज कंप्यूटर बार-बार हैंग क्यों हो रहा है। उसने सिस्टम इंजीनियर को फोन किया। उधर से आवाज आई- सर्वर डाउन है सर। कुछ देर में ठीक हो जाएगा।

जिंदगी के इस मोड़ पर आकर न जाने क्यों प्रबल प्रताप को लगने लगा है कि जिंदगी भी हैंग हो रही है। कभी तेज-तेज, कभी धीमे-धीमे, तो कभी कंप्यूटर के स्याह स्क्रीन की तरह काली, भद्दी और बेरौनक। कंप्यूटर में खबरों की पुरानी फाइलें खोलने और बंद करते वक्त एक दिन अचानक उसकी अपनी जिंदगी की फाइल ही खुल गयी। वह चुप-पुच उसी खुली फाइल की एक-एक लकीर को पकड़ता, छोड़ता रहा।

उसके सामने उभरा मुंबई का वह बीटी स्टेशन जहां से आज वह विदा ले रहा था और जा रहा था नई नौकरी पर। स्टेशन के ठीक सामने टाइम्स ऑफ इंडिया की भव्य इमारत थी, गॉथिक कला का ऐतिहासिक नमूना। इसी इमारत से निकलनेवाले देश के सबसे बड़े अखबार में उसने पूरे ग्यारह साल नौकरी की थी। पत्नी सामने थी। उसकी आँखें गीली थीं और कह रही थी 'इस उम्र में मुंबई छोड़ना और आपका अकेला रहना ठीक नहीं है। नयी कंपनी, नया अखबार कितना टिकाऊ साबित होगा मैं नहीं जानती पर इतना जरूर जानती हूं कि कहीं यह नौकरी रास नहीं आई तब हम क्या करेंगे? ठीक है आप यहां संपादक नहीं थे, पर अखबार तो देश का नंबर वन है। फिर उसकी आवाज

में भारीपन उतर आया और बोली कहीं ऐसा न हो कि यह गलती हमें जिंदगी भर का जख्म दे दे।'

प्रबल प्रताप सन्नाटे में था। पत्नी के शब्द टन-टन की ध्वनि के साथ उसके कानों में बज रहे थे। एक लंबी सीटी बजी और ट्रेन प्लेटफार्म पर रेंगने लगी। सरकती ट्रेन और हवा में हिलता वंदना का हाथ उसे भीतर तक भेद गया। वंदना का हाथ कभी आँखों तक आता, तो कभी हवा में हिलता।

धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म एक गोल काले धब्बे में तब्दील हो गया। वह दरवाजे से सरककर सीट पर बैठ गया पर उसके कानों पर वंदना थी। रह-रह कर उसके कान सुन रहे थे 'ऐसा न हो कि यह गलती हमें जिंदगी भर का जख्म दे दे।'

जख्म तो उसे मिले। जख्मी हुए उसके सपने। वह जिन उम्मीदों पर सवार होकर 'दैनिक राष्ट्रप्रेम' का संपादक बनकर गोरखपुर आया था, वैसा उसने कुछ नहीं पाया। उसे याद आया सुबह का वह दिन जब वह दफ्तर पहुंचा ही था कि चीफ रिपोर्टर ने एक कार्ड उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा था- 'आज रात आठ बजे अगस्त क्रांति मैदान में रामलीला समिति का विशाल कवि सम्मेलन है। बड़े कवि आ रहे हैं। ऊपर से आदेश है। फोटोग्राफर को बोल दिया है। एक-दो कवियों से छोटी-सी बात भी कर लेना, खबर के बीच में बॉक्स लग जाएगा।

प्रबल प्रताप की यही मुलाकात ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' से हुई। वे राष्ट्रभक्ति के गीत मंच से सुना रहे थे। प्रबल प्रताप को उनकी कविताओं में कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर मंच के आगे बैठे नौजवान, उनकी हर कविता पर ताली बजा रहे थे। वे सुना रहे थे 'तरुण क्रांति का शंख बजाओ रे, विषमता दूर भगाओ रे' और मंच के ठीक सामने बैठे नौजवान ताली दर ताली बजा रहे थे।

पर प्रबल प्रताप को उनसे मिलकर, बात कर जरा भी अच्छा नहीं लगा। वह भौंचक था कि बातचीत में जब उसने पूछा- 'कविता में आपका आदर्श?' तो वह बड़े गर्व से बोले- 'काका हाथरसी'। उसने फिर दोहराया- 'काका तो हास्य व्यंग्य के कवि हैं, उनका साहित्यिक योगदान तो ज्यादा नहीं है। निराला, दिनकर, पंत में से कोई? वह बेधड़क बोले- 'मैं काका को सबसे ऊपर मानता हूं। उनकी निश्छल हँसी, उनका कविता पढ़ने का अंदाज, लोगों को लोटपोट कर देने की कला लाजवाब है। वे सबसे ऊपर हैं। फिर वे काका हाथरसी की कुछ कविताएं सुनाकर खुद इतनी जोर से हँसने लगे कि प्रबल प्रताप डर गया।

ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' से यह उसकी पहली मुलाकात थी। जाते-जाते उन्होंने कहा- 'मिलते रहिए'। एक साथ तैंतीस शहरों से 'राष्ट्रप्रेम' नाका रंगीन, ब्रॉडशीट अखबार निकाल रहा हूं। संपादक बना दूंगा, संपादक।

इसी कोण पर आकर सब कुछ बदल गया था। अरसे तक रिपोर्टिंग करते-करते प्रबल प्रताप ऊब गया था। प्रशासन से लेकर हेल्थ और रेलवे से लेकर लेबर तक सारी बीट वह देख चुका था। उसके भीतर एक महत्वाकांक्षा बार-बार पछाड़ खा रही थी कि जब जहां उसे मौका मिले वह संपादक की कुर्सी पर बैठ जाए। एक ऐसा अखबार निकाले जिसमें जनता का चेहरा दिखे। वह जनता का लाड़ला अखबार बने। वह शाम से शहर में घूमे। उसके केबिन के बाहर भीड़ ही भीड़ हो और अखबार के आखिरी पन्ने पर बतौर संपादक उसका नाम हो। यह सपना हर रोज, हर वक्त उसने मन के भीतर गश्त लगाता। उसने यह सपने की खातिर भी सोच लिया था कि यदि, शहर भी बदलना पड़े तो कोई दिक्कत नहीं। वंदना की नौकरी चल ही रही है।

यह तो उसे 'राष्ट्रप्रेम' में आकर पता चला कि मंच से राष्ट्रभक्ति के गीत गाने वाले और अपने हर समारोह की शुरुआत में भारत माता की मूर्ति पर पुण्य अर्पित करनेवाले ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' उस 'सदानीरा' फाइनेंस कंपनी के मुखिया हैं, जिसकी पूरे देश में तीन सौ निहत्तर ब्रांच हैं 'सदानीरा' का तंत्र ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' ने इस तरह बनाया था कि उसकी सांसें उसी के इशारे पर ऊपर-नीचे चलती थीं।

जोन में बांट दिया था पूरा देश। हर शहर में, गांव में, कस्बे में 'सदानीरा' के दफ्तर थे। उसके एजेंट जिन्हें वह फील्ड वर्कर कहने रोज घर-घर जा कर दस रुपये से लेकर सौ रुपये तक इकट्ठे करते। फुटपाथ पर बैठे मोची से लेकर, चना-चबेना बेचनेवाले, फूल माला बेचकर अपना पेट पालनेवालों से लेकर घरों में दूध देनेवाले और मंदिर के पुजारी तक 'सदानीरा' के क्लाइंट थे। न बैंक जाने की जरूरत, न लाइन में लगने का झंझट। छोटा आदमी, अनपढ़ आदमी खुश रहता कि घर पैसा ले जाता है और मौका पड़ने पर घर पर ही पैसा आ जाता है। शादी-विवाह हो या मरक मौत 'सदानीरा' को फोन करो पैसा हाजिर। यह भी कि होली, दीपावली और 'सदानीरा' के स्थापना दिवस पर मिठाई के डिब्बे का आना कभी नहीं रूका।

यह ऐसा टोटका था जिसमें 'सदानीरा' को घर-घर पहुंचा दिया था। देखते ही देखते वह पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक बड़ी फाइनेंस कंपनी बन गयी थी।

कुछ ही दिनों में प्रबल प्रताप यह जान गया कि जिस स्वतंत्र और जनता की आवाज वाले अखबार की कल्पना वह मन के भीतर कोने में सजा-सवांरकर बैठा है, वह अखबार कम-से-कम 'राष्ट्रप्रेम' तो नहीं ही हो सकता।

कई सीढ़ियां थीं और चक्करदार इन सीढ़ियों पर कई निगाहें काबिज थीं। यह गोरखपुर में था पर यहां अखबार से ज्यादा 'सदानीरा' के दफ्तर थे। ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' मंच से उतरकर 'सदानीरा' के सर्वेसर्वा थे। वे कविताएं भूलकर यह ध्यान रखते कि किस जोन को कितना टार्गेट दिया है और वह पूरा हुआ या नहीं। यदि किसी जोन ने टार्गेट से ज्यादा पैसा जुटा लिया तो उसे उपहारों से लाद दिया जाता। इंटर्नशिप के साथ विदेश यात्रा का भी मौका वह जोन और उसके अधिकारी पा लेते। यहां आते ही कविताएं दराज में चलीं जातीं और ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' बड़े साहब में तब्दील हो जाते। ऐसे बड़े साहब जिनकी कानपुर में 'ड्रीम लैंड' नाम का अपना शहर ही बसा हुआ था। इसमें ऑडिटोरियम भी था और थिएटर भी। इसमें जहाज भी खड़े थे और पांच सितारा सुविधाओं वाले गेस्ट हाउस भी थे। बड़े साहब की गिनती देश के बड़े उद्योगपतियों में थी। अमिताभ बच्चन भी ड्रीमलैंड में आते थे, कपिलदेव भी और सानिया मिर्जा भी। मायावती से भी उनके रिश्ते थे, मुलायम सिंह से भी और राजनाथ सिंह से भी। पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को बड़े साहब 'ड्रीमलैंड' में ही रहते और 'अपना उत्सव' मनाते। नए साल के पहले दिन वे एक सौ तेरह अनाथ लड़कियों का विवाह कराते। उस दिन 'राष्ट्रप्रेम' सहित तमाम अखबारों में पूरे-पूरे पेज की खबरें छपतीं।

खबरें वे नहीं छप पातीं जिनके बारे में साफ-साफ हिदायत थी कि 'कंपनी के हित में शहर के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों से जुड़ी कोई भी खबर नहीं छापी जाए। यह हिदायत सीधे-सीधे बड़े साहब के ऑफिस से थी। एक बंद लिफाफा उसे पहले ही दिन मिला था जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था 'गोरखपुर संस्करण के ध्यानार्थ'।

ये और ऐसे तमाम रंग-बिरंगे परदे धीरे-धीरे उसके सामने से हटते गए। जैसे-जैसे वह अखबार में पुराना होता गया, वैसे-वैसे उस सूची से निकले नाम उसे अपने बनैले पंजों से डराते रहे।

यह राज पल-प्रतिपल गहराता जा रहा था कि आखिर 'जनता का अखबार' स्लोगन के साथ निकलने वाले 'राष्ट्रप्रेम' से अशोक शुक्ला, सुधीर सिंह, ब्रह्मा यादव, छात्र नेता मुर्गी सिंह, अमित मोहन, राकेश यादव, चंदन सिंह, एसओ रामपुकार और डीएसपी शिवचरन लाल का क्या रिश्ता है। चीफ साहब के केबिन में उनका बेधड़क आना, घंटों बैठे रहना, उनके सत्कार में पूरे दफ्तर का जुट जाना किस हकीकत की तरफ इशारा करता है? जबकि ये सारे शहर के बदनाम चेहरे हैं।

'अशोक शुक्ला को आप नहीं जानते?' न्यूज एडीटर भूतभावन जिन्हें दफ्तर में सब 'बाबा' कहते थे, ने चौंकते हुए पूछा।

'मैं कैसे जानूंगा, मैं तो सीधे मुंबई से आया हूं। पहले कभी यूपी में रहा भी नहीं। वह धीरे-धीरे बोला।

'तब आपने श्रीप्रकाश शुक्ला का नाम तो सुना ही होगा। वही जिसने मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को जान से मारने की धमकी दी थी। धमकी के बाद पूरा प्रशासन हरकत में था। बाद में एसटीएफ ने उसे गाजियाबाद में मार गिराया था। श्रीप्रकाश गोरखपुर का ही था। हत्या से पहले अखबार के दफ्तरों में फोन करके कहता था- 'आज चार बजे एक हत्या कर रहा हूं। पहले पेज पर छाप देना फिर इतनी जोर से हँसता था कि आदमी डर जाए। कौड़ीराम के थाना प्रभारी की उसने सरेआम हत्या कर दी थी। हत्या के बाद देर तक वह मृतक की देह पर गोलियां बरसाता था, कहीं बच न जाए बेचारा।'

'अशोक शुक्ला उसी का भाई है। उतना ही शातिर, उतना ही बड़ा क्रिमनल।'

'चीफ साहब से उसका क्या लेना-देना?' उसने पूछा।

'रोज आता है। वह साहब का भी खास है, चीफ साहब का भी। सुधीर सिंह भी चीफ साहब का खास है।'

'वही सुधीर सिंह जो जेल से रंगदारी मांगता है? परसों ही खबर छापी थी डॉ. रूपम से बीस लाख मांगे थे।' वह डरा-डरा सा बोला।

'जी, वही सुधीर सिंह जो जेल से रंगदारी मांगता है और पैरोल से छूटने के बाद सबसे पहले चीफ साहब के पैर छूने आता है। इधर छूटा, उधर फिर कोई हत्या, फिर भीतर।' अबकी भूतभावन खिलखिलाकर हँस पड़ा।

एक बार तो सुधीर सिंह अपने दलबल के साथ जब दफ्तर आया तो अपना क्राइम रिपोर्टर आलोक दुबे वहीं बैठा था, चीफ साहब के पास उसके आते ही चीफ साहब हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उसके साथ आए लोग सोफे पर आलथी-पालथी मार कर बैठ गए। एक आदमी सिर पर पोटली रखे था। सुधीर सिंह ने उससे कहा- 'चीफ साहब को दे दो।' उसने पोटली चीफ साहब की टेबल पर रख दी।

'कितने हैं?' चीफ साहब ने पूछा।

'फोन पर बताऊंगा' सुधीर सिंह ने कहा।

'किसके नाम?' चीफ साहब ने फिर पूछा।

‘एक नई लड़की है, उसके नाम।’ सुधीर सिंह बोला।

‘नाम’ चीफ साहब फिर बोले।

‘वह भी फोन पर बताऊंगा।’ सुधीर सिंह फिस्स से हँस दिया।

फिर वह बड़े इत्मीनान से बोला ‘स्टेशन के चौराहे से हम जैसे ही आपके दफ्तर के लिए मुड़े तो ट्रैफिक पर खड़ी पुलिस हमें ऐसे देख रही थी जैसे आँखों से ही गोली चला देगी।’

अभी सुधीर सिंह बोल ही रहा था कि पुलिस के साइरन की आवाज पहले धीमी, फिर तेज-तेज होती गयी। सुधीर सिंह के मुंह से निकला- ‘पुलिस, यहां अखबार के दफ्तर में।’

जब तक सीढ़ियों से तेज-तेज आवाजें आने लगीं।

सुधीर सिंह और उसके साथी फुर्ती से उठे। सुधीर सिंह ने चीफ साहब को धकियाया और उनके पीछे की खिड़की से दनादन सारे लोग कूद गए। केबिन में अफरातफरी मच गयी। चीफ साहब ‘चिंता, चिंता’ चिल्लाए और पोटली उठाकर, बगल के कमरे की तरफ भागे। चिंता आया और पोटली को उसने झटके से एक अलमारी में बंद कर दिया। चीफ साहब बगल के गेस्ट रूम में चप्पल उतार कर आराम से बैठ गए। डर के मारे उन्होंने बगल में पड़ा अखबार उठा लिया। वह तो चिंता ने सीधा किया, घबराहट में उन्होंने उलटा अखबार थाम लिया। पुलिस आयी, चली गयी।

भूतभावन फिर हँसा। वह बोला ये चीफ साहब हैं सर। घबराहट होती है कभी-कभी यह देख कर कि शहर के सबसे ज्यादा बिकनेवाले अखबार की पैतृक संस्था का जोनल चीफ अपराधियों को शरण भी देता है और उनसे रिश्ते भी रखता है। छात्र नेता के नाम से मशहूर मुर्गी सिंह ने तारामंडल में अपनी पूर्व प्रेमिका को बीच चौराहे पर जला दिया था। जब तक उसकी देह जलती रही वह रिवाल्वर थामे वहीं खड़ा रहा। रामपुकार जब रेती चौक में एसओ था तब अपने लापता भाई का पता लगाने की गुहार लेकर थाने पहुंची एक गर्भवती महिला को उसने इतना प्रताड़ित किया कि उसका थाने में ही गर्भपात हो गया। शहर भर में हंगामा मचा। महिलाओं ने थाने को घेर लिया। रामपुकार का पहले निलंबन हुआ, बाद में उसको बर्खास्त कर दिया। अब तुर्कमानपुर में होटल चलाता है। वह भी चीफ साहब का खास है। डीएसपी शिवचरन लाल जिसने फंदे पर लटकी अपनी पत्नी का वीडियो बनाकर खुद वाइरल कर दिया था बाकायदा सजा काट कर लौटा है। उसने तो चीफ साहब की छोटी बेटी के विवाह की सारी तैयारी की थी। दरवाजे पर वह साफा बांधे ऐसे खड़ा था जैसे चीफ साहब की बेटी न होकर उसकी बेटी हो।

भूतभावन शांत हो गया। प्रबल प्रताप भी शांत था। एक ऐसा सन्नाटा दोनों के बीच पसरा था जो धीरे-धीरे डर पैदा कर रहा था।

घंटी बजी। प्रबल प्रताप ने फोन उठाया। दूसरी तरफ चिंता था। ‘साहब बात करेंगे’ उसने कहा।

‘ये पंडवा कौन है जी?’ चीफ साहब की आवाज आई।

‘पंडवा, मैं तो नहीं जानता’ वह बोला।

‘अरे कोई पंडवा था आपके पहले संपादक। दो घंटे से नीचे बैठा है। भीख मांग रहा है। कह रहा है रिटायर्ड हुए तीन साल हो गए न पीएफ मिला, न बकाया। अरे हम क्या करें जी? हमारा अखबार से क्या लेना-देना? बड़े साहब जानें, उनका काम।’

इस बीच भूतभावन फुसफुसाया। प्रदीप पांडे होंगे, पुराने संपादक। कई दिन से चक्कर लगा रहे हैं। नौतनवा में एक्सीडेंट में जबसे उनका बेटा मरा है, बेहद परेशान हैं। कल मेरे पास भी आए थे, आपसे मिलना चाह रहे थे पर कल आपको फॉरेस्ट क्लब में मालिनी अवस्थी के कार्यक्रम में जाना था।

'मैं नहीं जानता। मेरे पहले वे ही संपादक थे, मुझे इतना भर पता है।' उसने टुकड़ा-टुकड़ा कहा।

पर उसने साफ-साफ सुना चीफ साहब किसी से कह रहे थे 'भगाओ साले को। पेड़ पर लटका है क्या पैसा जो तोड़ कर दे दूं। कितनी मुश्किल से जुटता है पैसा यह मैं ही जानता हूं।'

फोन कट गया था। फोन से उभरा चीफ साहब का बदमिजाज चेहरा प्रबल प्रताप को तोड़ रहा था। यह कैसा आदमी है जिसने मान मर्यादा की सारी दीवारें तोड़ दी हैं। सुधीर सिंह के सामने हाथ जोड़ता है और प्रदीप पांडे को 'भगाओ साले को' कहता है। पांडे को पंडवा कहता है और अपराधियों को 'सर'। उसे लगा वह सायास ही उस गंधी गुफा के मुहाने पर खड़ा है जिसके आसपास चटक-मटक रोशनी थी। उसी चमकदार रोशनी ने उसे छल लिया था।

वह झिलमिलाती और मन को रिझाती उस रोशनी के पीछे का स्याह अँधेरा कहां समझ पाया था? वह तो सुन रहा था वंदना की आवाज 'ऐसा न हो यह गलती हमें जिंदगी भर का जख्म दे दे।' उसने दोनों हाथों से कान बंद कर लिए।

'तो वह ठगा गया है?' उसके भीतर से एक मजबूरन आवाज उभरी।

ठगा तो कोई और गया था। यह किस्सा उसने कई बार, कई लोगों से सुना था। जब-जब 'सदानीरा' की बात चलती तब-तब श्रीधर पंजाबी का जिक्र जरूर होता और श्रीधर पंजाबी का जिक्र होता तो यह सच बेपरदा हो जाता कि ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' का देश प्रेम, देश के प्रति उनकी निष्ठा, भारत माता की विशाल मूर्ति के आगे उनका झुकना और पर्व जैसे आयोजन सिर्फ और सिर्फ छलावा हैं। उनकी नींव में वह दगाबाजी बहुत चुपके से आ बैठी है जो दगाबाजी उन्होंने श्रीधर पंजाबी के साथ की। वक्त की रेत में सब कुछ फिसल गया। लोग हाथरस को भूल गए, लोग श्रीधर पंजाबी को भूल गए। लोग उस मायावी लोक में गुम हो गए जो ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' का बनाया हुआ था।

यह किस्सा हाथरस का नहीं है, यह किस्सा कानपुर का नहीं है। यह किस्सा ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' के उस कायातंरण का है जिसमें वह कवि सम्मेलनों के मंच से उतरकर 'सदानीरा' जैसे विशाल साम्राज्य का बड़ा साहब' बन जाता है। स्कूटर पर कुर्ता-पाजामा पहन कर गली-गली घूमनेवाला ध्रुवनारायण ऊपर से नीचे तक सफेदी में डूब जाता है। वह सफेद सफारी, सफेद जूते, सफेद कार यहां तक कि उसका केबिन तक सफेदी में सराबोर था। परदे सफेद, सोफा सफेद, टेबल, कुर्सी, घड़ी सब कुछ एक ही रंग में रंगा- झक्क सफेद।

वह 13 दिसंबर की सर्द रात थी। हाथरस के मेले का कवि सम्मेलन था। काका हाथरसी के बगल में बैठे ध्रुवनारायण अपनी कविता पढ़ चुके थे। संयोजक से अपना लिफाफा भी ले चुके थे कि एक पर्ची ने उनकी जिंदगी में हलचल पैदा कर दी। उनके हाथ में एक पर्ची आई जिस पर लिखा था 'आज रात आप मेरे मेहमान हैं- श्रीधर पंजाबी।'

ध्रुवनारायण उठे और पर्ची लाए आदमी के साथ श्रीधर पंजाबी के पास पहुंच गए। सुरक्षा घेरे

में बैठे श्रीधर पंजाबी ने कहा 'आप हाथरस के मेहमान हैं, एक दिन मुझे आपकी खातिर करने का मौका दीजिए।' ध्रुवनारायण हाथ जोड़कर पूरे झुक गए।

उस रात उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वे कहां आ गए। मीलों तक फैली कोठी। बाग ही बाग। दरवाजे पर जबरदस्त सुरक्षा। गेट से लेकर कोठी तक जाने के लिए मर्सीडीज, सीएनजी कारों की भी एक कतार खड़ी थी। हेलीपेड़, मेहमानों के ठहरने के लिए होटलनुमा गेस्ट हाउस। पोलो ग्राउंड। रंगमंच। हेलीपेड और एक विशाल सभागार। ध्रुवनारायण को लगा वे किसी स्वप्नलोक में आ गए हैं जिसके हर दरवाजे पर कौतुक और जिज्ञासा की चादर तनी है। वे नीचे बैठे थे और उन्हें रूकना ऊपर के कमरे में था। संगमरमर की सीढ़ियों से जो रास्ता ऊपर जा रहा था उसकी रेलिंग सोने से मढ़ी थीं। जिस कमरे में ध्रुवनारायण रूके थे, उसके पीछे कलकल करती एक नदी थी। नीले जल से लबालब। बताया गया कि यहां तक लाने के लिए नदी की धारा को ही मोड़ दिया गया है।

रात भर सो नहीं पाए ध्रुवनारायण। यह कैसा संसार था जो उन्हें हर पल चौंका भी रहा था और डरा भी रहा था। श्रीधर पंजाबी के इस स्वप्न संसार में वे आ कैसे गए? क्या उनकी कविताओं ने यह दुनिया दिखा दी? यही सोचते-सोचते वे, कहां और कैसे भटकते रहे, उन्हें नहीं मालूम। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि इसके बाद वे कितनी बार हाथरस आए और इस कोठी में ही रूके।

श्रीधर पंजाबी उस 'सदानीरा' फाइनेंस कंपनी के मालिक थे जो धीरे-धीरे विस्तार पा रही थी। निःसंतान श्रीधर पंजाबी लगातार यात्राएं करने और इन्हीं यात्राओं के दौरान फतेहपुर में उनके पेट में ऐसा दर्द उठा कि उन्हें यात्रा छोड़ वापस हाथरस आना पड़ा। इलाज की सारी कोशिशें जब नाकाम हो गयीं तो ध्रुवनारायण ने उन्हें कानपुर के रीजेंसी गेस्टो हास्पीटल का रास्ता दिखाया और बताया कि डॉ. एन.के. मिश्रा देश के सबसे बड़े गेस्ट्रो एनटेरोलॉजिस्ट हैं उनका इलाज ही उनकी सेहत सुधार देगा।

रीजेंसी में आए श्रीधर पंजाबी के चारों ओर ऐसा सुरक्षा कवच बन गया जिसके बारीक तार ध्रुवनारायण से जुड़े थे। उनकी सेहत की खबरें रोज आती रहीं। यह खबर भी अकसर आती कि सेहत तेजी से सुधर रही है, पर उनसे मिल कोई नहीं पाता। घरवाले भी उनसे मिलने को तरसने लगे। दिन, महीने और साल बीतने लगे। अस्पताल से आनेवाली खबरें भी लोग भूल गए। लोग यह भी भूलने लगे कि श्रीधर पंजाबी बीमार हैं। उनकी चर्चा बंद हो गयी। चर्चा होने लगी ध्रुवनारायण की जो धीरे-धीरे 'सदानीरा' पर अपना अधिकार जमाने जा रहे थे। अब रीजेंसी जाना और श्रीधर पंजाबी के हाल जानने में लोगों की दिलचस्पी खत्म हो गयी थी। जब भी कोई पूछता, जवाब मिलता 'सेहत तेजी से सुधर रही है' और इसी 'तेजी से सुधरती सेहत' के बीच खबर आयी कि श्रीधर पंजाबी नहीं रहे। उनकी मौत की खबर लोगों ने सुनी और चुप लगा गए जैसे उन्हें अहसास था कि उनकी मौत तो हर पल, हर क्षण, रोज-रोज हो रही है।

हुआ यह कि अब 'सदानीरा' ध्रुवनारायण की कंपनी थी और वे ध्रुवनारायण 'राष्ट्रप्रेमी' से बड़े साहब में तब्दील हो गए थे। उन्होंने पूरे देश में कंपनी का विस्तार किया था। हाथरस बहुत पीछे छूट गया था। 'देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति' कंपनी का स्लोगन था। सारे कर्मचारी एक ही रंग में रंग दिए गए थे। नीला पेंट और नीली शर्ट उनका परिधान था। कंपनी जोन में बांट दी गयी थी। जोनल चीफ

कंपनी का बड़ा अधिकारी हो गया। उसके बाद रीजनल मैनेजर, फिर सेक्टर मैनेजर उसके बाद ब्रांच मैनेजर। हर ऑफिस में बड़े साहब की आदमकद तसवीर लगाना जरूरी था और जरूरी था दफ्तर शुरू होने के पहले 'जन गण मन' का गान।

अखबार इन सबसे अलग था और सबसे अलग था प्रबल प्रताप का मन। उसका मन रह-रह कर मुंबई की तरफ उड़ता और वह बार-बार सोचता 'जनता का अखबार' क्या ऐसा होता है जिसमें जनता के दुःख, उसके त्रास, उसकी पीड़ा, उसके सपने, उसका क्रंदन और उसके सरोकार ही गायब हों। वहां उपस्थित हो सिर्फ मालिक का गुणगान। उसके यशोगान से भरे हों सारे पन्ने। जहां अपराधी शरण पाते हों और आम जन तिरस्कार। मालिक तिकड़म में लगा हो और जोनल चीफ टार्गेट की खातिर अपराधियों का बगलगीर हो। एक ठंडी लकीर ऊपर से नीचे तक उसके शरीर में दौड़ गयी।

अबकी प्रबल प्रताप के सामने उभरा 'प्रेरणा सम्मेलन' का वह दृश्य जो चाहकर भी वह कभी नहीं भुला पाता। वह सोच ही नहीं सकता कि दूसरों को लज्जित और अपमानित करनेवाला चीफ, बड़े साहब के चरणों में कैसे दूर तक पड़ा रहा था। कांप गया था प्रबल प्रताप। उसके सामने उभरा 'ड्रीम लैंड' का वह भव्य समारोह जिसमें संपादकों को हर हाल में उपस्थित रहना था। वह सबसे आगे की कतार में बैठा था। सारे जोनल चीफ, रीजनल मैनेजर, सेक्टर मैनेजर और ब्रांच मैनेजर वहां मौजूद थे नीले पेंट, नीले शर्टवाली कॉरपोरेट ड्रेस में।

मंच पर सिर्फ एक कुर्सी थी जिस पर बड़े साहब बैठे थे। वे बहुत पुलकित थे। उनकी आवाज उत्साह में ऊपर-नीचे हो रही थी और वे कह रहे थे 'आज मैं बहुत खुश हूं। मेरी खुशी का कारण गोरखपुर यूनिट है। इस यूनिट ने पिछले माह ऐसा काम किया है कि यह यूनिट सभी की सिरमौर बन गयी है। सभी को इस यूनिट और इसके जोनल चीफ नमोनारायण जिन्हें मैं 'नाना' कहता हूं, से प्रेरणा लेना चाहिए। 'नाना' प्रेरणादायक व्यक्ति हैं। हर माह उनके टार्गेट का आंकड़ा बढ़ता ही जाता है। पिछले माह उन्होंने टार्गेट से सौ गुना बिजनेस किया। एक कंपनी को इससे ज्यादा क्या चाहिए? वे कंपनी के ऐसे हीरे हैं, जिनकी चमक से हमारे चेहरे भी चमकते हैं।'

सभागार तालियों में डूबा था। देर तक तालियां बजती रहीं। फिर आवाज उभरी 'गोरखपुर के जोनल चीफ नमोनारायण मंच पर आए।' मंच पर एक तरफ से चार लोग एक विशालकाय लाल गुलाबों का हार लेकर आगे बढ़े और दूसरी तरफ से चीफ साहब।

बड़े साहब की आवाज फिर गूंजी। 'आप भी नमोनारायण बन सकते हैं। आप भी एक दिन इसी तरह, इसी मंच पर मेरे हाथों सम्मानित हो सकते हैं बशर्ते आपका टार्गेट भी सौ गुना हो जाए।'

वे रूके फिर बोले 'क्या थे नमोनारायण। कुछ भी नहीं जीरो। जब मुझसे मिले नंगे बदन थे। सिर्फ एक चड्ढी बदन पर थी। मैं कोठी के बाहर खड़ा था। वे आए और मेरे पैरों में गिर गए। मैं डर गया। बोले- 'साहब पैसा तो कमा लेता हूं पर इज्जत नहीं मिलती।' तब कानपुर शहर में वे छोटा हाथी चलाते थे। छोटा हाथी जानते हैं आप? टाटा का एसीई वाहन, जिसे मेटाडोर भी कहते हैं, जो सामान लादने के काम आता है। सामान लादते थे और दिन भर कभी बर्रा, कभी नौबस्ता, कभी जाजमऊ, कभी विजय नगर, तो कभी स्वरूप नगर घूमते थे। पसीना, पसीना। चिंतामणि अगली सीट पर इनके पास बैठा रहता।'

मैंने कहा- 'दफ्तर आना। पूरे कपड़े पहनकर, ऐसे मत चले आना। बिहार से आए थे। आरा

के रहने वाले हैं। जब लक्ष्मणपुर- बाथे नरसंहार हुआ और साठ लोग मारे गए तो इतने डर गए कि आरा ही छोड़ दिया। सीधे तूफान एक्सप्रेस पकड़ी और कानपुर आ गए।'

अचानक मंच पर हलचल हुई। चीफ साहब दोनों हाथ जोड़े आगे बढ़े और बड़े साहब के पैरों में लोट गए। वे रो रहे थे। लोग दौड़े, उन्हें उठाया पर लगा बड़े साहब के पैरों में कोई चुंबक था, चीफ साहब टस से मस नहीं हो रहे थे।

प्रबल प्रताप स्तब्ध था। वह बड़े साहब को इत्मीनान से सुन रहा था। वह सुन रहा था उस चीफ साहब का सच्चा किस्सा जो आज का एक बिगड़ैल अफसर है। जिसकी जुबान पर सिर्फ और सिर्फ बदतमीजी के कुछ नहीं होता।

सम्मेलन खत्म हो गया था। बड़े साहब कह रहे थे- 'परसों स्थापना दिवस है, जोरशोर से इसे मनाइए। कोई कसर न रहे, तैयारी पूरी करें।'

सब गोरखपुर लौट आए। सब तरफ चीफ साहब की चर्चा थी। वे किस तरह देर तक बड़े साहब के पैरों में पड़े रहे। उन्हें बमुश्किल उठाया गया। उनकी आँखें लाल सुर्ख हो गयीं थीं। वे बड़े उत्साह से उस हार को गोरखपुर ले आए जो उन्हें पहनाया गया था। वह हार कई दिनों तक उनके केबिन में सजा रहा।

सज रहा था पूरा कैंपस। स्थापना दिवस की सब जगह धूम थी। मेन गेट पर बड़े दरवाजे लगाए गए। पूरे कैंपस को रंगीन रोशनियों से ढंक दिया गया। गुलाब की पंखुड़ियों से पटा पड़ा था। चीफ साहब का केबिन। गार्डन जहां भाषण होना था एक विशाल मंच बनाया गया था। मंच के पीछे बड़े साहब की आदमकद तसवीर थी। गार्डन के पेड़ रोशनी में नहाए थे। संपादकीय, मशीन, स्टोर, रिसेप्शन सब जगह रंगीन गुब्बारों से पाट दी गयी थी। सबको ठीक दस बजे आना था, कॉरपोरेट ड्रेस में। पहले बड़े साहब का उद्‌बोधन सुनाया जाना था फिर चीफ साहब का भाषण। अंत में कतार में लग कर सबको मिठाई लेनी थी।

प्रबल प्रताप को मंच पर बुलाया गया। वह चीफ साहब के बगल में खड़ा था। सबसे पहले कानपुर से आया बड़े साहब का भाषण पढ़ा गया। तालियां बजीं और बजती रहीं।

अब चीफ साहब की बारी थी। वे लगातार बोले जा रहे थे और उनका हर शब्द प्रबल प्रताप के भीतर झल्लाहट पैदा कर रहा था। वह हैरान था कि इतनी बड़ी कंपनी का जोनल चीफ बार-बार कह रहा था- 'सदानीरा फेमिली का जो परिवार है' और प्रबल प्रताप उनके बगल में खड़ा लाचार था। वह बेबस था। वे कह रहे थे- 'तिलक ने कहा था- तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा' और प्रबल प्रताप उन्हें रोक नहीं पा रहा था। वह उन्हें बताना चाहता था कि आप गलत बोल रहे हैं। भीड़ सन्नाटे में थी और चीफ साहब अपनी ही धारा में। वे कह रहे थे 'व्यक्ति, व्यक्ति को लेकर चल रहा है, संस्था को लेकर नहीं, जबकि संस्था बड़ी है, व्यक्ति नहीं। वे देर तक बोलते रहे। प्रबल प्रताप ने सुनना बंद कर दिया। उसने अबकी आँखें बंद कर लीं। मंच से उसका नाम पुकारा गया तो उसकी आँखें खुलीं। वह माइक तक पहुंचा कि चीफ साहब उसके कान में फुसफुसाए- 'कम ही बोलिए। हमारी नाक मत कटवाइए। अर्र-बर्र मत बोलना। चीफ साहब की आवाज माइक से होती, दूर तक फैल गयी।

प्रबल प्रताप सन्न रह गया। उसे लगा किसी ने बिजली का नंगा तार उसकी रीढ़ में ऊपर से

नीचे तक छुआ दिया है। करंट से थरथराता शरीर। गुस्से में उबलता प्रबल प्रताप। उसने खुद को संभाला। कुछ ठिठका फिर बोला 'साथियों, चीफ साहब के बाद मैं क्या कहूं? वे सब कुछ बोल ही चुके हैं। आज मैं बोलूंगा नहीं, कुछ करूंगा और वह झटके से मुड़ा और एक तेज मुक्का उसने चीफ साहब की नाक पर जड़ दिया। चीफ साहब चिल्लाए- 'चिंता, चिंता'। फिर वह लगातार चीफ साहब पर मुक्के बरसाता रहा। फिर उसने स्टैंड से माइक निकाला और चीफ साहब के माथे पर जड़ दिया। पहले तेज, फिर धीमी-धीमी होती उनकी कराहें माइक से होती कैंपस में दौड़ती रहीं।

उसने देखा कतार में लगे लोग हिल तक नहीं रहे हैं। सब चुपचाप अपनी जगह खड़े हैं। सुरक्षा कर्मी उतरी बंदूक लिए खामोश खड़े हैं। वह मंच से उतरा। कतार में खड़े लोगों के बीच से आगे बढ़ा। एक जानलेवा सन्नाटा सब तरफ पसरा था। चीफ साहब की कराहें अब धीमे-धीमे उभर रही थीं।

वह मेन गेट तक आया। दरवाजा अपने आप खुल गया। वह सड़क तक आया। आसमान बादलों से घिरा था। ठंडी हवाएं रह-रह कर बह रही थीं। हवा में बारिश की फुहारें थीं। उसने रिक्शा रोका और धम्म से बैठ गया।

पार्क होटल के सामने से गुजरता रिक्शा अब यूनिवर्सिटी चौराहे की तरफ जा रहा था। फुहारें बढ़ती जा रही थीं।

तेज-तेज फुहारों के बीच दूर कहीं से आवाज आ रही थी- पहले धीमे-धीमे फिर तेज-तेज

तब शुभ नामे जागे
तब शुभ आशिष मांगे
गाहे तब जय गाथा।

रिक्शा धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह कहां जा रहा है, उसे कुछ नहीं मालूम?

अब उसे अपना ही रास्ता खोजना था।

●

अल्लाह नदारद

जयनंदन

घसीटन मियां अल्लाह को हांक लगा-लगाकर गालियां देता था। नाम तो उसका हनीफ खटिक था, लेकिन उसके घिसट-घिसटकर चलने की वजह से लोगों ने उसे घसीटन नाम का तमगा बख्श दिया था। वह दोनों हाथ उठाकर अल्लाह को कोसते हुए कहा करता था, 'तुम्हरा कोई वजूद नंय हय। अगर हय तो तुम बहुत बड़का बेइंसाफ हो। हम सराप देते हंय कि दुनिया से तुम्हरा इकबाल खतम हो जाय और कोई नामलेवा नंय रह जाय।'

घसीटन आँख से अंधा था और उसके पैर भी पोलियो के कारण लुंज-पुंज हो गए थे। उसका जवान बेटा उसे सहारा देकर भीख मंगवाता था। खासकर रमजान के मौके पर। बाकी दिन वह कुछ मेहनत-मजूरी भी कर लिया करता था।

लोग घसीटन को इस बात के लिए दुत्कारते थे कि जब तुम अल्लाह को नहीं मानते हो तो उसे मानने वालों से भीख क्यों मांगते हो? वह ढीठ बनकर उनका सामना कर लेता और जुबान लड़ा लेता, 'अल्लाह नंय है, ये ही वजह से तो हमरा को भीख मांगना पड़ रहा है। ऊ अगरचे होता तो हमरे भीख मांगने की नौबते नंय आने देता। हमने या हमरे खानदान में कभी किसी ने किसी का कुच्छो नंय बिगाड़िस, कोई बईमानी नंय किहिस, फिर भी हमको अप्पन गरीबी-गुरबत के साथ एक अंधा और अपाहिज होवे के सजा भोगे के पड़ रहा है।'

लोग कहते कि कहीं तुम्हारे इस गुनाह के लिए अल्लाह तुम पर और भी कोई कहर न ढा दे?

'एकरा से बड़ा कहर भला हम पर और का होगा? अगर अल्लाह हय तो हम उसको ललकारते हंय कि वह इससे बड़का कहर हमरा पर ढा कर दिखावे।'

लोग अब अभ्यस्त हो गए थे उसके इस तरह बोलने, बतियाने और बरतने के। उसकी अदा थी कि वह भीख घिघियाकर या मिमियाकर दाता की दुहाई देकर नहीं मांगा करता था बल्कि दरवाजे पर खड़ा होकर वह एक फेरीवाले की तरह पुकारता था- 'दे दे अल्लाह के नदारद होवे के नाम पर। ऊ होता तो हम फकीर नंय होते।' उसके इस अनोखे किरदार का असर खाली नहीं जाता था। कुछ लोग तो चिढ़कर उसे दुर-दुरा देते थे, लेकिन कुछ लोग उसे खब्ती समझ उसके मांगने के निराले अंदाज पर खैरात देने से खुद को रोक नहीं पाते थे।

वह सिर्फ खुदा की खुदाई को ही ललकारता हो, ऐसा नहीं था। वह सरेआम गांव के पूर्व जमींदार अब्दुल जिक्र उस्मानी साहब के नाम भी लानतें उछालता रहता था जबकि सभी लोग जानते थे कि

वह इस गांव मकदूमपुर में आता या लाया जाता भी है तो इसलिए कि जिक्र साहब हर साल रमजान के मौके पर गांव में एक जलसा सा समां बना देते हैं। दुनिया की निगाह में भूखे, नंगे और मोहताज फकीरों की एक महीने की जिंदगी में रंगत ला देते हैं। घसीटन खुद यहां से सात-आठ कोस की दूरी पर स्थित एक गांव महद्दीपुर का रहने वाला था। रमजान शुरू होते ही उसका लड़का उसे लेकर यहां हाजिरी लगा देता था।

घसीटन की गाली-गलौज और बेअदबी का इल्म जिक्र साहब के बराहिलों तक भी पहुंचती रहती थी। एक बार एक जफर खान नामका बराहिल ने उसे आड़े हाथों लेते हुए कहा, 'अबे घसीटना, तू साले अंधे हो, लुंज हो, फिर भी तुम इतने नाशुक्रे हो कि अल्लाह को भी कोसते हो और अपने हुजूर जिक्र साहब के लिए भी अनाप-शनाप गुफ्तगू करते रहते हो। अगर तुम्हें अल्लाह और जिक्र साहब की सरपरस्ती में यकीन नहीं है तो तुम यहां आते क्यों हो?'

'ई हमरी मरजी हय कि हम कहां जांय, कहां नंय जांय। तुम्हरे हजूर को एतराज हय तो उनको मना कर दो कि हमको खैरात नंय दें और इफ्तार से हमको निकाल दें। हमको जिस-जिस से शिकायत है उसको हम गरिऐवे करेंगे। कोई हमको रोक नंय सकता हय।'

'खबर पहुंच गयी न बाबू साहब तक तो तेरा सब फुट-फुट धरा रह जाएगा। बांध के इतना मारेंगे कि तेरी बची-खुची हड्डी का भी चूरमा बन जाएगा।'

'ऐ बराहिल, बेसी चपड़-चपड़ मत करो। जा तू बोल दे जाके अप्पन आका को। ऊ जो करेंगे, हम देख लेंगे। हम कौनो झूठ नंय कहते हंय कि गरीबन को सता करके ही ई लोग मालिक बने हैं। इफ्तार की दावत के नाम पर चटनी चटाने का काम वो ई खातिर करते हंय कि उनकर खानदानी गुनाह का बोझा कम हो जाय।'

गांव में उस्मानी परिवार की ओर से हर साल रमजान के मौके पर पूरे एक महीने तक सामूहिक इफ्तार पार्टी का आयोजन करने की एक रवायत कायम हो गयी थी। आसपास और दूर-दराज से सैकड़ों की संख्या में फकीर रमजान शुरू होते ही आ जुटते थे। इस्टेट के आसपास की सारी इमारतों, मदरसों और मस्जिद के बरामदों में फकीरों का डेरा जम जाता था। फकीरों में एक से एक अपाहिज और विकृत जिस्मों वाले लाचार लोग प्रकट हो जाते थे। कोई ठेला गाड़ी पर दो फुट की काया में, कोई दोनों कटे हुए पैर लेकर, कोई दोनों कटे हुए हाथ लेकर। इन्हें देखकर वाकई खुदा की खुदाई पर संशय के बादल घिर आते और घसीटन का कहा सच मालूम होने लगता। हालांकि घसीटन के अलावा वे सारे, जो खुद अपाहिज थे, ऐसा लगता था कि अल्लाह से उन्हें कोई शिकायत नहीं है। वे अब भी ऊपर वाले की बंदगी में कोई कोताही नहीं करते से लगते और जो कुछ हो रहा था उनके साथ, उसे अल्लाह का करम मानकर चलते या रेंगते दिखाई पड़ते। दिन भर रोजा रखते और आसपास के गांवों में गश्त लगाकर खैरात मांगते।

शाम को रोजा खोले जाने के समय सबको पंगत में बैठाकर इफ्तार की लज्जतदार पकवान परोसे जाते। सभी फकीर उंगलियां चाटते हुए जिक्र साहब को दुआओं से पामाल कर देते। एक घसीटन था जो किनारे बैठा होता और खाते हुए कहा करता कि जिकर साहेब खानदानी बदकारी के लज्जतदार ब्याज चुका रहिन हैं।'

बगल वाला पूछ बैठता, 'का बकते रहते हो घसीटन? खा भी रहे हो और नमकहरामी भी कर

रहे हो। बाबू साहेब नेकी और दरियादिली दिखा के हम भुक्खड़ों का पेट भर रहे हैं और तुम उन पर बदकारी का इल्जाम लगा रहे हो।'

'तुम ससुर पकौड़ी खाओ। समझ में नहीं आवेगा तुमको। बदकारी ई माने में कि इनके पास जरूरत से बहुत बेसी दौलत है तो जरूरे इनकर खानदान में कोई न कोई बेईमानी, कत्लोगारत या लूटपाट करके हासिल किहिस होगा समझे?'

'उस्मानी इस्टेट' के अब्दुल जिक्र उस्मानी तीसरी पीढ़ी के वारिस थे। उनके दादा का नाम अब्दुल फिक्र उस्मानी और उनके अब्बा का नाम अब्दुल शुक्र उस्मानी था। जब जमींदारी चली गयी और रौब-रुतबे और रसूख में कमी आ गयी तो जिक्र साहब ने रांची में जाकर अपना व्यापार फैला लिया। वे इसी शहर में रहकर तालीमयाफ्ता हुए थे। यहां उन्होंने अपना एक आलीशान बंगला बनवा लिया। यहीं से वे अपने मुलाजिमों के जरिए से बंगाल, उड़ीसा और बिहार की शराब दुकानों के ठेके संभालने लगे और रांची में एक विशाल पॉल्ट्री फॉर्म खोल दिया। गांव के इस्टेट और पूरा जाल-माल बराहिलों और अमलदारों के जिम्मे लगा दिया। देख-रेख का जायजा लेने के लिए कभी बीच में आ गए तो आ गए, वरना रमजान के मौके पर आना तो पूरी तरह मुकर्रर था।

वे जब अपने पूरे लाव-लश्कर के साथ गांव आते थे तो गांव का रुतबा आसमान छू लेता था और चहल-पहल में एक सरगर्मी समा जाती थी। इस्टेट के आगे के लॉन में उनकी एंबेसेडर कारों का काफिला खड़ा हो जाया करता। इन्हें गांव के मोहताज किसान-मजदूर बड़े हसरत से आँखें फाड़-फाड़कर देखते और कल्पना करते कि कार में बैठकर चलने में बड़ा मजा आता होगा। उन दिनों कार के नाम पर देश में यही कार हर जगह दिखाई पड़ती थी। आज की तरह देश-विदेश की दर्जनों ब्रांडेड कंपनियों की डिजाइनदार कारें उपलब्ध नहीं थीं।

वह दौर भूमंडलीकरण का नहीं था। अतः विदेशी उत्पादों को यहां मार्केटिंग करने की इजाजत नहीं थी। उन दिनों जिक्र उस्मानी जैसे खानदानी रइसों या फिर बड़े सरकारी अफसरों या फिर बड़े बिजनेस टायकूनों के पास ही कारें दिखाई पड़ती थीं। आज छोटी-छोटी नौकरियों वाले भी एलाउंस लेने के लिए अपने दरवाजे पर ओढ़ना ओढ़ाकर कार रख लेते हैं। मतलब यह कि कारें कीमतों में और बनावटों में आज की तरह उन दिनों आम आदमी की औकात में नहीं अंटती थीं। उन दिनों तो मोटरसाइकिल या स्कूटर भी इने-गिने लोग ही अफोर्ड कर पाते थे। बजाज के स्कूटर के लिए लाइन लगानी पड़ती थी जो कई बरस इंतजार करने के बाद आती थी। आज की तरह ऐसा नहीं था कि बाजार में दर्जनों ब्रांड उपलब्ध हो, जिनमें से, गए और मन मुताबिक ब्रांड चुनकर घर ले आए।

आज के समय में दाम एक साथ देना मुमकिन न हो तो जीरो इंट्रेस्ट पर किस्तवार देने की सुविधा के साथ सभी दुकानदार हांक लगाते हुए तत्पर दिखाई पड़ जाते हैं। उस समय जो महाजनी प्रथा थी वह आज की बैंकजनी प्रथा में तब्दील नहीं हुई थी।

जिक्र साहब के गांव आते ही बंद पड़ा शाही बाबर्चीखाना जगमगाकर जीवंत हो उठता था। छह-सात खानसामा और एक दर्जन खादिम तैयारी में जुट जाते। वहां से चटपटे और जायकेदार व्यंजन बनने की खुशबु इस्टेट के आसपास फैल जातीं और लोगों के मुंह में पानी भर देतीं। लोग अनुमान लगाते रहते कि सालन में क्या बन रहा होगा? कोई कहता कि बड़के का गोश्त बन रहा है, कोई कहता खस्सी के गोश्त की महक आ रही है, कोई कहता कि चिकन रांधे जा रहे हैं, कोई

कहता कि जिक्र साहब ने कौआकोल के जंगल से हिरण का शिकार करवाया है।

उन दिनों आज की तरह ऐसा सरकारी फरमान नहीं था कि कौन सा गोश्त खाएं और कौन सा न खाएं। शिकार पर भी पाबंदी नहीं थी। जंगल घना था और उनमें जंगली जानवरों का बाहुल्य था। उनकी किसी भी प्रजाति के विलुप्त हो जाने का संकट नहीं था। बड़े-बड़े नामी, कद्दावर और रसूखदार लोगों का शिकार एक शौक तथा उनकी बहादुरी और चतुराई का पैमाना हुआ करता था। शेरों, चीतों, बाघों तथा हिरनों के शिकार की कहानियां बड़े चाव से सुनायी, लिखी और पढ़ी जाती थीं।

बाबर्चीखाने के पास ही में मुसहरी टोला था। वहां खाना पकने की तेज खुशबुएं सीधे पहुंच जाती थीं। अकसर भूखे रहने वाले या रुखे-सूखे खाने वाले बेचारे मुसहरों की बेचैनी बढ़ जाती। उनमें कुछ मुसहर तो ऐसे थे कि जूठन खाने के लिए भी लालायित रहा करते। वे कई बार आकर इस्टेट का चक्कर लगा लेते। उनके हमशक्ल दो-तीन मुसहर, जो वहां खादिम के तौर पर बहाल थे, को वे बड़े हसरत से निहार लेते। उनकी डीलडौल देखकर सभी उन्हें बड़ी किस्मत वाला मानते। उन खादिमों के बारे में वे सोचते कि क्या ही तकदीर वाला है कि इन्हें भी खाने के लिए भर दम बिरयानी और गोश्त मिल जाया करता होगा। मालिकों के दस्तरखान से जूठन बटोरने का काम उन्हीं खादिमों का था। वे जमा की हुई जूठन घर ले आते तो उनके इंतजार कर रहे ललचाए लोग अपना कटोरा लिए उनकी मड़ई में मौजूद मिल जाते।

रमजान के बाद आने वाली ईद के एक दिन सभी फकीरों और फकीरिनों में नए कपड़े बांटे जाते।

ऐसा ही चल रहा था कि एक साल घसीटन मियां को जिक्र साहब ने तलब कर लिया। उसके गाली-गलौज करने की शिकायतें वे कई लोगों से सुनते आ रहे थे जिसे सुनते-सुनते उनका कान पक गया था।

उस रोज शाही बाबर्चीखाने की खुशबू जब घसीटन मियां की नाक तक पहुंची तो वह अपने लड़के से पूछ बैठा, 'अरे बउआ, तनी जाके कौनो बबरची से पता करके आहीं तो कि जे खनवा बन रहले है, संझिया के इफ्तरवा में कि ओहे परोसल जाई?'

लड़के ने कहा, 'एहो कौनो पूछे के बात हय? शाही बबरचीखाना में की फकीरन के वास्ते निवाला पकतई? ई तो मालिक लोगन, उनकर रिश्तेदारन और दोस्तन के खातिर हय। फकीरन के वास्ते तो इस्टेटवा के पीछे तंबू डाल के पकावल जा रहले हय।'

'देखहीं, ई कैसन खोदा के बंदा हय। ओकर नाम पर इफ्तार दे हय, शबाब लूटो हय और हियां भी भेद-भाव करो हय। हम तोरा मना करो हियौ कि ऐसन जगह हमरा नंय जाना हय, जहां पर ढोंग-ढकोसला करल जा हय। मगर तूं मानवे नंय करो हीं, हरेक बच्छर ले आवो हीं घसीट के। हम तोरा पर निरभर नंय रहतियो हल तउ बाप किरिया हियां कभियो नंय ऐतियो हल। जिकर उस्मनिया जैसन अमीर लोग गरीबन के हक-हुकूक के हलाल करके ऐय्याशी के किला बना लेलके हय अउर इफ्तार देवे के नाम पर मजाक उड़ावो हय।'

'बाबा, तनी मुंहा संभाल के बोल्हीं। तोरा तो कुछ पता नंय हऊ कि अगल-बगल में के हय। कोई चुगल-चट्टा मलिकवा तक चुगली कर देई तउ बस होय जाई तोर छुट्टी। तू बोल रहनी हल और जफर बराहिला बगले से गुजर रहलो हल। अंखिया तरेर के तोरा देखते गेलऊ।'

'जफरवा साला मउगा हय, घूम-घूम के जासूसी करते फिरो हय। मलिकवा तर कनफुसकी करतई तो करे देहीं। कौन सा ऊ हीरा-मोती दे दे हय, जे ओकरा से डेरा जइये।'

थोड़ी ही देर बाद उसकी बुलाहट हो गयी। आलीशान गद्दे पर गाव तकिए के सहारे अधलेटे जिक्र साहब ने पूछा, 'क्यों भाई घसीटन......।'

बीच में ही बोल पड़ा घसीटन, 'हुजूर, मेरा नाम घसीटन नहीं हनीफ है।'

'अच्छा.....हनीफ है। हां तो हनीफ मियां, सुना कि तुम अल्लाहताला को नहीं मानते।'

'आपने ठीके सुना है हुजूर। अल्लाहताला आपके लिए होता होगा। हम गरीब अपाहिज के लिए कोई अल्लाह-वल्लाह नहीं है। अगरचे होता तो हम आन्हर और लुंज-पुंज नंय होते।'

'अच्छा.....सुना, तुम मुझे भी खूब कोसते और गरियाते हो। हमने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा?'

'गरीबन का बिना बिगाड़े कोई अमीर नंय बन सकता। हजारों गरीबन के हाय लेके आपके पुरखे अमीर बने हैं। हम आपको बेशक गरियाते हैं और गरियाते रहेंगे।'

पास ही खड़े दो-तीन बराहिल फनफनाकर उसकी तरफ लपक पड़े।

जिक्र साहब ने डपटकर उन्हें रोक दिया, 'खबरदार, कोई उसे हाथ नहीं लगाएगा।' उन्होंने घसीटन को पुकारते हुए कहा, 'हनीफ मियां। तुम्हारी इस गुस्ताखी पर अगर मैं तुम्हें बांधकर इस तरह पिटवा दूं कि तुम्हारी बची-खुची हड्डियों का भी चूरा बन जाए, तो क्या करोगे?'

'हम का करेंगे। हम तो जिल्लत और जुल्मे सहे के लिए जनमे हैं। पिटवाइएगा तउ पिटा जाएंगे। हम इस काबिल कहां हंय कि पिटने से अपने के बचा लें।' उन्होंने उसके लड़के की ओर देखा, 'लड़के, तुम क्या करोगे? अपने बाप को पिटते हुए देख सकोगे?'

'नंय हुजूर, नंय देख सकेंगे। हम बाबा के ऊपर बिछ जाएंगे। अपने ऊपर पिटाई ले लेंगे।'

'हमारे आदमी तुम्हें भी हटाकर बांध देंगे, तब?'

'तब....तब....तब....हम रात को पत्थर मारके आपके सभे मोटरवा के कांच तोड़ देंगे। जहां-जहां आग लगाना मुमकिन होगा, वहां-वहां आग लगा देंगे।'

सब लोग अचरज से उसे देखते रहे गए। जिक्र साहब ने महसूस किया जैसे उनके सामने जान देने के लिए तैयार कोई जांबाज सिपाही खड़ा हो। उन्होंने अपने मुंशी को पुकारा और कहा, 'मुंशीजी इस लड़के की हमारे इस्टेट को बहुत जरूरत है। इसे कल से एक बराहिल के तौर पर बहाल कर लिया जाए। जाओ, लड़के, अपने बाबा से अब भीख मत मंगवाना।'

दोनों बाप बेटा जब वहां से चले तो उनकी आँखों में बरबस एक हैरानी समायी हुई थी जो कुछ हुआ, उस पर उन्हें यकीन नहीं हो रहा था।

लड़के ने अपने बाबा से पूछा, 'बाबा, आज हमको ऐसन लग रहा हय कि अल्लाह वाकई कहीं हय।'

घसीटन ने उसकी तरफ मुंह करके उसे टटोला और कहा, 'हमको ऐसा नंय लगता है। भरम में मत पड़ो।'

लड़का आज पहली बार अपने बाबा को संदेह की नजर से देखने लगा था।

●

तीन

आकांक्षा पारे

वह अपनी कहानी सुनाकर ऐसे चली गई थी जैसे कोई बच्चों का दिल बहलाने के लिए परियों की कहानी सुना दे। उसके जाने के बाद भी शरीर पर खड़े रोंगटे बता रहे थे, मैं अब तक सहज नहीं हो पाई हूं। सन्नाटा धीरे-धीरे कमरे से बाहर सरक रहा था और बाहर की आवाजाही की आवाजें भीतर घर कर रही थीं। शाम ने सूरज को उतारकर बालकनी के पीछे वाले पेड़ पर टांग दिया था। जब चिड़ियाएं घर लौट गईं और बल्ब के जुगनू टिमटिमाने लगे तो महसूस हुआ कि कमरे को इससे ज्यादा रोशनी की जरूरत है। शीशे के दरवाजों पर परदा नहीं था इसलिए अँधेरे का तुरंत अहसास नहीं हुआ। लगा वह अँधेरे में भी फुसफुसा रही है- 'किसी से कहना नहीं दीदी, बहुत खतरा है हमारी जान को। हमारा तो कुछ नहीं टीना के बच्चा होने वाला है, उसे कुछ हो गया तो हम कहीं के नहीं रहेंगे।'

'तुम तो बहुत हिम्मती हो' थोड़ी देर पहले मेरा कहा गया वाक्य हवा में अभी भी तैर रहा था।

'हिम्मती कहां दीदी, हिम्मत होती तो सरिया पेट में घुसाकर घुमा न देते उस पापी के।'

'धनवती ये हिम्मत थोड़ी हुई ये तो क्रूरता है' मुझे लगा उसके हाथ में वह अदृश्य सरिया अब भी है। बस उसे अपने ससुर के पेट में घुमाने की देर है।

'और वो तो जैसे हमें बड़े फूलों की सेज पर रखे थे न, जो हम ऐसा कर आते तो क्रूरता होती।'

'सेज' बहुत देर तक यह शब्द मेरे अंदर खटकता रहा। कहां सुना है मैंने इसी अंदाज में यह शब्द, सेज। कुछ तो है इस शब्द में। मैंने अपनी पूरी चेतना को झिंझोड़ डाला, याददाश्त को मथ दिया पर सेज की पुनरावृत्ति थी कि कुछ सोचने ही नहीं दे रही थी। मेरी आँखें बंद हुईं और न जाने कैसे पुष्पा बुआ का चेहरा बिजली की तरह कौंध गया।

'भाभी, सजी हुई सेज पर मैंने नरक भोगा है पहले दिन।' पुष्पा बुआ मां को कह रही थीं। मां चुपचाप सुन रही थीं, बुआ ने कम से कम दस दफे सेज कहा होगा। मैंने बाकी शब्दों के अर्थ अपनी तरह से निकाल लिए थे। नरक तो मुझे बहुत दिन से पता था। बड़ी ताई दादी को कहती थीं, 'सरग-नरक सब यहीं है माई, तुमने हमारे साथ कम किया जो बिना नरक भोगे यहां से चली जाओगी।' खटिया पर लेटे-लेटे दादी की कोर भीग जाती और आँखों से पानी बहकर चीकट तकिए में समा जाता। दादी को जब भी हिलना-डुलना होता तब वह गों-गों की आवाज निकालतीं और ताई जब फुर्सत होती तब उनके पास पहुंचती। मुझे उस उम्र में ही पता चल गया था कि खटिया पर लेटे रहना, अपना कोई काम न कर सकना ही दरअसल नरक है। पर सेज का जिक्र किसी ने कभी

नहीं किया। उस दिन के बाद पुष्पा बुआ ने भी नहीं।

'वो लोग तम्हें बहुत मारते थे क्या' मैंने फूलों की सेज वाली बात सुनकर धनवती से पूछा था।

'मारते थे? मारते थे मतलब क्या दीदी, बस मार नहीं डालते थे यह कहो।' वह अदृश्य सरिया अब भी उसके हाथ में लहरा रहा था। जब भी उसकी सांवली बांह लहराती उसका 'जै काली मैया' वाला गोदना आँखों के सामने आता। वह जितनी बार बांह लहराती उतनी बार मैं मन ही मन पढ़ती, 'जै काली मैया।' पर मुझमें न काली जैसा बल आया न धनवती जैसा साहस। कल फिर आने की ताकीद के साथ टखने तक ऊंची साड़ी, बालों में दर्जनों क्लिप और काली मैया के जयकारे वाली बांह ने दरवाजा खोला और धनवती तेजी से बाहर निकल गई। अपने साथ लाई कपड़ों की पोटली वह वहीं कोने में छोड़ गई थी। छोटे-छोटे पीले फूलों वाले चौकोर टुकड़े में कुछ कपड़े बंधे हुए कुनमुना रहे थे। मैं उसे समझा ही नहीं पाई कि कल आने से भी कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि मैं समाधान से नहीं समस्याओं से प्रेम करती हूं। मेरे लिए अनिर्णय की स्थिति ही निर्णय है। मैं फैसला नहीं लेती, जब जैसा हो जाता है, तब उसी में जी लिया करती हूं। जब भी मुझसे मदद मांगी गई है मैंने पलायन की योजनाएं बनाई हैं। ऐसी एक पोटली बरसों मेरे सीने पर रखी रही थी। मुझे निशा याद हो आई।

'मैं अपने कपड़े इस्त्री करने के बहाने शंकर के यहां छोड़ दूंगी, तू वो कपड़े लेकर मुझे कॉलेज में दे देना। मैं अमित के साथ जा रही हूं घर छोड़कर फिर हम शादीकर लेंगे।' निशा ने बहुत उत्साह से मुझसे कहा था, जब मैं कॉलेज में थी। उसे जाना था सो वह चली गई, बिना कपड़े लिए। मैं उस दिन जानबूझकर कॉलेज ही नहीं गई। पता नहीं फिर शंकर के यहां वाले उसके कपड़ों का क्या हुआ, शंकर ने उसके घर कपड़े पहुंचा दिए होंगे, ऐसा मैं सोचती थी। उसके बाद मैं उसके घर भी कभी नहीं गई। जब भी मुझे वह पोटली याद आती मैं सोचती थी, उसे परिवार छोड़ने का दुःख ज्यादा होता होगा या अपने कपड़ों का। सालों बाद निशा मुझे मिली थी लेकिन उसने कोई शिकायत नहीं की बल्कि ऐसे बात की जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर वह मिलने लगी और इस बार उसने मुझ पर पहले भी ज्यादा भरोसा किया। इस बार उसका भरोसे की पोटली प्रेम पत्रों में बदल गई थी। उसके दफ्तर में कोई था जो निशा को प्रेम पत्र लिखा करता था। अमित अब उसका वैसा खयाल नहीं रखता शायद वह किसी और के साथ भी रहने लगा था इसलिए निशा की पूंजी अमित के बजाय वो प्रेम पत्र बन गए थे जो उसका सहकर्मी लिख रहा था।

'ये चिट्ठियां अमित के हाथ नहीं लगना चाहिए' उसने ताकीद की थी।'

'लेकिन उसे पता चल गया तो?'

'जब तक कोई विश्वासघात न करे किसी को कुछ पता नहीं चलता।'

उसकी चिट्ठियों की छोटी सी पोटली मेरे हाथ में देकर निशा अपनी ऊंची ऐड़ी की सैंडिल के बावजूद तेजी से भाग गई थी। जाते हुए उसकी आँखों ने जो कहा था उसका मतलब बहुत सीधा था, 'कपड़े बाजार में बहुत मिलते हैं, प्रेम पत्र नहीं।' उसकी निगाह के 'खबरदार' को जब तक मैंने पकड़ा वह मुड़ गई।

धनवती की पोटली निशा की पोटली से बड़ी थी। निशा ने दोनों वक्त मुझे निर्जीव चीजों की जिम्मेदारी सौंपी थी, धनवती मुझे जीती-जागती लड़की सौंपना चाहती थी, वह भी उम्मीदों से भरी। धनवती मेरे यहां खाना बनाती है इसके सिवा मेरा उससे कोई रिश्ता नहीं। पर कुछ तो है जो मुझसे

इससे जोड़े रखता है। मैं सोच रही थी मेरे जीवन के सिरे ऐसे लोगों से ही क्यों जुड़ते हैं जो जीवन में दुस्साहस की पूरी रसद लिए चलते हैं, जबकि मुझमें सामान्य साहस भी नहीं।

'तुम तो पहले इतना बड़ा काम कर चुकी हो, जो मैं तो सोच भी नहीं सकती। अब तुम्हें मेरी जरूरत क्यों है?' मां ने कभी पुष्पा नाम की उस लड़की से मैंने निशा और धनवती से अलग वक्त में अलग ढंग से पूछा था। पर सवाल वही था, हर अर्थ में दुस्साहसी लोगों का कायर लोगों से मदद मांगना। लोग हमेशा कहते थे मैं मां की तरह हूं। मां की भांति। हम दोनों के सवाल एक से होते हैं और दोनों के पास ही कभी जवाब नहीं होते आश्चर्यजनक रूप से। पुष्पा मां को कहती थी, 'मैं तुम पर विश्वास करती हूं क्योंकि तुम कायर हो, विश्वासघाती नहीं।' निशा मां से नहीं मिली, मां ने धनवती को नहीं देखा, धनवती निशा या मां के बारे में कुछ नहीं जानती फिर भी इन सबको लगता है, मैं कायर हूं, विश्वासघाती नहीं। धनवती अपनी कहानी नहीं सुनाती विद्रोह सुनाती है। उसके विचार हवा को सुलगा देते हैं। वह आती है तो लगता है, ऊर्जा का ज्वार आ गया है। मेरी पढ़ाई का गर्व, समाज के नियम की दुहाई सब उसकी बांह पर गुदे 'जय काली मैया' में खो जाता है। गोदने का नीला रंग मुझे उसकी पूरी देह पर दिखाई देता है। 'देह नीली कर देता था दीदी' उसके यह कहने से भी पहले। मैं बहुत सोचती हूं पर मुझे सिर्फ कंठ नीला किए नीलकंठ के समकक्ष धनवती की नीली देह के लिए कोई बेजोड़ उपमा नहीं सूझती। उसकी ठोड़ी पर तीन बिंदियां स्थायी रूप से रहती हैं जैसे उसकी काली मैया। वह हँसती है तो उसके पान से रंगे दांत उससे ज्यादा हँसते हैं।

पान खाती पुष्पा के सिर्फ दांत ही नहीं हँसते उसकी पूरी देह हँसती है।

'तुम पान कब से खाने लगीं पुष्पा?' मां ने पूछा था तो उस लड़की जिसे अब बुआ कहने की सख्त मनाही हो गई थी ने पीक थूके बिना चार ऊंगलियां दिखा दी थीं। उसकी पूरी देह मुस्कुरा दी अपनी भाभी को असमंजस में देखकर, चार तो कुछ भी हो सकता है न, दिन, महीने, साल। पीक थूककर वह पूछती है, 'भाभी आपको डर नहीं लगता कोई मेरे साथ देख ले तो।'

'लगता है।'

'तो फिर क्यों चली आती हो।'

'तुम बुलाना जो नहीं छोड़ती, तुम इतने भरोसे से बुलाती हो तो चली आती हूं। पता नहीं कब तक आ पाऊंगी।' एक टिटहरी कर्कश सी आवाज किए उस पार निकल जाती हैं। कहीं पर दो बिल्लियों के झगड़ने की आवाज आती है। विश्वास रखने के लिए चली आई कायर मां कहती हैं, 'आज कुछ भी शकुन ठीक नहीं बैठा रानी। कौन जाने ये आखिरी मुलाकात हो।'

'क्यों इसने किसी से कह दिया क्या?'

'अरे नहीं। घर में किसी से बात नहीं करती। थोड़ी डरपोक है, पर बात कभी इधर की उधर नहीं करती।' एक डरपोक दूसरे डरपोक का परिचय शायद ऐसे ही कराता है। मैं कई साल पीछे चली जाती हूं। फ्रॉक पहनने की उम्र वाली दुनिया में। ओह तो क्या डरपोक होने की वजह से मैंने कभी किसी को नहीं बताया कि रात को छत से पुष्पा बुआ के कपड़ों की पोटली मां ने ही छत से फेंकी थी। डर की वजह से ही मैंने पुलिस के सामने भी नहीं कहा कि घर के जो जेवर चोरी हुए हैं उसमें सिर्फ और सिर्फ इस घर की लड़की जिसका नाम पुष्पा है उसका हाथ है। पुष्पा नाम की उस लड़की की शादी जब हुई तो वह खिली हुई दुल्हन थी और लौटी तो मुरझाई हुई पत्नी बनकर। फिर बाद

में वह विद्रोही अप्सरा में बदल गई। बल्ब की रोशनी में इतने साल पहले देखा गया ताऊजी, पिताजी और बड़े दादाजी का चेहरा आज तक याद है।

जब वह मायके लौटी तो सबने कहा 'वापिस जाओ।'

उसने कहा- 'किसी कीमत पर नहीं।'

तो क्या वह डर ही था जो मुझे आज तक नहीं बताने देता कि वह विद्रोही अप्सरा पहले ससुराल से मायके भाग आई, फिर मायके से एक दिलदार के साथ चल दी, घने अँधेरे में। मां छुपकर हर वार-त्योहार उस मूंछ वाले दिलदार का टीका करती है, उसे हाथ में नारियल देती है और जब उस पर पचास या सौ का मुड़ा-तुड़ा नोट रखती है। वह मूंछ वाला आदमी उस पर से सिर्फ एक रुपये का सिक्का उठाकर मां के पैर छू लेता है। पता नहीं क्यों मां उसके बाद हमेशा रो देती है। मां हमेशा मुझे साथ लेकर जाती थीं। ज्यादातर मेरे लिए मांगी गई किसी मनौती को पूरा करने के लिए मंदिर जाने के नाम पर हम पुष्पा नाम की उस लड़की से मिलते थे जिसे मैंने अल्हड़ लड़की से मुरझाती बेल और फिर खिलते फूल की तरह देखा था। जब से गांव छूटा बरसों बीत गए मैंने अपनी उस कुल कलंकिनी बुआ को नहीं देखा।

निशा सच कहती है, जब तक किसी को खुद न बताओ बात नहीं फैलती। तभी तो आज तक किसी को पता नहीं चला कि मेरी मां ने एक लड़की को भगाने में न सिर्फ मदद की बल्कि बाद में उसका समर्थन भी किया। मेरे बचपन खत्म होते तक मैंने उसे देखा और घर में किसी को शक नहीं हुआ। शायद इसलिए कि मैंने मां से कभी अकेले में भी नहीं पूछा- 'पुष्पा से तुम्हें इतना प्रेम क्यों है?' वह बिना जयकारे वाली बांह के बावजूद हाथ नचा-नचा कर बात करती थी, झूमती थी। उसका रंग सांवला नहीं था लेकिन मूंछ वाले आदमी के सामने उसका रंग दबा सा लगता था। वह भी निशा की तरह पेट के नीच तकिया रख कर कुछ लिखती थी और वह पुर्जा 'डरपोक' लड़की की मुट्ठी में भींच देती थी। उसके पुर्जे की याद कर अभी भी मेरी हथेली पसीज जाती हैं। मैं इतनी डरपोक निकली कि मैंने मां से भी कभी नहीं पूछा कि अब हम उस मूंछ वाले आदमी को टीका करने क्यों नहीं जाते। मैं शायद सच में डरपोक हूं वरना फूलवती और निशा से ही पूछ सकती थी कि तुम लोग समाज और उसके नियम के बीच इतनी बार कैसे आवाजाही कर लेते हो। मैं पुष्पा नाम की उस लड़की से भी पूछ सकती थी कि स्कूल तो तुम जरूरत भर गईं फिर ये हिम्मत कहां से लाईं। क्योंकि मुझे तो यही कहा जाता रहा कि स्कूल नहीं जाओगी तो समझदार कैसे होगी? 'समझदारी पर धनवती बहुत हँसती है।' वह तो मेरे यह पूछने पर कि 'तुम्हें कैसे समझ आया कि भाग जाना चाहिए वो भी इतने खतरनाक तरीके से?' खूब हँसती है। वह हमेशा हँसती है, इस बात पर भी कि घर में सब सोए रह गए और वह अपनी दोनों देवरानियों के साथ चंपत हो गई। वह हँसते हुए की किस्से कहती है। उसकी आँखें फैल जाती हैं और वह उस चुप्पी को अपने ठहाकों से छोटे-छोटे टुकड़ों में बदल देती है जो अकसर मेरे घर में पसरी रहती है।

'तुम्हें डर नहीं लगा?' पुष्पा हँसती है मां के इस सवाल पर, धनवती हँसती है मेरे सवाल पर, निशा हँसती है अपने नए प्रेमी के सवाल पर। 'भाभी डरती तो बताओ ऐसे घूम पाती' वह अपने फूले हुए पेट पर प्यार से हाथ रखती है। मूंछों वाला आदमी कनखियों से देखकर मुस्कुराता है, मां उसे अपने आगोश में ले लेती है और मैं? मैं हमेशा की तरह डर जाती हूं, किसी को पता चले तब?

'डरते न दीदी तो अब तक सरग पहुंच जाते। जिंदा रखता वो हमको अभी तक। आप भी न। जब हम अपनी मंझली देवरानी को बोले न कि चल भाग चलें तो उसने हमारे पैर पकड़ लिए। बोली, 'जिज्जी अभी तो चार दीवारी में ही सही जिंदा तो हैं, बाहर निकले तो टुकड़े हो जाएंगे।' फिर हमने छोटी को पूछा। जानती हैं वो क्या बोली?' यह उसका किस्सा सुनाने का तरीका है वह निशा की तरह फटाफट सब बातें नहीं बोल देती। हुंकारा भरवाती है, अगर सवाल न हो तो जवाब देने का क्या मजा?

'मुझे कैसे पता चलेगा कि वो क्या बोली?'

'आपने पूछा तो हम बता रहे हैं। वरना आपको कैसे पता चलेगा। हम तो पूछ रहे हैं कि कोई अंदाजा लगा पा रही हो कि नहीं। हम खाली एक शब्द बोले, भागोगी? वो भी है करेजे वाली दीदी, एक ही शब्द में बोली, 'कब?' दीदी सच कहें जब कोई पिलान बनाओ और सामने वाला हामी ही भर दे न तो ताकत दोहरी हो जाती है।

'तुझे क्या बताऊं कि डर क्यों नहीं लगा। जब पहली बार भागी थी न अमित के साथ तो जोश था, उसके प्यार में दीवानापन था। पर जब दूसरी बार भागी न अमित को छोड़कर तब रंजन की हिम्मत थी। उसी ने कहा था छोड़ दो उसे जो तुम्हें किसी और के साथ बांट सकता है। मैं हूं न सिर्फ तुम्हारे लिए। ताकत दोहरी हो जाती है रे जब किसी का साथ मिले।' मैं तो इकहरी ताकत के बारे में ही नहीं सोच पाती दोहरी तो दूर की कौड़ी है। धनवती तंद्रा तोड़ती है हमेशा, 'सोचती बहुत हो दीदी। क्या सोचती रहती हो दिन भर।' 'तू कभी चुप बैठती है?' ऐसा पूछना एक और बतकही को जन्म देना है जानती हूं फिर भी पूछती हूं। पर आज मैंने यह नहीं पूछा उससे। उसने खुद ही बताया, 'छोटी वाली के बच्चा होने वाला है दीदी। अरे वही टीना। कितने साल बाद तो हम लोगों के जीवन में खुशियां आ रही हैं। मंझली ने चिंता में डाल दिया है, वह कहती है उसने मेरे पति बसेसर को देखा है, इसी शहर में। दीदी सबसे कमीना वही है, जरूर हमारी निशानी पा गया है और अब हमको खोज रहा है। हमारा कुछ नहीं दीदी टीना को बचा लो। उसके बच्चे को बचा लो।'

'पर मैं...?' मेरा हमेशा का यही तरीका है। 'पर वर कुछ नहीं दीदी। कसम तुम्हें। दोनों मेरी हिम्मत पर भागी हैं दीदी। बसेसर और उसका बाप दोनों मेरे पति थे, मेरी दोनों देवरानियों के भी। उस घर में कोई भी किसी की पत्नी को ठेलकर अपने कमरे में ले जा सकता था। पूरा दिन काम और रात को उनकी सेवा। बस यही जिंदगी रह गई थी हम तीनों की। हम तो चौथी तक पढ़े लेकिन टीवा बारहवीं पढ़ कर आई थी। फूल सी थी जब आई थी, छोटा उसे मीठी बातों में फुसला कर ब्याह लाया था। फिर एक दिन हमने कहा भाग चलते हैं। कोई जगह नहीं थी दीदी, बस हिम्मत थी। टीना ही बोली, अगर कुछ न हो पाया तो काशी चलकर गंगा में डूब जाएंगे तीनों। काशी में मोक्ष मिलता है। अगले जनम में फिर ऐसा दुख नहीं होगा। पर यह सब होगा कैसे इसकी चिंता थी। हम में से किसी ने घर के बाहर की दुनिया पांच साल से नहीं देखी थी। बाहर दुनिया कितनी बदल गई है, अंदाजा ही नहीं था। पता है दीदी जिस दिन पिलान बनाए और तैयार हुए उसी दिन टीना बोली, 'बारहवीं पास वाला कागज लिए बिना नहीं जाएगी।' हम तो समझे अब गए काम से लेकिन मंझली जिसे हम डरपोक समझते थे वह निकली असली बहादुर। ससुर के कमरे में चली गई, बिलाउज पेटीकोट में। उसे खूब रिझाया, मनाया और चाबी सरका ली बुढ़ऊ की कमर से। किसी

काम से बाहर आई और हमें चाबी पकड़ा दी। बुढ़ऊ को उलझाए रखी और हमने उसका कागज निकालने के लिए अलमारी खोली और रुपये की गड्डी और कुछ जेवर भी पल्लू में बांध लिए। पर भागते कैसे। बुढ़ऊ के तीनों यमराज बेटों के आने का समय हो गया था। मंझली ने कहा, जिज्जी बेटों में भी तो बाप का खून है, आज की रात तीनों को ऐसे खुश कर दें कि वे ऐसी चैन की नींद सोएं जैसे कभी सोए नहीं थे। हम तीनों ने अपनी नफरत को अपने कपड़ों की पोटली में बांधा और प्यार का दरिया खोल दिया। पहली बार तीनों एक साथ कमरे में चले आए। वरना कोई एक हमेशा पहरे पर रहता था, बुढ़ऊ तृप्त होकर बहुत पहले सो गया था। हमने उस दिन अपनी सीमा से बाहर जाकर प्रेम किया और प्रेम ने हमें आजादी की राह दिखा दी।'

बहुत देर कमरे में शांति रही। धनवती की चूड़ियों की आवाज रह-रह कर आ रही थी। उसने एक बार फिर अपनी पोटली की गांठ को कस कर परखा। 'तो फिर मैं कल आऊं टीना को लेकर' उसने आश्वस्ति चाही। 'हम दोनों तो कहीं भी रह लेंगी, पर टीना को रख लो, उसके बच्चा होने वाला है। अभी वो जिसके साथ रह रही है न दीदी उससे शादी नहीं की पर वो है अच्छा आदमी। जल्दी कोई सुरक्षित ठिकाना खोज लेगा तो ले जाएगा टीना को यहां से। बस कुछ दिन की बात है दीदी।'

अभी कुछ ही दिन तो हुए हैं जब निशा ने मुझसे ऐसा ही कुछ कहा था, 'बस कुछ दिन की बात है, अमित मुझे पागलों की तरह खोज रहा है, कुछ दिन तेरे यहां रह लूं। फिर हम दोनों किसी नए शहर में चले जाएंगे।'

अभी कुछ साल ही तो गुजरें हैं जब पुष्पा नाम की लड़की ने मां से कहा था, 'बस कुछ दिन की बात है भाभी, कहीं आसरा मिल जाए तो मैं और ये कहीं और चले जाएंगे।'

रात के सन्नाटे में मुझे वो लड़की बहुत याद आई, मन किया जोर से पुकारूं, बुआ, बुआ। मुझे अपनी डरपोक मां भी याद आई जिसने उसे रास्ता सुझाया था कि कहां उसे कुछ दिन सुरक्षित रहने का ठिकाना मिल सकता है। शायद बुआ वहां रही भी थी। आज मुझे लग रहा था, मां डरपोक तो नहीं है, वह मुझसे ज्यादा अच्छे तरीके सोच सकती है। सुबह सात बजे घंटी बजी तो मैं समझ गई धनवती है। वो अपनी टीना और मंझली के साथ खड़ी थी। उसकी निगाह में सवाल था, इसे छोड़ूं या सामान ले जाऊं। मैंने दरवाजा पूरा खोल दिया। वह समझ नहीं पाई। 'जान का खतरा तो तुम तीनों को है ना।' मैंने जैसे खुद से बोला।

'चारों को।' उसने दुरुस्त किया, 'इस बच्चे के बाप को भी।'

'पर अभी तो कोई उसे पहचानता नहीं है न। कुछ दिन तुम तीनों को यहीं रहना चाहिए। एक साथ।'

'पर... दीदी।'

'कोई बात नहीं, टीना के साथ तुम दोनों रहोगी तो उसे हौंसला रहेगा। फिर सोचते हैं कि तुम लोग कहां रह सकती हो?'

'मैं ये अहसान कभी नहीं भूलूंगी। पर किसी को पता तो नहीं चलेगा न दीदी।'

'जब तक कोई विश्वासघात न करे किसी को कुछ पता नहीं चलता धनवती।'

वे तीनों अंदर चली आईं। जब वे आईं तो देह भले ही तीन थीं, पर वे आत्मा से एक ही थीं। रात को ही मैंने निशा को भी फोन कर दिया था। वह भी कुछ देर में आती होगी। अब मुझे किसी भी हालत में पुष्पा बुआ को खोजना है। ●

कुमार साहब

अजय नावरिया

एक पल भी तो ऐसा नहीं था उन के पास जो सुकून से लबालब हो... एक निचाट अकेलापन हमेशा घेरे रहता... घर में उन्हें कभी प्यार का एक कतरा तक भी तो नहीं मिला कभी... हालांकि घर से बाहर एक बहुत बड़ी दुनिया थी उन की मुट्ठी में, शहर में, देश और विदेश में भी... अब भी जाने कितने थे जो अपनी जान तक न्यौछावर करने को तैयार थे। घर के भाई-बंदों ने तो ऐसा घोंटा कि वे अठारह के होते-होते मुंबई भाग निकले, खाने कमाने को।

क्या चाहिए था आखिर उन्हें? उनसे आजकल पूछते हैं कि इतना गम आपने कहां से इकट्ठा कर लिया कि सुबह-सुबह ही गम गलत करने को बैठ जाते हो। यह सुनकर वे जोर का ठहाका लगाते। लोग हैरान होते कि क्या ये दीवाने हो गए हैं... पर बात तो हमेशा होश की करते हैं... जरा बहकते तक नहीं कि बात में कोई ऊंच-नीच हो। शांति का मनमोहक संगीत धीमे-धीमे उठता रहता हमेशा, उन के आसपास। जिंदादिली और हौंसले से भरे रहते हमेशा और जो पास आता, वह भी जैसे बहती नदी में तरंगित हो जाता, ऊर्जा से भर जाता। ऐसे सवालों का अकसर ही वे कोई जवाब न देते। लोग अब भी उन की इतनी इज्जत करते कि उनसे कोई एक हद के बाद हठ भी न करता।

सबसे पुराना सहायक अल्लाबख्श कंधे दबाते दबाते कह ही देता। जानता है कि कुछ न कहेंगे, एक टीसती मुस्कुराहट बिखरेगी बस- 'साहिब सुबह-सुबह तो ये जहर ठीक नहीं है।'

'क्या जहर नहीं है अल्लाबख्श?'

'ये तो जहर ही है न साहिब।'

वे हँसे तो हँसते ही चले गए। अल्लाबख्श सोचता कि यह शख्स जो इतना बुझा हुआ दिखता है कि कहीं कोई आंच तक नहीं दिखती, कैसे इतना बेलौस हँसता चला जाता है। ये कहकहे खोखले हैं या हम ही इन्हें ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं।

'चाय तो पीते हो न सहरी में?'

उन्होंने कहा तो अल्लाबख्श ने हां में सिर हिलाया।

बोले- 'वह भी जहर जैसा ही है... कुछ लोगों के लिए... धीमा जहर बस...। मुझे अब किसी चीज से नुकसान नहीं पहुंचता... नुकसान पहुंचाने वाली सिर्फ एक शै है... और वह है वक्त... एक दिन तो मर ही जाएंगे हम सब।' पूरा मकान जैसे खारे पानी में डूब गया तभी पास की मस्जिद से

मीठी अजान उठी।

'जाओ भाई नमाज पढ़ आओ... ये दिलकश पवित्र अजान मुझे न जाने कहां कहां खींच ले जाया करती है।' यह कहकर वे धीमे-धीमे बुल्लेशाह का गीत गुनगुगाने लगे।

'मैनूं लगणा इश्क अवलणा, अव्वल दा, रोज अजल दा/विच कड़ाही तिल-तिल पावे, तलिआं नूं चा तलदा।

मोइआं नूं एह वल-वल मारे, दलियां नूं एह दलदा।

की जाणां कोई चिणग कखी ए, नित सूल कलेजे सलदा।

बुल्लेशाह दा न्योंह अनोखा, ओह नई रलाइआं रलदा।'

गाते-गाते जाने कब आँखें बंद हुई और आवाज तेज होती चली गई कि शायद दर्द। जब आँखें खुली तो सामने अल्लाबख्श टुकुर-टुकुर देख रहा था। उन्हें याद आया कि वह उन से कई बार कह चुका है कि जब वे अपनी मादरेजबान पंजाबी में कुछ भी बोलते हैं तो उसे उनका कहा एक भी लफ्ज समझ नहीं आता। किशोर अवस्था तक का समय अल्लाबख्श ने बहराइच में बिताया था, जहां उसके अब्बू किसी मारवाड़ी सेठ के यहां काम करते थे। जब उन्हें कोई ऐसी-वैसी बात किसी से करनी होती तो वे या तो पंजाबी में करते या फिर अंग्रेजी में।

'समझना चाहते हो?' अल्लाबख्श की आँखों में जिज्ञासा दिखी तो उन्होंने पूछ लिया। उसने हां में हिलाया तो वे समझाने लगे कि मुझे इश्क हो गया है। ये बहुत अनोखा और निर्दयी इश्क है। ये दुनिया बनने के पहले दिन से ही है। इसमें बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं क्योंकि ये आदमी को तिल-तिल करके मारता है। ये इश्क की राह है ही ऐसी कि इसमें जो मर चुके हैं, ये इश्क उन्हें और भी घेर-घेरकर दुःख देता है। बुल्लेशाह कहते हैं कि उस प्यारे का प्रेम बड़ा ही अनोखा है वैसा प्रेम किसी और का नहीं हो सकता।

ठंडे पानी की एक बोतल उनके नजदीक रख कर अल्लाबख्श बाहर निकला। फ्लैट से बाहर निकलते हुए अल्लाबख्श के कानों तक आवाज आयी कि बाहर से ताला लगा जाना। लिफ्ट के पास पहुंचा अल्लाबख्श तो देखा कि लिफ्ट अभी तीसरे फ्लोर पर ही है। सोलहवें फ्लोर पर पहुंचने में वक्त लगेगा। अल्लाबख्श याद करने लगा कि कैसे साहिब ने जान-बूझकर सब से ऊपर का फ्लोर खरीदा था, जबकि बिल्डर गुप्ताजी इन्हें ग्राउंड फ्लोर देने को तैयार थे। पूना में यह तीसरी बिल्डिंग बनाई थी उन्होंने। वह मुरीद थे साहिब की शायरी और अफसानों के, उनकी लिखी फिल्मों की कहानी के, उन फिल्मों के कितने ही डायलॉग उन्हें जबानी याद थे जो कई बार वे दोहराते। साहिब के साथ पहले तो कई बार गुप्ताजी भी मुंबई चले जाते थे, पर अब साहिब ने जाना बहुत ही कम कर दिया है। साठ के पूरे हो जाएंगे इस तीस अक्तूबर को। गुप्ताजी बार बार कहें कि कुमार साहब इस उम्र में नीचे का फ्लोर ज्यादा मुनासिब होगा और साहिब अपनी ही जिद पर कि नहीं बुरे लोग सुकून में खलल डालेंगे और फिर आखिर सोलहवां फ्लोर ही तय हुआ।

'अच्छा-बुरा क्या होता है कुमार साहब...आप तो खुद तो फिलॉस्फर हैं, सब मन की बातें हैं, शेक्सपियर ने भी तो यही कहा है।' गुप्ताजी हँसकर बोले तो उखड़ से गए साहिब।

'शेक्सपियर कहेंगे तो क्या सब मान लूं।' इसके बाद वे बोलते ही चले गए- 'अच्छा-बुरा होता है...हमारे मानने-न मानने के बावजूद ये दुनिया दो हिस्सों में बंटी है...दुनिया की हर चीज...चाँद,

तारे, ग्रह, उपग्रह, पेड़, पौधे, हवा, मिट्टी, जानवर, कीड़े और इनसान भी...सब दो हिस्सों में बंटे हैं। अच्छे का मतलब है जो फायदा पहुंचाए, कम से कम परेशान न करे और बुरे का मतलब जो नुकसान पहुंचाए। और ये बंटवारा इनसान ने नहीं किया है, यह होता है, बस इनसान तो इसे जानने और समझने की कोशिश करता है।'

गुप्ताजी ने हँसते हुए हाथ जोड़ दिए और कहा- 'ठीक है बड़े भाई जैसी आप की मर्जी, मैं एक दुनियादार व्यापारी ठहरा, पर इतना तो जानता हूं कि परेशानियों के हल फलसफे में ही नहीं, हालात में भी होते हैं।'

अल्लाबख्श ने गुप्ताजी के लिए चाय रख दी। 'गुप्ताजी, फलसफा हालातों से निकलने का हल ही नहीं बताता बल्कि हालात को सहने, उन्हें बदलने और उन में जीने की कुव्वत भी पैदा करता है।'

अब इधर तो गुप्ताजी का आना भी बहुत कम हो गया है। इधर तो बहुत सारे लोगों का आना कम हो गया है। पहले तो हर शाम ही कोई न कोई आया बैठा रहता था, कभी कभी तो चार-पांच लोग हो जाते। कोई शराब ला रहा होता, तो कोई फल, मेवे, मिठाईयां तो कोई घर पर खासतौर पर बनवायी बिरयानी या कोरमा। हर किसी को उनसे कुछ न कुछ काम था। हर किसी को कहीं न कहीं सिफारिश करवानी होती, मंत्रीजी से, फिल्मी लाइन के किसी आदमी से, किसी शायर से और वे सबके काम बाखुशी किया भी करते। कोई कभी निराश होकर उन के दरवाजे से नहीं गया। अभी दो एक साल पहले तक भी उनकी कही बातों को सब लोग बहुत महत्व देते थे पर अब वह बात नहीं रही। कुछ ही लोग हैं जो अब उनके कहे पर काम कर देते हैं, ज्यादातर तो 'देखते हैं कुमार साहब' या 'वक्त बदल गया है कुमार साहब' कहकर टाल जाते हैं।

कुमार साहब गुस्से में फोन पटक देते- 'सब समझता हूं मैं...दो ही साल में जमाना अचानक ऐसा कितना बदल गया।'

ऐसे वक्त में वे बहुत देर तक खामोश हो जाते। शराब तो वे पहले भी पीते थे पर इन दो सालों में तो यह कुछ ज्यादा ही बढ़ गई। हालांकि गोरे रंग में अब भी वही पुराना गुलाबीपन है जो पहले था। डॉक्टर ने सब चैकअप करने के बाद कहा कि माशा अल्लाह, बहुत मजबूत कलेजे के मालिक हो कुमार साहब। और वे इस पर ठठाकर हँसे और बोले- 'कभी हमारे दिल में भी झांककर देखो डॉक्टर साहब, वह भी ऐसा ही पठान निकलेगा, भले बहुत वार झेले हैं बेचारे ने।'

डॉक्टर के जाने के बाद कुमार साहब पैंतालीस साल पुराने जालंधर की गलियों में पहुंच गए। तब कुमार साहब सोलहवें साल में दाखिल हो रहे थे और देश की आजादी को भी सोलहवां बरस ही लगा था। वहीं वह टकराई थी, स्कूल से लौटते वक्त। दो चोटियां किए वह अपनी सहेली के साथ सामने की गली में मुड़ी और इधर ये अपनी बेख्याली में, बचते-बचते भी दोनों एक-दूसरे से बुरी तरह भिड़ ही गए। 'ए तू अंधो हो गया, दिन-दहाड़े टक्कर मार रहा है लड़कियों को, कुत्ता हरामी कहीं का।' साथ वाली लड़की खड़ी-खड़ी गालियां दे रही थी। उन्होंने अब भी उस का चेहरा तक नहीं देखा था और नीची नजर किए वे बस माफियां मांगे जा रहे थे। अचानक आँख उठाकर जब उस पंद्रह साल की लड़की की तरफ उन्होंने देखा तो कुछ पल देखते ही रह गए फिर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े। उन्हें ऐसे गिरते देख पहले तो दोनों लड़कियां अवाक रह गईं, फिर कुछ समझकर दुपट्टे से मुंह से दबाए हँसती हुई भाग गयीं। तभी पास की किसी मस्जिद से अजान की आवाज उठी थी।

अगले दिन सुबह सात बजे ही वे गली के उसी मोड़ पर आकर खड़े हो गए। स्कूल भी नहीं गए। धूप काफी तेज थी पर उन्हें नहीं महसूस हो रही थी। दोपहर के डेढ़ बजे के आसपास का वक्त था कि उन्होंने देखा वही कल वाली दोनों लड़कियां चली आ रही हैं। पहली ने दूसरी को कुहनी मार कर दिखाया, जिसको कल टक्कर लगी थी कि देख गली के दरवाजे पर खड़ा है। दोनों उन्हें नजरअंदाज करती हुई निकल गई। थोड़ा दूर निकलने पर उन में से एक के हँसने की आवाज आई।

अब उनका रोज का यही नियम हो गया। सुबह स्कूल के लिए निकलते पर सारा दिन शहर के किसी गुरूद्वारे में या शहर के बाहर किसी खंडहर या रेल की पटरियों के किनारे बिता देते और एक बजे से पहले वहीं आ खड़े होते। यही समय होता जब आसपास की मस्जिदों से अजानें उठना शुरू होती। रोज कई तरह के मनसूबे बांधते पर उसके सामने आते ही जैसे हिम्मत जवाब दे जाती, जोरों से दिल धड़कने लगता।

गुरूद्वारे में अरदास करते कि वाहे गुरूजी कोई तो राह निकालो, कोई तो जुगत बने। एक दिन एक विज्ञापन पढ़ा कि शहर में एक बंगाली मुसलमान तांत्रिक आया है जो वशीकरण करके प्रेमी को प्रेमिकाओं से मिला देता है और फिर वे उसे कभी छोड़कर नहीं जाती तो पहुंच गए उसके दरवाजे। काम करने से पहले उस ने दस रुपये मांगे तो मुंह उतर गया। पूछा कि जालंधर में कब तक डेरा है- पता चला कि एक हफ्ते का। वे अपना सा मुंह लेकर वापस आ गए।

सात भाई बहनों में छठवें नंबर के थे, उन्हें खाने को ही मिल जाता था, यही गनीमत थी। सातवां दिन भी बीत गया। दोनों आतीं, पास से भवें चढ़ाकर निकलती और आगे जाकर दुपट्टे में मुंह छिपा कर हँसती। बात ऐसे नहीं बनेगी, ऐसे चार दिन बाद बंगाली बाबा भी चला जाएगा इसलिए अब उन्होंने तय किया और सुबह-सुबह रेलवे स्टेशन के पास पुराने बाजार में जा खड़े हुए, जहां बेलदारी के लिए मजदूर खड़े होते थे। ठेकेदार लोग वहीं से मजदूर उठाते थे। तीन दिन बेलदारी के बाद अब उन की जेब में बारह रुपये थे।

वे बाबा के पास सुबह-सुबह ही पहुंच गए। बाबा ने मंत्र पढ़कर एक पुड़िया में राख दी और कहा कि उसे पानी में घोलकर पिला देना। उन्होंने बाबा से साफ-साफ कह दिया कि ये तो नामुमकिन है, आप तो कोई और ही उपाय बताओ। तब बाबा बोले कि अच्छा जहां से वह गुजरती हो, वहां डाल देना, बस उस का पांव पड़ जाना चाहिए, उसके बाद तीन-चार मंत्र बता दिए कि जैसे ही पांव पड़े, ये पढ़ते रहना एक सौ आठ बार और हां इसका असर बहुत तेज है, जरा गलती हुई तो लड़की पागल हो जाएगी। फिर मुझे दोष मत देना।

बाबा कब के चले गए और वे राख जेब में लिए लिए घूमते रहे पर उसे जमीन पर न डालते कि कहीं कोई गलती हो गई तो वह पागल हो जाएगी। पंद्रह दिन बीत गए पर बात आगे न बढ़ी। न खाने की सुध, न पीने की और नींद तो जाने कहां ही चली गई। बस हर वक्त उसी का चेहरा सामने घूमता। पंद्रह ही दिनों में शरीर आधा रह गया। गोरा रंग काला पड़ गया और आँखों से नूर खो गया।

'कुछ बोलेगा भी या यहीं खड़ा-खड़ा जोगी बनेगा?' आज उसकी सहेली अचानक जाते-जाते सामने आ खड़ी हुई। दूसरी दो कदम आगे जा रुक गई। उन्हें काटो तो खून नहीं।

'तेरा नाम क्या है ओए?' कहते हुए वह चल पड़ी। 'गूंगा है बेचारा शायद।'

उसके आगे बढ़ते ही वह बोले 'जी रतन कुमार।'

'उसका सतजोत कौर है, सिखणी है, तू ठहरा मोना...अपना रास्ता देख दीवाने।' एक पल को वह रुककर बोली और फिर दोनों चल पड़ीं।

'कल गुरुजी का सच्चा खालसा बन जाना है मैंने, सुन ले सतजोत कौरे।' रतन वहीं से तेज आवाज में बोला। उस समय संयोग से गली खाली ही थी। दोपहरी में वैसे भी गलियां खाली सी ही रहती थीं।

और उसी शाम रतन कुमार ग्रंथीजी से सिख धर्म में आने का रास्ता पूछ आए। अगले दिन जब वो दोनों आयीं तो वह बोले कि 'जी मैं रतन सिंह हो गया हूं, गुरुजी का सच्चा सिख।' पर दोनों ने ही अनसुना कर दिया और सीधी चलती गयीं। कोई बीस-पच्चीस कदम आगे चलने के बाद उसी लड़की ने एक मुचड़ा हुआ सा कागज गिराया। रतन ने तेज-तेज चलकर वह कागज उठा लिया और वहां से भागते ही चले गए। दिल जोरों से धड़कता था। वह तीसरी गली में तेजी से पहुंचे। पुर्जी खोली, लिखा था- 'कल इसी वक्त लाहौरी गेट के पास वाली छतरियों के पास।' दिल बल्लियों उछल गया।

कल तक का वक्त काटे से नहीं कटता था। आखिर वह दोनों आयीं और एक छतरी के खंभे के पीछे जा खड़ी हुईं। छतरियों के किनारे किनारे एक नहर बह रही थी। रतन तो वहां पहले ही पहुंच गए थे। वही लड़की बोली- 'देख रतन अब तू सिख हो गया है तो सब मुश्किल आसान हो गयी। जानता है तू सतजोत भी उस दिन से सोयी नहीं है, न कुछ खाती है और न पढ़ती लिखती है, बस तुझे ही याद करती है, इसलिए मुझे मजबूर होकर ये करना पड़ा।' उस लड़की ने कहा तो सतजोत ने पीछे से उसे चिकोटी काटी।

'सुरजीत इनसे पूछ कि क्या ये मेरे साथ शादी को तैयार हैं?' सतजोत धीमी आवाज में बोली तो सुरजीत ने रतन की तरफ देखा- 'हां, तेरी कसम, मैं तेरे अलावा अब किसी से शादी नहीं करूंगा।' यह सुनकर सतजोत शरमा गयी।

'लो जी अब तो हम कबाब में हड्डी हो गए।' सुरजीत हाथ नचाते हुए चहकी तो सतजोत ने उसे बाहों में भर लिया और धीमे से बोली- 'ऐसे कुबोल तो न बोल मेरी बहना, तेरी ही वजह से ये मुझे मिल पाए हैं।'

चार-पांच महीने ऐसे ही चोरी-छिपे मिलने में बीते। अब सतजोत पास आकर खड़ी होने लगी। सुरजीत दूसरी छतरी के पास जा बैठती। वे दोनों जाने कहां कहां की बातें करते। इसी बात में उसे पता चला कि वह खत्री जाति की है और उसके पिता पाकिस्तान के पंजाब से बंटवारे के वक्त यहां आए थे। सतजोत के अलावा एक बहन और तीन भाई और हैं। ऐसे ही एक दिन सतजोत कुछ-कुछ बोले जा रही थी कि रतन ने बढ़कर उसके होंठों का चुंबन ले लिया और सतजोत के गाल और भी गुलाबी हो गए। 'तेरे होंठ तो शहतूत की तरह मीठे हैं री।' रतन ने कहा तो सतजोत ने मुंह दूसरी ओर कर लिया।

'इतनी हड़बड़ी भी अच्छी नहीं है जीजे।' जाते-जाते सुरजीत हँसते हुए कह ही गयी। दूर बैठे-बैठे भी वह सब गतिविधियों पर नजर रखती।

रोज की ही तरह रतन सही समय पर छतरी के किनारे पहुंच गया, पर उस दिन वे दोनों नहीं

आईं। वह अगले दिन भी रात घिरने तक बैठा रहा, पर वह नहीं आयी। अब वह रोज जाता और शाम तक वहां बैठा रहता, पर उसके बाद वह नहीं आयी। कुछ दिनों बाद वह उनके स्कूल के बाहर जा खड़ा हुआ। छुट्टी हुई, एक एक कर सारी लड़कियां निकलीं पर सतजोत और सुरजीत कहीं नहीं दिखीं। अब वह रोज किसी पवित्र नियम से बंधा स्कूल के सामने सुबह आ खड़ा होता और दोपहर तक खड़ा रहता। वहां से वह सीधे छतरियों पर पहुंच जाता और रात तक बैठा रहता। कोई कहता कि उन दोनों को कत्ल कर दिया है। कोई बताता कि दूसरे शहर भेज दिया गया है। कोई उनके ब्याह होने की बात करता। पर उसके बाद रतन सतजोत को जालंधर में कभी न मिल सके। जब पैंतीस साल बाद अचानक दिल्ली के कनॉट प्लेस में सतजोत मिली तो कुछ पल तो दोनों एक-दूसरे को पहचानने की कोशिश ही करते रहे फिर पहचान गए। सतजोत के साथ एक जवान लड़की थी, जो उसकी बेटी थी। अब वह उसके विवाह के लिए खरीदारी कर रही थी। वह कुछ देर बातें करते रहे।

इधर-उधर की कुछ बातें करने के बाद सतजोत ने सीधे पूछा- 'तुम्हारी वाईफ क्या करती है?'

'मैं कुछ नहीं भूल सका और तुम सब भूल गई सतजोत...याद नहीं तुम्हें कि मैंने तुम्हारी कसम खाई थी कि मैं तुम्हारे अलावा किसी और से शादी नहीं करूंगा।'

'याद है सब...पर तुम आदमियों के लिए ये दुनिया बहुत आसान और आरामदेह है...कभी औरत बनके समझना इसे, समझ सकोगे...शायर हो, बड़े आदमी हो, फिल्मों में लिखते हो रतन जालंधरी के नाम से...तुम्हारी लिखे सब गाने सुने हैं मैंने, सब फिल्में देखीं, सुरजीत जालंधर में ही है, तीन मिलों की मालकिन है, उसी ने आप के बारे में पता करके बताया था, पंद्रह साल पहले।'

कुमार साहब हैरान थे कि सतजोत को उनकी सब खबर है फिर भी एक बार पूछा तक नहीं कि कैसे जीता हूं। उस पर ताने मारती है कि आदमियों के लिए ये दुनिया बहुत आसान है...ये दुनिया सिर्फ दरिंदों के लिए आसान और आरामदेह रह गई है। औरत और मर्दों में जिनमें जितना ज्यादा जानवर जिंदा है, उतनी जिंदगी आसान।

'सब कुछ जानते हुए भी कभी मिलने की ख्वाहिश नहीं हुई?'

उसने पहले बेटी की तरफ देखा जो अब भी अपनी शादी के लिए अपनी पसंद के सूट शलवार चुने जा रही थी, फिर बोलीं- 'बहुत बाद में पता चला ...पर शादी तो हमारी दुनियावालों ने तब भी नहीं होने देनी थी...क्यों?'

'क्यों?'

'वहीं...सिख बन जाने के बाद भी वो आप का पीछा कहां छोड़ती...बाद में भाईयों ने बताया, और आप इसीलिए मुझे अपने मोहल्ले का पता भी गलत बताते थे ना...अब तक दुःख है मुझे कि आपने मुझे भी औरो जैसा ही गिरा हुआ समझा।'

उस मुलाकात के बाद उनका फिर कभी मिलना नहीं हुआ। उसके जाने के बाद बहुत से लोग आए थे और चले भी गए...कुछ के तो आने और जाने तक का पता न चला। जब वे आए थे, तो कोई उमंग तक न उठी, किसी हिलोर ने हिलाया तक नहीं और चले गए तो कोई खलिश या खरोंच तक न हुयी। वे सब कुछ मांगने आए थे। उनके हाथों में एक अदृश्य फेहरिस्त थी, चाहतों की। कुमार साहब उन्हें पूरा कर देते थे ताकि जल्द से जल्द उनकी रूखसती हो।

कुछ के जाने के मामूली निशान जिस्म पर बने, रूह अछूती ही रह गयी और फिर कुछ दिनों

के बाद वे निशान भी न रहे। रूह और जिस्म फिर पहले जैसे ही हो गए...ताजादम और नए-नकोर। सतजोत के जाने के बाद मानो वे अनचाही वस्तुओं के मालगोदाम में बदल गए। वह ताजगी, पाकीजगी, वैसी मौज, वैसी मस्ती, वैसा दुःख, वैसा उत्साह फिर कोई न पैदा कर सका।

वे खोजते रहे उसी खुशबू को सब में, पर वह याद बन गयी, एक मरीचिका बन गयी। प्रेम फिर नहीं मिला उन्हें। प्रेम में जो कुछ हम करते हैं, वह कुछ करने जैसा नहीं होता, वह अपने जीने जैसा ही होता है...कोई अवरोध उसमें नहीं होता, जैसे हवा या पानी के अनुकूल ही बहना...कहीं कोई शिकन नहीं, कोई अटकाव या हल्का सा धक्का भी नहीं...माथे पर पसीने की चमचमाहट तक नहीं। पर इंसाफ करते वक्त हमें अपने विपरीत भी जाना पड़ जाता है, वहां कई बार सामने पहाड़ आ खड़े होते हैं और खाईयां खुद जाती हैं और मजबूरी ये कि हमें बचाव का रास्ता भी पता होता है पर तब भी, उसके बावजूद उस पहाड़ या खाई से ही गुजरना होता है क्योंकि इंसाफ उसी तरफ होता है। सतजोत ने गलत नहीं कहा था और उन्होंने भी जो कहा था, सच ही कहा था। हां, इंसाफ बेशक सतजोत के कहे के साथ ही खड़ा था। इंसाफ, हजार सचों से भी बड़ा होता है। उस वक्त भी बुल्लेशाह याद आए थे। 'आ मिल यार सार लै मेरी, मेरी जान दुक्खा ने घेरी/अंदर खाब विछोड़ा होया, खबर ना पाइंदी तेरी/सुन्ये बन विच लुट्टी साईआं, सूर पलंग ने घेरी/इह तां ठग्ग जगत दे, जेहा लावन जाल चफेरी/ करम शरहा दे धरम बतावन, संगल पावन पैरीं/ जात मजहब इह इश्क ना पुच्छदा, इश्कन शरहा दा वैरी। नदियों पार मुल्क सजन दा लहवो-लआब ने घेरी।'

मस्जिद बहुत दूर नहीं थी पर फिर भी पांच-सात मिनट तो लग ही जाते थे, वहां तक पहुंचने में। अल्लाबख्श सोलहवें फ्लोर से नीचे उतरा तो दो-तीन नमाजी और मिल गए जो इधर रोज ही मिल जाते। रमजान के महीने में सभी पांचों वक्त की नमाज पाबंदी से निभाते। और दिन होते तो अल्लाबख्श भी अपने साहिब को छोड़कर न जाता। कल जुम्मा तुल विदा था यानी रमजान का आखिरी शुक्रवार...अब दिन ही कितने बचे हैं ईद में।

साहिब ने कभी उसे टोका तक नहीं। उलटे, अजान होते ही खुद आवाज देकर बुलाते- 'अल्लाबख्श जाओ, काम तो लगे ही रहेंगे।' शायद यह भी एक वजह थी कि जब तनख्वाह में देरी की वजह से दो नौकर काम छोड़ गए, तब भी अल्लाबख्श नहीं गया। इधर वक्त पर तनख्वाह भले ही नहीं मिलती थी पर साहिब ने तनख्वाह रोकी कभी नहीं, कुछ देर भले ही हो जाती। पांच सौ का नोट देते और तीन-साढ़े तीन सौ का सामान आता तो भी बाकी बचे पैसों के लिए न पूछते। अल्लाबख्श ने कभी एक पैसा भी उनका नहीं रोका और साहिब ने भी कभी रुपये पैसे का हिसाब न मांगा।

बाकी सब चले गए एक-एक कर के। अल्लाबख्श ही सब कुछ है, इस ला-मकां साहिब का। एक शाम अल्लाबख्श को बुलाकर साहिब ने कहा भी था- 'तुम भी कहीं काम देख लो मियां, अभी जवान हो, चालीस के भी पूरे नहीं।' पर अल्लाबख्श नहीं गया। साहिब ने कार चलाना तो बहुत पहले सिखा दिया था और जब नई कार खरीदी तो अल्लाबख्श के ही नाम कर दी।

'अस्सलाम वलेकुम...।' इमरान ने सलाम किया तो अल्लाबख्श का ध्यान टूटा। 'कहां खोए हो अल्लाबख्श भाई।'

'नहीं भाई कहीं तो नहीं।'

'एक बात कहें अल्लाबख्श भाई।' इमरान ने वजू करते वक्त पूछा।

'हां हां पूछो।'

'उस काफिर अछूत के घर में कब तक उसके जूठे बर्तन धोते रहोगे, कब तक उस की जूठन खाओगे, कुछ तो ईमान का ख्याल करो।' इमरान ने पहले भी दो-तीन बार यह कहा था और अल्लाबख्श, टाल गया था। तभी साथ में हाथ पांव धोता आदिल बोला- 'अल्लाबख्श भाई को कम मत समझो इमरान भाई, उसका मकान इन्हीं के नाम होगा देख लेना...गाड़ी तो लिखवा ही ली।'

'तुम्हें किसने कहा कि मेरे साहिब अछूत हैं।' अल्लाबख्श थोड़ा रोष से बोला- 'वो पंजाबी हैं।'

'सोसायटी के सारे लोग जानते हैं, मेरी मेमसाहब ने मुझे बताया कि तेरा साहब पंजाबी हरिजन है।' इमरान ने कहा।

'पर इमरान भाई एक बात बताओ, इस्लाम में तो कोई जात पांत है नहीं, तो तुम क्यों परेशान हुए जाते हो...और मैं भी कोई शेख-सैयद तो हूं नहीं, एक अदना सा नौकर हूं।'

यह सुनकर नाजिम बोला- 'कुछ शर्म करो तुम लोग, खुदा के घर में भी क्या जात-पांत, जमीन-जायदाद लगा रखी है। यहां इबादत के लिए आए हो या सियासत के लिए।' नाजिम की इस बात के बाद सब चुप हो गए।

अल्लाबख्श ने नमाज पढ़ी और फ्लैट पर लौट आया। देखा साहिब बैठे बैठे अब भी शराब पी रहे हैं। आरामकुर्सी पर अधलेटे जाने कहां खोए हुए हैं। एक तरफ, एक किताब खुली रखी थी, कुछ कागज दबे थे चश्मे और पेन के नीचे, मतलब कुछ लिख रहे हैं। सामने की छोटी रैक में उनकी लिखी बीसियों किताबें सज रही थीं। वह दबे पांव दूसरे कमरे में जा बैठा। आधे घंटे बाद उन्होंने आवाज लगाई- 'अल्लाबख्श...।'

'जी साहिब, खाना लगा दूं।' अल्लाबख्श ने आकर पूछा तो उन्होंने कहा-'हां लगा दो।' खाना खा कर कुमार साहब लेटने को हुए तो अल्लाबख्श ने एक गिलास पानी, कोस्टर से ढंककर सिरहाने रख दिया। फिर कुछ अनमना सा वहीं खड़ा रहा।

'कुछ कहना चाहते हो क्या?'

'हां साहिब...अगर आप को बुरा न लगे तो।'

'हां पूछो।' कुमार साहब सीधे लेट गए।

'साहिब क्या। आप हरिजन हो?' अल्लाबख्श ने सहमते हुए पूछ ही लिया आज।

'किसने कहा तुम से?' कुमार साहब ने मुस्कुरा कर पूछा।

'इमरान भाई और आदिल भाई कहते हैं कि अपनी पूरी सोसायटी यही कहती है।'

कुमार साहब मुस्कुराते रहे, उसी अंदाज में- 'तो क्या तुम्हें कोई दिक्कत है काम करने में?'

'नहीं नहीं साहिब, आप तो मेरे मालिक हो, मैंने तो उन दोनों को भी झाड़ पिला दी कि तुम कैसे मुसलमान हो जो जात-पांत को मानते हो।' अल्लाबख्श ने जैसे अपनी सफाई दी उन्हें।

'तो फिर जाओ, मेरे आराम में खलल न डालो, और सुनो इमरान और आदिल से कहना कि हम हरिजन नहीं है, अब हमें दलित कहते हैं।' इतना कहकर कुमार साहब ने दूसरी तरफ करवट बदल ली, हालांकि उन्हें लगा कि सोलहवें फ्लोर तक भी नीचे का कुछ शोर आ रहा है।

●

महाभीम का जीवन

अभिज्ञात

महाभीम की चर्चा जोरों पर थी। उस प्रतिष्ठान ने बच्चों के लिए एक भव्य आयोजन किया था। बच्चे उसमें महाभीम से मिलने वाले थे। वह महाभीम जिसे उन्होंने धारावाहिकों में देखा था। उससे साक्षात् मिलने का अवसर बच्चों के लिए कम रोमांच भरा न था। बच्चे खासा उत्साहित थे। उन्होंने एक सप्ताह पहले ही अपने अभिभावकों पर दबाव डालकर, मनुहार करके अपना नाम आयोजकों के पास रजिस्टर्ड करवा लिया था। कई अभिभावक स्वयं इसे लेकर प्रफुल्लित थे कि उनका बच्चा कुछेक घंटे मजे करेगा। अपने हमउम्र बच्चों के साथ हँसी-खुशी के क्षण गुजारेगा और साथ ही वह खाने-पीने के प्रति भी जागरूक बनेगा क्योंकि महाभीम बात बात में खाने-पीने की बातें करता है और उसके फायदे- नुकसान भी साथ ही बताता चलता है।

आयोजक एक प्रतिष्ठित प्रतिष्ठान के थे। प्रतिष्ठान के प्रमुख की पत्नी ने अपनी दिवंगत बच्ची की स्मृति में इसका आयोजन किया था। वह दूसरे बच्चों के साथ साल में एक दिन सोल्लास मनाना चाहती थीं।

तय समय से पहले ही बच्चों के अभिभावक उन्हें निर्दिष्ट स्थल पर लेकर पहुंचने लगे थे और बच्चे को आयोजकों के सुपुर्द कर तीन घंटे बाद उन्हें वापस लेने आने वाले थे। इधर आयोजन के कार्यभार की प्रभारी महाभीम की समय पर उपस्थिति सुनिश्चित करने को लेकर चिंतित हो उठीं। योजना थी कि जब बच्चे आ जाएं तो तय समय पर उनके बीच हाथ हिलाता महाभीम उपस्थित हो ताकि इंतजार करते बच्चों को रोमांचक लगे लेकिन मजबूरन उन्हें घोषणा करनी पड़ी कि महाभीम कुछ विलंब से उनके बीच आ पाएगा। जिस एजेंसी ने महाभीम को उनके बीच लाने की जिम्मेदारी ली थी उसके प्रतिनिधियों ने विलंब के लिए तरह-तरह के बहाने बनाने शुरू कर दिए थे। खैर.. कुछ विलंब से ही सही महाभीम उनके बीच उपस्थित हो गया। आते ही उसने बच्चों को हाथ लहराकर विश किया। कई बच्चों के मुंह से खुशी भरी चीख सी निकल गयी उसे अपने बीच पाकर।

फिर संगीत पर वह गीत बजने लगा जो सीरियल में महाभीम गाता है-'महाभीम ये बतलाता है बच्चों क्या-क्या खाओ। खाकर हेल्दी फूड फटाफट तुम हेल्दी हो जाओ। नया मैं फंडा देता हूं। नया हथकंडा देता हूं' वह गीत बजने लगा और महाभीम बच्चों के बीच नाचने लगा। बच्चे भी उसके साथ नाचते रहे और तमाम बच्चे अपने मोबाइल फोन और टैब से उसकी तसवीरें खींचने और वीडिओ बनाने में जुट गए। बच्चों ने महाभीम के साथ सेल्फी भी ली। दूसरा दौर था जब महाभीम बच्चों

को तरह-तरह के खाने पीने की चीजें देने लगा और फायदे भी साथ ही संक्षेप में गिनाने लगा। चाकलेट..फल.. तरह-तरह की मिठाइयां, बिस्कुट आदि। बच्चे आनंदित थे और उन्हें आनंदित देख आयोजक प्रसन्न। प्रतिष्ठान की मालकिन महाभीम के साथ सेल्फी ले ही रही थी कि अचानक यह क्या..महाभीम लड़खड़ाकर गिर पड़ा। किसी को कुछ समझ में ही नहीं आया सभी हतप्रभ थे। आनन-फानन में कार्यक्रम के समाप्ति की घोषणा करनी पड़ी और कहना पड़ा कि महाभीम की तबीयत अचानक खराब हो गयी है। बच्चे महाभीम की अस्वस्थता से उदास होकर लौटे। महाभीम को उठाकर दो लोग भीतर कमरे में ले गए और एक बेंच पर लिटा दिया। दरवाजा अंदर से बंद कर उसका मुखौटा हटाकर उसके मुंह पर पानी मारा गया तो वह होश में आया।

महाभीम को लाने वाली एजेंसी के प्रतिनिधि अब तक आयोजकों द्वारा पर्याप्त फटकार सुन चुके थे और उनका भुगतान खटाई में पड़ गया था। उन्हें जो रकम मिलनी थी उससे बहुत कम मिली थी। महाभीम होश में आने के बाद अपनी अस्वस्थता पर शर्मिंदा था क्योंकि बच्चों का एक खुशनुमा कार्यक्रम उसने खराब कर दिया था। उसे अपनी बच्ची याद आयी जिसे वह अस्पताल में इलाज के लिए पहुंचाकर भागा-भागा आया था ताकि इस कार्यक्रम के बाद उसे जो मजदूरी मिले उससे वह अपनी बच्ची की दवाएं खरीद सके। वह जब बच्चों के साथ ठुमके लगा रहा था उसे अस्पताल में जीवन-मौत से जूझती अपनी बच्ची याद आ रही थी। जिसका नतीजा कुछ इस तरह उसके सामने आया कि उसे एजेंसी ने आज के काम की मजदूरी देने से इनकार कर दिया। महाभीम उन लोगों से पास ही रखी खाने-पीने की चीजें भी नहीं मांग पाया क्योंकि वह भूख के कारण अचेत हो गया था।

●

आने वाली नस्लों की खातिर...

अमिता नीरव

रमजान के दिनों में हर दिन होने वाली हड़बड़ाहट नहीं होती है। बच्चों को स्कूल भेज देने के बाद घर का कोई काम बचता नहीं है। सहन में सहरी के बर्तन भर बचे हुए थे और पूरा पहाड़-सा दिन। अभी सुबह के 9 ही बजे थे। पहले नजमा ने सोचा क्यों न ईद की तैयारी कर ले। तीन दिन बाद ईद है। सोफे-कुर्सियों के गिलाफ और पर्दे निकालकर धो डाले। कल बाजार कर आएगी। अम्मी को जैसे न ईद से कोई लेना-देना न रमजान से...।

खुद नजमा का भाई के घर से आया नया जोड़ा अभी तक खुला नहीं है। बच्चों के कपड़े ही लाना है। और छोटा-मोटा सामान। मर्दों में भी अब्बू तो अब नया जोड़ा नहीं पहनते हैं। असलम के पास भी कोई-न-कोई जोड़ा ऐसा होगा ही जो अभी तक खुला नहीं है। फिर आफाक की पहली ईद है.... शायद असलम भी न मनाएं। यूं अब ईद मनाने की न उम्र रही और न ही मिजाज.... रोजगार भी मंदा चल रहा है, उस पर त्योहारों के खर्च। नजमा इन दिनों कुछ ज्यादा ही परेशान रहने लगी थी। असलम भी बात-बे-बात कुढ़ते रहते हैं। अब्बू की जिंदादिली और अम्मी के कहकहे सुने जैसे बरस हो गया हो.... आफाक के जाने के बाद से न जाने कैसी तो दहशत बनी रहती है, घर में....। रह-रहकर लगता था कि उसके बच्चों का भविष्य क्या होगा। असलम ने दबी जुबान में बस इतना ही बताया था कि आफाक की सोहबत खराब हो गई थी।

लेकिन उसके जाने के बाद कोई भी उसकी सोहबत पर बात नहीं करना चाहता। कोई आफाक पर ही बात नहीं करना चाहता। बस अम्मी फटी-फटी निगाहों से सहन का दरवाजा देखती रहती है। ज्यादातर वो यहीं बैठती है।

घर में दहशत का माहौल है, पड़ोसी भी दबी जबान में पूछताछ कर ही लेते हैं। नजमा को असलम का डर तो रहता ही है, अब अपने बच्चों को लेकर भी उसे अजीब-सा डर घेरे रहता है.. ..। सबा का तो ठीक है, लड़की है, निकाह हुआ कि अपने घर की। पर अभी तो वो भी बच्ची ही है। वक्त बहुत खराब है। आज नजमा को अपनी अब्बू की बातें फिर याद आ रही है। जब नजमा स्कूल जाती थी, तब भी अब्बू यही कहते थे, जमाना बहुत खराब है....। आज नजमा वही महसूस कर रही है। सोचती है जमाना कब अच्छा था फिर....?

जबसे आफाक गया है, तब से नजमा कुछ ज्यादा ही डरी रहने लगी है। अम्मी तो चुप्पा हो ही गई है, अब्बू भी उदास रहने लगे हैं। उधर असलम बात-बात पर चिढ़ जाते हैं। उस पर कस्बे

का माहौल... कई बार नजमा का मन करता है कि बच्चों को कहीं भेज दे। लेकिन कहां भेज दे!

उसके अब्बू के गांव में भी माहौल कुछ बहुत ज्यादा अच्छा तो नहीं है। नादिरा के पास... ये विचार आते ही वो तौबा-तौबा करने लगती है। नादिरा का निकाह पाकिस्तान में हुआ है। निकाह हुआ उसके बाद से बस एक ही दफा अम्मी के घर आ पाई है। अम्मी बताती है कि खुश है हालांकि निकाह को 8 साल हुए, अभी तक कोई आस-औलाद नहीं है। ये चिंता अम्मी-अब्बू को भी है और नादिरा को तो होगी ही। जब आफाक था, तब कई बार नजमा ने नादिरा से बात की थी। वह अपने लैपटॉप पर कुछ करता था और नादिरा दिखाई देने लगती थी। पिछली दफा जब नादिरा को देखा तो लगा था कि वह कुछ परेशान है। आफाक इधर-उधर हुआ तो जैसे नजमा की आँखों ने ही सवाल कर डाला। नादिरा ने फुसफुसाकर बताया कि दूल्हे भाई के दूसरे निकाह की बात चल रही है।

ये डर तो जैसे हमारे पैदा होते ही हमारे साथ पैदा हो जाता है। अल्लाह का शुक्र है कि नजमा के निकाह के तो साल भी नहीं हुआ और निजाम कोख में आ गया। शुक्र यूं भी कि पहलौटी का बेटा रहा। नजमा अब मुतमईन रहने लगी थी। दूसरी जचगी में सबा आ गई। यहां अम्मी-अब्बू ने कहा, कुनबा पूरा हुआ। असलम-आफाक के कोई बहन नहीं थी तो सबा के आते ही जैसे घर में बेटी की कमी पूरी हुई। नजमा और उसके अम्मी-अब्बू का एक डर तो कम हुआ पर नादिरा इतनी खुशकिस्मत नहीं रही।

नजमा अपने ही में गुम थी, तब सहन से अम्मी ने उसे आवाज दी थी 'नज्जो.... फातिमा आई है।'

अम्मी सहन में ही बैठी थीं।

ईद की खरीदी पर जाना होगा.... खुद ही से बड़बड़ाती नजमा बाहर आई थी।

'आदाब आपा'

'आदाब... कहां जा रही है, ऐसे तैयार होकर?' -फातिमा ने हरे रंग का सलवार-कुर्ता पहना था, उसके लाल रंग के दुपट्टे पर लगे गोटे को देखकर नजमा को थोड़ी जलन-सी महसूस हुई थी।

'सलीम की छुट्टी है तो सोचा शहर जाकर बाजार ही कर आऊं।' -फातिमा ने जवाब दिया।

'सलीम भाई जान की छुट्टी क्यों...?'

'अल्लाह जाने, सलीम बता रहे थे कि आज से तीन दिन तक कस्बे के सारे बाजार बंद रहेंगे।' फातिमा ने बताया।

'लाहौल विला कूवत....' दरवाजे से अब्बू भीतर दाखिल होते हुए बोले।

'आदाब चचा जान'- फातिमा ने अब्बू को आदाब किया तो अब्बू ने इशारे से उसका जवाब दे दिया, फिर बोले - 'कस्बे में ईद से पहले सारे हिंदू व्यापारी बाजार बंद रखने लगे हैं।'

'क्यों?'- नजमा ने पूछा

'इसलिए कि मुसलमान ईद की खरीदी न कर पाएं... मुसलमानों को उनकी छोटी-छोटी खुशियों से महरूम करने के लिए कैसी-कैसी चालें चली जा रही हैं.... हवाओं में जहर घोल रहे हैं। हम भी क्या करें, हमें विरसे में यही मिट्टी मिली है, लेकिन कोई इसे समझता ही नहीं है। कहां जाएं... क्या करें... ऐसा लगता है कि मुसलमानों के लिए दुनिया खत्म हो चली है।' - अब्बू ने बहुत मायूसी से कहा और भीतर चले गए।

हवा में अजीब-सी घुटन का अहसास हुआ। अम्मी सहन में बैठी सबको बस बेवजह देख रही थी। नजमा कुछ देर फातिमा को और फातिमा नजमा को देखती रही। वक्त के उस टुकड़े में बच्चों की मांओं के मन में न जाने क्या-क्या आकर गुजर गया। न जाने क्या-क्या दोनों ने देख लिया, कौन सी आशंकाओं को कहकर सांत्वना पा ली और कौन-से डरों को एक-दूसरे से बांट लिया... कोई नहीं जान पाया।

फातिमा ने बढ़कर नजमा को घर की चाबी दी, प्लास्टिक का डिब्बा उसके हाथ में देते हुए कहा - 'शाहिद को यहीं रख लेना....'

'अल्लाह, अब खाना भी नहीं खिला सकती क्या मैं कित्ती ओछी बात कर दी फातिमा...!' - नजमा ने रोष में कहा।

'अरे नहीं आपा.... ये तो इफ्तार के लिए लाई हूं, छुहारे के लड्डू बनाएं हैं। सोचा थोड़े आप लोगों के लिए भी लेती जाऊं.... शाहिद और निजाम में क्या फर्क है वह भी तो आपका ही बेटा है।' -कहते-कहते फातिमा मुस्कुरा दी।

अम्मी वैसी ही खंभे की टेक लगाकर बैठी थी। बाज दफा नजमा को हमदर्दी होती तो बाज दफा उसे गुस्सा भी आता है। आज उसका मन न जाने क्यों उमड़ रहा था। जब से आफाक गया है, अम्मी बदहवास-सी रहने लगी हैं। कई बार लगता है वो ठीक हो रही हैं, कई बार लगता है कि वो बेहद-बेहद उदास हैं। नजमा का दिल आज पहले से ही कुछ उदास-सा था, उस पर फातिमा का आना... सब मिला-मिलुकर उसे और उदास कर दिया। अम्मी अब भी जैसे सूने में ताक रही है। आफाक के जाने के बाद ये पहली ईद है। शायद इसलिए भी अम्मी ज्यादा उदास है। पर किया ही क्या जा सकता है?

कोई नहीं जान पाया था कि इतना हँसता-बोलता लड़का भीतर से इतना घुन्ना निकलेगा। जाने अब्बू ने क्या देखा था आफाक के कमरे में कि वो पहले चीखे और फिर बेहोश हो गए। असलम और सलीम जल्दी-जल्दी अब्बू को लेकर दवाखाने गए। आफाक अम्मी को लेकर गया। नजमा बच्चों को फातिमा के यहां छोड़कर जब दवाखाने जाने लगी तो आफाक को घर आता देखा। जब उसने पूछा कि 'अब्बू कैसे हैं?'

तो आफाक ने जवाब दिया 'ठीक है, थोड़ा ब्लड प्रेशर बढ़ गया था। अब ठीक है।'

नजमा जल्दी से दवाखाने की तरफ चली गई। अगले दिन दोपहर को अब्बू को डिस्चार्ज कर दिया गया। आफाक उसके बाद न तो दवाखाने पहुंचा और न ही घर में मिला। उसके कमरे से उसका लैपटॉप और बैग गायब था। उसके बाद वह कभी नहीं लौटा। अब्बू ने चुप्पी अख्तियार कर ली थी, अम्मी ने जाने क्या समझा-जाना कि उसके बाद से लगातार चुप रहती है। असलम भी चुप्पे हो गए हैं। नजमा कभी-कभी अम्मी की इस चुप्पी से घबरा जाती है। बड़ी घुटन होती है नजमा को.... अम्मी ने उसके बाद से एक आँसू नहीं ढलकाया जैसे आँखें ही सूख गई थीं, उनकी। बस हर खटके पर चौंकती हैं.... जितना कहो उतना कर देती हैं।

जब अब्बू की तबीयत जरा संभली तो असलम ने पूछा 'क्या हुआ था अब्बू?'

कुछ बुदबुदाते हुए कहा था 'लड़का बिगड़ गया है असलम... उसके पास मैंने पिस्तौल देखी थी कुछ रिसाले भी... जो नहीं होने चाहिए थे।'

असलम सहम गया था। उसने बहुत हताश होकर नजमा को बताई थी ये बात। कैसे देखते-देखते एक हँसता-खेलता कुनबा उजड़ गया था।

अब्बू और असलम ने तो यह समझ लिया कि आफाक का घर से चला जाना ही हम सबके लिए मुफीद है, मगर अम्मीं....!

कभी नजमा को इस बार पर गुस्सा आता है कि अम्मीं ये क्यों नहीं समझतीं है कि आफाक के घर छोड़कर चले जाने में ही हम सब की भलाई है। जिस रास्ते पर वह चल पड़ा है, उस रास्ते से घर में सिर्फ तबाही ही दाखिल हो सकती है... मुल्क चाहे ये हो या वो....!

शुरुआती दिनों में नजमा ने अलग-अलग तरह से अम्मीं को यही समझाने की कोशिश की थी। मगर अम्मीं तो तब समझतीं न, जब वे कुछ सुनतीं! ये किसी और को नहीं लगता है, बस नजमा को ही लगता है कि अम्मीं तक कुछ भी नहीं पहुंचता है। कुछ सुनती नहीं है ये नहीं... कुछ समझती नहीं है।

डॉक्टर कहता है कि शॉक में हैं। अब उसका क्या करें?

जिस औलाद से सबसे ज्यादा मुहब्बत की, उसी ने दगा कर दिया। नजमा भुनभुनाती है। कई बार वह बिना बात अम्मीं पर खीझ भी जाती है। फिर भी वे बिलकुल वैसी ही बनी रहती है। धीरे-धीरे नजमा ने भी अम्मी को वैसे ही कुबूल कर लिया, जैसी वो हो गईं हैं। फिर भी गाहे-ब-गाहे वह कुछ ऐसा जरूर करती है, जिससे अम्मी को उकसा सके। अब तक तो उसे कामयाबी नहीं मिली है। अल्लाह जाने सब कब ठीक होगा?

अम्मीं अकसर सहन में ही बैठी मिलती है।

ईद से पहले असलम ने नजमा से कहा था, 'रोजा रखना तो सबाब है, लेकिन ईद मनाना. ... देख नज्जो, अम्मी और अब्बू अभी तक आफाक के गम से बाहर नहीं आए हैं। ऐसे में उनके सामने ईद मनाना उन्हें और परेशान कर जाएगा।'

नजमा चुप रह गई। बाकी सब तो बड़े हैं, लेकिन निजाम और सबा को कैसे समझाएगी?

निजाम 10 का है तो सबा तो बस 8 की ही तो है। वो दोनों क्या समझेंगे बड़े की दुनिया की मुश्किलें.....?

अल्लाह कई बार अजीब इम्तेहान में डाल देता है। असलम की बात भी गलत तो नहीं ही है, लेकिन बच्चों का क्या करेगी... वो तो नहीं ही समझेंगे।

इस दफा रात में वह असलम से झगड़कर खूब रोई। झगड़ते-झगड़ते भी उसके दिल में सवाल आता रहा कि वह क्यों बेबात असलम से झगड़ा कर रही है?

लेकिन जवाब नहीं था। बस झगड़ रही थी, असलम हमेशा की तरह थोड़ी देर बाद दो-तीन वाक्य कहते हैं और चुप हो जाते हैं।

नजमा को ऐसा लगने लगा है कि उस पर भारी बोझ है। अब्बू की अच्छाई का, असलम की उदासीनता का, अम्मी की चुप्पी का, आफाक की गुमशुदगी का, बच्चों की ख्वाहिशों का, पड़ोसियों और रिश्तेदारों के सवालों का.... वह खुद को समेटती है, लेकिन फिर से बिखर जाती है।

वह नहीं चाहती कि इस ईद पर कोई उसके घर आए। नहीं चाहती है कि वह किसी के घर जाए। उसे नहीं चाहिए ईद की मुबारकबाद, दिल किया दोनों बच्चों को अपने अब्बू अम्मी के यहां

भेज दें। घर को बाहर से ताला लगा दे। सारे लोग घर के भीतर ऐसे रहें जैसे कब्र में रहते हैं। अजीब वहशत तारी होने लगी है उस पर। वह चाहती है कि असलम बोलें... खूब बोलें, अपनी सारी गिरहों को, अपनी सारी चुप्पियों को खोल दें। उससे यह अबोला... यह बेदिली सही नहीं जा रही है। शायद इसीलिए वह असलम को उकसाती है... लड़कर ही सही, अपनी खोल से बाहर तो आए, लेकिन वह हार रही है।

चार महीने में से एक महीना तो खुद उसके लिए भी वहशत का ही था, लेकिन अपने आसपास को देखकर वह लगातार खुद को जमा करने में लगी हुई है, पर अब थकने लगी है।

ईद के नाम से ही उसके भीतर डर कुलबुलाने लगा है। वह असलम से लड़कर थक गई है। उसने असलम से कहा, 'एक काम कर सकते हो बच्चों को अब्बू के घर छोड़ आओ... हम सब जहर खा लेते हैं।'

असलम जैसे सोते से जागा हो, उसने खींचकर नजमा को अपनी बांहों में समेट लिया... रोने लगा... बेतहाशा... नजमा भी।

'खुदा के लिए तुम तो चुप मत रहो। ऐसे तो हम सब मर जाएंगे। बताओ हमारे हाथ में करने के लिए क्या था? हम क्या कर सकते थे? आफाक चला गया मगर हम किस गुनाह की सजा में ऐसे घुट रहे हैं असलम... इस घुटन से निकलो... तुम निकलोगे तो सब निकल पाएंगे। अम्मी को चुप्पी से निकालो, वे पागल हो जाएंगी, समझो असलम!'

असलम को नजमा की बात समझ आ रही थी, लेकिन उसे कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। अब्बा ने अजीब किस्म की बेदिली ओढ़ रखी थी। अम्मी तो जैसे चुप्पा हो चली थी। ऐसे में घर में बस दोनों बच्चे ही बोलते थे। नजमा को लेकर उसके मन में बहुत हमदर्दी भी उमड़ी और गुनाह का अहसास भी...। पर वह समझ नहीं पा रहा है कि करे तो क्या करे?

फिर भी उसने सोचा कि घर के माहौल में बदलाव के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। अब क्या किया जा सकता है? इसे भी उसे सोचना होगा।

जाने कैसे अब्बू ने नजमा की कशमकश को समझा था। शायद उम्र से भी इलहाम होता होगा। उस शाम कारखाने से आकर अब्बू ने नजमा को आवाज लगाई थी 'नज्जो बिटिया, ईद पर बच्चों के लिए नए जोड़े लेने कब जाने वाली हो?'

नजमा ने असलम की तरफ देखा था। असलम की आँखों में पानी तैर गया था, नज्जों का भी मन भीग गया था। उसने अपनी गर्दन झुका ली थी, अब्बू ने एक वक्फा लिया था अपनी बात कहने के लिए या शायद भर आए अपने गले को साफ करने के लिए- 'जो गया, वो गया बेटा.... जो है हमें उसके लिए अल्लाह का शुक्रगुजार होना चाहिए.... ईद खुशी का मौका है। हम बड़े समझते हैं, बच्चे नहीं समझेंगे फिर ये ही तो हमें अपनी मायूसी से निकालेंगे न....'

असलम भीतर चले गए थे.... शायद वो कमरे में रोने के लिए गए थे। अब्बू भी अपनी बात कहकर चले गए थे। नजमा का जी चाहा था, जोर-जोर से रो लें। वह सीढ़ियों के नीचे वाली कोठरी में चली गई थी। सब अपने-अपने अकेलेपन में रोना चाहते थे। कोई भी अपने-अपने रोने की वजह किसी को नहीं बताना चाहता था। असलम का रोना अपने अब्बू के दर्द के लिए था। नजमा का उनकी फराखदिली और अपनी बेबसी के लिए... उसमें अम्मी की चुप्पी भी चीखती है। कभी लगता

औलादें भी इम्तेहान होती हैं। नजमा को फिर से अपने बच्चों के लिए डर लगने लगा था, हाल के लिए और आगे के लिए भी...।

आफाक के जाने के बाद से असलम ने भी रिश्तेदारों से मिलना-जुलना कम कर दिया है, अब्बू तो यूं भी नहीं जाते थे, अम्मी तो जैसे बस जिस्म बची हैं। न हँसती हैं न रोती है, न कहती है न मांगती है... नजमा के लिए अब अम्मी भी जिम्मेदारी हो गई हैं। बाज दफा उसे गुस्सा आता है परंतु उसने जान लिया है कि अम्मी तो जैसे हर मसले से दूर जा चुकी है। घर और खानदान के लिए नजमा की जिम्मेदारी इससे बढ़ गई है और अब निजाम और सबा के साथ-साथ अम्मी भी उसके बच्चों की गिनती में आ गई थीं।

वे बस सहन में बैठी-बैठी तस्बीह पढ़ती रहती हैं।

तो ईद पर किसी को कहीं मिलने जाना नहीं है। बच्चे ही चले जाएंगे, अड़ोस-पड़ोस में... दूर तो न असलम जाएंगे और ही बच्चों को ले जाएंगे। मायूसी ने जैसे घर में जड़ें जमा ली है।

अब तो घर में आने वाले मेहमानों से भी जी घबराने लगा है। जाने वे ऐसे देखते हैं या नहीं, लेकिन नजमा को हमेशा ऐसा लगता रहता है जैसे हरेक की आँखें उसके घर की दीवारों से लेकर उसके, असलम और अब्बू के चेहरे तक बस प्रश्नचिन्ह लगाकर ही देखती है। पूछे-न-पूछे बस लगता यही रहता है कि बस अभी पूछेंगे, अभी पूछेंगे और इस गफलत में होता ये है कि वो क्या कहते हैं उससे ध्यान हट जाता है और जवाब क्या दिया जाएगा नजमा इस पर अटक जाती है। और फिर शुरू हो जाती है गफलत...।

नजमा यह सोचकर परेशान होने लगी है कि ईद पर आने वाले मेहमानों का सामना कैसे करेगी?

ऐसे समय में उसे असलम की किफायत का आसरा होता है। वो ये जानते हैं कि हर सवाल पर जवाब देने की बजाए चुप रहना भी एक रास्ता हुआ करता है। बस थोड़े से ही जब्त की तो बात है....!

ईद वाले दिन असलम ने खुद ही अपने को कसा...। जब नए सिरे से ही इब्तेदा करनी है तो ईद से ज्यादा मुनासिब दिन और कौन-सा होगा!

बस यही सोचकर असलम ने खुद को ठेला था। आदतों के लिए भी रियाज करना होता है। रियाज में पक्के हो जाएं तो आदत फिर स्वभाव जैसी लगने लगती है। बस यही समझ असलम ने गांठ बांधी थी। नमाज से लौटते निजाम को मेले में झूले झुलाने ले गया और सबा के लिए खिलौने खरीदे। कुछ मिठाई भी ख़रीदी। घर पहुंचा तो अम्मी और बच्चों के बीच मिठाई का पैकेट पकड़ाते हुए असलम ने नज्जो को देखकर आँख मारी तो जैसे उसे ईद का तोहफा ही मिल गया। कितने महीने हो चले थे, इस तरह की चुहल के....! उसने दुआ में सिर झुकाया था। अल्लाह को याद किया. ... शुकराना किया। अब्बू से दुआएं मिली और अम्मीं से चुप्पी.....। दोनों बच्चों को 100-100 रुपये ईदी दी। जब असलम से ईदी मांगी तो जवाब मिला - 'रात को... अपन तो रात को ही देते हैं।'

नजमा शर्मा गईं थी।

ईद पर पास-पड़ोसी, दूर-पास से रिश्तेदार, साथ काम करने वालों का आना जाना चलता रहा। ज्यादातर वो ही लोग थे, जिनसे हर दिन का राब्ता था... यूं भी दूर रहने वाले रिश्तेदार और जानकार ईद पर नहीं आ पाते हैं। तो दोपहर होते-होते यह तय हो चला था कि अब शायद ही कोई मेहमान

आएं। बच्चे खेलने चले गए थे, अब्बू खाना खाकर पीपल वाले चबूतरे पर चले गए थे। ईद की चहल-पहल वहां भी होनी है। जो हो, लेकिन अब्बू ने फिर से वक्त से समझौता कर लिया था।

बस अम्मीं ही नहीं कर पा रही हैं। वे सहन में बैठी हरेक को देखती हैं, लेकिन कभी कुछ कहती नहीं हैं।

कभी-कभी नज्जो सोचती कि हम औरतें तो समझौते में माहिर होती हैं, फिर अम्मीं अब तक क्यों नहीं समझ पाईं कि जिस रास्ते पर आफाक चल रहा था, उसका हम सबसे दूर रहना ही उसके और हम सबके लिए ठीक था।

दोपहर जरा कमर सीधी करने लेटी ही थी कि सबा ने आकर बताया कि 'फरीदा दादी जान आईं हैं.... शहजाद चचा के साथ...।'

दिन भर का सारा खुमार एक ही बार में उतर गया। फरीदा चची.... अल्लाह...। हर बार तो अम्मी ढाल बनी खड़ी होती थी.... आज क्या होगा?

बगल में नींद भर सो रहे असलम को उसने पूरी ताकत से हिलाकर जगाया। 'जागो, फरीदा चची आईं हैं। एक काम करते हैं, हम मेहमानखाने में ईद मिल लेते हैं, फिर नाश्ता चाय के लिए बावर्चीखाने चली जाऊंगी, तुम संभाल लेना। आफाक के बाद चची से सवालों का जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। तुम जानते हो, इतना जब्त नहीं है मेरे पास....।' - नजमा ने दुपट्टा सिर पर फैलाते हुए कहा।

असलम ने मुहब्बत से ताकते हुए उसकी हथेली को अपनी हथेली में लिया था। थपकाया, जैसे सांत्वना हो.... मैं हूं तो...।

आदाब और ईद की मुबारकबाद देकर नजमा बावर्चीखाने में आ गई थी। असलम अम्मी को भी मेहमानखाने में ले गए थे, ताकि फरीदा चची उनके साथ मुब्तिला रहें। असलम तब देखते रह गए, जब चची जान सबको मेहमानखाने में छोड़कर नजमा की मदद करने का कहकर बावर्चीखाने की तरफ चली गई। अब असलम उनका हाथ पकड़कर रोकने से तो रहे।

अपने काम में मसरूफ नजमा एकाएक यूँ चची के आने से चौंक गई। दम साधे चची के फालतू सवालों के जवाब के लिए खुद को तैयार करने लगी।

'ऐ दुल्हन.... ये आपा जान कुछ करती भी हैं या बस ऐसे ही मातम मनाती रहती हैं?' - चची ने सीधे ही नजमा से सवाल कर डाला।

नजमा ने अपनी नजरें नीची ही रखी... 'चची, अम्मीं आफाक के गम से बाहर नहीं आ पाई हैं।'

'अय हय.... कितना मातम मनाएगीं। पहले तो नकेल कसी नहीं, अब गम से क्या फायदा?'

नजमा अजीब उलझन में थी, फिर भी उसने अपना जब्त नहीं खोया था। यदि तभी असलम नहीं आए होते तो नजमा या तो चची के सामने रो रही होती या फिर उन पर चिल्ला रही होती। असलम ने आकर मामला संभाल लिया। ट्रे लेकर नजमा असलम के पीछे-पीछे हो ली। खुद को अकेला पाकर चची भी उनके पीछे चल दी।

पूरे वक्त नजमा अल्लाह-अल्लाह करती रहीं। जब शहजाद और चची चले गए, तब नजमा के जी में जी आया। वह जाकर अपने कमरे में निढ़ाल हो गई। देर तक फूट-फूट कर रोती रही।

किस अजाब में फंसी है कि वहां से निकलने का कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता है।

फिर से नजमा को अम्मीं पर ही गुस्सा आया। चची के सामने रो पड़ती या अम्मीं की शिकायत कर बैठती तो क्या वो कभी खुद को माफ कर पातीं!

आखिर जो हो, अम्मीं ने अपना बेटा खोया है। नजमा का दिल उमड़ा... उसे अपनी औलादें याद आईं, छाती में हौल उठा.... दिल किया दहाड़ें मारकर रो लें लेकिन आज ईद है... ऐसे खुशी के मौके पर मनहूसियत नहीं फैलाते नजमा। उसने दुपट्टा सिर पर रखा और बेसिन में जाकर मुंह-हाथ धोए। आँखों में अच्छे से पानी मारा और दोनों बच्चों को बुलाने के लिए बाहर निकल गई।

वक्त अपनी रफ्तार से गुजर रहा था। जख्म धीरे-धीरे भर रहे थे। सबसे पहले नजमा ही उससे उबरी थी, जाहिर है.... उसका देवर था। वह जानती है कि जो कुदरती है वो कुदरती ही होगा। बस अम्मीं और अब्बू के लिए हमदर्दी बची रहे, यही उसका फर्ज होगा। अम्मीं जो पहले दिन थीं, आज भी वो वैसी ही हैं। अब्बू ज्यादा नर्म हो गए हैं। असलम भी लौट रहे हैं। कोई जख्म हो... कितना ही गहरा क्यों न हो, भर ही जाता है।

कभी-न-कभी अम्मी भी संभल ही जाएंगी। नजमा ने अपनी कोशिशें छोड़ी नहीं है। मौके-बे-मौके वह अम्मीं को कभी कुछ तीखा, चुभता तो कभी मुहब्बत से आफाक तक ले ही जाती है... मगर अम्मीं अब भी समझने से इनकार कर रही हैं। जाने वे समझती ही नहीं है या समझना चाहती नहीं है। कोई कुछ कहे तो दूसरा समझें।

कई बार दिन का उन्वान ही उसका बयान होता है। सुबह नजमा की जब नींद खुली तो घड़ी देखकर उछल पड़ी.... 'साढ़े आठ....। अल्लाह घंटा भर देर...।' उसने दुपट्टा कंधे पर डालते हुए दूसरे हाथ से असलम को झिंझोड़ा - 'मैं चाय बनाने जा रही हूं, तुम जरा बच्चों को उठा दो।'

असलम गहरी नींद में थे, खीझकर बोले - 'सुबह-सुबह चाय नसीब नहीं है, फरमान हाजिर।'

नजमा उखड़ गई- 'नींद देर से खुली, चाय बनाकर बच्चों को उठाऊंगी तो उनका ऑटो चला जाएगा। कभी किसी दिन मदद करने के लिए कह दो तो चार बातें सुनाएंगे। बच्चे, घर क्या मेरा ही है... आपका कुछ नहीं?'

कहकर तीर की तरह वह कमरे से निकल गई। बावर्चीखाने में भुनभुनाते हुए चाय बना रही थी। सहन में अम्मीं को तस्बीह पढ़ते देखा तो नजमा का दिल किया कि उनके हाथ से छीनकर दूर पटक दें। एक काम की मदद नहीं है उसे.... न अम्मीं से, न असलम से...। सुबह की चाय तक चैन से नसीब नहीं है। कहे किससे? सुबह से रात हो जाती है खटते-खटते.... दो बार वह बावर्चीखाने से सहन तक आई थी... तीसरी बार जब्त नहीं कर पाई और तस्बीह की थैली अम्मी के हाथ से खींचकर दीवार पर दे मारी... चीखी थी जोर से 'क्या समझकर लाए हो मुझे... बिना पैसे की नौकरानी... महीनों हो गए हैं, यूं बुत बनकर बैठे हुए। आपके बुत बने रहने से साहेबजादे आ नहीं जाएंगे....'

शोर सुनकर बच्चे भी अब्बू के कमरे से बाहर आए और असलम भी। अम्मीं अवाक नजमा का मुँह देख रही थी... तब भी चुप थीं। गुस्से में असलम नजमा की तरफ बढ़ा ही था कि कमरे के दरवाजे पर खड़ी सबा पर नजर पड़ी। सबा सहमी-सी ये सब देखकर रही थी, उसकी आँखों में आँसू थे। असलम नजमा को वैसे ही छोड़कर बच्चों का हाथ पकड़कर अंदर ले गए। नजमा जमीन

पर ही धप्प से बैठ गई और मातमी अंदाज में छाती पीटने लगी। असलम ने ही बच्चों को तैयार किया। ऑटो आकर जा चुका था। नजमा तब तक सहन में ही बैठी थी। जब असलम अपनी बाइक निकालने लगा तो सबा ने मासूमियत से कहा - 'अब्बू, टिफिन नहीं है।'

असलम ने रास्ते में से दोनों के लिए कचोरियां बंधवाई और स्कूल छोड़कर खुद कारखाने चला गया। अब्बू अभी तक पहुंचे नहीं हैं। अल्लाह बस अब्बू के आने तक नजमा ठीक हो जाए। आज क्या हो गया उसे....।

बहुत देर तक ऐसे ही बैठी नजमा को तब होश आया जब दरवाजे की सांकल बजी....। दरवाजा चाहे खुला हो या बंद... अब्बू बिना सांकल खड़खड़ाए भीतर नहीं आते हैं। नजमा फुर्ती से उठी और अपने कमरे में चली गई।

दिल बैठा हुआ था, उदासी थी। अम्मीं का यूं बिना कुछ जवाब दिए बैठे रहने से भी नजमा की दहशत बढ़ने लगी थी। अपनी शादीशुदा जिंदगी के 11 सालों में उसने कभी भी घर में किसी से भी इस तरह का बर्ताव नहीं किया है। आज उसने अपनी सारी हदें लांघ दी थी। बचपन में स्कूल की किताब में जाना था कि धरती में बहुत कुछ जमा होता रहता है सालों तक फिर वो लावा बनकर फूटता है... ज्वालामुखी।

ज्वालामुखी फूटकर शांत हो जाता है... नजमा भी हो गई। तभी उसे याद आया कि गुस्से में असलम चले गए, नाश्ता भी नहीं किया है। उसने असलम के मोबाइल पर फोन लगाया तो रिंग कमरे में ही बजती सुनी। असलम मोबाइल घर पर ही छोड़ गए... अल्लाह जाने छोड़ा या फिर भूल गए। नजमा को अब शर्मिंदगी का अहसास होने लगा था। अब्बू गुसलखाने में थे तब वह उनका नाश्ता कमरे में रख आई। अम्मीं अब भी सहन में ही बैठी हैं, उन्हें भी वहीं दे दिया। अम्मीं और अब्बू का सामना करने का साहस नहीं जुटा पा रही थी, इसलिए अपने ही कमरे में रही। सोचा अब्बू के कारखाने जाने के बाद ही वह बावर्चीखाने में जाएगी।

दिल रोने-रोने का हो आया.... खूब मन भर कर रोई। रोना भी क्या कमाल है। आँसू जहन में फिटकरी का काम करते हैं, जैसे फिटकरी पानी की सफाई करती है, वैसे ही आँसू जहन की सफाई कर जाते हैं। अब्बू कारखाने जा चुके थे। नजमा ने बावर्चीखाने का रुख किया। अल्लाह जाने असलम ने नाश्ता किया या नहीं किया। कुछ आज असलम की पसंद का ही बनाया जाए। अब्बू नाश्ता करके जा चुके हैं, अम्मीं अब भी सहन में तस्बीह ही पढ़ रही है। नजमा शर्मिंदा-शर्मिंदा सी घर में घूम रही हैं। जिंदगी में कई मौके ऐसे आते हैं जब कोई और नहीं हम खुद ही अपने सबसे बड़े दुश्मन हो जाते हैं। अम्मीं सारे वाकये से बिलकुल अनजान बैठी हैं, अब्बू तो जानते भी नहीं हैं, फिर भी नज्जो के लिए दिन भारी हो उठा है।

अल्लाह जाने असलम का सामना कैसे करेगी!

खाने के वक्त तो आएंगे ही.... खाना पक चुका था। वो इंतजार तो बच्चों का कर रही थी, कि दरवाजे पर ऑटो आकर रूका। सोचा, इस वक्त ऑटो से कौन आया होगा?

किसी मेहमान के आने की कोई इत्तेला तो थी नहीं। दौड़कर दरवाजे पर गई तो अब्बू निढाल-से ऑटो में बैठे थे और असलम पैसे दे रहे थे। नजमा ने अब्बू को देखा, असलम पैसा देकर पलटे तो उनकी नजर से नजमा सहम गई। असलम ने अब्बू को सहारा दिया तो वे ऑटो से बाहर आए।

बिना कुछ कहे असलम अब्बू को मेहमान खाने में ले गए।

अम्मीं अब भी सहन में ही बैठी थीं।

नजमा पीछे-पीछे मेहमानखाने में गईं। टीवी की स्क्रीन पर एकाएक आफाक की फोटो चमकी। नजमा चौंकी थीं, असलम ने नजमा की तरफ देखा था, आँखें भरी थी, चेहरे पर दहशत... खबरें बता रहीं थीं कि आफाक किसी आतंकवादी घटना में मुब्तिला था और वह अपने साथी के साथ जिस घर में है उसे पुलिस ने घेर लिया है।

अम्मीं अब भी सहन में ही हैं।

असल में किसी को अब अम्मीं के लिए चिंता नहीं होती हैं, क्योंकि वे पत्थऱ हो चली हैं। बेवक्त आए खाविंद और बेटे को देखकर भी वे वैसी ही सहन में बैठे तस्बीह पढ़ रही हैं।

नजमा की नजर घड़ी पर चली गई थी, बच्चों के स्कूल से आने का वक्त हो चला है। इस माहौल में बच्चों को यहां नहीं होना चाहिए। उसने फातिमा को फोन लगाया....

'फातिमा, बच्चों को अपने ही घर उतार लेना... अल्लाह आज की रात उन्हें अपने ही पास रख लेना। खबर बहुत बुरी है। टीवी देखने से बच्चों को दूर रखना.... मेरी छोटी-सी गुजारिश है।' - कहते-कहते गला भर आया था। जाने फातिमा क्या समझीं और क्या नहीं समझीं।

थोड़ी देर बाद ही घर का फोन घनघनाने लगा। अब्बू ने असलम को इशारे से फोन उठाने के लिए कहा। शायद सभी जानते थे कि फोन जरूर पुलिस थाने से आया है।

'जी... जी... जी....'- असलम बस यही कह रहे थे।

'ठीक है...' और असलम ने फोन रख दिया।

अब्बू की सवालिया निगाह से बचते हुए असलम ने बताया कि 'पुलिस आफाक की तस्दीक कर रही है।' नीचे पट्टी पर नजर पड़ी थी नजमा की... दोनों आतंकी मारे गए...

शायद अब्बू ने भी देखा और असलम ने भी... दोनों फातेहा पढ़ने लगे। नजमा सुन्न हो गई।

अम्मीं अब भी सहन में ही बैठी हैं।

थोड़ी देर बाद दरवाजा बजा था, अपनी कुर्सी से उठती नजमा को असलम ने बरजा और खुद दरवाजा खोलने गया। सामने इंस्पेक्टर और तीन कांस्टेबल खड़े थे। उसके पीछे कैमरा-माइक लिए कुछ और लोग...। असलम अब्बू को लेकर दरवाजे के बाहर चले गए।

नजमा तेजी से सीढ़ियां चढ़कर छत पर चली गई। बाहर देखा तो नजारा ही अलग था। आस-पास के लोग भी इकट्ठा हो गए। अब्बू कह रहे थे कि 'जबसे आफाक घर छोड़कर गया है, तबसे हमारा उससे कोई संपर्क नहीं है। हमने उससे अपना नाता ही तोड़ लिया है।'

किसी ने अपना माइक आगे किया- 'आपको कब पता चला कि आपका बेटा आतंकवादी बन गया है?'

अब्बू चुप हो गए। शायद उनका गला भर गया था। असलम ने माइक हाथ में लिया- 'ये हमें पता नहीं है, कि उसकी सोहबत किन लोगों के साथ थी। हमने उसके कमरे में कुछ आपत्तिजनक चीजें देखी थीं।'

'तो आपको नहीं लगा कि पुलिस को कुछ बताना चाहिए!'- जिसका माइक था उसने आक्रामक होते हुए पूछा।

असलम ने जवाब दिया था- 'हम कुछ जान-समझ पाते तब तक वो घर छोड़कर जा चुका था।'

'तब भी आपको पुलिस को बताना चाहिए था। कम-से-कम गुमशुदगी की रिपोर्ट ही दर्ज करवाते।' किसी ने भीड़ में से नसीहत दी थी।

मेहमानखाने में टीवी अब भी चल रहा था, असलम अम्मीं का हाथ पकड़कर मेहमानखाने में ले आए थे। 'अम्मीं आफाक नहीं रहा....'- असलम ने फुसफुसाकर कहा था। अम्मीं के हाथ से तस्बीह की माला छूट गई थी। उनकी आँखों में वहशत उभरी थी। 'अल्लाह........' वो चीखीं थीं। तभी टीवी पर तसवीर फ्लैश हुई, अब्बू कह रहे हैं -'मेरा और मेरे खानदान का आफाक से कोई संबंध नहीं है। मेरे सहन की मिट्टी का वो हकदार नहीं है। मुझे उसकी लाश नहीं चाहिए.....'

अम्मीं ने अब्बू के कुर्ते का गला पकड़ा और बेतहाशा चीखने लगीं... 'मेरे बच्चे को लेकर आओ, वो मेरा कोख जना था। कौन हो तुम जिसने उसे उसके विरसे से अलग कर दिया... उसकी मिट्टी इज्जत की हकदार है। उसे लेकर आओ... उसे लेकर आओ, खुदारा उसे लेकर आओ.... ।'- अम्मी का गला फट रहा था, वे बचा हुआ होश भी खो रही थीं। असलम ने कातर निगाहों से अब्बू को देखा था... नजमा सूने दिल से सब देख-सुन रही थी।

अम्मीं मेहमानखाने के फर्श पर रो रही थीं।

अब्बू असलम से कह रहे थे- 'करने के लिए कुछ और बचा नहीं था बेटा... तुम लोगों के सुकून के लिए इससे ज्यादा मैं कुछ कर नहीं पाया, मुझे माफ करना...'

अम्मीं ने सिर उठाया- 'अल्लाह... मुझे माफ करना' - और जोर से अपना सिर जमीन पर पटक दिया। घर में भी खून बहने लगा था....

●

बाजार

अमिताभ शंकर राय चौधरी

यहीं पर तो था शान-ए-गंगा स्वीट्स्। लेकिन दिख क्यों नहीं रहा है? बायीं ओर की सड़क कमानी की तरह मुड़ कर चौराहे तक चली गयी है। वहीं पर था उसी जमाने का पुष्पा टाकीज। मदर इंडिया के शो के सौ दिन पूरे होने पर नर्गिस वहां आयी थीं। मगर अब? भाई कह रहा था पुष्पा टॉकीज के हॉल को लेकर दो बिल्डरों में मुकदमेबाजी हो रही है। एक रात सड़क पर गोली भी चल चुकी है। सिनेमा हॉल के दो चार कर्मचारियों ने सामने पान या चाय की दुकान लगा ली है और टूटे हुए हॉल के बचे खुचे स्टेज पर कुत्तों की आरामगाह है।

बाबूजी जब मकान बनवा रहे थे तो कभी कभी छुट्टी के दिन शाम को हम तीनों भाई उनके साथ आने की जिद करते। अगर मां को भी संयुक्त परिवार से दो तीन घंटे की 'पारिवारिक लीव' मंजूर हो जाती, तो वो भी हम लोगों के साथ चलतीं। मकान की प्रगति का मुआयना करतीं और वापसी में बाबूजी से कहतीं, 'बच्चों को जरा डोसा खिला दीजिए न।'

खिलाने पिलाने में बाबूजी कभी ना नहीं करते। शान-ए-गंगा की दुकान थी तो हमलोगों के नये मकान से कुछ दूर, दूसरी सड़क पर मगर डोसा खाने हम वहीं पहुंचते। साथ में कॉफी। बाबूजी प्याली में फूंक मारते और मैं चुस्की लगाता।

शान ए गंगा का साइनबोर्ड आज भी मुझे याद है। इतना खूबसूरत था वो। पता नहीं उसके मालिक ने कहां से उसे बनवाया था। जीते जागते काशी के घाट ! अद्‌भुत पेंटिंग थी वह। हां, याद आया मालिक का नाम था मेवालाल। जाते ही बाबूजी पूछते,'का हो मेवा, का हालचाल हौ?'

'आव' डॉक्टर साहब, बैठिये यही ठियन। भाभीजी, राम राम।'

जबतक डोसा आता तबतक मेवालाल छोटके के लिए एक बरफी भेजवा देता। मझला भी उसमें से अपना रंगदारी टैक्स वसूल कर लेता। मैं बड़े होने की गरिमा को बनाये रखने में मन ही मन ललचाता रहता या छोटू को चिकोटी ही काट देता।

उन दिनों डोसा हर जगह मिलता भी न था। शहर में नया नया बनना शुरु हुआ था। दाम क्या रहा होगा? मसाला डोसा एक रुपया या पांच चवन्नी और स्पेशल शायद ढाई, या बमुश्किल तीन। दूसरे शहर से कोई आ जाये तो उसे डोसा खिलाना ही आवभगत होती।

आज तो दुनिया को देखते हुए मेरा चेहरा ही नहीं बाल भी सफेद पड़ गये हैं। तीन भाइयों में कोई यहां रहता नहीं। अब बाबूजी की विरासत को बेच बाच कर हमलोग अपने अपने हिस्से

को लेकर वापस चले जायेंगे। जहां कभी मां की आवाज सुनायी देती थी, 'आज चने की दाल की कचौड़ी बनी है। तीनों भाई जल्दी से आकर खा लो।', वहां उठ खड़ा होगा इनसानी कबूतरखाना।

बस गनीमत है कि तीनों भाइयों में कोई अदालती कुरुक्षेत्र नहीं हुआ। बस चुपचाप हिंदुस्तान पाकिस्तान हो जा रहा है।

दोपहर बाद मैं पैदल निकल पड़ा था अपनी अजोध्या का दीदार करने। अचानक शान-ए-गंगा की याद आ गयी। सोचा पैदल वहीं चलता हूं। डोसा खाकर, कॉफी की चुस्की लगाकर शाम तक घर वापस आ जाऊंगा। गुजर गया एक जमाना, हाय न हुआ वहां जाना!

मगर शान-ए-गंगा है कहां? जैसे कोई जिन्न उसे उठा ले गया हो। पुष्पा टॉकीज के इस तरफ यानी सड़क की दाहिनी ओर खड़ा है एक विशाल मॉल। इधर से तो उस तरफ का आसमान भी नहीं दिख रहा है। आज कोई छुट्टी का दिन है? मॉल के बाहर कारों का रेला। सड़क के डिवाइडर पर बाइकों की कतार। काफी गाड़ियां अंदर जा रही हैं। शायद अंडरग्राउंड पार्किंग भी है। शीशे की बड़ी बड़ी दीवारों के सामने बच्चों के लिए झूले, स्लिप, घोड़े हाथी वाली चर्खी वगैरह लगे हैं। वहां बच्चे और उनके पिता माताओं का हुजूम।

मॉल के इधर एक ओपन एअर रेस्तरां में बैठकर लोग बाग खा पी रहे हैं। तभी एक वेटर किसी गेस्ट को सर्व करने के लिए दो तीन प्लेटों पर पिज्जा और बर्गर लेकर मार्बेल की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। मुझे फिर से याद आया- शान-ए-गंगा कहां है ?

दो कौड़ी की टूटी फूटी सड़क पर बेतरतीब ठंग से बेशकीमती गाड़ियां खड़ी हैं। मैंने मॉल के दाहिने एक पानवाले से पूछा, 'भैया, किसी जमाने में यहां एक मिठाई और डोसे की दुकान थी - शान-ए-गंगा, वो कहां है?'

'वो?' थोड़ी देर वह चुप रहा, फिर पूछ बैठा,'वहां जाकर क्या कीजिएगा?'

'बस, एकबार देख भर लेना है। बचपन में अपने बाबूजी के साथ आता था। अब तो सब कुछ इतना बदल गया है।'

'अब तो सारी पुरानी चीजें टूट गयी हैं, बिखर गई या बदल गई हैं। वो तो, बाबूजी, ठीक इस मॉल के पीछे है। मॉल की परछाई ने उसे ढक दिया है। अब इस मॉल के रहते वहां कौन जायेगा?'

मैं मुस्कुराकर मॉल के पीछे वाले रास्ते से आगे बढ़ गया। एक ओर मैनहोल खुला पड़ा है। जहां मॉल के पीछे पार्किंग से गाड़ियां निकलती हैं, वहीं ढलान के पास काला पानी इकट्ठा हो गया है, और कई सूअर वहां 'दिव्य असनान' कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के विकास का यथार्थ। बैलगाड़ी के साथ अत्याधुनिक कारें, सुपर मॉल की बगल में सूअरों का क्षीर सागर !

वो साइन बोर्ड तो गायब था। मगर चलो, शान-ए-गंगा का पता ठिकाना मिल गया। एक दफ्ती पर नीली स्याही से दुकान का नाम लिखा था। हां, वही दुकान है। तीन सीढ़ियां चढ़कर उधर दाहिने वाली मेज पर ही हम लोग बैठा करते थे। मैं सड़क की ओर मुंह करके बैठता था। मां के साथ। आज सीढ़ी के पास एक पुराना मैट पड़ा हुआ है। उस पर एक कुत्ता सो रहा है। मुझे देखकर सर उठाकर उसने ऐसे घूरा, मानो पूछ रहा हो,' यहां क्या लेने आया है, बच्चू?'

बाएं काउंटर के पीछे एक अधेड़ उम्र का आदमी बैठा था। मेवालाल तो यह हो नहीं सकता। वो तो मेरे पिताजी की उमर का ही रहा होगा। या दो एक साल छोटा। अरे वहीं तो पीछे दीवार पर

मेवालाल की फोटो है। फोटो पर प्लास्टिक फूलों की एक माला लटक रही है। माला और दीवार के बीच मकड़ी के जालों की झालर। मेवालाल की मूंछें नहीं थीं, मगर इस आदमी की मूंछें हैं जबरदस्त। वह मुझे देख भी रहा था, और नहीं भी। मतलब- उसकी आँखें तो मेरी काया पर थीं, मगर उसकी निगाहें मानो कहीं दूर दिगंत में खो गयी थी।

काउंटर की बगल में शोकेस बिलकुल खाली है। एक थाली में खोए के कुछ पेड़े हैं, बस, जो पूजा वगैरह में चढ़ाने के लिए लोग खरीद ले जाते हैं। मुझे याद आया एकदिन ढेर सारी मिठाइयां सजी रहती थीं। एक तरफ तीन चार किसिम के बंगाली संदेश, सादा रसगुल्ला तो पाइन ऐपल रसगुल्ला, उधर चमचम, खीर मोहन, मलाईचाप आदि। कभी कभी शाम को ताजा राजभोग, बसन्तभोग होता तो हमारी तो लॉटरी लग जाती। सामने बहुत बड़ी कढ़ाई पर दोपहर से ही समोसे तले जाते। आठ दस वेटर दुकान में हर समय इस टेबुल से उस टेबुल तक दौड़ते रहते थे। आज दो के अलावा सारी मेजें एक के ऊपर एक करके किनारे रख दी गई हैं। फर्श पर बिछा है धूल का मोटा गलीचा। उधर भीतर किचन में एक बड़े तवे पर एक तमिल आदमी डोसा बनाता होता, मगर आज? किचन के सामने एक गंदा फटा पर्दा लटक रहा है। कहीं कोई न था। एक भी वेटर नहीं। किसी गांहक की तो बात ही छोड़िये।

फिर भी न जाने क्यों उस आदमी के सामने मेरे मुंह से निकल गया,'एक कप कॉफी मिलेगी? क्या आजकल आप लोग डोसा वगैरह नहीं बनाते हैं ?'

उस आदमी की मूंछें फड़क उठीं। मूंछों की तरह शानदार थी उसकी बुलंद आवाज, 'ए रामदरश, साहब को वहां बैठाओ। एक मसाला डोसा और कॉफी।'

मैं चौंक उठा। आगे जो कुछ हुआ शब्दकोश में उसी के लिए आविर्भाव शब्द है। उन टेबुलों के पीछे एक बूढ़ा आदमी- शायद मालिक की ही उमर का होगा- बैठा था, वह सामने आ गया। एक कुर्सी खींच कर कंधे के तौलिया से उसे साफ किया और मुझे हाथ के इशारे से बैठने को कहा।

बैठते हुए मैंने फिर से पूछा, 'डोसा और कॉफी मिल जायेंगे न?'

तुरन्त वह आदमी घूम कर ऐसे खड़ा हो गया कि उसकी पीठ काउंटर की ओर हो गयी। उसने सर झुकाकर धीरे से कहा, 'क्या कह रहे हैं, साब? आपको दुकान का हाल दिख नहीं रहा है? डोसा कहां से बनेगा? कौन है यहां?'

'तो?' मैं चौंका, 'एक जमाने में शान-ए-गंगा की कितनी शानो शौकत थी। आठ-दस वेटर काम किया करते थे, क्यों?' मैं बचपन की स्मृतियां टटोलकर कुछ बताने का प्रयास करने लगा।

'हां, उधर मिठाई के कारीगर अलग हुआ करते थे। उनके वेटर अलग।' रामदरश ने नजरें झुका लीं।

'तो यह सब कैसे हो गया?'

उसने हँस कर अपने माथे को दिखाया, 'सब तकदीर का खेल है, हुजूर। सागर पार की कंपनी ने आकर उतने बड़े मॉल को खड़ा कर दिया। उसके आगे तो हम सब ढिगना हो गए।'

मैं सोच रहा था शान-ए-गंगा में कुछ नहीं तो कर्मचारी और कारीगर मिलाकर बीस आदमी काम करते रहे होंगे। यानी बीस पच्चीस परिवार। उसमें कितने आदमी, बच्चे और औरतें! सबका आज क्या हाल होगा?

तभी उसने कहा, 'जरा बैठिये, सा'ब। कॉफी तो नहीं है, मैं आपको बढ़िया चाय पिलाता हूं।'

'सभी लोग इन्हें छोड़ कर चले गए, आप नहीं गये?'

'सब छोड़ कर क्या गए? मजबूरी में चले गये। हर एक को तो अपने पेट की आग में घी डालना था। बस, अकेले मैं कहीं जा न सका। बचपन से यहीं था। बाबूजी ने भी हमारी काफी मदद की। बहन की शादी उन्हीं की बदौलत पूरी हो सकी। फिर बच्चे बाबू से भी तो मन गंगा जमुना हो गया था। इन्हें छोड़ कर कहीं और जाने को जी नहीं चाहा। खैर यह सब छोड़िए, आप बाबूजी के जमाने के गांहक हैं, बढ़िया चाय पिलाता हूं।'

बैठे बैठे मैं यादों में खो गया। मेरी नजर दीवारों पर घूम रही थी। अरे! इनके पिताजी ने साइन बोर्ड पर गंगा के घाटों की उतनी अच्छी पेंटिंग करवायी थी, और यह जनाब तो रेस्टोरेंट की दीवाल पर सूर, निराला और रवीन्द्रनाथ की फोटो लटका कर रक्खे हैं। अरे उधर वो फोटो किसकी है? एक हाथ में सिगरेट थामकर? मैं उठकर जरा नजदीक गया- फोटो के नीचे लिखा नाम अस्पष्ट हो चुका था- गजानन माधव। ओ, तो ये मुक्तिबोध हैं!

और उधर दूसरी दीवाल पर से राजा रवि वर्मा और वैन गॉग की पेंटिंग चुपचाप हमें देख रही हैं। कहने की जरूरत नहीं कि हर एक पर धूल और मकड़ी के जाल चस्पां है।

मुझे याद आया जिस वैन गॉग की पेंटिंग सूरजमुखी के फूल करोड़ों डालर में बिके हैं, वह दाने दाने को तरसता रहा, उन्माद की हालत में उसने अपना कान तक काट लिया था। और मुक्तिबोध? वह अभागा कवि जीते जी अपना एक संकलन भी प्रकाशित होते देख न सका।

खैर, चाय सचमुच बढ़िया बनी थी। मैं ने पूछा, 'स्पेशल है?'

रामदरश ने मुसकुरा दिया, बस।

मैं ने उनसे पूछा, 'इनका कोई बेटा नहीं है, जो इस दुकान को देखता संभालता?'

'है भाई साहब, लेकिन वो क्या करता? डूबती कश्ती का खेवैया कौन बने? कुछ दिन वह बैठा तो था। मगर दिन ब दिन ग्राहक कम होते गए। हार कर वह सूरत भाग गया। वहां किसी जरी के कारखाने में काम करता है।'

मेरे दिमाग में गणित का ताना बाना चलने लगा। एक मॉल बनने से कितनों को रोजगार मिलता है, और कितनों को अपने बसे बसाए रोजगार से हाथ धोना पड़ता है?

मैं ने चाय पी ली थी। पूछा, 'कितना हुआ?'

'दस।'उसने मानो झिझकते हुए कहा।

'अच्छा, पाव भर पेड़े भी दे दीजिए।' मैं काउंटर पर खड़ा था। सौ रुपये का नोट बढ़ाया तो बच्चे बाबू ने तीस वापस किये। मैं ने दस का एक नोट रामदरश की तरफ बढ़ा दिया, वो सौंफ का प्लेट लेकर बगल में खड़ा था।

मैं सोच रहा था। बाजार के कुरुक्षेत्र में डोसे, रसमलाई, राजभोग सब हार गये। पिज्जा-बर्गर का साम्राज्य ही कायम हो रहा है। हमारी जिंदगी एक विशाल अजदहा का निवाला बनती जा रही है।

'तो चलते हैं, भाई साहब।'

'राम राम बाबू।' रामदरश मेरे साथ साथ बाहर सीढ़ी तक आ गया।

बच्चा बाबू उसी तरह चुपचाप बैठे हुए थे। किसी असीम शून्य की ओर ताकते हुए। बस शुरू में रामदरश को बुलाने के अलावा उन्होंने अब तक एक शब्द भी कहा नहीं था। अचानक उनकी आवाज सुनाई दी, 'रामदरश, दो नंबर टेबुल पर पानी लगा दो। हां साहब, क्या लीजिएगा? यहां का मसाला डोसा बहुत बढ़िया है। रामदरश, आज राजभोग भी बना है न?'

मैंने चौंक कर पीछे मुड़ कर देखा। दूसरी मेज बिलकुल खाली पड़ी थी। कुर्सियां भी टेबुल से सट कर मानो जिंदगी की करबला के लिए नौहाख्वानी कर रही थीं। कहीं कोई न था।

मैंने रामदरश की ओर देखा। वह दुकान पर खड़ा था। मैं सीढ़ी के नीचे। उसने धीरे से कहा, 'बस, बच्चा बाबू इसी तरह कभी-कभी बोलते हैं। और कुछ नहीं। मगर आदमी बहुत भले हैं, बाबू। बहुत नेकदिल इनसान हैं वे।'

●

प्रकाशन विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 120 रु. (व्यक्तिगत)
'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 180 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगें। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें। किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943

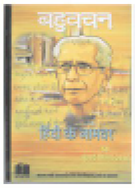

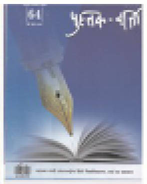

Bank Details for Online Payment :
Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: **Bank of India, Wardha** Account No.: **97211021000005**
IFSC Code No.: **BKID0009721** MICR Code No.: **442013003**

बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक .... से .... के लिए
रुपये .... का बैंक ड्राफ्ट संख्या .... दिनांक ....
संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम : ....

पता : ....

दूरभाष : .... ई-मेल : ....

दिनांक : .... (सदस्य के हस्ताक्षर)

यहां एक कॉफी हाउस हुआ करता था...

बसंत त्रिपाठी

'इस शहर में एक कॉफी हाउस हुआ करता था।'

'तो?'

'अब नहीं है।'

'तो क्या हुआ?'

'क्या तुम्हें यह बड़ी खबर नहीं लगती कि इस शहर में अब कोई कॉफी हाउस नहीं है?'

'इस शहर में तो अब वह कारखाना भी नहीं है जहां की मशीनों को तुम्हारे पिता ने अपने पसीने से सींचा था। तुम्हारा वह पुराना स्कूल भी नहीं रहा। किसान तो इसके सीमांत इलाकों से भी न जाने कब के खदेड़े जा चुके।'

'हां, मैं जानता हूं ये सब।'

'इस शहर के मुख्य चौराहे पर ठेला लगाकर इडली-डोसा बेचने वाला वो अन्ना भी नहीं रहा।'

'ओ...तभी..., एक बार सुबह-सुबह उधर से होकर गुजरा था वो दिखा नहीं।'

'वो मर गया।'

'मर गया...कैसे?'

'कुछ खास नहीं। यानी शहर को आनंद का सागर मानने वालों के लिए कुछ खास नहीं। एक दिन पुलिस वालों ने ठेला न लगाने का उसे अल्टीमेटम दे दिया। कहा, कि ट्रैफिक जाम हो जाता है।'

'फिर...?'

'फिर क्या...लेकिन असली वजह तो वह साउथ इंडियन प्लाजा था जिसे पटेल साहब ने खोला था। उन्हें तो तुम जानते ही होंगे। अनाप-शनाप कमाई करने वालों में उनका नाम अकसर आता है। हर तरह की राजनीतिक पार्टियों को फंडिंग करता हैं।'

'पटेल साहब को कौन नहीं जानता। लेकिन उनका साउथ इंडियन प्लाजा कमाल का है। मैं भी कभी-कभी सपरिवार वहां जाता हूं। वहां का फैमिली पैक दोसा, पेपर मसाला और सांबर वड़ा तो लाजवाब है। वैसे उत्तपम भी बढ़िया बनाता है।'

'बस उन्हीं पटेल साब के कहने पर पुलिस वालों ने अन्ना को परेशान करना शुरू कर दिया। अन्ना का इडली-डोसा पांच और दस रुपये में बिकता था। प्लाजा इसके लिए पचास से सौ तक

ऐंठता था। अन्ना के कारण उसकी सुबह की ग्राहकी मार खा रही थी।'

'तो क्या अन्ना उसी सदमे में मर गया?'

'नहीं, उसे किराए के गुंडों से मरवाया गया। पुलिस कहती है कि उसका संबंध आंध्रा के नक्सलियों से था। और दो नक्सली गुटों की आपसी लड़ाई में उसकी जान गई।'

'गजब... और लोगों ने यकीन भी कर लिया?'

'लोगों का क्या..? जिन बातों से उनका खुद का जीवन खतरे में नहीं पड़ता, ऐसी हर बात पर वे यकीन कर लेते हैं। फिर इससे तो विकास का मसला और उसके सबसे बड़े अवरोध नक्सलियों का मसला जुड़ा हुआ था। नक्सली गुटों में खूनी संघर्ष होता है या नहीं, इसके विस्तार में जाने की जहमत कौन उठाता?'

'ये तो बहुत बुरी बात है लेकिन कॉफी हाउस का उजड़ जाना अलग है। और कहूं तो इससे भी बड़ी घटना है।'

'आज किसी चीज का उजड़ जाना बड़ी घटना नहीं है।'

'वो तो है। फिर भी... क्यों भई, कॉफी हाउस तो तुम भी जाते थे और माशा अल्लाह, उसके तो अजेय योद्धा थे, अप्रतिम नायक!'

'हां, वो तो था ही मैं लेकिन फिर भी उसके उजड़ जाने का दुःख नहीं होता।'

'क्यों?'

'क्योंकि जब अन्ना मारा गया, कॉफी हाउस में उस पर कोई बात नहीं हुई।

'तो...इससे कॉफी हाउस का बंद हो जाना सही तो नहीं हो जाता?'

'एक कॉफी हाउस को लेकर इतना बखेड़ा क्यों? इतनी बेचैनी क्यों? तुम्हारी बेचैनी देखकर तो लग रहा कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की सुरक्षित युद्धभूमि छिन गई है।'

'नहीं बात ये नहीं है। बात दरअसल ये है कि गुजरे 60 सालों में कॉफी हाउस तमाम बहसों-मुबाहिसों, चर्चाओं और चिंतनधारा के केंद्र रहे हैं। तुम खुद इसके गवाह हो। याद करो इमरजेंसी का दौर, फिर उसके बाद का सिक्ख नरसंहार, रामजन्मभूमि आंदोलन, सोवियत संघ का विघटन, मुंबई बम विस्फोट, गुजरात दंगा, आर्थिक उदारीकरण, किसानों की आत्महत्याएं....याद करो, कितनी गर्मागर्म और उत्तेजित बहसें हुआ करती थीं। लोग दिशाएं पाते थे। तुमने भी तो अपनी दृष्टि वहीं से पाई है न?'

'बिलकुल तुम्हारी सब बातें सही हैं। लोग दिशाएं पाते थे। दृष्टि पा गए और अपनी वांछित जगहों पर पहुंच गए या ढह गए लेकिन समाज वैसा का वैसा रहा बल्कि पहले से भी ज्यादा गिरा हुआ। अपने में बंद, पतित, असहिष्णु और आक्रामक।'

'तो इन सबके लिए कॉफी हाउस कैसे जिम्मेदार हो गया भाई? मुझे समझ में नहीं आ रहा कि कॉफी हाउस के बंद होने को लेकर तुम इतने निर्लिप्त कैसे रह सकते हो?'

'क्योंकि कई बार मुझे कॉफी हाउस बौद्धिक स्खलन का घिसटता हुआ चूहा लगता है। एक ऐसी बौद्धिक कारीगरी, जिसके बावजूद समाज मलबे में बदल रहा है। जब उस मलबे के ढेर पर नई आयातित और गैरजरूरी चीजें खड़ी हो रही हों तो, उस कारीगरी का क्या औचित्य रह जाता है? संस्थाओं का ढह जाना हमारे समय की नियति है।'

'इसका मतलब तुम ढहती संस्थाओं की धूल को तार्किक और जरूरी मानते हो?'

'मेरे मानने से क्या होता है? यही हमारे समय का सच है।'

'और तुम इस सच के साथ हो...'

'साथ होने की बात छोड़ो। मेरा मानना है कि जो लोग प्याली में तूफान लाकर वास्तविक तूफान को नजरअंदाज कर रहे थे, तूफान से बचने के कारगर और वास्तविक उपाय ढूंढ़ने की बजाय उसका तर्क विकसित करने में लगे थे, वे तमाम लोग तूफान के आने के बाद अपनी प्याली समेत उड़ गए। ऐसे लोगों और ऐसी जगहों को अब कोई नहीं बचा सकता।'

'तुम्हारी बात में तो नक्सलवादी रुझान दिखाई पड़ रहा है। यानी नक्सलवादी होना जरूरी है। क्यों, यही कहना चाहते हो न तुम?'

'अन्ना को इसलिए मरवाया गया क्योंकि वो चौराहा छोड़ने को तैयार नहीं था। इस देश में जो भी साधारण हैसियत का इनसान प्रशासन के आदेश का पालन नहीं करता और उसके खिलाफ कुछ करना चाहता है, नक्सलवादी मान लिया जाता है लेकिन मैं नक्सलवादी नहीं हूं। मैं ऐसे बुद्धिजीवियों के रुदन का हिस्सा नहीं बनना चाहता जो केवल अपनी चोट पर रोते हैं हालांकि अभिनय तो ऐसे करते हैं जैसे सारी दुनिया की चोट पर रो रहे हों। बात-बात में कबीर को कोड करते हैं 'दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।' तुम इस कॉफी हाउस को लेकर बेचैन हो। मैं तो पहले से ही जानता था कि एक दिन दुनिया के सारे कॉफी हाउस बंद हो जाएंगे क्योंकि अब यहां कोई आना नहीं चाहता। और जो आते हैं उनके पांव या तो कब्र में लटके होते हैं या वे विकास के घोड़े पर जल्द से जल्द सवार होने की मशक्कत में पगलाए होते हैं।'

'तुम्हारी बात में दम है। लेकिन एक बात कहूं, बुरा तो नहीं मानोगे?'

'कहो, बुरा क्यों मानूंगा।'

'जो व्यक्ति पहले की चीजों के ढहने पर बाद की चीजों के भी ढहने को जरूरी और तार्किक मानता हो, वह मृत्यु का उत्सव मनाने वाला अकर्मण्य अनास्थावादी होता है। जो फूल के सूख जाने से तितलियों के मर जाने को औचित्यपूर्ण मानता है वह खुद कब्रिस्तान का मुख्य रक्षक हो जाता है। मृत्यु का भाष्यकार... मैं ऐसा नहीं हूं। इसलिए कॉफी हाउस के बंद हो जाने का मुझे गहरा अफसोस है। जिनके पास अफसोस के लिए भी समय नहीं बचा उनके पास दरअसल किसी भी चीज के लिए समय नहीं बचा। इसलिए तुम्हें हो या न हो, मुझे इस बात का गहरा दुःख है कि इस शहर में अब कोई कॉफी हाउस नहीं है।'

●

सफर लंबा है

बाबूराम त्रिपाठी

वैसे तो हर यात्रा का अपना एक सुख होता है, पर यदि कोई यात्रा किसी सुखद उद्देश्य को लेकर की जाती है, तो उसका आनंद ही कुछ और होता है। तैयारी से लेकर गंतव्य पर पहुंचने तक उत्साह ठंडा नहीं होता, मन खिला-खिला रहता है। लेकिन मेरे साथ कुछ उल्टा ही हुआ। गीता से मिलने की योजना मैंने बड़ी खुशी-खुशी बनायी, पर उसे व्यावहारिक रूप देने में अनेक अड़चनें आयीं। उनसे जब किसी तरह निजात मिली, तो जिस दिन शाम को निकलना था, उसी दिन सुबह एक रिश्तेदार महोदय अपने बेटे का इलाज करवाने के लिए आ धमके। दौड़-धूप करके किसी तरह उनके बच्चे को डॉक्टर को दिखाया और उन दोनों की अपने यहां रहने की व्यवस्था करके घर से दो घंटे पहले इस आशंका से निकल गया कि कहीं कोई और न व्यवधान आ जाय। परिणाम यह हुआ कि दो घंटे वे और दो घंटे विलंब से ट्रेन का आना, लगभग चार घंटे प्लेटफार्म पर काटना दूभर हो गया।

ट्रेन आयी और जब मैं अपनी बर्थ के पास गया, तो वहां का कुछ और ही नजारा देखा। एक स्थूलकाय संभ्रांत महिला बर्थ पर पसरी पत्रिका के पन्ने उलट-पलट रही थी। मैंने बड़ी विनम्रता से कहा 'आंटीजी, थोड़ा-सा खिसक जातीं, तो मैं भी बैठ लेता?'

'कहां तक जाना है?' बिना मेरी ओर देखे उन्होंने पूछा।

'जहां तक ट्रेन जाएगी।'

'तब आगे बढ़ जाओ, मैं तो समझ रही थी कि अगले या उसके बाद के स्टेशन पर उतर जाओगे।'

'आंटीजी, यह बर्थ मेरी है, आप की बर्थ कहीं और होगी।'

'नशा-वशा तो नहीं किए हो? मेरा बेटा आकर मुझे बैठा गया और तुम कह रहे हो कि यह बर्थ मेरी नहीं है?'

'आप अपना टिकट फिर से देख लें, गलती हो सकती है।'

'टिकट देखने की मुझे नहीं, तुम्हें आवश्यकता है।'

इसी बीच कंडक्टर आ गया। उसे जब मैंने अपना टिकट दिखाया, तो उसने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा 'मैं जानता हूं कि इनकी ऊपर वाली बर्थ है, पर क्या करूं, इनके लड़के मेरे विभाग में अफसर जो हैं। उन्होंने मेरे संज्ञान में डालकर इन्हें यहां बैठाया है, आप इनकी बर्थ पर चले जाइए, प्लीज।'

'लेकिन वहां भी तो एक सज्जन विराजमान हैं।' मैंने शिकायती लहजे में कहा।

इतना सुनते ही उसकी विवशता आवेश में बदल गयी न! 'उसे अभी मैं देखता हूं' कहकर उसने बड़ी बेरहमी से उस आदमी को खींचकर नीचे उतारा।

लगभग चौदह घंटे की झेलाऊं यात्रा ने मुझे त्रस्त कर दिया। आंटीजी के खर्राटों के चलते मुझे रात भर जागना पड़ा। किसी तरह ट्रेन गंतव्य पर पहुंची। मैंने प्लेटफार्म पर हाथ-मुंह धोकर एक कप चाय ली, फिर गीता के ऑफिस के लिए ऑटो किया और लगभग पच्चीस मिनट में वहां पहुंच गया।

'मैडम हैं?' चपरासी से पूछा।

'हैं तो, क्या काम है?'

'उनसे मिलना है।'

'ठीक है, अंदर जाइए और उनके पी.ए. जगदीश बाबू से मिलने का समय ले लीजिए। वैसे आज उनसे मिलने की कम ही उम्मीद है, बहुत व्यस्त हैं, परसों मीटिंग जो है, उसी की तैयारी में लगी हुई हैं।'

जगदीश बाबू के पास गया, तो वह मुझे ऊपर से नीचे तक ऐसे घूर-घूरकर देखने लगा, जैसे मैं कोई मनुष्येतर प्राणी होऊं। बड़े उपेक्षात्मक स्वर में उसने पूछा 'कहिए जनाब, क्या खिदमत करूं?'

'मैडम से मिलवा दीजिए, बस इतनी ही काफी है।'

'मिलने का समय लिया है?'

'अभी-अभी तो आ रहा हूं, समय कब ले लेता?'

'देखने से तो पढ़े-लिखे लग रहे हैं, पर बात गंवारों जैसी करते हैं। महोदय, किसी अधिकारी से मिलने के लिए पहले उससे समय लिया जाता है और यह जरूरी नहीं कि समय तुरंत मिल ही जाय। जाइए बाहर बेंच पर बैठिए, थोड़ी देर बाद सूचित कर दिया जाएगा कि आपको कब का समय मिला।'

'लेकिन मैं लोकल नहीं, बाहर से आया हूं।'

'लोकल हों या बाहरी, समय मिलने पर ही आप उनसे मिल पाएंगे।'

'जगदीश बाबू, आप अन्यथा न लें तो एक बात कहूं?'

इसके बाद तो उसका चेहरा देखने लायक था न! उसने चश्मे को उतारकर मेज पर रख दिया और गुस्से में पूछा 'हां, बोलिए, पहले आपको सुन लूं, फिर और कुछ करूं।'

'आप यदि मैडम से इतना कह दें कि अनुज शर्मा आए हैं', तो संभवतः मुझसे मिलने के लिए वे स्वयं बाहर आ जाएं।'

'अच्छा, तो आप इतने महत्वपूर्ण हैं कि आपका नाम सुनते ही वे बाहर आकर आपकी आरती उतारने लगेंगी? कान खोलकर सुन लीजिए, आप जैसे न जाने कितने लोग आते हैं और हम उन्हें बाहर से ही विदा कर देते हैं। अब आप मेरा दिमाग न चाटकर चुपचाप बाहर जाइए और समय मिलने का इंतजार कीजिए।' इतना कहकर वह अपने काम में लग गया।

मैं बाहर आया और मन ही मन उसे कोसने लगा। लगभग दो घंटे इंतजार करने के बाद जब ऊब गया, तो गेट के बाहर जाकर चाय-पान में आधा घंटा बिताया। वहां से जैसे ही अंदर आया, चपरासी ने सूचना दी 'सर, आपको कल लंच के बाद यानी दो बजे का समय मिला है।' इतना सुनते

ही मैं तिलमिला उठा। पी.ए. के उस बच्चे के पास आया और हड़काते हुए बोला 'सुनो, यहां जो आते हैं, जरूरी नहीं कि उनकी कुर्सी तुम्हारे अधिकारी की कुर्सी से छोटी ही हो। अभी तक मैं यह सोचकर विनम्रता से पेश आ रहा था कि हर ऑफिस के अपने तौर-तरीके होते हैं, उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, पर तुमने तो हद कर दी, मानवता भी उठाकर ताक पर रख दी। जाओ और उनसे मेरा नाम लेकर बोलो कि मैं अभी और इसी वक्त उनसे मिलना चाहता हूं।'

इतना सुनते ही पूरा ऑफिस सकते में आ गया। बड़े बाबू स्वयं आकर अनुरोधात्मक स्वर में बोले 'सर, आप चलिए मेरे साथ, यह नासमझ है। इसके रूखे व्यवहार के चलते यहां आए दिन बवाल होते हैं। मैडम से कुछ मत कहिएगा, नहीं तो वे इसकी खटिया खड़ी कर देंगी।'

गीता मुझे देखते ही आश्चर्य में पड़ गयी 'आप और यहां? मैं सपना तो नहीं देख रही हूं?'

'मेरी इस अप्रत्याशित उपस्थिति से आपका आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है। वस्तुतः आपको देखे हुए एक मुद्दत हो गयी थी। आपसे मिलने की ललक ने मुझे काफी उद्वेलित कर रखा था, पर जब भी यहां आने का कार्यक्रम बनाता था, तो कोई न कोई व्यवधान आ खड़ा होता। अच्छा, छोड़िए इन बातों को, नौकरी तो ठीक से चल रही है न?'

'अनुजजी, इस नौकरी में बड़ा तनाव है। कभी पब्लिक का दबाव, तो कभी अधिकारियों का प्रेशर। और आप तो जानते ही हैं कि प्रेशर में मैं कोई काम नहीं करती। और तो और, यहां नेतागिरी बहुत है। जब भी कोई व्यक्ति किसी काम के लिए आता है, तो वह अपने को किसी न किसी नेता का आदमी जरूर बताता है। शुरू-शुरू में तो दिक्कत जरूर हुई, पर जब मैंने यहां की नब्ज पहचान ली, तो अपने ऑफिस को यह निर्देश दिया कि ऐसे लोगों को बाहर से ही टरका दिया जाय।'

'आप ठीक कह रही हैं, इस दृष्टि से तो सच में आपका ऑफिस बेजोड़ है।' मैंने कुछ व्यंग्य के लहजे में कहा।

'लगता है, आपके साथ भी कुछ न कुछ उपेक्षात्मक व्यवहार हुआ है?'

'नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मेरे साथ तो लोग बड़ी भलमनसाहत से पेश आए हैं।' मैंने तुरंत संभाल लिया क्योंकि अंदर आने के पहले बड़े बाबू ने अनुरोध जो कर दिया था- 'मैडम से कुछ मत कहिएगा।'

'माताजी तो ठीक है न?'

'वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। अच्छी-खासी चल रही थीं कि एक दिन खा-पीकर सोईं, तो फिर उठी ही नहीं। डॉक्टर ने मृत्यु का कारण हृदयगति का रुक जाना बताया।'

'मौत को तो कोई न कोई बहाना चाहिए ही। मेरे ख्याल से वे अस्सी के ऊपर रही होंगी?'

'आपका अनुमान सही है, तिरासी के लगभग थीं।'

'फिर तो कोई बात नहीं, उनकी बन गयी।'

'अरे, मैंने तो आपको चाय-पानी के लिए भी नहीं पूछा' कहकर उसने मेज पर रखी कालबेल को दबाया। चपरासी आया और उसे दो गिलास पानी और कॉफी लाने का आदेश देकर पुनः वह मेरी ओर मुखातिब हुई- 'किसी विशेष काम से आए हैं कि यों ही घूमने-फिरने?'

'गीताजी, आज की इस भाग-दौड़ की जिंदगी में किसके पास इतनी फुर्सत है कि बिना किसी प्रयोजन के कहीं आए-जाए।'

'मैंने इसलिए पूछा कि गर्मी के मौसम में यहां दूर-दूर से लोग घूमने आते हैं। शहर तो खूबसूरत है ही। अच्छा, काम की बात सुबह नाश्ते पर होगी। कल छुट्टी भी तो है। आइए पहले कॉफी पीते हैं, फिर ड्राइवर आपको गेस्ट हाउस छोड़ आएगा। और हां, आज रात का भोजन आप मेरे साथ और मेरे आवास पर करेंगे।'

उस समय गीता की आत्मीयता ने मेरे मन को जीत लिया। सोचने लगा, 'लगता है, मेरी मां द्वारा अपने पिताजी के साथ किए गए दुर्व्यवहार को अब यह भूल चुकी है।'

रात के लगभग आठ बजे उसकी गाड़ी आयी। ड्राइवर ने कहा- 'सर, खाने की टेबल पर लोग आपका इंतजार कर रहे हैं। क्रासिंग पर जाम हो जाने से मैं थोड़ा लेट हो गया।'

लोग इंतजार कर रहे हैं' इस वाक्य से मैं कुछ विचलित सा हो गया और सोचने लगा- 'गीता तो यहां अकेली रहती है, फिर उसके यहां और कौन है, जिसके लिए यह आदमी 'लोग' शब्द का इस्तेमाल कर रहा है।' आया होगा कोई दूर का रिश्तेदार, यह सोचकर मैंने अपने शंकालु मन को समझाने का प्रयास किया।

गाड़ी जैसे ही गेट पर रुकी, गीता ने स्वयं आकर उसका दरवाजा खोला 'आइए अनुजजी आइए, आपका बहुत-बहुत स्वागत।' कहकर वह मुझे सीधे डायनिंग टेबल पर ले गयी। ड्राइवर की बात सच निकली, वहां एक सज्जन पहले से ही विराजमान थे। उन्हें देखते ही मैं कुढ़ गया। ईर्ष्या अंदर ही अंदर लगी मुझे मथने। मेरे भीतर के इस स्वर ने मेरी प्रसन्नता को ग्रस लिया 'इस आदमी से गीता का कोई न कोई चक्कर जरूर है।'

गीता ने मुझसे उसका परिचय इन शब्दों में करवाया 'ये रवींद्रजी हैं, आजकल मेरे साथ रह रहे हैं, अधिकारी बनने की होड़ में हैं। ये साहब जब से यहां आए हैं, मेरी अनमनस्कता छू-मंतर हो गयी है। इनके चलते यहां का माहौल सरस हो गया है।'

तदुपरांत उसने उस आदमी से मेरा परिचय करवाया 'और ये हैं अनुजजी, मेरे विद्यार्थी जीवन के मित्र। ये मुझसे पहले नौकरी में आ गए थे। बहुत दिनों से हम दोनों एक दूसरे से नहीं मिल पाए थे, पर आज इनके सौजन्य से वह अवसर आ ही गया। वैसे तो ये बड़े भले हैं, पर कुछ शंकालु प्रवृत्ति के हैं।' इतना कहकर वह हँस पड़ी।

डायनिंग टेबल पर उन दोनों ने मुझे सहज करने का बड़ा प्रयास किया, पर मेरी खिन्नता ज्यों की त्यों बनी रही। गीता ने पूछा भी- 'यहां आते ही आप उदास क्यों हो गए? ऑफिस में जब मिले थे, तो ठीक थे। लगता है, यात्रा की थकान अभी पूरी तरह से गयी नहीं?'

'हां, कुछ इसी तरह की बात है, थकावट के चलते सारा शरीर टूट रहा है।' इतना कहते-कहते मेरी खिन्नता और गहरा गयी।

वहां से आया और सोने की बड़ी कोशिश की, पर नींद कोसों दूर रही। लगा पश्चाताप करने गलती हुई जो चला आया। फिर, यह कहां मालूम था कि यह महिला इतनी बेवफा होगी। एम.ए. फाइनल की ही तो बात है। इसने मुझसे कितने अनुरोधात्मक स्वर में कहा था 'अनुज, मुझे भूल तो नहीं जाओगे? देखो, धोखा मत देना, नहीं तो मैं कहीं की नहीं होऊंगी? तुम्हारे सिवा और कौन मुझे अपनाएगा? मेरे दामन पर विधवा होने का धब्बा जो लग गया है।' इतना कहते-कहते यह रो पड़ी थी।'

एक बार तो मन में आया कि चुपचाप यहां से निकल लूं, पर यह सोचकर रुक गया कि इससे गीता को आघात पहुंचेगा।

सुबह उठा और अनमनस्क भाव से एक कप चाय ली, फिर बिना मन के अखबार देखने लगा। इसी बीच गीता आ गयी और मुस्कुराती हुई बोली 'कहिए हुजूर, रात तो सुकून से बीत गयी न?'

'कहां बीती? बड़ी बेचैनी थी। एक क्षण के लिए भी तो नींद नहीं आयी।'

'नींद आती भी कैसे? उसे तो आपके शक ने ग्रस लिया होगा। बुरा मत मानिएगा, आप अपेक्षा से कुछ ज्यादा शंकालु हैं। अरे भाई, जिसे देखकर आप कुढ़ गए हैं, वह मेरी मौसी का लड़का है, यहां परीक्षा देने आया है और इस समय परीक्षा देने गया भी है।'

'सच में वह आपकी मौसी का लड़का है?' मैंने साश्चर्य पूछा।

'तो क्या मैं झूठ बोल रही हूं? अनुजजी, शक बहुत बुरी चीज है। ईश्वर न करे कोई इसकी चपेट में आए। इसकी एक छोटी-सी चिनगारी मधुर से मधुर संबंधों को जलाकर राख कर देती है। इसके चलते संबंधों में एक बार जो दरार पड़ जाती है, तो वह पाटे नहीं पटती। इसने न जाने कितने घरों को तबाह कर दिया है। और तो और, शंकालु व्यक्ति अपना जीवन तो तबाह करता ही है, साथ-साथ दूसरों के भी जीवन को नरक कर देता है। अतः इससे हम जितना दूर रहें, उतना ही अच्छा है।'

'बात तो आप ठीक ही कह रही हैं।' मैंने झेंप मिटाते हुए कहा।

'हां, अब बताइए, किस काम से आए हैं?'

'गीताजी, एकाकीपन के दंश को झेलते-झेलते अब मैं थक गया हूं। जब तक मां जीवित थी, तब तक उसके चलते मैं कोई निर्णय नहीं ले पा रहा था, पर अब स्वतंत्र हूं।'

'तो इस संदर्भ में मुझसे आपको क्या अपेक्षा है?'

'मैं चाहता हूं कि हम दोनों एक-दूसरे का हाथ थाम लें और जीवन की नयी शुरुआत करें।' इतना कहकर मैं अर्थभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

'अनुजजी, आप ही बताइए, जिस घर से मेरे पिताजी दुत्कारकर हटाए गए हों, उस घर की बहू मैं वैसे हो सकती हूं? आपको तो यह मालूम ही होगा कि उस दिन के अपमान से उन्हें इतना बड़ा सदमा पहुंचा कि एक बार जो बिस्तर पर पड़े, तो फिर उठे ही नहीं। आपकी दिवंगत मां ने उन्हें जिस निर्ममता से जलील किया था, उसे मैं आज तक नहीं भूली हूं। वे अपनी बात शालीन ढंग से भी तो कह सकती थीं। कितने कठोर शब्दों का इस्तेमाल उन्होंने किया था 'मास्टर साहब, आपको अपनी विधवा बेटी के लिए और कोई नहीं मिला, तो यहां चले आए? उस अशुभ को क्यों मेरे बेटे के गले मढ़ना चाहते हैं? कल को उसे कुछ हो-हवा गया तो? तब तो मैं कहीं की नहीं होऊंगी। कृपा करके यहां से जाइए और अपनी बेटी के लिए किसी अन्य लड़के की तलाश कीजिए।'

इसके बाद भी पिताजी ने हाथ जोड़कर कहा था- 'आपको तो मालूम होगा कि गीता और अनुज एक दूसरे को कितना चाहते हैं?'

'मास्टर साहब, चाहना और विवाह के बंधन में बंधना, दोनों में अंतर होता है। भावुकता में आकर भले ही लोग एक-दूसरे पर जान देने लगें, पर विवाह की बात जब आती है, तो लोग बगलें झांकने लगते हैं। अच्छा, अब आप न तो मेरा समय बरबाद करें और न ही अपना।'

'इसके बाद पिताजी पर क्या गुजरी और वे किस मनःस्थिति में घर आए, उसे मैं ही जानती हूं।'

'लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है?' मैंने गीता से पूछा।

'वैसे नहीं है आपका दोष? सब कुछ आपकी मौजूदगी में होता रहा और आप मूकदर्शक बने बैठे रहे? आपने अपनी मां को उनके अभद्र व्यवहार के लिए एक बार भी मना करना जरूरी नहीं समझा? इतना ही नहीं, पिताजी लगभग पंद्रह दिनों तक बिस्तर पर पड़े रहे, पर आपसे इतना भी न हो सका कि आकर सहानुभूति के दो शब्द बोल जाते। बहुत संभव था कि उससे उनकी वेदना कुछ कम हो जाती। और तो और, उनकी मृत्यु पर सारी दुनिया मेरे दरवाजे पर आयी, पर आपको शोक-संवेदना व्यक्त करने के लिए भी समय नहीं मिला। खैर, कोई बात नहीं, आप एक अच्छी सोच लेकर आए, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूं, पर इतना जरूर कहूंगी कि अभी मैं इस स्थिति में कतई नहीं हूं कि आपके इस प्रस्ताव पर कुछ विचार कर सकूं।'

'गीताजी, कभी-कभी आदमी अपनी परिस्थितियों के चलते इतना विवश हो जाता है कि बहुत कुछ चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता, परकटे पंछी की तरह छटपटाकर रह जाता है और लोग या तो यह समझते हैं कि वह व्यक्ति अपने दायित्व के प्रति उदासीन है या हीलाहवाली कर रहा है। काश! लोग दूसरों की विवशता को भी समझने का प्रयास करते, इससे ढेर सारी गलतफहमियां अपने आप दूर हो जातीं, पर ऐसा कहां हो पाता है? उन दिनों मेरी- अपनी भी कुछ विवशताएं थीं, जिनके चलते दुःख के उन अवसरों पर आपके दरवाजे पर नहीं आ पाया। और अब रही मेरे प्रस्ताव पर विचार करने की बात, तो इसके लिए आप स्वतंत्र हैं। दिल नहीं माना, चला आया, अब नहीं आऊंगा।' इतना कहकर मैं उठ गया।

इसके बाद तो वह भावुक हो उठी न! आंचल से आँखें पोछते हुए बोली-'इतनी जल्दी नाराज हो जाएंगे, तो वैसे काम चलेगा? फिर, गिला-शिकायत अपनों से नहीं तो और किससे की जाएगी? अभी तक आपको लेकर न जाने कितने उपालंभ मेरे हृदय को सालते रहे, पर आज उन्हें निकालकर सुकून महसूस कर रही हूं। हां, अब रही आपके जाने की बात, तो जब मैं जाने दूंगी, तब न जाएंगे?' इतना कहकर वह मुझसे बैठने का अनुरोध करने लगी।

और मुझे देखिए, उसे रोते देखकर भी मैं उसके हृदय को बेंधने से बाज नहीं आया-'अब मेरे और आपके बीच रह ही क्या गया है, जिसके लिए बैठूं? फिर भी आप कह रही हैं तो बैठ जाता हूं।'

मेरी इस बेरुखी से न तो वह आहत हुई और न ही विचलित अपितु मुस्कुराती हुई बोली- 'अनुजजी, आप जीवन की नयी जिस शुरुआत करने का प्रस्ताव लेकर आए हैं, उसका सफर लंबा है। यदि शुरू करने के पहले ही झल्ला जाएंगे, तो कैसे साथ दे पाएंगे? नोक-झोंक तो होती ही रहेगी, थोड़ा धैर्य से काम लें। आइए पहले नाश्ता करें, फिर घूमने चलते हैं। सच में, यह शहर बहुत खूबसूरत है, मेरे साथ इसे देखेंगे, तो यह और खूबसूरत लगेगा।'

उस समय उसके स्नेहपूर्ण आग्रह के सामने मुझे झुकना ही झुकना था। फलतः हाथ नाश्ते की ओर बढ़ गए।

●

पार्टी

दामोदर खड़से

उस दिन सारे रिश्तेदार, मित्र, साथी व्यापारी प्रवीण भाई मेहता की घोषणा से चौंक गए। प्रवीण भाई ने अपने बेटे विजय के नये कारोबार के शुभारंभ पर दी गई पार्टी में यह घोषणा की। यह कार्यक्रम अहमदाबाद में न होकर मुंबई में हुआ। वैसे प्रवीण भाई के सारे व्यापारिक कार्यक्रम अहमदाबाद में ही होते रहे हैं। अहमदाबाद की मशहूर कपड़ों की मिलें उनकी हैं। अरबों का कारोबार। अब तो बेटा भी कारोबार में उतर आया है। उसने पूरे हिंदुस्तान में 'स्टार मॉल' नामक नया व्यवसाय शुरू किया। प्रेस के भरपूर लोग आए। टीवी और अखबारों का जमघट था। अब होटल ताज की सुरक्षा बढ़ा दी गई है पर होटल ताज की शान में कोई कमी नहीं। चमचमाती कारें, कड़क इस्त्री के सफेद लिबास में शोफर, मेन गेट पर छह फुट वाले गार्ड का तपाक से 'ऑनर सेल्यूट' भीतर सजी-संवरी सुंदरियों द्वारा स्वागत, सब कुछ 'सेवन स्टार'। फिर 'स्टार मॉल' के चेन की घोषणा प्रवीण भाई को करनी थी। यह जिम्मा प्रवीण भाई ने अपने बेटे को सौंप दिया।

बिलकुल छोटा-सा भाषण। सभी पत्रकारों को छपी सामग्री, सीडी और पेन ड्राइव। लिखने की कोई जरूरत नहीं। सब कुछ रेडीमेड। कॉकटेल पार्टी शुरू। अभी सुरूर की ठीक से शुरुआत भी नहीं हुई थी कि एक महिला अनाउंसर ने 'एक्सक्यूज मी' कहा। महिला की आवाज सुनते ही आगंतुकों ने दूसरा पैग उठा लिया। महिला की आवाज गिलास में लहरें बो गई... 'एक जरूरी घोषणा... आप सबके लिए।' होठों तक पहुंचते गिलास हाथों में ठहर गए। बातें बंद हो गईं। एक सतर्क चुप्पी। सब छोटे से मंचनुमा स्थान की ओर देखने लगे। प्रवीण भाई के हाथ में कॉडलेस माइक और उनकी आवाज उभरी- 'फ्रेंड्स... एक जरूरी अनाउंसमेंट!... जो पत्रकार निकलने के मूड में थे, उन्होंने एक घूंट में अपने को एकाग्र कर लिया। ... कोई खास घोषणा लगती है। कल के लिए रोचक रिपोर्ट. ... 'अब मैं अपने कारोबार के सारे सूत्र बेटे विजय को सौंपता हूं।' उन्होंने कागजात की फाइल लहराई और कहा, 'आज के बाद सारा कारोबार, संपत्ति, व्यापार, सब... कुछ विजय के नाम.... मैं पूरी तरह अलग, निवृत्त....' प्रवीण भाई ने बेटे को गले लगा लिया। विजय हतप्रभ। उसे कोई भनक तक नहीं थी। प्रवीण भाई की 'आँखें भर आईं। गुजरात और मुंबई में उनके कारोबार की धाक थी। बेटा स्तब्ध। क्या करे, क्या कहे.... पर सारे आगंतुक फिर आपसी बातों में डूब गए। अब चर्चा प्रवीण-विजय पर केंद्रित हो गई। कयास और अंदाज। प्रवीण भाई के हमउम्र प्रवीणभाई तक पहुंचे। कइयों के लिए रहस्य, कइयों ने मान लिया कि प्रवीण भाई जैसा भला आदमी इस उम्र में ऐसा ही

कर सकता है। कई पत्रकार अपना गिफ्ट लेकर चलते बने। प्रवीण भाई की ओर से यह आखिरी गिट है, काफी मंहगा होगा।.... कल 'आँखों देखा हाल' में जबरदस्त स्टोरी होगी...!

पत्नी के निधन के बाद प्रवीण भाई बहुत एकाकी अनुभव करने लगे थे। फिर विजय ने कारोबार को शानदार ढंग से आगे बढ़ाया था। नई दुनिया के लिए विजय की नई कल्पनाएं सटीक बैठतीं। वैसे प्रवीण भाई सोचते रहते कि सत्तर-बहत्तर की उम्र में कारोबार से हट जाना चाहिए। फिर उनकी कई शिक्षा-संस्थाएं थीं, अस्पताल थे, चैरिटी संस्थाएं थीं, उधर ध्यान देने का मन उन्होंने पहले से ही बना लिया था। इसका कारण थी पत्नी, उन्हें इस सब कामों में बहुत रुचि थी। प्रवीण भाई ने पत्नी की समाज-सेवा के मिशन के लिए अच्छी-खासी पूंजी अलग कर रखी थी। पत्नी के अचानक चले जाने पर एक विरक्ति उनके व्यक्तित्व को झकझोरती रही। परिणाम विजय को सब कुछ सौंपकर वे अलग हो गए।

अब प्रवीण भाई अपनी यात्राओं के लिए निजी विमान की जगह सामान्य विमान में, सामान्य श्रेणी में यात्रा करते है। अब ताज में नहीं रुकते, जबकि मुंबई में उनका सबसे पसंदीदा होटल ताज ही रहा है। वे ताज के पीछे 'सुबा पैलेस' में रुकते हैं। कोई अफसोस नहीं-- खुशी-खुशी। विजय उनका पूरा ख्याल रखता है। वह हमेशा कहता- 'आप अपना सब कुछ पहले जैसा ही रखें...। प्रवीण भाई का अपना अंदाज था, जिसे विजय खूब जानता था। वह पिता की सुविधाओं का पूरा खयाल रखता, साथ ही, किफायत करने के उनके स्वभाव के कभी आड़े न आता। पिछले दो वर्षों से प्रवीण भाई 'सुबा पैलेस' में टिकते हैं। मैनेजर से छोटे-बड़े कर्मचारी, लिफ्टमैन सब-सब उन्हें जानते और मानते हैं। उन्होंने किफायत जरूरी अपनायी है, पर होटल के कर्मचारी से यदि चाय भी मंगवाई है तो उसे सौ के नोट के साथ ही लौटाया है। सबके मन में उनके प्रति आदर है, श्रद्धा है और उनका काम करने का उत्साह है।

अब भी वे अकसर मुंबई आते हैं। उनकी पत्नी के नाम पर एक अस्पताल बना है। वहां की व्यवस्था का ध्यान विजय तो रखता ही है पर यहां आकर प्रवीण भाई को अजीब-सा सुकून मिलता। दुनिया में कितना दुःख है... कई लोगों को अपना दुःख दूर करने के लिए साधन नहीं, पैसा नहीं, तो इलाज नहीं.... ऐसे लोगों के लिए कुछ बेड अलग से रखे गए हैं, डॉक्टरों की सलाह है कि उनका विशेष ध्यान रखा जाए। कहीं प्रवीणभाई देखते हैं कि पैसा है, साधन है, पर पीड़ा से मुक्ति नहीं, वे द्रवित होते हैं... कुछ देर अस्पताल में रुकते हैं और बाहर मुख्य द्वार पर पत्नी की तसवीर के सामने क्षणभर स्तब्ध खड़े रहते हैं। पता नहीं क्या संवाद करते हैं। फिर अस्पताल की बिल्डिंग की ओर सामने खड़े होकर देखते हैं कि पत्नी के नाम से अस्पताल के बोर्ड का कोई अक्षर धूमिल तो नहीं हुआ!

आज वे मुंबई में हैं। उनके पुराने दोस्त के बेटे की नयी कंपनी के शुभारंभ पर। पता नहीं उन्हें क्या सूझी दो दिन पहले आ गए। इस बार न वे अस्पताल गए और न ही अपने नए बने इंजीनियरिंग कॉलेज... यह कॉलेज भी पत्नी के ही नाम पर शुरू किया है। अभी भी भवन-निर्माण का काम चल ही रहा है... पर नहीं गए वे वहां। यह नहीं कि किसी निराशा, उदासी से उन्हें रोग रखा। वे आज कुछ गुमसुम ही रहे। होटल में पहुंचे। हमेशा की तरह वहां आत्मीय स्वागत हुआ। मनपसंद दाल-खिचड़ी खाई और अचानक उन्हें नींद आ गई। आमतौर पर वे दिन में सोते नहीं... पर आज क्या बात है। न टीवी खोला न किसी से बात की फोन पर।

प्रवीण भाई का मोबाइल अचानक घनघना उठा। वे उनींदे ही थे। चौंककर देखा तो उनके पुराने दोस्त ओमप्रकाश की बहू का फोन था- शर्मिला का। यशराज की पत्नी का... पल भर हिचकिचाए और फोन ऑन किया... 'अंकल प्रणाम!... कैसे हैं... मुझे आपसे मिलना है... कहां रुके हैं?

एक साथ कितने सवाल।

क्या बात है?

इस तरह कभी मुलाकात का कोई कारण नहीं था।

इस होटल में...

क्या सोचेंगी... और व्यवस्था....

शहर के धनाढ्य घर की बहू...?

प्रवीण भाई के मन में भी कितने सवाल।

बेचैनी जब भीतर हो तो बाहर सवाल ही सवाल.... यह बात प्रवीण भाई का अनुभव जता रहा था। कहां रुके हैं, यह सवाल उन्हें घेर रहा था। उन्होंने धीरे से एक सवाल किया आज डिनर पर होटल ताज में मिलें?

'जरूर... कितने बजे?'

'वही कोई साढ़े सात के आसपास...।'

'ठीक है, डन.... अंकल विजय-बच्चे कैसे हैं?'

'ठीक हैं...।'

प्रवीण भाई सोचने लगे समय तय हो जाने के बाद घर-परिवार की सुध आई। क्या बात हो सकती है? क्या है.... जो इतनी बेचैनी का सबब है.... व्यापार तो बढ़ रहा है, इसलिए नए-नए यूनिट खुल रहे हैं। पार्टनरशिप तो है नहीं कहीं जिससे बखेड़ा हो... घर-परिवार तो संयुक्त है नहीं, जिससे रिश्ते में खटास हो... तो है क्या?... क्या सोचने लग गए प्रवीण अंकल.... जो भी होगा, बात करेंगे.... कितना अंदाज लगाएंगे... पूछा भी क्या विषय है... बस इतना ही कहा मिलकर बात करेंगे।

साढ़े पांच बज रहे थे। फरवरी का पहला हफ्ता था। खुशनुमा मौसम मुंबई का। नीचे उतरें। ड्राइवर भागता आया। उसे संकेत से ही मना किया और पैदल ही निकल पड़े। अब उनके बायें पैर में कुछ दर्द होता है। पर उसे अनसुना कर वे चुपचाप चल पड़े, गेट वे ऑफ इंडिया की ओर। आज उन्हें चिंता नहीं थी, कोई उन्हें देखेगा, पहचानेगा। इतना बड़ा व्यापारी पैदल!

पैदल चलते हुए उन्होंने गेट वे ऑफ इंडिया की कुछ दूरी पर ही पुलिस का बेरीकेट पार किया, मेटल डिटक्टर से। जबसे ताज पर आतंकवादी हमला हुआ है, ये सारी सुरक्षा व्यवस्था की गई है। शाम की चहल-पहल। दूर-दूर से लोग आते हैं यहां। फोटो खिंचवाने और खींचने वालों की रेल-पेल। नये जोड़ों के पुराने पोज, बच्चों के साथ आया परिवार- पिकनिक का आनंद... कबूतरों का जत्था और गेट वे ऑफ इंडिया पर खुदे अंग्रेजों के नाम, सामने अपने पुराने गौरव की शान में खड़ा ताज, भीतर उसके गहरे जख्म, सब एकबारगी प्रवीणभाई को छू गए। वे समंदर की जगत पर बैठे-बैठे बाहर की भीड़ से भागकर अपनी भीतरी भीड़ में घिर गए।

इस ताज में कितने ही बार रुके पर समुद्र को इस तरह कभी नहीं देख पाए। दिन-रात बिजनेस,

मीटिंगें और न जाने क्या-क्या। कई बार पत्नी भी साथ होतीं। अब जब यहां संसार में नहीं है, तो सटकर बैठी हैं, इस जगत् पर.... आज प्रवीण भाई बहुत निरपेक्ष और अलग मन लिए यहां बैठे हैं। ताज को बाहर से इतने गौर से कभी नहीं देखा था उन्होंने। बहुत शांत भाव वे वे निहार रहे थे। आतंक के निशान एक कोने पर साफ दिखाई दे रहे थे। बेकसूर लोगों की चीखें उन्हें सुनाई दे रही थीं। फिर पता नहीं कैसे वे जन्म-मृत्यु के फेरे में पड़ गए। इस पड़ाव पर उम्र के, मृत्यु का किनारा कभी न कभी झकझोरता ही है। कहते हैं मृत्यु तो तय होती है, वह बहाना ढूंढ़ती है। कभी बीमारी, कभी दुर्घटना....। पर यह आतंक और मृत्यु का दर्शन... वे अपने आप से झुंझले उठते और समुद्र की लहरों को सुनते रहते दूर तैर रहे जहाजों को निहारते। सूरज डूबने को है। शाम उतर रही है धीरे-धीरे। उन्होंने घड़ी देखी-सवा छह!

साढ़े सात बजे शर्मिला को डिनर के लिए बुलाया है। उससे पहले उन्हें तयशुदा जगह पर पहुंच जाना चाहिए। यह उनकी पुरानी आदत थी और अब तक वे इस नियम पर कायम थे।

अभी साढ़े सात बजने में पांच मिनट बाकी थे और वे जगजीत सिंह की धीमी-धीमी रेशमी आवाज में खोए हुए थे कि शर्मिला सामने खड़ी दिखी। शर्मिला को देखे अर्सा हो गया था, पर वह आज भी उतनी ही छरहरी, चेहरे पर गरिमा और मुस्कान लिए हाथ जोड़कर उपस्थित... तनिक भी इंतजार नहीं करवाया। कोई खास बात जरूर है। वे उठ खड़े हुए। शर्मिला ने पैर छुए। यह भी नहीं देखा कि आसपास कोई देख रहा है। प्रवीण भाई ने मन से शुभकामना दी। बेयरे को रुकने का इशारा किया। बच्चों का हालचाल पूछा, यशराज का भी। दो बच्चों के बावजूद शर्मिला की तबीयत पहले जैसी पर जैसे ही यशराज के बारे में पूछा, उसकी मुस्कान जम गई। वह कुछ कठोर-सी लगी। आँखें कुछ तन गईं, माथा कुछ-कुछ चढ़ गया और उसकी आवाज में वह मधुरता कहीं छितरा गई थी। आज की मुलाकात का कुछ-कुछ आगाज प्रवीण भाई को हो चला था।

सूप आने तक इधर-उधर की बातें होती रहीं फिर प्रवीण भाई ने विषय शुरू किया। शर्मिला ने तपाक से बात थाम ली, ज्यों वह इंतजार ही कर रही थी।

'अंकल अब आपसे मैं कैसे बात करूं... बड़ी एम्बेरेसिंग सिच्युएशन है...।' प्रवीणभाई कुछ चौंके यह सुनकर। पता नहीं कौन-सी बात परोसी जाएगी...।

'क्या बात है कहो। ओमप्रकाश मेरे बहुत पुराने दोस्त रहे। अब यदि वे होते और तुम्हारी बात सुनते, बिलकुल मुझे वैसा ही समझो... क्या बिजनेस में कोई प्रॉब्लम है?'

'नहीं ये बात नहीं.... पर पापा वाली बात आपने कही तो शायद मैं यह बात पापा से भी न कह पाती...।'

'ऐसी क्या बात है बेटा...?'

'मैं कई दिनों से बहुत असमंजस में हूं। मैंने अपनी मां से तो किसी तरह कहा, पर मैं उन्हें ठीक तरह समझा नहीं सकी... वे मेरी बात पर सहमत नहीं हो पाईं।'

'क्या बात है, खुलकर कहो.... निःसंकोच।' प्रवीण भाई की आवाज में समस्या को समाप्त करने का आश्वासन सा था।

'मैं यश से डायवोर्स लेना चाहती हूं...।' एक झटके में वाक्य कह डाला और नीचे देखने लगी। फिर नजरें उठाईं प्रवीण भाई की ओर, यह जानने के लिए कि उन्होंने इस बात को किस तरह लिया।

प्रवीण भाई भौंचक। कई सवाल एक बारगी घूम गए। क्यों? ऐसा क्या हुआ? जैसे सवाल प्रवीण भाई के मन उठ रहे थे। वे बोल ही पड़े-

'ऐसा क्या हो गया कि इतना बड़ा कदम तुमने सोच लिया?' धीरे से प्रवीण भाई बोले।

'कैसे बताऊं अंकल...।'

'बताओ... उसी के लिए तो हम मिले हैं।'

केवल प्रवीण भाई को देखती रही शर्मिला।

'तुम्हारा ध्यान नहीं रखता...?'

शर्मिला चुप। नजरें नीची।

'बिजनेस में कुछ प्रॉब्लेम?'

'बिजनेस तो दिनोंदिन बढ़ रहा है। वे अकसर बाहर रहते हैं। मैं समझ सकती हूं कि इतने बड़े बिजनेसमैन की पत्नी होने पर मुझे क्या-क्या समझ लेना चाहिए। मैंने अपना सारा ध्यान घर और बच्चों में लगाया। उनके पास घर के लिए समय ही नहीं...।'

'चलो, परसों जब मुलाकात होगी मैं शिकायत तो नहीं करूंगा, नहीं तो यश को लगेगा तुमने कुछ कहा है। मैं अपनी तरह से कहूंगा...।' प्रवीण भाई शर्मिला को आश्वस्त कर रहे थे।

'ये बातें तो मैं उनसे कई बार कह चुकी। पर ये बात नहीं..।' शर्मिला रुक गई। आँखें उठा कर जब प्रवीण भाई को देखा तो शर्मिला की आँखें डबाडबा आई थीं।

प्रवीण भाई को लगा मामला गंभीर है। वे जितना आसान ओर सीधा समझ रहे थे, उतनी सीध ी बात बात है नहीं। पर अब कोई विकल्प देकर पूछें कैसे.... और कोई विकल्प दें तो कैसे? वे शांतभाव से शर्मिला को निहारते रहे। वे शर्मिला को बहुत तो नहीं जानते, पर वह पढ़ी-लिखी है और भद्र खानदान की है। वह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं करेगी, इसका उन्हें विश्वास था।

'अंकल वे जब भी बाहर से लौटते हैं तो बिजनेस की कोई बात मुझसे शेयर नहीं करते...। वे हमेशा लड़कियों की बात करते हैं। थाईलैंड में ऐसी लड़कियां हैं, कलकत्ता में, दिल्ली में, बैंगलूर में... ऐसी रिसेप्शनिस्ट है, बिजनेस में अब महिलाएं आई हैं तो कितनी मजेदार बातें करती हैं। प्रेस कांफ्रेंस और पार्टी में कैसी लड़कियां मिलती हैं। वे बहुत सारी बातें वे चटखारे ले लेकर सुनाते हैं।. .. कहते हैं कि एन्जाय-लाइफ। एक-बार-दो बार, पर अब तो जब भी बाहर जाते हैं यही अनुभव सुनाते हैं... बहुत एन्जाय किया... मेरी आँखों को वे पढ़ नहीं पाते, उनकी आँखों में अब अकसर सुरूर रहने लगा है। मेरा हालचाल तो दूर की बात है। बच्चों तक का ध्यान उन्हें नहीं रह पाता।

'पर इतना बड़ा निर्णय...?'

'दूसरा क्या रास्ता है मेरे लिए। जिस वातावरण में मैं रही हूं, उसके संस्कार मुझमें यह सब अधिक दिनों तक सहने की इजाजत नहीं देते।'

'पर इससे तो सारी सुख-सुविधाओं से वंचित होना पड़ेगा?

'कौन-सी सुख-सुविधा... जब पेट में भयंकर खराबी हो तो कितनी भी स्वादिष्ट और शानदार भोजन मिले, किस काम का...।'

'मुंबई जैसी जगह में इतना विशाल बंगला, मलाबार हिल्स में, घर में हेलीकाप्टर, एयरपोर्ट पर अपनी एयरबस इतने नौकर-चाकर...।'

'ये सब मिलकर भी मुझे 20 वर्ष पहले का यशराज नहीं दे सकते। यशराज के बदले इन चीजों का मेरे लिए कोई मतलब नहीं है...।'

'कोई और रास्ता भी हो सकता है।'

'मैंने तीन साल तक सोचा। मुझे कोई रास्ता नहीं सूझता... इसलिए तो अंकल आपसे बात करने आई हूं। मैं जानती हूं कि आप मेरा या परिवार का अहित कभी नहीं होने देंगे। शर्मिला बड़ी उम्मीद से अपने विचार का समर्थन प्रवीण भाई से चाह रही थीं।

प्रवीण भाई समझाने की मुद्रा में कहने लगे कि 'देखो अपना अधिकार छोड़ना और बात है। तुम्हारे पिता भी कोई छोटे व्यक्ति नहीं हैं। वे भी बड़े बिजनेसमैन हैं। तुम्हें किसी बात की कमी नहीं होगी। तुम्हें एक बात पूछूं.... तुम्हारे मन में कोई और तो नहीं जिस कारण तुम इस निर्णय तक पहुंच गईं।'

'कैसी बात कर रहे हैं अंकल। क्या आपको लगता है कि ऐसी-वैसी बात मन में रखकर मैं आपके सामने बैठ पाती।' शर्मिला का मन प्रवीण भाई के इस प्रश्न से खट्टा हो गया।

'मेरा यह मतलब नहीं था। मैं तो यह कहूंगा कि तुम भी जताओ यशराज के सामने कि कोई तुम्हारा बॉयफ्रेंड है-- भले झूठ-मूठ ही सही। यह नुस्खा आजमाओ देखेंगे क्या होता है? डायवोर्स वाला विचार तो भूल ही जाओ।' प्रवीण भाई की बात के कुछ आयाम शर्मिला को समझ में आ रहे थे।

भोजन समाप्त हुआ। शर्मिला वहां से निकल पड़ी। प्रवीण भाई बाहर तक नहीं आए। आधी दूरी से ही उन्होंने शर्मिला को विदा दी। शर्मिला ने बिना किसी की चिंता किए प्रवीण भाई के पैर छुए। वह सीधे बाहर आई और अपनी गाड़ी में बैठ गई। ड्राइवर से कहा, 'घर चलो!'

दूसरे दिन होटल ताज में ही नये यूनिट की लांच-पार्टी थी। मुंबई के प्रतिष्ठित बिजनेसमैन फिल्मी सितारे, मीडिया पर्सन्स, कुछ मंत्री, बड़े नौकरशाह इस लांच पार्टी में आए थे। शर्मिला के मां-पिता भी उपस्थित थे। प्रवीण भाई तो खासतौर पर इसी के लिए अहमदाबाद से आए थे। वे अब बहुत बारीकी से यशराज की गतिविधियों को देख रहे थे। यशराज ने हॉल में आते ही प्रवीण भाई के पैर छुए थे। प्रवीण भाई यशराज की आँखों में झांकना चाहते थे पर वह बहुत जल्दी में था।

जब औपचारिक कार्यक्रम खत्म हुआ और सब जाम टकराने, सूप और जूस में मग्न थे तो शर्मिला की मां ने देखा प्रवीण भाई अकेले ही बड़े से गोल टेबल पर जूस पी रहे हैं। वे प्रवीणभाई के करीब आईं। बैठीं। परिचय तो था ही बोलीं, 'कल आपने जो सलाह शर्मिला को दी, यह मैं सालभर से कह रही हूं पर मेरी बात उसे नहीं जची। कल वह आपसे मुलाकात पर खूब बोली। आप पर उसे बहुत भरोसा और श्रद्धा है। चलिए, आपकी बात वह मान गई।' सुनकर प्रवीण भाई मुस्कुरा दिए।

प्रवीण भाई और शर्मिला की मां यह देखकर सुखद आश्चर्य में थे कि पार्टी में यशराज शर्मिला का हाथ थामे सब लोगों से मिल रहा था। फिल्मों की हीरोइनें, युवा महिला पत्रकार, महिला बिजनेसवीमेन दूर से यह सब देख रही थीं!

●

कब ले बीती अमावस के रतिया

गीताश्री

बारह साल बाद जैसे उमा कुमारी के भाग्य जगे, वैसे ही सबके जगे। हाईवे के किनारे बसा पूरा गांव चहचहा उठा था। सबकी जुबां पर यही बात थी। खातोपुर गांव का उत्साह देखते बन रहा था। खुद उम्मी यानी उमा कुमारी के पतिदेव अचंभित थे कि जिस स्त्री को अब तक त्याज्य समझा था, उसे गांव के लोग इतना प्यार कैसे करते हैं। उसे उम्मो के प्रति गांव वालों के प्यार पर उतनी खुशी नहीं हो रही थी जितना अचंभा हो रहा था। वह अपनी शहरी आँखें फाड़-फाड़ कर कभी आधुनिक रंग ढंग में रंग चुकी युवा बीबी को देखे तो कभी ओसारे पर जमा महिला मंडल की औरतों को। सिर्फ औरतें नहीं, उनके आगे कई बच्चे खड़े-खड़े, टुकुर-टुकुर देखे जाएं तमाशा। गाड़ी दरवाजे पर ही खड़ी थी। कोई उससे सवाल नहीं पूछ रहा कि इतने साल कहां रहे। जवान बीवी की खोज खबर क्यों न ली। क्यों लापता रहे कि कोई ढूंढ न सके। जब पता चला तो कहानी बदल चुकी थी। पता चले भी पांच ही साल हुए। उम्मो ने कैसे दिन-रैन बिताए, क्या पता? उम्मो के पतिदेव यानी मालभोग ठाकुर जानना भी नहीं चाहते कि उम्मो के दिन-रैन कैसे कटे उनके बिना। बस, वे इन दिनों खाली थे, पत्नीविहीन थे। पत्नी उनसे अलग होकर बच्चा समेत दूसरे परिवार में रम चुकी थी। लगभग शहर से गायब थी, जैसे वे खुद गायब हुए थे कभी। उन्हें पहली बार पता लगा था, लापता होने का दर्द पीछे छूट जाने वालों के लिए क्या होता है। अब वे लापता नहीं रहना चाहते थे और पुराने पते पर लौट जाना चाहते थे जहां कोई अब भी उनकी राह देख रहा था। उन्हें एक औरत की सख्त जरूरत थी जो शहर में उनके खालीपन को भर सके। उनकी देखरेख कर सके, उनका घर संभाल सके। वे इन दिनों नितांत अकेले हो गए थे। तनहाई काटे नहीं कट रही थी। अकेला घर काट खाने दौड़ता था। स्कूल से निकलने के बाद सीधे कोचिंग सेंटर पहुंच जाते और देर शाम तक का समय वहीं बिताते। रात तो आखिर सबको अपने घर लौटने पर मजबूर कर ही देती है। पहले वे कोचिंग सेंटर में एक घंटा समय देते थे। जब से अकेले हुए हैं, कोचिंग सेंटर में ज्यादा बैच पढ़ाने लगे हैं। कमाई भी अच्छी और वक्त भी अच्छा कट जाता है। घर की याद नहीं रह जाती लेकिन कब तक घर तो लौटना ही था।

दिनों के बीच में एक रात होती है जो विभाजन करती है। अगले दिन के लिए इनसान को तैयार करती है। एक नई शुरुआत के लिए रात एक स्पेस है जहां से प्रस्थान की भूमिका तैयार होती है। अगली रणनीति की योजना बनती है। रात सिर्फ विश्राम स्थल नहीं, प्रस्थान बिंदु भी है जहां

मालभोग उर्फ मालू जी तरह तरह की रणनीति बनाया करते हैं। जिंदगी अकेली न कटे, इसकी रणनीति रात में ही बनाते हैं जो सुबह तक ध्वस्त हो जाती है। किसे अपने साथ लें, किससे सलाह करें, हिम्मत नहीं जुटा पाते कि गांव एक बार फोन करके बात ही कर लें। पांच साल से संपर्क बढ़ाना शुरू किया था, जब बेटे ने कहा था- 'दादी से मिलना है, गांव कैसे होता है, आपका घर देखना है पापा...'

बेटा अपनी जड़ खोज रहा था और पापा जड़ से कटकर भुरभुरी जमीन पर उग रहे थे। उन्हें कभी अहसास ही न हुआ कि वे जड़विहीन हो चुके हैं और उनके पैरों तले ठोस जमीन नहीं, रेत ही रेत है।

1999 की गरमियों में जो घर छोड़कर निकले, सो लौटे ही नहीं। एक खत लिखकर सूचित कर दिया कि वे हमेशा के लिए घर छोड़कर जा रहे हैं। उनकी खोज बेकार है, कभी न लौटेंगे। जब तक वह स्त्री घर में रहेगी, हम पैर न धरेंगे। जवाब के लिए कोलकाता का एक पता भेजा था। उस पते पर गांव से कोई न गया। जाता भी कौन। पिता तो बचपन में ही गुजर गए थे। बची थी केवल मां और एक विवाहित बहन जो यदाकदा मायके की देखभाल बेटे की तरह करती थी। शिक्षिका मां ने जरूर अपने हाथों से खत लिखा- जिसका मजमून इस प्रकार था-

प्रिय बेटाजी

आप हमारे लिए जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान हैं। आपने तो हमारी कोख को लज्जित किया है, हमें कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ा है, हम आपको अपने जायदाद से भी बेदखल करते हैं और आज से मेरे लिए बेटा की तरह होगी आपकी पत्नी, मेरी बहू जिसे मैं अपनी पसंद से ब्याह लाई हूं...जिसकी वजह से आप घर त्याग कर चले गए। अपनी मां तक का खयाल न रखा। इस बुढापे में मेरा कोई आसरा नहीं है सिवाए बहू के। हम इसके भरोसे जिंदगी काटेंगे। आप जहां रहें, खुश रहें, आबाद रहें...हम सब मर गए आपके लिए।

इस खत के साथ खातोपुर गांव हमेशा के लिए दिल दिमाग से मिट गया। सब कुछ भुलाकर मालभोग ने कोलकाता से भी दूर मणिपुर जाकर अपनी जिंदगी शुरू की। गणित में होशियार मालू ने वहां प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना शुरू किया और साथ में बी.ए. की पढ़ाई भी जारी रखी। जो भी फैसला उसने लिया, उसके लिए वह खुद ही तैयार नहीं था। मुजफ्फरपुर में होस्टल में रहकर पढ़ाई करते हुए उसे पता नहीं था कि उसके पीछे गांव में उसकी मां ने उसकी आगामी जिंदगी की पटकथा कुछ इस तरह लिख दी कि उसे सब कुछ छोड़कर अनजान नगर में बस जाना पड़ा।

कैसे भूल जाए 1999 की गर्मी छुट्टी को। 15 मई को गांव आया दो महीने के लिए और इधर मां ने बैंड बजवाने की पूरी तैयारी कर ली थी। वह चीखता रहा कि एक बार लड़की से मिलवा दो, मां ने आगे में फोटो रख दिया। लड़की का बायोडाटा देखना चाहता था, मां ने चार लाइन की जानकारी आगे में धर दी-

लड़की का नाम- उमा कुमारी, जन्म तिथि, शिक्षा- दसवीं पास, रंग- गेंहुआ-गोरा, लंबाई- पांच फीट, गृहकार्य में निपुण, मृदुभाषिणी, लोकगीत से लगाव। व्रत त्योहार में गहरी आस्था।

बायोडाटा देखकर मालू ने माथा ठोक लिया। मां खुद शिक्षिका होकर उसके भाग्य का ऐसा फैसला कैसे कर सकती थीं। वह हैरान था। उसने प्रतिवाद जताना शुरू किया, मां अपना कलेजा

पकड़कर जमीन पर लुढ़क जाती। पूरा घर, पट्टीदार सब हाय-हाय करने लगते। लगन के समय में ऐसा अशुभ नाटक करना मालू को शोभा नहीं देता है। सब लोग मालू को कोसने लगते। मालू को अपना भविष्य अंधकारमय दिखता और चुप लगा जाता। इसी माहौल में मालू ब्याह दिए गए उमा कुमारी से। उधर उमा कुमारी को कुछ नहीं पता कि लड़के वालों के घर में क्या चल रहा है। वे तो ब्याहकर आ गई। मड़वा में ही देख लिया था अपने पतिदेव को और निहाल हो गई थी। पतिदेव ने एक बार भी पलटकर बहू का मुंह नहीं देखा। ससुराल में इतनी चुहल होती रही, मुंह दिखाई की रस्म हुई, काहे को मालूजी पलटकर देखें। दूल्हे को अतिरिक्त रूप से गंभीर देखकर कुछ लोगों ने कानाफूसी शुरू कर दी थी। मालू के चेहरे से साफ पता चल रहा था कि वे अपनी शादी में नहीं, किसी मातम में शामिल होने आए हैं। उनके मन में क्या चल रहा है, उससे सब अनजान थे। उमा कुमारी ने तो बस एक झलक देखी और उसी छवि में खो गई। उसके पास सपने बुनने का अवकाश था, भविष्य सोचने के लिए पर्याप्त अवसर भी। शादी ब्याह में दूल्हा-दुल्हन को छोड़ कर सबके पास बहुत काम होता है। दो तमाशबीन होते हैं जो सारे रिश्तेदारों को नाचते हुए, चहकते हुए देखते हैं और मजे लेते हैं। दोनों की इतनी कद्र होती हैं कि कसम से जीवन में पहली और आखिरी बार वीआईपी होने का अहसास होता है। दोनों अपनी अपनी दिशाओं में खोए हुए थे। दोनों सपने बुन रहे थे, ऊन के गोले और उनके रंग अलग अलग थे जबकि मर्जी की शादी में एक ही गाना बजता है- तेरे मेरे सपने अब एक रंग हैं...। यहां तो रेत पर ताश के महल खड़े होने की नौबत आ गई थी। मालूजी दुल्हन लेकर चले और कोहबर में जाने से पहले ठिठक गए। बहन रास्ता रोककर खड़ी थी।

'बहिन सभा के नेग पहिले चुकइयो हे दुलरुआ भइया
तब जइहो कोहबर आपन...हे दुलरुआ भइया...'

मालूजी ने सोचा...अच्छा मौका है...पॉकेट से सारी सलामी निकाली जो ससुराल में आते वक्त बड़ों के पैर छूने पर मिली थी। जेब से निकाली और सारी की सारी बहन को थमा दी। बहन गदगद और हैरान। इतना कंजूस भाई इतना मेहरबान कैसे- वह संशकित होकर रास्ते से हटी और दुल्हन अंदर, समूची भीड़ अंदर, मालू बाहर से ही खिसक लिए। गर्दन से पीली धोती उतारी और देह पर से पीले अक्षत झाड़ते हुए सीधे दालान पर बैठ गए। वहां बहिन पहले से बैठी हुई जीजा के कान में कुछ कह रही थी...जीजा का चेहरा तन गया। वह सावधान की मुद्रा में उठा और मालूजी से चिपक गया। मालू को ये सब असहज लगा।

मालू ने कहा- 'मुझे दिशा के लिए खेत में जाना है...'

जीजा ने कहा- 'क्यों, बाहर मर्द वाले लैट्रीन में जाओगे तो कोई दिक्कत...? तुम्हीं शहरी लोगों के लिए बनवाया गया है साले बाबू....'

'हमको खुले में जाना है...कोई दिक्कत...'

'हां, दिक्कत, दूल्हा खेत में जाएगा...बताओ जरा। हालत देखी है अपनी...जाओ, चापाकल पर नहाओ धोओ पहले...फिर बाहर निकलने लायक लगोगे...'

'हमको आप मत बताइए...बोलते हुए मालू उठे और चौखट पर रखा लोटा उठाया और खेत की तरफ चल पड़े। पीछे-पीछे जीजाजी...'

वह हाथ से इशारे करता रहा...लौटने का। जीजा क्यों लौटने लगे। मालू ने आँखें दिखाई तब जाकर जीजा के कदम रूके। वहीं खड़े रहे जहां से घनी झाड़ी नजर आने लगी थी।

उनका इंतजार लंबा खींच गया। वे झाड़ी में झांकने गए। लोटा वैसे ही पड़ा था। मालू हाईवे का रास्ता पकड़कर कब के दूर निकल चुके थे। गांव की भोर हो चुकी थी। हल्के अँधेरे में ही दुल्हन विदा होकर आई थी। जब तक पूरा गांव जगता, खेत की तरफ शौच के लिए आता, मालू गांव से पार हो चुके थे।

जीजाजी खाली हाथ चिल्लाते हुए लौटे। माथा पीट रहे थे, उनको लोगों ने धरा। आंगन की औरतें बाहर निकल आई। कोहबर में औरतो से घिरी दुल्हन अकेली रह गई थी। उस तक सिर्फ आवाजें, चीख, पुकार पहुंच रही थी।

उसके भीतर शोर नहीं, सन्नाटा पसर रहा था जिसके साथ जीवन बिताने का फैसला कर रही थी। ऊन के गोले बिखर गए थे। सपनों की स्वेटर उधड़ गई थी। उसमें पांव धंस रहे थे और आँखों से बुनाई दिखनी बंद हो गई थी। उसने कोहबर की दीवार पर सिर टिकाकर आँख बंद कर लिया।

नींद, गम के मारो के लिए सांत्वना की तरह होती है। सारी रात की जगी उमा कुमारी को नींद आ गई थी।

उसके बाद उसे नींद से मोहब्बत होने लगी थी। जब मौका मिलता, कहीं भी सोने की जगह ढूंढ लेती थी। माहौल सामान्य हो चला था। मायके वाले विदा कराने नहीं आए। सासू मां ने हमेशा के लिए अपने पास रख लिया। उन्हें घर देखने वाली की जरूरत भी थी। उन्हें सहायिका मिल गई थी। बेटे का गम भी खत मिलने के बाद कम हो गया। सलामती की खबर काफी राहत देती है। दोनों अपनी अपनी जिंदगी में रमने लगी थीं।

उमा कुमारी के पास रहने को घर तो था, खाने को अन्न था। सब कुछ जरूरत भर था। सासू मां की तीर्थ यात्राएं बढ़ चली थीं। पैसे की तंगी का रोना बढ़ गया था। उमा कुमारी की देह पर कपड़े जरूरत भर थे। खेत के अन्न और सब्जी से काम चलाने की नसीहतें थीं। कपड़े खुद सिलकर पहनने की हिदायतें थीं। स्वेटर खुद बुनकर पहनने का हुकुम था। बाजार पहुंच से बाहर था। सासू मां का जुमला अकसर उछलता था-

'का पर करूं सिंगार, पिया मोरा आन्हर...'

सिंगार के लिए न पैसे थे, न साधन न मन। न घर के काम कभी खत्म होते थे। मन में छोटी सी इच्छा जग रही थी...कि सासू मां की तरह ही टीचर ट्रेनिंग करके टीचर बन जाए। सरकारी नौकरी की चाहत उसे खींच रही थी। जी जान लगाकर सासू मां की सेवा में खुद को लगा दिया था। उनका हर सितम सहे जाए, कड़वे वचन को हवा में उड़ा दे। सासू मां यानी शशिकला देवी अपनी बहू की सेवा से प्रसन्न रहती थीं और पट्टीदारों के सामने बेटे को कोसती रहती थीं जिसने उनकी पसंद की बहू को अपनाने से इनकार कर दिया था। इस बात को वे अपनी पराजय के रूप में लेती थी। एकाध बार दबी जुबान में किसी रिश्तेदार ने कहा- 'लड़की की उम्र ही क्या है, ब्याह क्यों नहीं देती..क्यों मरद के बिना घर में बिठा रखा है...कहीं ऊंच-नीच हो गया तो...'

बड़ी गोतनी ने कहा- 'बहू बनाकर लाई थी, बेटी बनाकर ब्याह दो। कब तक घर पे बिठाकर रखोगी लड़की को...बेटे ने तो छुआ तक नहीं लड़की को...'

शशिकला देवी बुरा मान जातीं।

'अरे...ऐसे कैसे...मेरे घर की इज्जत है, ब्याहकर लाई थी, मरते दम तक यही मेरी बहू रहेगी चाहे बेटा वापस लौटे न लौटे...'

'अब क्या लौटेगा...मालू की माय, परदेस में बस गया, शादी कर ली, बच्चे हो गए होंगे...तुम भी किस निर्मोही के इंतजार में बैठी हो...'

शशिकला देवी कुपित हो उठतीं। उन्हें लगता कि सब मिलकर उनके बुढ़ापे का सहारा छीनना चाह रहे। जाने क्यों उनको लगता कि एक दिन उनका बेटा लौटेगा और उनकी पसंद को अपना लेगा। पागल है, एक बार देखता तो सही...सुहागरात मना लेता तो कभी ना जा पाता...बहू इतनी भी बुरी नहीं है...सुंदरता का क्या है...जितना संवारो, संवरती है...

शशिकला देवी को मलाल रह गया कि बेटे ने बहू को जी भर के न देखा न प्यार किया। बहू ऐसी कि कभी शिकायत नहीं करती। दिन भर काम में जुती रहती, खाली समय में कुछ-कुछ बनाती रहती और सोती रहती। नींद बहुत प्यारी थी उसे। नींद के कारण शशिकला देवी बहुत डांट लगाती थीं। उमा कुमारी को डांट का कोई फर्क नहीं पड़ता था। फर्क तब पड़ता था जब वह नगद रुपये उनसे मांगती और वे कोई बहाना बनाकर टाल जाती। दस सवाल पूछतीं। फिर उसने मांगना ही बंद कर दिया। किताबें चाहिए थीं, आगे की पढ़ाई करनी थी। दस काम होते थे जिसके लिए कैश चाहिए। हर रोज नींद में जाने से पहले उपाय सोचती..

दशहरे की छुट्टियां थीं। शशिकला देवी गायत्री परिवार की महिलाओं के साथ हरिद्वार के लिए रवाना हो चुकी थीं। घर में अकेली उमा कुमारी और अन्न पानी। बगल में कुछ पट्टीदार लोग जिनकी चहल पहल से उसे आश्वस्ति मिलती कि लोग हैं आसपास। मौसम बदलने के कारण आसपास रौनक ज्यादा थी। गांव के पास से ही हाईवे गुजरता है सो बाहर की आबोहवा आती थी। एक दोपहर मचिया पर बैठी बैठी उमा नगद रुपयों के बारे में सोच रही थी। कैसे पैसा आए, कहां से,...सामने बड़ी-सी टोकरी में गेंहू पर नजर पड़ी। मोटा दाना, साफ सुथरा, सोने-सा दमकता हुआ। उमा उठी और बाहर की तरफ दौड़ी। मंगरूलाल बाहर गाय के लिए चारा काट रहा था। उसकी बीबी उसके लिए खाना लेकर आई थी। दोनों साथ साथ बैठे किसी बात पर ठिठिया रहे थे। उमा का मन न हुआ कि इस रंग में भंग डाले। कुछ देर खड़ी रही। अपलक दोनों को देखती हुई...उसे नींद की तलब महसूस होने लगी थी। अभी बिस्तर मिलता तो सो जाती...

मंगरू की नजर पड़ गई। उसने अपनी बीबी को भेजा। नींद के झोंके से उबरकर उमा कुमारी ने मंगरू की बीवी को अपनी योजना बताई। फिर क्या था। थोड़ी देर में दोनों गांव से निकलकर साप्ताहिक हाट में पहुंच गई थीं। टोकरी का गेहूं अच्छे मोल में बिक गया। हथेली पर रुपये लिए, रिक्शा पर बैठी दोनों स्त्रियां खिलखिलाती हुई चली आ रही थीं। मंगरू ने यह दृश्य देखा, उसे भीतर से राहत मिली। उसने बाद में अपनी बीवी को उमा की दोस्ती में निहाल होते देखा। जब तक मलकिनी नहीं आ रही हैं, तब तक दोनों खूब घूम लो...आते ही पता चलेगा...मन ही मन बड़बड़ाता मगर टोकता नहीं। जानता था कि यह चार दिन की चाँदनी है...उमा के हिस्से फिर अँधेरा।

दोनों रोज बाजार जातीं, पहले उमा ने रेशमी धागे और सूती कपड़ों से स्टायलिश झोले बनाए, उन्हें बेचा, फिर गुडिया, गुड्डे, मोतियों से छोटे-छोटे पर्स बनाएं, सब बाजार में बिकते गए। हेयर बैंड

बनाया। जो बनाती, एक दुकानदार सब खरीद लेता। उमा को ऑर्डर मिलने लगे। वह अपने लिए पहली बार सलवार कुर्ता खरीदकर लाई, नाइटी लाई, किताबें, और सिंगार के कुछ सामान। शशिकला देवी ज्यादा दिन वहां रुक गईं। उमा को और आजादी मिली। वह मन ही मन दुआ करती कि कुछ समय और न आएं। उसने अपने पुराने कपड़ों को मिलाकर रंगीन धागे से सूजनी बनाया, वो तो गांव के लोग ही हाथोंहाथ खरीद ले गए। उमा के हुनर की खुशबू दूर-दूर तक फैलने लगी थी। शशिकला देवी लौटी तो झटका खा गईं। जिस उमा को छोड़कर गई थीं वो तो नहीं मिली उन्हें। जो उमा मिली वो उन्हें गंवारा नहीं हुई। बहुत कलह हुआ और अंत में एक घर को दो स्त्रियों ने मिलकर आपस में बांट लिया। शशिकला देवी का बस चलता तो घर से निकाल देतीं। तब तक उमा के पट्टीदारों में और आसपास बहुत समर्थक हो गए थे जो अकेली शशिकला देवी पर भारी पड़ गए थे। शशिकला देवी लोकोक्तियों के लिए मशहूर थीं। पट्टीदार पहले से खफा थे, उन्हें मौका मिल गया। क्योंकि शशिकला अकसर कहा करती- 'दाल और पट्टीदार जितना गले, उतना अच्छा।'

अब पट्टीदारों ने कहा- 'न तुम्हारी दाल गलेगी न हम पट्टीदार। गलोगी तुम। सब गए छोड़ कर, बहू भी गई। देखते हैं, बेटी कितने दिन देखरेख करेगी।'

इस प्रकार से दो स्त्रियों में पहली बार विभाजन देखा गया। उमा ने अपने काम के साथ गांव की पांच स्त्रियों को जोड़ लिया था। अब उसे नींद कम आने लगी थी। काम और पढ़ाई से फुरसत कहां। उसका घर हस्तकला का छोटा-मोटा सेंटर बन गया था। हाईवे से गुजरने वाले टूरिस्ट को ढाबे वाले इस घर की तरफ भेज देते थे। जो आता, बिना कुछ खरीदे नहीं जा पाता।

दिन कट रहे थे। कई साल बीत गए। उमा ने काम को ज्यादा नहीं बढ़ाया। उसे तो सरकारी नौकरी में जाना था। उसी दिशा में आगे बढ़ रही थी। अपने साथ-साथ पांच और औरतों को रोजगार दिलवा दिया था। खुद पढ़ाई में और ट्रेनिंग में व्यस्त। शशिकला देवी ताना मारतीं 'किसके नाम का सिंदूर लगा रखा है। मिटाती क्यों नहीं, मेरा बेटा गया तुम्हारे हाथ से। उसका घर बस गया। वह कभी नहीं लौटेगा। मैं भी उसी के पास चली जाऊंगी...यहां का सब बेचबांच दूंगी...देखती हूं फिर कौन तुम्हें संपत्ति में हिस्सा दिलवाता है...चली क्यों नहीं जाती ये गांव छोड़कर...क्या रखा है यहां?'

उमा ने कभी पलटकर जवाब नहीं दिया था। पहले रो धोकर रह जाती या नींद लेने चली जाती। अब सुनकर मुस्कुरा देती है। काम में लग जाती है। शशिकला के सारे वार खाली चले जाते। उमा ने हमेशा सिंदूर, बिंदी लगाई। एकाध बार उसकी सहेली रूपा ने टोका भी...

उमा ने जवाब दिया- 'तू अपने समाज को नहीं जानती...अभी तो नाम के लिए पति है न, जिस दिन यह निशानी भी मिटा दी, सब मेरा क्या हाल करेंगे...मैं गांव के इसी घर में इसीलिए पड़ी हूं कि पति का घर तो है...मैं अकेली छोटे शहर में कैसे जी पाऊंगी...सोच जरा...कोई मरद तो चाहिए न साथ- न भाई है न बाप...सबने मुझे मरने के लिए यहां छोड़ दिया, मैं कैसे खुद को मरने दूं मैं मरने तक जिंदा रहना चाहती हूं, वो भी अपने हिसाब से...किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती...जो किस्मत में था, वो तो हो गया, मैं अपनी किस्मत बदल नहीं सकती, खुद को बदल सकती थी, बदल दिया, अब चलने दे...देखा जाएगा...जिंदगी पूरी पड़ी है...नौकरी हो गई तो यहां से चली जाऊंगी उसके पहले नहीं।'

'कब ले बीती अमावस के रतिया...'

रूपा चुहल करती।

'अरे... बीत जाएगी सखि...कोई अमावस इतनी लंबी नहीं होती कि अंजोरिया रात को रोक ले...'

उसी टोन में जवाब देती उमा।

दोनों हँस पड़ती एक साथ। रूपा के साथ चुहल के पल खूब मिलते थे। सुख-दुःख के बीच भी दोनों चुहल कर लेती थीं।

'और सिंदूर कब तक लगाएगी...?'

उमा के सिंदूर पर उंगली धरते हुए पूछा था।

'एक बार मुझे उनसे मिलना है रूपा...एक बार...फिर ...'

'जब तक तू सिंदूर लगाएगी, कोई और मरद तेरी तरफ ताकेगा भी नहीं...ऐसे ही जीवन गुजारेगी क्या...?'

उमा को ऐसी बातों पर फिर से नींद आने लगती थी...लंबी नींद...जिसमें अपने लिए वह सुकून ढूंढा करती थी। नींद की पनाह उसके लिए कितनी जरूरी थी। नींद उसके लिए वह नदी थी जिसमें तैरकर दुःख से दूर जा सकती थी। नींद में पानी ही पानी और उसमें डूबती उतराती उमा। कभी नदी, कभी झील, कभी पानी में डूबे खेत...कोसी नदी मानो खेतों में घुस आई हो...उस पानी में देखती हरी भरी फसलें सीधी खड़ी होने के बजाय पानी पर सो जाती थी...अधलेटी-सी...

उमा की पनीली नींद हमेशा कर्कश आवाजों से खुलती थी। पूरा शरीर गीला होता था। जाने नींद भिगोती थी या पसीना होता था। गरम सपनों के भाप से भी तो भींग जाते हैं हम।

ऐसे जाने कितने बरस बीते। उमा ने बरस नहीं युग गिने। उम्र नहीं गिने, जिंदगी के दिन गिने। बारह सालों के संघर्ष ने उसे 32 साल की उम्र में चालीस पार का बना दिया था। इस बीच पति की तरफ से कोई संपर्क की कोशिश न हुई, न कोई खत आया। उमा ने अपने मोबाइल नंबर को हवा की तरह दूर-दूर तक फैला दिया था। नौकरी के इंतजार में बेहाल हो गई थी। वैकेंसी निकलता तो आवेदन करती। कहीं न कहीं कोई विवाद खड़ा हो जाता, फिर रुक जाती बहाली। समस्तीपुर, कोचिंग सेंटर के अधेड़ मालिक द्रुमदल सिंह उमा के लिए वैकेंसी पर खास नजर रखते थे। दिल से उसकी मदद करना चाहते थे। उनका मानना था कि औरतों के लिए टीचिंग जॉब सबसे बेहतर और सुरक्षित होता है। वे ग्रामीण पृष्ठभूमि की लड़कियों, औरतों को यही समझाते थे। उन्हें सारी जानकारी मुहैय्या कराते थे। उमा को उनके रूप में एक बड़ा सहारा मिल गया था। उमा को किसी भी दिन एप्वाइंटमेंट लेटर का इंतजार था।

आंगन में अपनी हस्तकला टीम के साथ बैठी उमा गप्पे मार रही थी। इस महीने एक एनजीओ ने अलग तरह के कलात्मक झोला बनाने का बड़ा ऑर्डर दिया था। सभी लगी पड़ी थीं जी जान से। रेशमी और सूती धागों का संसार आंगन में फैला पड़ा था। टीम में शोभा पैचवर्क का काम अच्छा कर लेती थी सो एनजीओ का लोगो बनाने में व्यस्त थी। यह स्त्रियों का साझा संसार था जहां सबके चेहरे पर स्वाभिमान का नूर टपकता था। तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई पड़ा। कोई गाड़ी रुकी थी। सबसे पहले आंगन में शशिकला देवी दाखिल हुईं, साथ में रिश्ते की औरतें। सबके चेहरे खिले हुए। उमा से अलग बात करना चाहती थीं। उमा ने हैरान होकर देखा। कई साल बाद उसकी तरफ कदम

धरा और उससे बात कर रही हैं। पिछले कुछ सालों में तो उमा के मरने जीने की खबर भी न ली। न उमा को अपनी तरफ फटकने दिया। ऐसी दीवार खींच दी थी कि दोनों उसके पार नहीं देख पा रही थीं। उमा चकित होती हुई उनके पास गई। शशिकला देवी को सुनते हुए उमा के चेहरे का रंग पल-पल बदल रहा था। कोई एक रंग टिकता न था। सारी औरतें काम छोड़कर बाहर निकल गईं। बाहर पहले से ही काफी लोग जमा थे। वहां तरह तरह की सरगोशियां सुनाई दे रही थीं। औरतें मुंह पर हाथ रखें बोले कि उमा के भाग जग गए। ऐसे ही सबके जगे। बारह साल बाद आदमी लौट आया। उमा की तपस्या रंग लाई...मां का बेटा लौट आया..अब सब ठीक हो जाएगा...बड़ा दुःख देखी हैं सास बहू...अब सब मिलजुलकर रहे...और क्या चाहिए...

बाहर कुर्सी पर बैठा मालू बेचैनी से पहलू बदल रहा था। निगाह आंगन की तरफ थी। वह पहले सीधे आंगन में आना चाहता था लेकिन मां ने रोक दिया था। शशिकला देवी खुद को फिर से बीच में रखने की ख्वाहिशमंद थी। आखिर इस बहू को ब्याह कर तो वही लाई थीं। सीधे बेटे को डील करने कैसे दें, कहीं दोनों मिल गए तो उनका क्या होगा? बड़ी मुश्किल से तो बेटा लौटा है, बहू को अपनाना चाहता है। उनके कलेजे पर रखा पत्थर हट गया था। गायत्री मंत्र का जाप करती हुई वे उमा से बात करने घुसी थी।

उमा ने उनकी पूरी बात सुन ली। उसकी आँखें बार बार छलक रही थीं। मन हुआ, सारा गुस्सा, मान सम्मान झटककर दौड़ जाए, बांहों में झूल जाए...खूब लड़े, खूब बोले...एक जमाना बीत गया, पूरे जमाने की बात कह ले...वो सारी चिट्ठियां जो बिन पते के लिखी थीं, उन्हें पढ़वा दे।

उससे बाहर न जाया गया। बाहर की भीड़ उसे अच्छी नहीं लग रही थी। उसने शशिकला को धीरे से कहा-

‘उनको अंदर भेज दीजिए। आप लोग जाइए...हम अकेले में बात करना चाहते हैं...’

मालू को इसी पल का इंतजार था। पल भर में वह उमा को बांहों में घेरे हुए खड़ा था। भीड़ बाहर दुआएं पढ़ रही थी।

उमा से कुछ न कहा गया....फफक कर रो पड़ी। मालू की बातें उसे सुनाई दे रही थी...

पूरे एक युग की कथा वह उसी पल में बता देना चाहता था। अपने भागने की कथा से लेकर वापस आने तक की कथा। जबरिया ब्याह ने उसके भीतर गुस्सा भर दिया था। घरवालों से बदला लेने के लिए उसने ऐसा किया...अपने हर गुनाह को वह कबूलता गया...मणिपुर में अपनी शादी की बात, फिर बच्चा...फिर पत्नी से मनमुटाव...फिर पत्नी का बच्चा समेत घर छोड़कर चला जाना बिना बताए...जाने कहां...कोई क्लू नहीं मिल रहा है...

एक बार भी ये नहीं कह पाया मालू कि उसे कभी एकांत में उमा की याद आई। जमाने की उस कथा में कहीं जिक्र न था उमा का।

उमा ने गला साफ करके मुलायम आवाज में पूछा- ‘अब क्यों आएं हैं? मुझसे क्या चाहते हैं?’

‘अरे, मां ने बताया नहीं क्या...’, मालू झुंझलाया।

‘हमें आपसे जानना है...’

‘तुम साथ चलोगी न, हम कोलकाता शिफ्ट कर गए हैं, मणिपुर हमेशा के लिए छोड़ दिया है...तुम्हारे साथ नयी जिंदगी शुरू करना चाहता हूं...मेरे साथ चलो...’

'आपने जो मेरे साथ किया, उस पर शर्मिंदा हैं आप? हमसे माफी मांगिएगा, सबके सामने गांव वालों के सामने...अपनी मां के सामने...लिखित दीजिएगा कि हमसे ये ये गलती हुई और आगे फिर कभी नहीं करेंगे ऐसा?'

'मेरा जीवन था, मुझे हक था अपने हिसाब से फैसला लेने का, लेकिन तुम्हें लगता है, मैंने गलती की तो गलती तो हुई उमा...लेकिन माफी क्यों...पति पत्नी में एतना कहीं लिखत-पढ़त होता है, तुम कोर्ट हो क्या..? कैसी बातें करती हो...?'

'आप मेरी वो रातें, वो मेरा इंतजार, मेरा सम्मान लौटा देंगे...'

'पूरी कोशिश करेंगे...'

अपना तपता हुआ गाल मालू ने उमा के गाल से सटाना चाहा....

उमा पीछे हटी। हाथ से उसके चेहरे को दूर किया।

'आपकी जिंदगी थी, आपने फैसला किया, मेरी जिंदगी तबाह कर दी...एक बार भी सोचा नहीं, कोई अपराध बोध भी नहीं आपको? आपको सब कुछ कितना आसान लग रहा है न मालू बाबू?'

उमा के मुंह से मालू बाबू सुनकर मालू को अजीब-सा लगा। वह तो एक ग्रामीण, देहाती पत्नी की उम्मीद में आया था जिसे लेकर उसकी अलग राय थी। जिसमें एक राय ये भी थी कि देहाती पत्नियां ज्यादा टिकाऊ होती हैं।

'उमा कुमारी ठाकुर....चलिए अब चलने की तैयारी करिए...मां से बात हो गई है, गांव वाले भी सब बहुत खुश...सब आपकी तारीफ कर रहे थे। गांव वालों पर तो तुमने जादू कर दिया है'

'अगर मैं न जाना चाहूं तो...?'

'तो मैं तीसरी शादी कर लूंगा...मत जाओ...मुझे पत्नी चाहिए...औरत चाहिए...मुझे घर बसाना है...अकेले जीवन नहीं काटना है...वंश चलाना नहीं है क्या..? एकलौता बेटा हूं खानदान का। दामोदर ठाकुर का बेटा मालभोग ठाकुर निःसंतान नहीं मरेगा उमा देवी...समझीं...चलिए...अब तक आप मेरे घर में हैं, मेरी पत्नी के रूप में...आप पर मेरा हक बनता है...मर्जी से नहीं जाएंगी तो जबरन ले जाऊंगा...जब तक साथ नहीं चलती, मैं यहां रहूंगा...'

मालू गुस्से में कांप रहा था। वह इतने साल बाद लौटा है और पत्नी स्वागत करने के बजाय बहस कर रही है।

बाहर तक मालू का चीखना पहुंच गया था। बाहर खड़ी भीड़ के सुर बदल गए थे।

'ऐसे कोई करता है क्या, इतने दिन बाद भाग जगे हैं, अब तो सुख के दिन आए हैं, क्यों नखरे कर रही है...?'

शशिकला देवी की आवाज 'चार पैसे क्या कमाने लगी, चार अक्षर क्या पढ़ लिए, दिमाग खराब हो गया है इस औरत का...जाना तो पड़ेगा चाहे थाना सिपाही करना पड़े...'

उमा ने मालू को घर से निकल जाने का इशारा किया। वह बौखलाया हुआ पलटा। मन हुआ एक तेज झापड़ लगा दे और झोंटा घसीटकर गाड़ी में बिठा ले। शशिकला देवी किसी से थानेदार को बुलाने की बात कर रही थीं।

बाहर ये सब चल रहा था कि उमा अपने हाथ का बनाया हुआ कलात्मक झोला लिए हुए बाहर निकली। क्रीम कलर का दुपट्टा ओढ़ा जिस पर अपने हाथों से मिथिला पेंटिंग बनाई थी।

‘श्रीमान मालभोग ठाकुर...आप अपने नाम के अनुसार ही बहुत घटिया इनसान हैं। जाने क्या सोचकर आपका नाम खानदान ने रखा। नाम का बहुते असर होता है इनसान पर। हम औरतें आपके लिए माल नहीं हैं कि एक से मन भर गया तो दूसरी को भोगने आ गए।’

‘मुझे खेद है कि अब तक आपके घर में रही, पत्नी की तरह...यह कैद मेरी चुनी हुई थी, आज से आजादी भी मेरा चयन। आपका घर, आपकी पहचान, सुहाग के चिह्न जिन्हें मैंने कर्तव्य समझ कर ढोया, ये सब यहीं छोड़कर जा रही हूं...संभालिए...’

‘थाना सिपाही आप क्यों बुलाएंगी, अम्माजी...हमीं बुला देते हैं...हम बच्चे नहीं, पुलिस जानती है कि एक युग के बाद रिश्ता अपने आप खत्म हो जाता है...हमारे गांव में तो बारह साल बाद गायब आदमी को मरा हुआ मानकर श्राद्ध भी कर देने का रिवाज है, यकीन न हो तो पंडितजी को बुलाकर पूछ लीजिएगा।’

तनाव से उमा कंपकंपा रही थी। कांपते हाथों से उसने झोले से अपना मोबाइल निकाला कि मोबाइल बज उठा। मंगरू की पत्नी पीछे आ खड़ी हुई थी। उमा ने उसको आदेश दिया- ‘घर खाली कर दो, काम का सारा सामान अपने यहां से ले जा...हम अपना घर बनाएंगे।’

मंगरू की बीवी काम में जुट गई। पैर पटकता हुआ मालू बाहर की तरफ जाकर जोर-जोर से चीखने लगा था। उमा बेपरवाह, मोबाइल पर बात करती हुई सधे कदमों से सड़क की तरफ बढ़ी। गहरे तनाव में थी मगर पहली बार उसे नींद की तलब महसूस नहीं हो रही थी।

●

गुब्बारे

कबीर संजय

तनु और नीतू लस्टम-पस्टम स्कूल से घर पहुंचीं। तनु ने लोहे का गेट खोला और दोनों अंदर आ गईं। तनु ने गेट के बोल्ट को उल्टा घुमाकर बंद कर दिया। दरवाजे के पास जूतों की रैक लगी हुई थी। यहां पर कई जूते-चप्पलों के साथ ही पापा के जूतों की भी एक जोड़ी रहती थी। पापा-मम्मी काम पर जाते समय घर की चाबी इसी जूते में रख जाते थे। तनु ने जूते में से चाबी निकाली और दरवाजे का ताला खोला।

घर के अंदर घुसते ही दोनों बहनों ने सबसे पहले तो बस्ते का बोझ उतार फेंका। नीतू छोटी थी। तनु बड़ी। दोनों में दो साल की छोटाई-बड़ाई थी लेकिन इतने में भी जिम्मेदारियों और नखरों की भूमिका तय हो ही जाती है। पहले तो तनु ने भी अपने बस्ते को यूं ही कुर्सी के पास छोड़ दिया और अपने जूते और मोजे उतारने लगी। इतने में नीतू भी अपने जूते और मोजे उतारते हुए अंदर वाले कमरे में जा घुसी। तनु ने अपने जूते-मोजे उतारे और उसे दरवाजे के बाहर जूतों वाली रैक में रख दिया। अंदर जाकर उसने जूते रैक में नहीं रखने के लिए नीतू को डांट पिलाई तो नीतू भी कुछ ना-नुकुर सी करते हुए जूते को रैक में रख आई।

नीतू का स्कूल में दाखिला इसी साल हुआ था। पहली कक्षा में। उसकी उम्र छह साल के लगभग रही होगी। तनु उससे दो साल बड़ी। मां स्वास्थ्य विभाग में नौकरी करती थी। पिता केमिकल फैक्टरी में सुपरवाइजर थे। मां-बाप दोनों को ही काम पर जाना होता था इसलिए बेटियों को घर संभालना और उसकी देख-रेख करना काफी-कुछ आ गया था। सुबह जब वे दोनों सोकर उठतीं तो पता चलता कि मां-बाप तो काफी पहले से ही उठ चुके हैं। अपने नाश्ते के साथ-साथ वे बेटियों का टिफिन भी तैयार कर देते। उसी हबड़-तबड़ में तनु और नीतू भी स्कूल की तैयारी करती थीं। सात बजे वे दोनों घर से स्कूल के लिए चल देतीं। स्कूल ज्यादा दूर नहीं था। कॉलोनी में सब लोग जानते भी थे तो दोनों बहनें एक-दूसरे का हाथ पकड़े स्कूल चली जाती थीं। बारह बजे स्कूल की छुट्टी होती थी तो दोनों बहनें वैसे ही एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए वापस आ जातीं। तनु और नीतू को चाबी के बारे में पता था। वे दरवाजा खोलती थीं और तब तक घर में ही रहती थीं जब तक कि मां-बाप काम से वापस नहीं आ जाते थे।

उनके स्कूल जाने के तुरंत बाद ही पिता घर से निकल जाते थे लेकिन, उनके आने का समय थोड़ा ज्यादा था। वो शाम को सात-आठ बजे तक घर आते जबकि, मां घर से नौ बजे तक निकलती

और छह बजे तक घर आ जातीं। इस बीच दोनों बहनें घर के अंदर रहतीं। मोहल्ला जाना-पहचाना था। सभी बच्चे घुले-मिले थे। पास-पड़ोस भी सबको जानता पहचानता था। इसलिए कोई दिक्कत की बात थी नहीं थी। कोई परेशानी हो तो आसपास में किसी को भी कहा जा सकता था। रसोई में दोनों बहनों के लिए खाना रखा होता। तनु एक प्लेट में खुद के लिए और दूसरी में नीतू के लिए खाना निकाल देती। दोनों खाना खाते। फिर अकसर ही आस-पड़ोस की लड़कियां भी खेलने आ जातीं। खेल-खेल में कब छह बज जाते पता ही नहीं चलता। इसी बीच कई बार आपस में गुत्थम-गुत्था भी हो जाता। मारपीट और मान-मनोव्वल तो आम सी बात थी।

उस दिन भी स्कूल से घर आते समय तनु से नीतू थोड़ा नाराज सी ही थी। तनु ने नीतू का हाथ पकड़ा नहीं और अपनी दोस्त के साथ बात करते हुए आगे ही आगे निकल आई जबकि, नीतू बार-बार उसे अपना हाथ पकड़ाती रही। इसके बाद भी जब तनु का ध्यान उस पर नहीं गया तो नीतू ने भी मन में सोचा, हूं... बड़ी आई।

खैर तनु को आखिर अपनी बहन का ध्यान आया और उसने कसकर नीतू का हाथ पकड़ लिया। नीतू ने पहले तो हाथ छुड़ाने की कोशिश की फिर अपना हाथ उसके हाथों में दे दिया और दोनों साथ-साथ चलने लगीं।

जूते-मोजे उतारने, यूनीफार्म उतारकर घर के कपड़े पहनने, मुंह हाथ धोने तक में तनु का रोब चलता है। अपना काम करते-करते वह नीतू को डांटना फटकारना नहीं भूलती। फिर दोनों खाना खाने लगीं। खाना अभी खतम भी नहीं हुआ था कि बिट्टी और प्रीती भी आ गईं। इससे खाना जरा जल्दी खतम हुआ। फिर खेलने का दौर शुरू हो गया। छुपम-छुपाई या आई स्पाई भी बचपन में खेले जाने वाले सबसे मजेदार खेलों में से एक है। चार में से किसी एक को स्पाई का काम करना था। वो आंगन के पास जाकर दीवार की तरफ मुंह करके दस तक की गिनती गिनता, इस बीच में सभी लोगों को अपनी-अपनी जगह पर छुप जाना था। छिपने की गिनी-चुनी जगहें थीं घर में। उसी में बदल-बदल कर कोई कहीं तो कोई कहीं छिप जाता था। जल्दी ही सब लोग ढूंढ भी लिए जाते। जिसे देख लिया जाता उसे जाकर आइस-पाइस बोल देते। सबसे पहले जो आइस-पाइस में पकड़ाया, अगली बार बाकी लोगों को ढूंढने की जिम्मेदारी उसकी हो जाती।

नीतू स्पाई बनी थी। बाकी लोगों को ढूंढ रही थी। नई जगह की तलाश करते-करते तनु लकड़ी की सीढ़ी पर पैर रखकर ऊपर टांड़ पर चढ़ गई। टांड़ पर लगाए गए पर्दे के पीछे वो चुपचाप अपनी सांस रोककर बैठ गई। इसी बीच उसकी निगाह यहां पर रखे एक गत्ते के डिब्बे पर पड़ी। यह डिब्बा उसने पहले तो यहां देखा नहीं था। उसके अंदर हाथ डाला तो अंदर टाफी के पाउच जैसे ढेर सारे छोटे-छोटे पाउच दिखे। हां, ये टाफी की तरह गोल-मटोल नहीं बल्कि पतले-पतले थे लेकिन उसके अंदर कुछ बंद तो जरूर था। उसने अपनी उंगलियों से टटोलकर देखा। कुछ तो जरूर है। तनु पढ़ना सीख ही रही थी। ज्यादातर चीजें वह जोड़-जोड़कर पढ़ लेती थी। होंठों से थोड़ा बुदबुदाहट तो होती थी लेकिन वह मन में पढ़ लेती थी। पर कई बार मात्रा अलग-अलग लग जाती और अक्षर गलत हो जाते।

नि... धो...र। पहले उसने पढ़ा। फिर उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। नहीं, नहीं। न, फिर छोटी ई की मात्रा, र फिर र में ओ की मात्रा फिर ध। नि-रो-ध। पूरा पढ़ने के बाद भी उसे कुछ

खास समझ में नहीं आया तो उसने एक पाउच हल्के से फाड़ लिया। पाउच के अंदर से एक चिकना-चिकना सा, सफेद रंग का गुब्बारा निकल आया। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। इतने में ही पाउच के फाड़े जाने की आवाज सुनकर नीतू ने उसे ढूंढ लिया।

उसने तुरंत ही आइस-पाइस बोल दिया।

पर अब आइस-पाइस बोले जाने की परवाह किसको थी।

अपने हाथ में गुब्बारे के चार-पांच पाउच लेकर तनु नीचे उतर आई। उसके हाथ में गुब्बारा देखकर बाकी सहेलियों की भी खुशी और हैरत का ठिकाना नहीं रहा हालांकि गुब्बारे की चिकनाई और उसमें लगा हल्का पाउडर सा, उसे थोड़ा संदिग्ध भी बना रहा था। ऐसा लगता कि जैसे कि उसमें कोई रहस्य सा छुपा हुआ है। पर कुछ ही देर में शुरुआती हिचक दूर हो गई और उस पर जिज्ञासा हावी हो गई। उन्होंने गुब्बारे को फुलाना शुरू किया। अभी तक उनके हाथ लगने वाले गुब्बारों से तो यह बहुत बड़ा था। उसे फुलाने में उनकी खुद की सांसें ही फूलने लगीं।

गुब्बारों की कमी तो थी नहीं। सबने एक-एक पाउच ले लिया और उसमें से गुब्बारे बनाकर फुलाने लगी। गुब्बारे में ढेर सारी हवा भरकर किसी तरह से उसमें गांठ भी लगा दी। गुब्बारे का मुंह सामान्य गुब्बारों से बड़ा था, इसलिए उसमें गांठ लगानी थोड़ी कठिन थी। पर थोड़ी कोशिश से क्या नहीं हो सकता। गांठ बांधी और उसके बाद उसे उछाल-उछालकर लगे खेलने। कभी गुब्बारे से एक-दूसरे को मारने का भी खेल चला। कभी गुब्बारे को तलवार या लाठी पकड़कर युद्ध भी हो जाता। गुब्बारे की फुटबाल तो सबसे मजेदार। कोई आम दिन होता तो वे कुछ देर आइस-पाइस खेलने के बाद घर-घर खेलने लगतीं। जिसमें कोई एक मम्मी-पापा बन जाता। तो कोई एक बच्चा। फिर कोई एक मेहमान बन जाता। फिर मम्मी-पापा के घर मेहमान आते। उनको चाय-नाश्ता बनाकर देने का सिलसिला चलता। कभी मम्मी के पेट में बच्चा भी आ जाता तो डॉक्टर बुलाया जाता। डॉक्टर आला लगाकर देखता और कहता, हां बच्चा ठीक है। बस अब पैदा होने ही वाला है। जाहिर है कि प्रेगनेंट शब्द उनकी डिक्शनरी में शामिल हो चुका था। भले ही शरीर के सारे भेद उजागर नहीं हों। जब अड़ोस-पड़ोस की आंटियां आपस में बड़े रहस्यमय अंदाज में किसी के प्रेगनेंट होने के बारे में बात करतीं तो उन लड़कियों के भी कान खड़े हो जाते। तो उनके यहां भी जब डॉक्टर आते तो वे भी बड़े रहस्यमय अंदाज में प्रेगनेंट होने की जानकारी का उद्घाटन करती।

पर उस दिन तो उनके लिए खेल का एक नया ही जरिया खुल गया। शाम को जब तक मां-बाप के आने का समय होता तब तक लड़ाई-झगड़े में गुब्बारे फूट चुके थे या पंचर होकर किसी किनारे सुस्त से पड़ गए थे। छुपाकर रखे गए गुब्बारे खुद निकालने के अपराध में मार खाने की प्रबल संभावना थी। उन लोगों ने तुरंत ही सभी गुब्बारों के अवशेषों को समेटा और उसे कचरे की टोकरी में डाल दिया।

किसी को पता भी नहीं चला। मां-बाप भी आए। खाना-वाना बना। सोया-वोया भी गया। अगली सुबह भी हो गई। वैसे ही भागदौड़ भी शुरु हुई। पर स्कूल से आने के बाद इस बार फिर से गुब्बारे फुलाने और उसके साथ खेलने का खेल शुरू हो गया। जी भरकर गुब्बारे से खेलाई होती। हालांकि उसे फुलाने में कई बार होंठों पर अजीब सा चिकना-चिकना सा लगने लगता। पर खेल के उत्साह में इस पर ध्यान कौन देता। बीच खेल में कोई गुब्बारा फट भी जाता तो गत्ते के डिब्बे

से दूसरा निकाल लिया जाता। इस तरह से फिर खेल शुरू हो जाता। हां, इस बात का ध्यान रखना जरूरी था कि इसका पता घर में किसी को न लगने पाए। तो मां-बाप के आने के पहले ही गुब्बारे के सभी अवशेष कचरे के डिब्बे में पहुंच चुके होते।

यूं तो घर-घर खेलने में भी कम मजा नहीं था लेकिन वो तो सभी लड़कियां एक-दूसरे के साथ और एक-दूसरे के घर में खेल ही लेती हैं। गुब्बारे का नया खेल और घर में कोई रोक-टोक नहीं होने के चलते अब बच्चों के लिए तनु और नीतू का घर खेल के लिए सबसे उपयुक्त हो गया था। तनु और नीतू के स्कूल से आते ही उनके घर पर बच्चों का जमघट सा लग जाता। कुछ देर तो कुछ खेल चलता, तो फिर खेल बदल जाता। फिर गुब्बारे फुलाकर उससे लड़ाई लड़ने का खेल शुरू हो जाता।

गत्ते से पाउच खतम ही नहीं होते थे। तनु को अंदाजा था कि मम्मी को जरूर कहीं से ये गुब्बारे मिलते हैं। फिर वो उन्हें छिपाकर इस गत्ते में रख देती है। एक रात तो अचानक नींद खुलने पर उसे लगा कि पापा हाथ डालकर उन्हें टटोल भी रहे हैं। कहीं गिन तो नहीं रहे। गुब्बारे कम तो नहीं हो गए। उन्हें पता तो नहीं चल जाएगा। जाहिर है कि उन्हें पता नहीं चलता क्योंकि कुछ ही देर में वे गत्ते से हाथ निकालकर अपने कमरे में सोने चले जाते।

तनु को अपनी मां पर गुस्सा भी बहुत आता। अरे जब इतने गुब्बारे हैं तो वे बच्चों को खेलने के लिए क्यों नहीं दिए जा रहे हैं। उन्हें छिपाकर क्यों रखा जा रहा है। पर इस पे बहस तो दूर उसने कभी इसकी भनक भी नहीं लगने की दी उसे गत्ते के डिब्बे में रखे गए गुब्बारों के बारे में जानकारी है।

एक दिन दोपहर में तनु और नीतू के घर ढेर सारे बच्चे जमा थे। अचानक ही आसमान में काले-काले बादल छा गए। तेज-तेज हवा चलने लगीं। कुछ ही देर में बड़ी जोर की बारिश आई। मोटी-मोटी बूंदों वाली। बारिश की झड़ी लग गई। हवा के साथ पानी की मोटी बूंदों का राग सा छिड़ गया। कभी तेज तो कभी और तेज। पानी के परनाले बहने लगे। आंगन में टखनों तक पानी जमा हो गया। घर के बाहर से भी टखने के बराबर तक पानी बहने लगा। इसी बीच किसी एक बच्चे ने खूब बड़ा सा फुलाया हुआ गुब्बारा पानी में तैरा दिया। गुब्बारा पहले तो पानी में गोल-गोल घूमता रहा फिर घर के बाहर से बह रहे पानी की मुख्य धारा में मिल गया और तेजी से तैरता हुआ आगे चला गया। उसे इतनी तेजी से तैरता हुआ देखकर दूसरे बच्चों का भी उत्साह बढ़ गया। उन्होंने भी अपने-अपने गुब्बारे पानी में बहाने शुरू कर दिए। कुछ ने तो दोबारा गुब्बारे निकालकर बहाने शुरू किए। पूरी गली में बारिश के पानी में बहते गुब्बारों का रेला सा निकल पड़ा। जैसे सफेद गुब्बारों का कोई मौन जुलूस सा गुजर रहा हो। मौसम की पहली बारिश थी तो कई लोग अपने-अपने घरों से बारिश का मजा ले रहे थे। अचानक उनकी निगाहें सड़क के बीचों-बीच बह रहे सफेद रंग के चिकने-चिकने गुब्बारों पर पड़ी तो उनकी हैरतों का ठिकाना नहीं रहा।

ये यू-ट्यूब और एचडी का जमाना तो था नहीं कि हीरो और हीरोइन एक-दूसरे के मुंह में मुंह घुसाए, अपनी-अपनी जीभों से एक-दूसरे का स्वाद चखने की कोशिश कर रहे हों। ये तो वो जमाना था कि जब रंगोली और चित्रहार आने से आधा घंटा पहले ही लोग पालथी मारकर टीवी के सामने जम जाते थे। गाने में हीरो-हीरोइन अचानक पेड़ के पीछे चले जाते तो गुलाब के दो फूलों को स्क्रीन

लड़ाया जाने लगता। कभी-कभी दो तोते एक-दूसरे से अठखेलियां करने लगते। टीवी के स्क्रीन पर इधर दो फूलों के लड़ने का दृश्य दिखाई देता, उधर रंगोली और चित्रहार देख रहे सारे बड़े बगले झांकने लगते और बच्चे सोचते कि अरे ये अभी गाना गाते-गाते हीरो-हीरोइन पेड़ के पीछे क्यों छिप गए।

पर बच्चे जिस पहेली को बूझने में सालों लगा देते हैं, पहले से जानने के चलते बड़े उस पहेली का भेद एक नजर देखते ही सुलझा लेते हैं। उन गुब्बारों का राज समझते उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने देखा कि गुब्बारे एक लाइन बनाकर ठाकुर साब के घर से निकल रहे हैं। उनकी दोनों बेटियां गुब्बारों को बड़े उत्साह के साथ पानी में तैरा रही हैं। उनकी बड़ी वाली बेटी तो किसी एक्सपर्ट की तरह ही गुब्बारे फुला रही है और उसे पानी में तैरा रही है। कभी गुब्बारा पानी की मुख्य धारा तक जाने का रास्ता भटकने लगता तो वो थोड़ा-थोड़ा पानी उलीचकर उसे रास्ता भी दिखाने लगती। जैसे ही गुब्बारा पानी की मुख्य धारा में शामिल होता बच्चे खुशी से चिल्ला पड़ते। हो-ओ। हो-ओ-ओ।

कुछ ही देर में बच्चों के मां-बाप छाता लेकर अपने बच्चों को ले जाने के लिए आ गए। मां-बाप की आँखों में बसे क्रोध को बच्चे समझ भी नहीं पाए। बिट्टी के गाल पर तो वहीं पर तमाचे बज गए। अकसर ही बच्चों को यह भी पता नहीं चलता कि उन्हें मार क्यों पड़ी है। उसकी वजह भी नहीं बताई जाती है। मार की सघनता और मां-बाप के चेहरे पर चढ़ी त्यौरियों से उन्हें खुद ही अंदाजा लगाना पड़ता है कि आखिर उनसे गलती क्या हुई है और किस स्तर की हुई है? इसमें कई बार वे नाकाम ही साबित होते हैं। इस बार भी बच्चों को समझ नहीं आया कि आखिर ये कुटाई हुई क्यों फिर भी, कुटाई हुई सारे बच्चों की।

इधर, जब सारे बच्चे चले गए तो तनु और नीतू भी अपना उत्साह बनाए नहीं रख सकीं। बच्चों के मां-बाप की आखों में उन दोनों के लिए भी उलाहना और गुस्सा मौजूद था। अपने बालसुलभ भय से वे इसे तुरंत ही पढ़ चुकी थीं। इसलिए पानी में गुब्बारे तैराने का खेल छोड़कर वे भी चुपचाप अंदर आ गईं।

कुछ देर बाद बारिश बंद हो गई। पानी की धार बहनी भी बंद हो गई। पानी कई गुब्बारों को तो अपने साथ बहा ले गया। पहले नाली, फिर नाला और उसके बाद शायद पानी ने उन्हें नदी की भी सैर कराई हो। लेकिन, सारे गुब्बारे इतने खुशनसीब साबित नहीं हुए। कुछ गुब्बारे वहीं किसी नाली में अटके पड़े रहे। पानी की धार के साथ वे फड़फड़ा से जाते और मोहल्ले के कई शरीफ लोगों की शराफत को चुनौती सी देने लगते। कई लोग उसे देख तो रहे थे लेकिन उस पर से अपनी निगाहें फेर लेते। अब कौन उसे जाकर हटाए। या हटाकर भी कहां रखे। उन गुब्बारों में कुछ ऐसी कैफियत आई हुई थी कि उनके अस्तित्व के बारे में जानकारी तो कई लोगों को थी लेकिन उसके अस्तित्व को स्वीकार कोई नहीं करना चाहता था।

शाम हो गई। बच्चे चले गए थे तो नीतू और तनु को भी नींद आ गई। मम्मी के आने से उनकी नींद खुली। दफ्तर से आने के बाद मम्मी अभी चाय पीकर हटी ही थीं कि पड़ोस वाली आंटी जो उनकी सबसे पक्की सहेली थी, घर आ गईं। बोली :

'आ गइन, ठीक रओ सब।'

'हां। हां ठीक रहा सब।'

'खाना-वाना खाय लौ।'

'हां खाय लौ।'

'कछु बतानो हतो तुमे।'

'तुमाई मोड़िन ने आज तो अति धर दई। हम तो सिर उठाय के चलै नई पा रऐ थे। पूरी गली में मोड़िन ने गुब्बारै मार दए। तुमने कछु सिखाओ नई इने। कछु नई समझाती। तेइंसो, बहुतै बदमास मोड़िन हैं।'

'का बात हुई।'

आंटी ने मम्मी के कानों के पास अपना मुंह सटाकर कुछ खुसुर-फुसुर करना शुरू कर दिया। अब क्या बात हुई यह न तो तनु की समझ में आया और न ही नीतू की लेकिन उस खुसुर-फुसुर के नतीजे फौरन सामने आ गए। आंटी के जाते ही मम्मी ने झाड़ू उठा लिया और उसी झाड़ू से दोनों को पीटना शुरू कर दिया।

बहुत हेर-ढूंढ। हां। घर में क्या रखा है, क्या नहीं रखा है। किसी को ढूंढने की क्या जरूरत है। घर की चीजों को किसी और के सामने दिखाने की क्या जरूरत है।

दोनों बहनें सफाई क्या देतीं। जब झाड़ू की बरसात होती हो तो कोई बात भी सुनता है भला। बुरी तरह से पिटकर दोनों अंदर वाले कमरे में जाकर एक-दूसरे से चिपककर लेट गईं। रुलाई पहले तो कोई बांध सा तोड़कर किलक-किलक कर बाहर निकलती रही फिर बांध का बहाव कम होने लगा। बीच-बीच में वे सुबक-सुबक पड़तीं। रोना बंद होने का नाम ही नहीं लेता।

आखिर मम्मी को भी दया आ गई। आखिर ये कोई बड़ी बात तो थी नहीं। उनके काम का हिस्सा ही था। अस्पताल की तरफ से उन्हें ढेर सारा मिलता था। परिवार नियोजन के फायदे बताते हुए उसको बांटना होता था। बांटते समय भी कई बार ऐसे-ऐसे सवालों के जवाब देने पड़ते हैं कि कोई भी आदमी बेशर्म हो जाए। कैसे इसका इस्तेमाल करना है, ये समझाने में तो कई बार सारे शरीर का खून मुंह पर आने को उतारू हो जाता है। कुछ औरतें तो इतनी जाहिल हैं कि समझ ही नहीं पातीं। आदमी समझना नहीं चाहते। खैर बच्चों को क्या पता।

अपनी दोनों बच्चियों को उन्होंने बांहों में भर लिया।

जब कह दिया है कि घर का कोई सामान इधर-उधर मत किया करो तो तुम दोनों लोग ऐसा करती क्यों हो? कहना क्यों नहीं मानती हो?

अरे तो मम्मी कर क्या दिया। गुब्बारा रखा ही तो था। खेलने में लग गए। हमने सोचा कि मम्मी लाई हैं, हमें देना भूल गईं इसलिए हम तो खेलने लगे। इसमें गलती क्या हो गई?

अब मम्मी को भी जवाब नहीं सूझा। बात बनाकर बोलीं, अरे बेटा, ये गुब्बारा गांव-गिराम के बच्चों के लिए आता है। इसको सरकार भेजती है। खराब प्लास्टिक से बनता है। केमिकल लगा रहता है। बच्चों की सेहत खराब हो सकती है। इसीलिए मना करते हैं। इसे तो गांव में जाकर बांटते हैं। तुम्हारे लिए तो हम खुदै गुब्बारे वाले से अच्छा गुब्बार नय खरीद देते हैं।

दोनों बच्चो ने इस बात के तर्क को समझा कि गुब्बारा गरीब बच्चों के लिए आया है। उनके पास कुछ खेलने को तो रहता नहीं है। तुम्हारे पास तो देखो खेलने के लिए कितनी सारी चीजें हैं। गांव के बच्चों के पास तो कुछ नहीं है। इसलिए अगर उनके गुब्बारों से भी तुम ही लोग खेलने लगोगी तो वे लोग बेचारे किससे खेलेंगे। कुछ बात समझ में आई तो उन्हें पछतावा भी हुआ। गांव के बच्चों

के कितने गुब्बारे उन्होंने यूं ही बरबाद कर दिए। मां ने गत्ते के डिब्बे को और ऊंचाई पर रख दिया।

इस घटना को दो-तीन दिन बीत गए। तनु और नीतू को देखकर अभी भी मोहल्ले में कई लोगों के चेहरे पर भेदभरी मुस्कान आ जाती है। ऐसा लगता है कि जैसे वे कोई रहस्य छिपाए हुए हैं। हां, तनु और नीतू इस भेद को भला क्या जानें।

तो, एक दिन पड़ोस वाली आंटी तनु और नीतू को मिल गईं। झाड़ू से पड़ी उस दिन की मार की याद तनु और नीतू को अभी भी ताजा थी ही तो उन्होंने आंटी से तगादा कर लेना ही ठीक समझा।

'क्यों, आंटी ऐसा क्या हो गया था कि तुमाई नाक कट गई उस दिन। हमने जरा सा गुब्बारे से खेल ही तो लिया।'

'अरे तो तुमाई अम्मा ने न समझाई तुमे।'

'समझाई तो आंटी। गांव के बच्चों के लिए आते हैं ये गुब्बारे। खराब प्लास्टिक के होते हैं। केमिकल लगा होता है। इसीलिए अम्मा मना करती हैं। बाकी और कोई बुराई नहीं है।'

'अरे, तुम मोड़िन लोग भी। बुराई-वुराई क्या है। तुम क्या समझोगी? तुमे तो कुछ भी ज्ञान नहीं है। मां-बाप तो घर में रहते नहीं। चले जाते हैं कमाने। बेटियां घर में अकेले। बेकदरी तो होनी ही है। नाक कटाने पे तुली हैं।'

'अरे चाची। हमें कुछ मत कओ। अपने मां-बाप पर लगने वाले आक्षेप से तनु का पारा भी सातवें आसमान पर पहुंचने लगा। तुमाई बिट्टी भी कम नहीं है। चार-चार गुब्बारे दिए हैं हमने। अपने बस्ते में लेकर फिरती हैं और भी मांगत रहीं। ई तो हमी हैं, मना कर दिए। न, और न देते हम।'

सत्यानाश। आंटी के मुंह से निकला। अबकी तो आंटी ने एकदम से अपना सिर ही पीट लिया।

●

हाइड एंड सीक

मनीषा कुलश्रेष्ठ

उस जन्नत की तरह खूबसूरत शहर तक पहुंचने में वे उत्सुकता और बेचैनी भरी प्रतीक्षा को महसूस करना चाहते थे इसलिए घरवालों और परिचितों के बहुत मना करने के बावजूद उन्होंने अकेले और सड़क के रास्ते से होकर, खुद अपनी गाड़ी चलाकर वहां तक जाना तय किया था। वे बरसों बाद एक बार फिर रास्तों के साथ चलती नदियों से मिलना चाहते थे। रंग बदलते चिनारों से बात करना चाहते थे।

राजनैतिक और सामरिक नीतियों के चलते, इन नौ-दस सालो के दरम्यां इन रास्तों में बहुत कुछ फेर-बदल हो चुका था। ठीक एक खूबसूरत बच्चे के गालों की तरह, जो ज्यादा रोने से गंदला से जाते हैं, यह शहर भी गंदला गया था। मगर वे गाल गंदले होकर भी लगते उतने ही खूबसूरत हैं। छोटे-छोटे उदास मलिन गांवों के बाहर उगे बागों में चेरी के पेड़ों ने हल्की पीली-गुलाबी चेरियों के झुमके पहन लिए थे। अखरोटों के जंगल फलों से लदे गुनगुना रहे थे। मेहनतकश मधुमक्खियां जंगली सफेद गुलाबों से रस बटोर कर अपने छत्ते भर रही थीं, आने वाली सैनिकों और श्रमिकों की नस्ल के लिए। छोटे-छोटे झरने ठिठक कर बह रहे थे। मगर चिनार गुम-सुम उदास खड़े थे, हर पचास कदम पर खड़े सीमा सुरक्षा बल के सैनिकों की बंदूकों से सहमे।

तराई से पहाड़ों की तरफ बढ़ते हुए, तमाम रास्ते उन्हें अलमस्त यायावर मिलते रहे। आतंक से बेखौफ, पहाड़ी खानाबदोश। जो गर्मियां शुरू होते ही, अपने भेड़-बकरियों के रेवड़ को ऊंचाइयों की तरफ, हरी चराई के लिए ले जाते हैं। उनके साथ होता है, उनका राशन-पानी और चाय-कहवा बनाने का साजो-सामान और कुछ-कुछ रूसी समोवार जैसी समोवार। एक-दो बार उन्होंने बीच-बीच में जीप रोकी और, मक्खन डली नमकीन चाय पीने के लालच में भेड़ की तरह गंधाते उन खानाबदोशों के साथ जा बैठे थे। चाय के उसी चिरपरिचित स्वाद के साथ उन्होंने महसूस किया कि ये मंजर बदल जरूर गए हैं, मगर विकास के कुछ पैबंदों से भी इन रास्तों का पुरानापन नहीं मिटा है।

प्राकृतिक संपदा से समृद्ध इस प्रदेश के मेहनतकश, संघर्षशील लोगों के हिस्से में हमेशा से एक ही चीज आई थी वह थी- बदहाली। यह बदहाली उनकी जिंदगी का अभिन्न हिस्सा थी, हाड़-तोड़ मेहनत उनके जीने का तरीका था, लुटते चले जाना उनकी नियति और गैरों पर विश्वास एक दर्शन। मगर यह जो हताशा भरी बदहाली जो आज लोगों के चेहरे पर नुमायां थी, वह उनके हाथों से कुदाल और पैरों के नीचे से धान के टुकड़ा-टुकड़ा खेत छीन लिए जाने की थी। वे हाथ से कुदाल गिरा चुके

थे, मगर बंदूक पकड़ने से कतरा रहे थे, इसलिए उनके घर टूटे थे और बच्चे भूखे थे। जिन हाथों में ग्रेनेड थे, बंदूकें थीं उनके घर पक्के हो रहे थे।

मुस्कानें बस अबोध बच्चों के चेहरों पर थी। वयस्कों के चेहरे पर चुप्पा सा गुस्सा, नपुंसक विरोध, आतंक पसरा था। औरतों की सुंदर आँखें इतनी सफेद और उजाड़ थीं कि सपनों तक ने उगना बंद कर दिया था। वहां हसीन मर्ग नहीं थे, वहां तो वेदना, पीड़ा, घृणा के झाड़-झंखाड़ थे। घृणा किससे? आतंकवादियों से, व्यवस्था से, सेना से? उन्हें कुछ भी स्पष्ट नहीं था। कोई उनके साथ नहीं था और उनके खुद के बस में कुछ नहीं था। टूरिस्ट बसों पर ग्रेनेड फेंके जाने का सिलसिला नया शुरू हुआ था। और वे खुद नहीं जानते थे कि उनकी रोजी-रोटी में ये बारूद कौन घोल रहा है।

लेफ्टिनेंट कर्नल हंसराज बहुत बरसों बाद लौट रहे थे, इस शहर की ओर, इस प्रदेश में। जब वे मेजर थे, तब वे यहां तैनात थे। उन तीन सालों में बहुत कुछ घटा था, उनके बाहर भी और भीतर भी। वक्त ने स्मृतियों पर अतीत के अटपटे खुरंट जमा दिए थे। वे उस समय से जुड़ा हुआ, लगभग सब कुछ भूल जाने की कोशिश कर चुके थे, लेकिन खुरंटों के नीचे के घाव थे कि कभी-कभी टीस जाते थे। देह जब यात्राएं कर रही होती है, आस-पास की तो मन सुदूर की यात्राएं कर रहा होता है। देह जिन पक्के रास्तों पर गुजरती है, वे रास्ते तो फरेब होते हैं, मगर मन जिन पर गुजर रहा होता है वे पगडंडियां शाश्वत होती हैं, कभी नहीं मिटती।

वे तो एक यायावरी के लिए निकले थे। माना यायावरी दिशाहीन होती है, मगर अवचेतन ने ये कौन सी दिशा तय कर दी थी कि वे यहां फिर लौटकर आने को उत्सुक हो गए थे!... स्तब्ध, मलिन कस्बे और शहर, पीली सरकारी इमारतें और खूबसूरत मगर तन्हा और उदास रास्ते, सर झुकाए खड़े चिनार, बलत्कृत झीलें, ठिठककर बहते झरने अब तक उनके साथ साथ चल रहे थे। वे हल्के भय को थामे, पूरे दैहिक और मानसिक संतुलन के साथ अपनी गाड़ी चला रहे थे मगर अचानक उनकी खामोशियों के झुरमुटों के पीछे आवाजों के पंछी हल्के-हल्के पंख फड़फड़ाने लगे। 'कमॉन इंडिया जीत के आना है' के स्लोगंस की धूम, विश्व-कप का शोर। उनसे मुखातिब उनके अधीनस्थ अफसर की हताशा से भरी आवाज- 'सर, क्या आप ऐसे बैट्स मेन की कल्पना कर सकते हो, जिसे फास्ट बोलिंग झेलने के लिए हेलमेट, ग्लव्ज और पेड्स के साथ खड़ा दिया गया है मगर उससे बैट वापस ले लिया गया है? रोज बम शैलिंग से गांव के गांव रिफ्यूजी कैंपों में तब्दील हो रहे हैं मगर हमें पलटवार की इजाजत नहीं। क्यों सर क्यों?'

बेस यूनिट से उनके बॉस की भर्राई आवाज- 'एक-एक करके अब तक 400 शहीदों को यहां से विदा कर चुका हूं, जिन्होंने अपने परिवारों से वादा किया था कि वे वापस लौटेंगे। उन्होंने इसे निभाया है। वे एक आम आदमी की तरह गए थे, मगर महानायकों की तरह लौट रहे हैं। तिरंगों में लिपटे और 'ताबूतों' में बंद। इन महानायकों की उम्र 19 से 35 के बीच थी। दिल्ली जाकर जिन्हें मिला 'शोक शस्त्र' फेयरवेल सेल्यूट! लोह-सैनिकों की ऊपर उठी हुई बंदूकों की खामोश वेदना, उन बंदूकों की बैरल का उलटाना... सीने के करीब लगाया जाना, एकसाथ कई सरों का झुक जाना 30 सेकेंड का पथरीला मौन और फिर उनके मृत सीनों पर सेना के सर्वोच्च अधिकारियों, साथियों के चढ़ाए गए रजनीगंधा और गेंदों के 'रीथ' (शवों पर चढ़ाई जाने वाली विशिष्ट गोल माला) फिर एक कामरेड की देख-रेख में, इनकी अपने घरों की ओर अंतिम यात्रा।'

हवाओं की सरसराहट में वे मौसम बदलने की आहट सुन पा रहे थे। बदलते मौसम के इस बेपनाह सौंदर्य में इतनी उदासी क्यों घुली है? हर अतीव सुंदरता की तरह यह भी अभिशप्त क्यों है? इस अभिशप्त सुंदरता की जीवंत उदासी से खामोशी के झुरमुटों के पीछे की आवाजों की फड़फड़ाहट स्थगित हो गयी।

'ठहरो-हिंदुस्तानी साब... मेरी भेड़ें डर जाएंगी।' एक पतली आवाज उससे मुखातिब थी। एक मोड़ पर हाथ हिला-हिला कर एक दस साल का सुंदर मुखड़ा... उसे रोक रहा था। उसकी भेड़ें रास्ते पर बिखर गईं थीं और उन्होंने वह ढलवां, संकरी-सी, सड़क पूरी की पूरी घेर ली थी। इस मासूम को किसने समझाया यह संबोधन? किसने बोया होगा इस सरल मन में इस विभेद का बीज?

आज इस दस साल के लड़के के मुंह से 'हिंदुस्तानी' सुन कर, उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उन्हें दूसरी शिकस्त दी हो। बरसों पहले की, वह पहली शिकस्त उन्हें बखूबी याद है।

वे तबादले पर वहां पहुंचे ही थे। इस राज्य के दूरस्थ इलाके, जो 1971 के युद्ध के बाद भारत का हिस्सा बन चुके थे, सेना द्वारा चलाए गए 'आपरेशन मित्रता' केंद्रबिंदु थे। लाइन ऑफ कंट्रोल से कुछ किलोमीटर दूर, एक महत्वपूर्ण पोजिशन की सतर्क चौकसी के साथ-साथ उन्हें इस ऑपरेशन की भी कमान संभालने को मिली थी। उन्होंने अपनी यूनिट की सारी ऊर्जा 'ऑपरेशन मित्रता' में झौंक डाली थी। वे स्वयंसेवी संस्थाओं की सहायता से यहां स्कूल और अस्पताल खुलवा रहे थे। आतंकवाद की चपेट में आए स्थानीय लोगों को पुनर्स्थापित करने में उनके सैनिकों ने हरसंभव सहायता की थी। धमाकों में अपाहिज हुए लोगों को कृत्रिम अंग लगवाए गए थे मगर फिर भी यहां के निवासी आतंकवादियों और घुसपैठियों को हर संभव सहायता और आश्रय दिया करते थे। इन इलाकों के असहयोगी माहौल में विश्वसनीयता हासिल करना क्या आसान काम था? पूरा साल वे स्थानीय निवासियों के साथ फौज के संबंध सुधारने पर एड़ी से चोटी तक का जोर लगाते रहे। उन्हें लगता था कि एक दिन वे इन स्थानीय लोगों का विश्वास हासिल करने में सफल होंगे मगर...

आज से लगभग नौ साल पहले, ऐसे ही तो बसंत की शुरुआत थी, ऐसे ही फूल खिले थे जब हमारे प्रधानमंत्री लाहौर में शांति वार्ता में अपनी नितांत भारतीय नीतियों की दार्शनिक व्याख्या कर रहे थे अपने परमाणुविक शक्तिधारक दुश्मन के समक्ष।

बिलकुल ऐसे ही दिनों में एक साधारण अभ्यास की तरह बर्फीली चोटियों पर सर्दी खत्म होने के बाद सेना की पहली पेट्रोलिंग टीम दुर्गम उंचाइयों पर चढ़ी थी। चार जवानों और एक युवा अधिकारी की ये टुकड़ी अचानक बर्फीली उंचाइयों पर से गायब हो गई थी। हालांकि वे उनकी यूनिट के नहीं थे... किसी और रेजिमेन्ट के ये पांच फौजी पेट्रोलिंग के लिए निकले थे। वे महीना भर लापता रहे। जब उनके शव मिले, तब पता चला कि बर्फीली उंचाइयों में छिपे बैठे घुसपैठियों ने उन्हें कैद कर लिया और उस पार ले गए जहां उन्हें यंत्रणाएं देकर मारा गया, उनके शरीरों पर सिगरेट से जलाने के निशान थे, उनकी सिर की हड्डियां टूटी हुई थीं, कान के पर्दे गर्म रोड डालकर फाड़ दिए गए थे, आँखें निकाल ली गई थीं। पर यह बात उन्हें खटकी थी कि ऐसे अनुभवहीन युवा अधिकारी को पेट्रोलिंग के लिए बिना तहकीकात किए क्यों भेजा गया था और उसका शव घर पर उसकी पहली या दूसरी तनख्वाह के चैक के क्लियर होने से पहले ही पहुंच गया था। इस बात को लेकर उन्होंने उच्चाधिकारियों से जिरह की थी मगर उन्हें चुप करवा दिया गया। उनका और उनकी यूनिट के

जवानों का 'ऑपरेशन मित्रता' से धीरे-धीरे मोहभंग होता जा रहा था। वे यह जान गए थे उनके धैर्य को उनकी कमजोरी माना जा रहा है।

सरासर ध्यान भटकाने वाली गतिविधियां जारी थी। यहां विस्फोट, वहां नर-संहार।

एक रात उन्हें अपने विश्वसनीय मुखबिर से पता चला था कि ऐन उनकी नाक के नीचे आतंक सांसें ले रहा है, और वे सरासर बारूद के एक बड़े ढेर पर बैठे हैं। अगले ही दिन जहाज से उनके पास एक 'स्निफर डॉग स्क्वाड' खोजी और गश्ती कुत्तों का दस्ता आ गया था। 'ऑपरेशन मित्रता' के सैनिकों के उन हाथों में फिर बंदूक आ गयी थी, जिनसे वे स्थानीय निवासियों की सहायता करते थे।

'इन खोजी कुत्तों के बिना यहां कोई ऑपरेशन मुमकिन नहीं सर जी। इनसान की अपनी लिमिट है जी, मगर इन लेब्राडोर कुत्तों को भगवान ने खास ताकत दी है, सूंघने की। हमारे सैंकड़ों जवानों को इन साशा और रोवर की तेज नाक ने जिंदगी बख्शी है। और मुझे बड़ा नाज है जी, इन पे। यकीन तो है ही खैर....'

'क्या बताऊं सर जी, हैंडलर का प्रेम ही होता है जो इनसे यह काम करवाता है। इनके लिए तनख्वाह, पावर, इज्जत या धर्म या जात का कोई मतलब है क्या साब? ये वफादार दोस्त जाने कितनी जिंदगियां बचाते हुए खुद मर जाते हैं। पहले मेरे पास चंपा नामकी लेब्राडोर कुतिया थी, उसने बड़ी जानें बचाईं, कितनेक तो लैंडमाईंस ढूंढे.... उसे मेरे साथ कमांडेशन भी मिला था। इनकी फीमेलों की नाक मेलों से ज्यादा तेज होती है.... वैसे सर जी नाक और कान तो हमारी फीमेलों के भी खूब तेज होते हैं।' बहुत बातूनी था लांसनायक महेश। उसकी स्क्वाड के वे दो काले लेब्राडोर कुत्ते खूबसूरत और बुद्धिमान थे। खाली वक्त में वे आपस में अठखेलियां किया करते। महेश उनके साथ विस्फोटक की मामूली सी मात्रा रूमाल में छिपाकर 'खोजो तो जानें' का खेल-खेल कर उनके हुनर को पैना किया करता था।

मुखबिर का संकेत मिलते ही, वे उन घरों की तलाशी के लिए निकल पड़े थे, जिनमें उन्हें शक था कि उग्रवादी छिपे बैठे हैं। उनकी यूनिट ने गली के बाहर, गली के भीतर, आगे झील तक.... कवरिंग और अटैकिंग पोजिशन ले ली थी और वे धीरे-धीरे सावधानी से एक झील पर जाकर खत्म होती पतली गली में घुसे, लांसनायक महेश, साशा की जंजीर थामे उनके साथ-साथ था। रोवर,उसका हैंडलर सुरेन्दर एक दूसरे घर के बाहर कैप्टन राजेश के साथ खड़े थे, संकेत दिए जाने की प्रतीक्षा में। गली में चहल-पहल की जगह सन्नाटा पसरा था। ऐसा लग रहा था कि इन घरों की दीवारों के कान जैसे मीलों फैले हुए हों। वे घर दम साधे, एक दूसरे को थामे खड़े थे, हल्की-हल्की सांस लेते हुए। सैनिक सतर्क थे। बस एक सफेद-गुलाबी मगर मैले गालों वाली किशोरी झील के किनारे से सटी नाव में सहमी बैठी थी, उसके हाथों में शलगम का गुच्छा और एक मछली थी। उसके सुर्ख होंठ कंपकंपा रहे थे कि मानो कुछ कहना चाहती हो। उसका फिरन भीगा हुआ था। उसकी नीली पुतलियों वाली शफ्फाक आँखों में भय तैर रहा था। उन्होंने उसे घर लौट जाने का इशारा किया।

सैनिकों ने उनके संकेत पर एक घर को घेर लिया। वे तीन सैनिकों, लांसनायक महेश और साशा के साथ एक सुनसान टूटे-फूटे घर में घुसे। इस टूटे-फूटे घर के नीचे की मंजिल पर जमीन पर बिछे बिस्तरों पर सलवटें थीं। कालीन पर जूतों के कई निशान। बिस्तरों में इनसानी जिस्मों की

गर्म बू ताजा ही थी। ज्यादा दूर नहीं गए होंगे वो। संभलकर वे ऊपर की मंजिल की ओर बढ़े। ऊपर जाते ही साशा बेचैन हो गयी और इधर-उधर सूंघने लगी, गोल-गोल चक्कर काटने लगी। बीच बीच में कूं ऽ कूं भी करने लगती और पूंछ हिलाने लगती। महेश बहुत सतर्क हो गया था। उनके तीन अधीनस्थ अधिकारियों सहित सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी उन्हें कवर दे रही थी। वह एक मर्तबान में बार-बार मुंह डाल रही थी। उस मर्तबान के चारों तरफ गोल चक्कर काट रही थी फिर उसने पंजे से उसे उलट दिया। एक बेलनाकार धातु की वस्तु कपड़ों में लिपटी रखी थी। महेश समझ गया था कि साशा ने बम ढूंढ लिया क्योंकि वह उसके पास बैठ गई थी, ताकि उसका हैंडलर स्थिति का जायजा ले सके।

'सर आप सब बाहर जाएं, आतंकवादी तो नहीं, मगर बम है यहां। सूबेदार हनीफ अहमद को भेज दें इसे डिफ्यूज करने के लिए।' महेश ने फुसफुसाकर कहा।

यह अजीब-सी डिवाइस ऊंचे दर्जे के विस्फोटक पदार्थ से भरी हुई थी और शायद यह एक रिमोट कंट्रोल से जुड़ा था। कुछ देर बाद, साशा महेश के ऊपर चढ़कर अपने इनाम के बिस्किट की मांग करने लगी थी। महेश ने उसे अनदेखा कर दिया। महेश दूर से बम का निरीक्षण कर रहा था और वे अपने दस्ते के बम डिफ्यूजल एक्सपर्ट को बुलाने के लिए पीछे मुड़ कर कुछ सीढ़ियां उतरे ही थे कि धमाका हो गया, घर के ऊपर का हिस्सा ढहकर, सड़क पर आ गिरा। मलबे में दबे हुए साशा के चिथड़ा-चिथड़ा जिस्म को और अचेत महेश को निकाला गया। महेश बुरी तरह घायल हो चुका था, उसकी एक बांह विस्फोट में उड़ गई थी और वह नीम बेहोशी में था। उनके भी पैरों में अचानक सीढ़ियों से कूद जाने की वजह से अंदरूनी चोटें आई थी। 'शो मस्ट गो ऑन' की तर्ज पर ऑपरेशन जारी रहा। महेश को तुरंत मिलीटरी अस्पताल भेज दिया गया। साशा की मृत देह कंबल में लपेटकर 'कैंटर' में रख दी गई।

उन खाली टूटे-फूटे घरों में हरेक घर में बम रखे मिले थे। रोवर ने उन्हें ढूंढ निकाला था। रोवर को आतंकवादियों की तलाश में हैंडलर जंगल की तरफ घुमाता... मगर वह लौट-लौट कर बस्तियों की तरफ भाग रहा था। वह एक घनी बस्ती के ऐसे घर दरवाजे पर रूका, जहां पर्दानशीन औरतें ही औरतें थीं और वहां दालान में पड़ी थी, घर के एकमात्र युवक की लाश, जिसे ताजा-ताजा कत्ल किया गया था। जिबह की गई बकरियों की तरह वे औरतें चीख रही थीं। घर की तलाशी ली गई मगर वहां कुछ नहीं मिला। घर के पीछे गली झील पर खत्म होती थी, झील के उस तरफ मस्जिद थी। यह वही जगह थी, जहां सफेद-गुलाबी मगर मैले गालों वाली किशोरी झील के किनारे से सटी नाव में सहमी बैठी मिली थी। अब वहां न नाव थी न वह किशोरी। शलगम के गुच्छे जमीन पर गिरे हुए थे। गली के मकानों की खिड़कियां यूं बंद थीं गोया बरसों से खोली ही ना गई हों। उस गली से पलटते ही मस्जिद की दिशा से फायरिंग शुरू हो गयी। जवाबी कार्यवाही में वे फायर नहीं कर सकते थे क्योंकि जुम्मे का दिन था और मस्जिद में आतंकवादियों की जद में कुछ मासूम नमाजी फंसे हुए थे। 'हिंदोस्तानी कुत्तों... मस्जिद का रुख न करना, वरना ये नमाजी हमारे हाथों खुदा के प्यारे हो जाएंगे।'

यह उनके 'ऑपरेशन मित्रता' की पहली शिकस्त थी। आज नौ साल बाद यह दूसरी शिकस्त उन्हें उदास करने के लिए काफी थी।

बेस पर लौटकर रोवर बहुत बेचैन हो उठा था। बार-बार कैंटर की तरफ जाता जहां 'साशा' का शव रखा था। कूं कूं करके उसके चारों तरफ घूमने लगता था। अपने हैंडलर की बात भी नहीं सुन रहा था। उससे बहुत छिपाकर साशा को उन हरे-भरे मर्गों में कहीं दफना दिया गया था। मगर रोवर ने भांप लिया था। हैंडलर ने बहुत कोशिश की उसे खिलाने की, मगर उसने खाने को सूंघा तक नहीं। उसे ड्रिप भी लगाई। फिर उसने किसी भी अभ्यास में मन से हिस्सा नहीं लिया, अभ्यास के दौरान विस्फोटक की गंध से भरा कपड़ा उसे सुंघाकर छिपाया जाता पर वह उसे खोजने की कोशिश करने की जगह एक जगह पर बैठ जाता और उसकी आँखों से पानी बहता रहता। उन्हें नहीं पता कि कुत्ते रोते भी हैं कि नहीं मगर रोवर को देखकर उनका मन भारी हो जाता था। रोवर के असहयोग की वजह से तुरंत दूसरे स्निफर डॉग और उसके हैंडलर को भिजवाने का संदेश भेज दिया गया था। जिस दिन उसे वापस भेजा जाना तय था, उस दिन के पहले वाली रात, जब वे लांसनायक सुरिंदर से मिलने गए तो रोवर उसके साथ बुखारी के सामने बैठा था। बीमार मगर शांत। उनके आने पर उसकी दोनों आँखें एक साथ कत्थई हो उठी थीं। उसने हल्के-हल्के दोस्ताना अंदाज में पूंछ भी हिलाई, सर सहलाने पर हाथ चाटा था। फिर वह आँखें मूंदकर लेट गया। सुबह वह नहीं उठा।

महेश अब दिल्ली में रिसर्च एंड रैफरल हॉस्पीटल में स्थानांतरित कर दिया गया था। उन्होंने उससे फोन पर बात की। वह व्यथित था, अपने हाथ के कट जाने को लेकर नहीं साशा और रोवर को लेकर, 'सर जी बहुत प्यार था उनमें। उन्हें आस-पास ही दफनाना।' उसके कहने पर रोवर को साशा के बगल में ही उसके साथी दफना आए थे। जहां तक उन्हें याद है महेश का साथी लांसनायक सुरेंदर लाल रंग के दो समाधि-पत्थर बनवा कर लाया था।

'सर, सच्चे सिपाही, सच्चे आशिक तो यही हैं ना। आप इजाजत दें तो इनकी कब्रों पर ये पत्थर लगवा दें।' उन्होंने वहां अपने हाथों से एक चेरी का पेड़ लगा दिया था। लांसनायक महेश के 'स्पेसिफिक काउंटर टैरर मिशन' के 'कमण्डेशन' 'प्रशंसा-पत्र' के लिए उन्होंने चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ को 'साइटेशन' 'अनुशंसा' भेजी थी, जो स्वीकृत हुई।

छद्म युद्ध ने तेजी से आग पकड़ ली थी। उस छद्म युद्ध में उनकी सेवाओं के लिए उन्हें सेना मैडल मिला। इस सबके बावजूद एक असंतोष सा उनके मन में घर कर गया था। इतने स्थानीय नागरिकों, जवानों-अधिकारियों की जान महज कुछ लिजलिजे निर्णयों और ढुलमुल नीतियों के चलते गंवा दिए जाना उन्हें नागवार गुजरा था। उन्होंने सेना से स्वैच्छिक अवकाश ले लिया था।

वे शहर में बस दाखिल हुए ही थे कि उन्हें पीली दीवारों वाला डाकघर दिख गया था। शहर के बदलावों में बच गए एकमात्र जर्जर अवशेष-सा। जिसके बाहर फुटपाथ पर, सूखे मेवे बेचने वाले अखरोटों का ढेर लगाए खड़े थे। दुकानों पर कढ़ाई किए गए कपड़े और सुंदर दस्तकारी के साजो-सामान सजे थे। शहर अजब तरह से विकसित हो रहा था, जैसे बदहाली नाम की खूबसूरत गरीब-बेबस औरत को तीखा मेकअप करके बिठा दिया गया हो, लेकिन डर उसकी आँखों, हरकतों, जुम्बिशों से किसी न किसी तरह टपक ही रहा हो। रंग-बिरंगे शीत पेयों और मोबाइल फोन की कंपनियों के बड़े-बड़े होर्डिंग, शहर के हर चौराहे पर लगे थे। सफेद स्कार्फ से सर को अच्छी तरह ढके, सर झुकाए, बिना खिलखिलाए किशोरियां स्कूल जा रही थीं। धूसर-भूरी दीवारों और लकड़ी के दरकते फर्श और टीन की छतों वाले घरों की कतार जहां खत्म होती थी.... वहां से एक झील शुरू

होती थी। एक बूढ़ा अपनी नाव में बैठा इस झील में उगी जलीय खरपतवार को जाली से बड़ी तटस्थता से साफ कर रहा था। लाइन से लगे शिकारे और हाउसबोट एक अंतहीन प्रतीक्षा में प्रार्थनारत मालूम होते थे।

वे एक मुगलकालीन बाग के करीब से निकले, वहां एक ऊन की टोपियां बेचने वाले ने बताया कि अभी वहां विस्फोट हो चुका है, एक गुजरातियों से भरी बस पर लेकिन जिंदगी बदस्तूर रवां थी। चेरी-अखरोट बेचने वाले बसों में बैठे टूरिस्टों से मोल-तोल कर रहे थे। आखिर हम सीख ही गए आतंक के साए में जीना।

वे उस प्रसिद्ध चौक से गुजरते हुए आगे की तरफ मुड़ गए, जहां मौत का खेल शतरंज की तरह खेला जाता था। वो प्यादा मरा... वो वजीर...! वजीर कम मरते, प्यादे ज्यादा बल्कि वजीरों की शह और मात के बीच प्यादे कब लुढ़क जाते, इसका न पता चलता, न फर्क पड़ता था। हालांकि माहौल में जाहिरा तौर पर कोई तनाव नहीं था। उन्होंने देखा, तब के शहर और अब शहर की सोच तक में फर्क आ गया था। पहले एक-एक मौत मायने रखती थी। अब विस्फोटों और दो-चार मौतों के बावजूद एकाध घंटे में ही जिंदगी फिर से रवां हो जाती है। वो मरी हुई शतरंज की गोटियों की तरह लाशें हटाते और खेल फिर शुरू.... अब वे फिर से टूरिज्म के विकास की तरफ बढ़ रहे थे। सरकार कठमुल्लाओं और उनके खैरख्वाह बनने वाले आतंकवादियों सभी से वे विमुख हो चले थे। फौज से उनका प्रेम और घृणा, सहयोग और असहयोग का व्यापार निरंतर जारी था।

शहर के मुख्य और बड़े हिस्से में स्थापित सेना के एक बहुत बड़े बेस के सामने से वे तटस्थता से गुजर गए। पहले उनका वहीं उसी बेस में ठहरना तय था। मगर वहां उन्हें कुछ अजनबी लगा, बेमानी भी। उनकी जान-पहचान का पुराना कोई भी तो नहीं होगा। उस बेस के चारों तरफ एक लंबा चक्कर काट कर वे शहर से बाहर आ गए थे।

वे उस सड़क की तरफ मुड़ चले जिसके साथ एक नदी चला करती थी। रास्ते बदल गए थे। उन्हें गाड़ी रोक कर नए रास्तों की बाबत पूछना पड़ा। पहाड़ का एक हिस्सा काटकर सड़क का एक छोटा-सीधा रास्ता बन गया था। मगर शायद नदी ने पलट कर फिर कहीं आगे जाकर सड़क का हाथ पकड़ लिया था। अब वह फिर साथ थी। अवरोधों पर वह नदी और अधिक उच्छृंखल हो जाती। ऊंचाई से नीचे गिरती तो अनेकानेक भंवर डालती बहती। नदी के पानी में बहा खून जाने कहां बिला गया होगा... मगर इसकी चंचलता और निश्छलता में कोई फर्क नहीं आया। यह कुछ मील दूर दूसरे देश में में भी ऐसे ही उछालें मारकर बहती रही है।

खुद से उलझते, अपनी मंजिल के बारे में तय करते-करते उन्हें शाम हो आई थी, कुछ रास्ते बदल गए थे, कुछ वे भटक गए थे। अंततः वे एक नए बने आर्मी बेस के छोटे से ऑफिसर्स मैस में जा ठहरे। मैस बहुत खूबसूरत जगह पर बनी थी। उनके कमरे के इस तरफ नदी के छल-छल, कल-कल गीत गूंजते थे तो दूसरी तरह पहाड़ ध्यानमग्न नजर आते। उन्होंने अपने कमरे के पीछे वाली बॉलकनी की रैलिंग से नीचे देखा- नीचे ढलानों की तरफ फैले हरे-भरे विस्तृत चारागाह में, शाम के गुलाबी झुटपुटे और चाँद की फैलती रूपहली रोशनी में दो सफेद मजारें जगमगा रही थीं, मानो मुस्कुरा रही हों।

उस पल हरे-भरे मर्ग के बीच उन गुनगुनाती मजारों, उनके चारों तरफ खिले फूलों और आकाश

में तैरते टुकड़ा-टुकड़ा बादलों को देखकर, न जाने क्यों कर्नल हंसराज को लगा कि मानो मौत का दूसरा नाम खुशगवारी हो।

अगले दिन सुबह नहा धोकर, नाश्ता करके वे अपने कमरे से निकल आए। कमरे की बॉलकनी से जो मजारें उन्हें आकर्षित कर रही थीं। उसी तरफ बढ़ चले। आज उस तरफ रौनक थी, चहल-पहल थी। उन्हें हैरानी हुई।

मैस के एक अर्दली ने बताया कि ये दो सूफी पीरों की मजारें हैं, एक भले दिल के सूफी दरवेश ने अपने पैसे और रसूख वाले मुरीदों से कहकर वहां दरगाह बनवा दी हैं। पूरे चाँद की रात में सुबह से ही वहां मेला लग जाता है। दूर दराज से लोग आते हैं। हंसराज हैरान रह गए थे। वे दरगाह के बाहर ही रुक गए। एक तरफ लगे एक तंबू में कहवा बन रहा था। कहवे की महक ने, वह स्मृति में बसा सौंधा स्वाद याद दिला दिया। वे उसी तरफ बढ़ गए।

'भई, जहां तक मेरा ख्याल है- नौ-दस साल पहले तो यहां कोई मजार नहीं थी। न यहां कोई मेला हुआ करता था।'

'हां बस, दो बरस ही हुए हैं... इन मजारों को मरहूम सुलेमान दरवेश साहब ने देखा...और दरगाह बनवा दी। वे कहा करते थे कि दस साल पहले लापता हुए उनके दो सूफी उस्तादों की मजारें हैं।'

कर्नल हंसराज ने दिमाग पर जोर डाला... 'दस साल पहले, ...हं हां, उन दिनों लेह के 'दो बौद्ध भिक्षु' तो जरूर मार डाले थे, आतंकवादियों ने...। मगर सूफी...! कुछ याद नहीं पड़ रहा।'

आतंकवादी शब्द बोलकर जैसे उनसे कोई कुफ्र हुआ हो, उस कहवावाले ने उन पर क्रूर और ठंडी निगाह डाली।

'कहवा खत्म कर लिया हो तो चलें जनाब।'

तंबू से बाहर ले जाते हुए एक नौजवान कश्मीरी बोला, 'बुरा मत मानिएगा सर, ये बड़े मियां जरा खब्ती हैं। सच्ची बात तो ये है कि ये मजारें किसी सूफी-दरवेशों की नहीं हैं, लैला-मजनूं जैसे दो आशिकों की मजारें हैं। कहते हैं, लड़की कश्मीरी थी और लड़का सिपाही था, हिंदुस्तानी फौज का।'

'क्या बात करते हो?'

'क्या बताऊं सर, दोनों ही बातें कहते हैं लोग। बड़े-बूढ़े तो सूफी-दरवेश की मजार मानते हैं इसलिए यहां सूफी-दरवेशों की हर पूरे चाँद पे मजलिस लगती है। मगर कुछ लोग इन्हें दो आशिकों की मजार समझते हैं तो नौजवान जोड़े भी यहां आकर मन्नतें मांगते हैं।'

'सर, कहां ठहरेंगे? शहर में मेरे चचा का हाउस बोट है, थ्री स्टार।'

उन्होंने कोई रुचि नहीं ली तो कहने लगा, 'यहां बगल के कस्बे में मेरे पहचान के होटल भी हैं सर, हिंदू होटल।'

'अरे नहीं भई, मैं वहां ऊपर ऑफिसर्स मैस में ठहरा हुआ हूं।'

'तो चलिए सर आपको ग्लेशियर... घुमा लाऊं।'

'मेरा सब कुछ देखा हुआ है। तुम जाओ, मैं यहीं कुछ देर रुकूंगा।'

'अच्छा कोई बात नहीं सर, मैं बता रहा था न इन मजारों के बारे में।'

वे समझ गए थे कि यह गाइड या टूरिस्ट एजेंटनुमा कोई जीव है। इन मजारों की कहानी सुनाने के बहाने चिपक ही गया है। कुछ लिए बिना टलेगा नहीं।

'बताओ क्या बता रहे थे?' वे उकता कर बोले।

'कहते हैं एक कश्मीरी लड़की, इस छावनी से कुछ ऊंचाई पर बने गांव में रहा करती थी। खूबसूरत, मासूम, कमसिन। 'सना' नाम था उसका। नीचे छावनी की एक बैरक में रहने वाले एक क्रिश्चन सैनिक 'रोजर' से उसका इश्क हो गया। आप तो जानते हैं सर इश्क जात-धर्म कहां देखता है।' उसका चिपकूपन उन्हें खिजा रहा था, वे उसे झिड़कने ही वाले थे कि उसके सुनाने के दिलचस्प अंदाज पे वे मुस्कुरा उठे।

'लगता है तुमने भी इश्क किया है।'

'हां सर, बहुत पहले। एक हिंदू लड़की से। उसके भाई और बाप तो आतंकवादियों ने मार डाला और वह लड़की और उसकी मां यहां से जम्मू चले गए। खैर छोड़िए वह कहानी सर... ये कहानी सुनिए- हां तो, वह रोज उससे सुबह-सुबह मिला करती, घास काटने के बहाने। रोज सुबह पांच बजे उसकी खिड़की पर एक कस्तूर चिड़िया आकर तान देती और वह ढलान उतरकर अपने आशिक से मिलने जाती।

एक रोज कस्तूर ने सुबह पांच की जगह तीन बजकर चालीस मिनट पर ही किसी डर से तान दे दी। शायद उसके घोंसले के नन्हें चूजों पर किसी बाज ने चोंच मारी होगी। सना को वह तान अजीब तो लगी, मगर प्रेमी से मिलने के चाव में उसने ध्यान ही नहीं दिया। बर्फीले पानी से मुंह धोया तो मुंह सुर्ख की जगह नीला हो गया। अँधेरे में फिरन पहना तो कील में अटककर फट गया मगर फिर भी उसने इन बदशगुनों पे ध्यान नहीं दिया। अपने घर से नीचे ढलान की तरफ प्रेमी से मिलने उतर पड़ी, खुशी से सराबोर, देख लिए जाने के डर से घबराती, जिस्मानी चाहतों में सुलगती, महबूब की आँखों का इंतजार उसकी रूह में सुलग रहा था। उसे पता था रोजर ने परदा दरवाजे में अटकाकर रखा होगा वह खटखटाएगी भी नहीं... पास की बैरकों के उसके साथी न जाग जाएं इसलिए। वह फूलों से लदे एक चेरी के पेड़ के पास से गुजरी... जहां से रोजर की बैरक दस फर्लांग पर थी... कि उसे पहली गोली लगी, कंधों पर... वह बाहर निकल आया... चीखकर रोकता फैंस के पास अपने पहरा दे रहे साथी को, तब तक दूसरी गोली उसका अरमानों भरा सीना चूम चुकी थी। जमीन पर पड़े चेरी के फूल लाल हो गए थे खून से।

'ये क्या किया... ये आतंकवादी नहीं, मेरी महबूबा है।' यह कहते हुए रोजर ने कनपटी पे गोली चला ली और सना के जिस्म पर जा गिरा। कहते हैं सर, कब्रों के पास लगे पेड़ की चेरी एकदम खून जैसे सुर्ख रंग की होती हैं।' नौजवान की आँखों में आँसू थे मानो वह उसकी खुद की प्रेमकहानी हो।

कर्नल हंसराज भी उसके कंधों पर हाथ रखकर बोले, 'तुम एक कामयाब टूरिस्ट गाइड बनोगे, इतनी खूबसूरत कहानी गढ़ी है, तुम्हें तो अफसानानिगार होना चाहिए था। तुम्हारी शादी हो गई?'

'हां सर, चार बच्चे हैं। खर्चा बामुश्किल चलता है...।' उसने सिटपिटाकर कहा।

'चार बच्चे! तुम्हें देखकर तो कतई ऐसा नहीं लगता।'

'सर, बचपने में ही निकाह हो गया...।'

‘ क्या यह दरगाह अंदर से देख सकता हूं मैं?’ कहकर उन्होंने जेब से पचास रुपये का नोट निकालकर उसे दे दिया।

‘सर आप तो फौजी हैं, आपको कौन रोकेगा? यहां के लोगों के दिलों को रौंदकर भी गुजर सकते हैं आप तो।’ उसकी आवाज में तल्खी थी। यह तल्खी पचास रुपये के नोट से असंतुष्ट होने की थी या फिर सच में फौज को लेकर थी यह अंदाज लगाना मुश्किल था।

‘मैं फौजी था, अब नहीं हूं।’

‘चलें?’

वे दोनों दरगाह के भीतर थे। शांत, ठंडी, संगमरमर की छोटी सी दरगाह। संगमरमर के जालीदार गलियारों के बीचों-बीच सलेटी फर्श वाला अहाता था, अहाते में बीचों-बीच लगा चेरी का पेड़ सच में सुर्ख चेरी के झुमकों से लदा हुआ था, पेड़ के नीचे का फर्श पर टपके हुए फलों से लाल धब्बों से अंटा था। लोग गिरे हुए फलों को कुचलकर आ-जा रहे थे। पेड़ की छाया के फैलाव में कोने में संगमरमर के पत्थरों से ढंकी दो मजारें थीं। संगमरमर के पत्थर बाद में मजारों पर मढ़े गए होंगे क्योंकि उनके सिरहाने लगे समाधि-पत्थर पुराने थे। साधारण लाल पत्थर के, जिन पर गढ़कर, अंग्रेजी में लिखा गया धुंधला-सा कुछ दिखाई दे रहा था। वक्त ने बहुत कुछ मिटा डाला था, मगर एक पर ‘एस’ और ‘ए’ तो गढ़ा हुआ दिख रहा था दूसरे में ‘आर’, ‘ओ’ और ‘आर’ अक्षर दिखाई दे रहे थे, बीच के अक्षर मिट चुके थे।

‘यह तो अंग्रेजी में कुछ लिखा है।’

‘तभी तो साहब हम कहते हैं ये सूफियों की मजारें नहीं। मगर ये सूफी लोग कहते हैं कि ये अंग्रेजी नहीं, अरबी की कोई मिटी हुई इबारत है।’ वह फुसफुसाया।

चेरी का पेड़ और यह समाधि पत्थर!

कर्नल हंसराज को बुरी तरह झुरझुरी आ गई। ये तो साशा और रोवर की कब्रें थीं! वे अचकचा कर अपने चारों तरफ देखने लगे। श्रद्धा से भरे लोगों को हैरानी से देखने लगे। उन्हें लगा कि उनके भीतर बर्फानी लहर दौड़ रही है और उनके वजूद को सुन्न करती जा रही है। दो दरवेश, दो दीवाने प्रेमी!

कव्वाली शुरू हो चुकी थी... भीड़ बढ़ने लगी थी।

‘जाहिद ने मेरा हासिले इमां नहीं देखा
इस पर तेरी जुल्फों को परीशां नहीं देखा।

एक भारी, उदास आवाज और कुछ पतली खिली आवाजों का कोरस, बादलों से भरी दोपहर में पहाड़ों से टकराकर एक तिलिस्म बुन रही थी। नीचे घास पर नन्हें फूल खुशहाली का पता दे रहे थे तो ऊपर आकाश में उड़ता हुआ, चौकसी करता सीमा सुरक्षा बल का हेलीकॉप्टर एक बहुत-बहुत कड़वी सच्चाई की तरह आँखों में गड़ रहा था- हम दरख्तों, कबूतरों, नदियों और हवाओं की तरह बेलौस और बेखौफ नहीं। हम अपने-अपने खौफ के गुलाम हैं।

वे एक ठंडी संगमरमर की बैंच पर बैठ गए, तेज-तेज ठंडी सांसे लेने लगे। आस-पास बैठे व्यक्तियों को देखा। एक तरफ बुरके में अधेड़ जनाना बैठी थीं, हाथ में सबीह के मनके फेरतीं। उनके ठीक सामने, एक जवान जोड़ा गुफ्तगू में तल्लीन था। किसी को क्या कहें? कहें भी कि... ना कहें।

कौन मानेगा उनकी? मान भी लिया तो... बहुतों की श्रद्धा पर भीषण तुषारापात होगा। बेचैनी से वे अपना सीना मलने लगे खुद को शांत करने की कोशिश में....। उनके जहन में थे, विस्फोटकों को सूंघकर उनका पता देते साशा और रोवर। सैंकड़ों जिंदगियां बख्शते वे दो सुंदर काले लेब्राडोर कुत्ते। उन्हें उन, कुत्तों की प्रेमिल अठखेलियां याद आ गईं, सुबह पांच बजे महेश कैंप के अहाते में उन्हें खोल दिया करता था। अभ्यास से पहले वे गोल-गोल एक दूसरे के पीछे दौड़ते हुए खेलते थे, घास में लोटते, प्यार भरी गुर्राहटों से अहाता गुंजा देते। उसके बाद शुरू होता था विस्फोटकों के साथ उनका वह 'हाइड एंड सीक' का अभ्यास। जिसे वे खेल समझते थे वह मौत का तांडव था, यह वे मासूम कहां जानते थे।

क्यों कहें... किसी से कुछ भी। कोई जरूरत नहीं है। क्या यह सच नहीं कि साशा-रोवर सच में दो अनूठे प्रेमी थे! और क्या वे धर्म, प्रतिष्ठा, धन और शक्ति के मोह के आगे प्रेम और वफादारी को तरजीह देने वाले दरवेश नहीं थे? क्या हुआ जो वे इनसान नहीं थे, मगर उनके जीवन और मृत्यु दोनों इनसानों को पाठ नहीं पढ़ा गए? उन्होंने पास के एक माला वाले से दो गहरे रंगों के गुलाबों की माला ली, और उन दो मजारों की तरफ बढ़ गए।

●

तितलियां

मनोज कुमार पांडेय

उसे याद नहीं है कि उसने पहली पर्स कब उड़ाई थी। और कब उसका यह हुनर उसकी हाथ की रेखाओं में शामिल हो गया था। सब कुछ इतना अनायास होता कि कई बार तो उसे भी पता न चलता कि कब उसकी आस्तीन से एक तेज ब्लेड नीचे उतरी कब वह उसकी हथेली में जाकर चिपक गई और कब नीचे सरकी। यह सब इतनी तेजी से घटता कि संभव ही नहीं था कि उसके शिकार को खबर लगे कि सतर्क हो जा प्यारे तेरी जेब कटने वाली है। पर्स हाथ में आने के बाद वह पर्स से मुक्त होने में जरा भी देर नहीं लगाता। रुपये उसकी अपनी जेब में पहुंच जाते और अभी थोड़ी देर पहले उड़ाई हुई पर्स कहीं पड़ी धूल खा रही होती। वह एक बार भी पकड़ा नहीं गया था।

एक बार उसने अपने इस फन को विस्तार देना चाहा। उसने अपने नाखून के नाप की ब्लेडें बनाईं जो नाखून में छुपी रहें और वहीं से अपना काम करें। ब्लेडें शानदार बनीं। उसकी उंगलियों को देखकर कोई नहीं जान सकता था कि यह पतली पतली खूबसूरत उंगलियां तेज नश्तर में बदल चुकी हैं। वह अपनी इस नई कलाकारी पर बहुत खुश हुआ। पर बाकायदा कई दिनों के अभ्यास के बाद जब वह अपनी इन खतरनाक उंगलियों के साथ भीड़ में उतरा तो न जाने कैसे अपना वह आत्मविश्वास खो बैठा जिसकी उसके भीतर पहले कभी कमी नहीं रही थी। ऊपर से कोढ़ में खाज वाली बात यह हुई कि उसे खुजली होने लगी। अपना ही शरीर खुजलाते हुए उसने कई जगह काट लिया। शरीर में जगह जगह पर उभरती खून की बूंदों के बीच वह घर लौट आया।

उस दिन के बाद से उसने ब्लेड से तौबा कर ली। वह अपने को कलाकार मानता था। उसने अपने आप से शर्त बदी कि वह यही काम बिना किसी ब्लेड के कर दिखाएगा। अगले कई दिनों तक उसने अपने आप को दांव पर लगा दिया। इस बीच हवा के हल्के झोंकों की तरह उसके मन में यह बात कई बार आई कि वह फिर से ब्लेड पकड़ ले। ब्लेड आस्तीन से सरकते हुए हथेली में और हथेली से उंगलियों के बीच जिस तरह से आती थी वह कम कलात्मक नहीं था। रह-रहकर ब्लेड उसकी आँखों में चमक उठती। उसे लगता कई बार कि जब इतने अच्छे तरीके से ब्लेड के साथ काम चल रहा था तो उसे बेवजह अपने से ही शर्त बदने की क्या जरूरत थी। पर अब तो शर्त बदी जा चुकी थी। शर्त का उसके अलावा कोई गवाह नहीं था पर वह अपनी गवाही पर कायम था।

बीच में मुश्किलें आईं। कई बार उसकी हिम्मत टूटी। कई बार पकड़े जाते हुए बचा। इस सबके

बावजूद वह अपनी जिद पर कायम रहा। उसके सारे पैसे समाप्त हो गए। भूखे प्यासे रहने की नौबत आ गई पर वह अपने सूखे ओठों के साथ डटा रहा। और आखिरकार वह कामयाब रहा। जिस दिन वह धावे पर निकला, उसने कुल आठ पर्सें उड़ाईं। जब पहली पर्स के लिए उसने हाथ बढ़ाया तो उसके हाथ कांप रहे थे। आठवीं तक आते-आते उसके हाथों में अपने आप प्रकट हो जाने वाला कंपन गायब हो गया। वह बहुत खुश था। उसकी जिद जीत गई थी। उसने अपने आप को शाबाशी दी कि अब वह पूरा कलाकार हो चुका था। अपने काम में सिद्धहस्त। उसने तय किया कि आज शाम वह अपने आपको पार्टी देगा।

इसके पहले उसके साथ एक छोटी सी घटना घटी। जब वह आठवीं पर्स के रुपये निकालकर उसे ठिकाने लगाने ही जा रहा था कि पर्स में से एक आठ-दस साल की बच्ची की तसवीर नीचे जा गिरी। उसने न जाने क्या सोचते हुए तसवीर उठा ली। बच्ची बहुत प्यारी लग रही थी और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी तरफ देख रही थी। पहली बार उसने अपने शिकार के बारे में सोचा। यह बच्ची उसकी क्या लगती होगी? और तभी अनायास ही उसके मन में यह ख्याल उभरा कि वह इस उम्र में कैसा दिखता रहा होगा। वह कुछ देर तक बच्ची का चेहरा देखता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर तसवीर को अपनी पर्स में रख लिया।

घर जाते हुए उसने शराब की एक बोतल खरीदी। एक दोस्त को शाम का न्यौता दिया। रास्ते में खाना पैक कराया और अपने कमरे पर पहुंच गया। वह कमरे में अकेला ही रहता था। उसका घर इस कमरे से बहुत दूर था जिसे वह बहुत पहले छोड़ आया था। वह अकसर घर के बारे में सोचता पर उसे कुछ भी नहीं याद आता। अब वह घर के सपने देखता है। ऐसा सपना जिसमें किसी स्मृति का साझापन नहीं है इसलिए यह सपना बिखर बिखर जाता है। यह उसी बिखरे हुए सपने में रहता है जिसके लिए यह एक कमरे की जगह भी कई बार ज्यादा पड़ती है।

घर आकर जब उसने अपनी कमाई गिननी शुरू की तो एक बार फिर से उसकी निगाह उस बच्ची की तसवीर पर अटक गई। वह थोड़ी देर तक उसे देखता रहा फिर उसने वह तसवीर दीवाल पर चिपके हुए एक पोस्टर पर चिपका दी। तसवीर की लड़की खुश होकर मुस्कुराने लगी। अचानक उसे लगा कि उसका कमरा उस बच्ची की मुस्कुराहट के लिए छोटा है। उसे और बड़ा कमरा लेना चाहिए। इस बात पर वह मुस्कुराया और दोस्त के स्वागत के लिए तैयार होने लगा। उसने कपड़े बदले, मुंह धोया, चखना वगैरह बढ़िया तरीके से तैयार किया। उसे पता है कि उसका दोस्त शराब के मामले में बहुत ही लालची और बेसलीका है।

उस दिन दोस्त के जाने के बाद वह कब सो गया उसे पता ही नहीं चला। सुबह उठा तो सिर भारी भारी सा लग रहा था। उसे याद आया कि रात में उसने तसवीर वाली लड़की से बात की थी। वह उसे देखकर मुस्कुरा रही थी। तब उसने लड़की का नाम पूछा था। लड़की ने बताया कि उसका नाम तितली है। उसके पापा उसे यही कहते हैं और यह कहकर वह तितली में बदल गई थी और देर तक कमरे में उड़ती रही थी। यह सब याद आते ही वह मुस्कुराया। यह चीजें सच में कैसे संभव हो सकती हैं। जरूर उसने सपना देखा होगा। यह सोचते हुए उसने दीवार पर चिपकी लड़की की तसवीर की तरफ देखा और हाथ हिलाते हुए मुस्कुराया। उसे लगा कि जवाब में लड़की भी मुस्कुराई है।

वह तैयार हुआ और काम पर निकल गया। जब लौटा तो उसके पास करीब दस जेबों से उड़ाए हुए पैसे थे। और साथ में एक खूबसूरत जवान लड़की की तसवीर थी। इसे भी उसने पहली वाली तसवीर के बगल में चिपका दिया। जवान लड़की उसे बहुत खूबसूरत लगी। जेबकतरे ने आह भरी और सोचा कि काश उसके पास एक प्रेमिका होती। इसी तसवीर वाली जवान लड़की की तरह खूबसूरत और दिलफरेब। वह मुस्कुराया और उसने तय किया कि वह कोशिश करेगा कि उसके पास भी ऐसी ही एक प्रेमिका हो। इसके बाद वह अपने काम में लग गया। वह शराब पीते हुए अपने लिए भोजन बनाने लगा। अंडा करी और चावल। अंडा करी स्वादिष्ट बनी थी। एक गुनगुने नशे के बीच उसने अंडा करी और चावल खाया और थोड़ी देर बाद सो गया।

अगले दिन सुबह उसने अपने को तरोताजा पाया। पर तुरंत ही उसे यह भी याद आया कि आज रात उसने तसवीर वाली जवान लड़की से बात की थी। उसे याद आया कि छोटी लड़की और जवान लड़की आपस में बतिया रही थीं। तब उसने जवान लड़की से उसका नाम पूछा था। जवान लड़की ने इठलाते हुए बताया था कि उसका नाम तितली है। उसका प्रेमी उसे यही कहता है। यह सुनते ही छोटी लड़की हँसने लगी थी। इसके बाद दोनों लड़कियाँ एक साथ तितलियों में बदल गई थीं और देर तक कमरे में उड़ती रही थीं।

वह मुस्कुराया। एक ही सपना बस थोड़े से अंतर के साथ। बस यह कि पहला सपना भी दूसरे सपने में शामिल हो गया था। वह मुस्कुराया और अचानक उसने पाया कि अब वह कमरे में अकेला नहीं है। यहां उसके साथ दो लड़कियां भी हैं। एक छोटी सी प्यारी बच्ची और दूसरी खूबसूरत जवान लड़की। वे दोनों इस हद तक उसके साथ हैं कि उसके सपनों में भी शामिल हैं। इस एहसास ने उसके व्यवहार को पूरी तरह से बदल दिया। इस सुबह जब वह नहाकर बाथरूम से निकला तो तौलिया लपेटे हुआ था। इसके पहले वह अमूमन नंगा ही कमरे में आ जाया करता था और पंखे के नीचे खड़े होकर बदन का पानी सुखाया करता था।

इसी तरह वह लगातार अपने काम पर निकलता रहा और कुछ रुपयों के साथ रोज एक तसवीर लेकर आता रहा। इस बीच वह इस बात पर चकित भी होता रहा कि रोज उसे एक ही तसवीर कैसे मिल पाती है। यह भी तो हो सकता है कि किसी दिन उसे एक भी तसवीर न मिले। या फिर किसी दिन उड़ाई गई पर्सों में से एक से ज्यादा तसवीरें निकल आएं। जो भी हो पर इस बीच उसे इस बात पर अपनी कला जितना ही भरोसा हो चुका था कि उसे रोज एक तसवीर मिलती रहेगी। न इससे ज्यादा न इससे कम। अपने इसी भरोसे की बिना पर उसने एक बार फिर अपने से शर्त बदी कि जिस दिन इसका उलट होगा उस दिन से वह यह काम हमेशा के लिए छोड़ देगा।

उसे यह नहीं पता था कि आगे वह क्या करेगा। पर वह अपने को इसके लिए भी लगातार तैयार कर रहा था कि मान लो किसी दिन वह शर्त हार ही गया तो। तो इसके लिए उसने पैसे बचाने शुरू कर दिए थे। उसके खाते में इस बीच लगातार पैसे जमा हो रहे थे। वह इस बात के प्रति सतर्क था कि किसी दिन उसे अचानक से यह काम बंद कर देना पड़े तो उसके पास नया काम शुरू करने या ढूंढ़ने का पर्याप्त समय हो। इस बीच में उसे पैसे की तंगी या अन्य किसी वजह से अपनी शर्त तोड़ने के लिए बाध्य न होना पड़े।

इस सब के बावजूद यह बातें उसकी समझ से परे थीं। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि

हर नई तसवीर उसके सपने में कैसे शामिल होती जा रही थी। हर नए सपने में पुरानी तसवीरें उसे एक साथ इकट्ठा और आपस में बातें करती दिखाई देतीं। तसवीरें अपना परिवार बना रही थीं। वे आपस में प्रेम और झगड़े कर रही थीं। अपने सुख दुख साझा कर रही थीं। वे हमेशा साथ रहतीं। इतना ही नहीं वे हर नई तसवीर को पूरी मुहब्बत के साथ अपनातीं। यह अविश्वसनीय था। ऐसे ही यह भी पूरी तरह से अविश्वसनीय था कि उसके सपने में आने वाली हर तसवीर अपना नाम तितली बता रही थी। उन सबके पास ऐसे लोग थे जिन्होंने उन्हें यह नाम दे रखा था। और उन तसवीरों ने एक मुहब्बत भरी जिद के साथ यह नाम अपना लिया था।

ऐसे ही एक दिन जेबकतरे ने पाया कि उसके घर में तितलियां ही तितलियां हैं। ये तितलियां उसकी अनुपस्थिति में उसके कमरे में चक्कर लगाती रहती हैं। फिर उसे लगता है कि कुछ लोग और हैं जो उसके घर में छुपकर रहते हैं। उन्हें पकड़ने के लिए वह कई बार अचानक से कमरे पर आ धमकता है पर न जाने कैसे उन्हें पता चल जाता है और वे तसवीरों में लौट जाते हैं। जेबकतरे को उनके हँसने की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। और जब तसवीरों वाले लोग हँसते हैं तो उनकी हँसी से रंग झड़ते हैं। ये रंग उसकी चमड़ी पर जगह जगह चिपक जाते हैं और छुटाए नहीं छूटते। उसके कमरे में, उसके बिस्तर पर, उसके कपड़ों पर तितलियों के पंखों से झरे हुए रंग हैं।

वह बाहर निकलता है तो उसे लगता है कि कुछ लोग हैं जो उसका हमेशा पीछा करते हैं। वह चलता है तो वे चलते हैं, रुकता है तो रुक जाते हैं। अक्सर उसे अपने पीछे तितलियों के उड़ने की आवाज सुनाई देती है। वह परेशान हो जाता है और कमरे पर लौट आता है। ऐसे ही एक दिन अचानक लौटने पर वह एक तितली को तसवीर में समाने के पहले ही पकड़ लेता है। उसके पकड़ते ही तितली एक जवान लड़की में बदल जाती है। वह लड़की से पूछता है कि कौन हो तुम और मेरे कमरे में क्या कर रही हो? लड़की उसके गालों पर अपने पंख फेरते हुए जवाब देती है कि मैं एक तितली हूं और तुम्हें भी तितली में बदलने आई हूं। इस शहर में तितलियां वैसे भी बहुत कम हैं। यह कहते हुए वह लड़की उसकी पकड़ से आजाद हो जाती है और तसवीर में समा जाती है।

जेबकतरा कुछ समझ नहीं पाता। वह पाता है कि उसकी अंगुलियों में रंग लगा हुआ है। ऐसे ही उसकी निगाह सामने आईने में दिख रहे अपने चेहरे पर जाती है। उसने देखा कि उसके गालों नीले रंग की एक पट्टी बन गई है जिसके बीच में पीले और हरे रंग की छींटे हैं। उसने इस पट्टी को हाथों से साफ करना चाहा। तौलिए से रगड़ा, साबुन से धोया पर वह रंगीन पट्टी जस की तस बनी रही। वह डर गया। उसकी ताकत ही यह थी कि वह आम मनुष्यों की तरह दिखता था। अपना काम करके उन्हीं के बीच में गायब हो जाता था। ऐसे तो उसका गायब होना असंभव होता जाएगा। वह तो दूर से ही पहचान लिया जाएगा।

तभी वह पाता है वह इन तसवीरों के बारे में कुछ ज्यादा ही सोचता रहा है। ठीक इसी क्षण उसे पता चलता है कि इन तसवीरों में जान उसी ने पैदा की है। उसी ने इन्हें रंग-बिरंगी तितलियों में बदल दिया है। यह बात उसे एक नए तरह से आत्मविश्वास से भर देती है। उसने सोचा कि अगर वह इन तितलियों को पैदा कर सकता है तो मार भी सकता है। उसने तय किया कि वह इन सभी तितलियों को मार देगा। उसने दीवाल में चिपकी हुई सभी तसवीरों को निकाल डाला। उन पर थोड़ी सी शराब डाली और उनमें आग लगा दी। सभी तसवीरें जलने लगीं। कमरे में धुआँ भर

गया। उसे भ्रम हुआ कि तसवीरें जलते हुए चीख रही हैं। उसने खिड़की खोल दी कि धुएँ के साथ तसवीरों की चीखें भी कमरे के बाहर निकल जाएं।

तसवीरें जला देने के बाद जेबकतरे ने अपने को हल्का और मुक्त महसूस किया। उसके भीतर इस बात की गहरी इच्छा हुई कि वह किसी पार्क में किसी बड़े से पेड़ के नीचे देर तक बैठे। वह बाहर निकल आया। उसके घर के आसपास कोई पार्क नहीं था। वह देर तक पैदल चलता रहा तब जाकर बैठने लायक पार्क में पहुंचा। उसने अपना चप्पल उतार दिया और देर तक नंगे पैर घूमता रहा। नीचे नरम घास थी। उसे अच्छा लग रहा था। फिर उसकी बैठने की इच्छा हुई। वह बैठ गया और थोड़ी देर बाद वह वहीं घास पर लेट गया। जल्दी ही उसकी आँखों में आलस उतर आया। वह देर तक अलसाया हुआ पड़ा रहा।

तभी उसने पाया कि वह लोगों से घिरा हुआ है। लोग मोबाइल से उसकी तसवीरें उतार रहे हैं। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। जब तक कि उसकी निगाह अपने आप पर नहीं गई। उसके पूरे शरीर पर तितलियां ही तितलियां थीं। उसके ऊपर भी तितलियां उड़ रही थीं। वह झटके से उठा तो इतनी तितलियां उड़ीं कि आसमान में सब तरफ रंग ही रंग बिखर गए। वह तेजी से उठा और खुद को घेरे हुई भीड़ के बीच से रास्ता निकालते हुए बाहर भागा। अचानक उसके दिमाग में खयाल आया कि ये तसवीरें खींचने वाले वह लोग हैं जिनकी जेबें उसने काटी हैं। वह तेजी से भागा। उसे लगा कि लोग उसका पीछा कर रहे हैं।

वह देर तक भागता रहा। बहुत देर बाद उसने पलटकर पीछे देखा तो पीछे एक भी आदमी नहीं था। पीछे एक भी तितली नहीं थी। वह हांफ रहा था। वह दौड़ते हुए थक गया था। वह वहीं बैठ गया और सुस्ताने लगा। तब उसकी निगाह अपने पहनावे पर गई। उस पर रंग ही रंग बिखरे हुए थे। उसने विकल होकर सोचा कि क्या एक दिन सचमुच वह तितली में बदल जाएगा, जैसा कि उस जवान लड़की ने कहा था। क्या एक दिन वह उड़ने भी लगेगा, एक अनजाने भाव के साथ उसने सोचा। उसे उस प्यारी सी बच्ची की शक्ल याद आई जिससे यह सिलसिला शुरू हुआ था। मैंने सारी तसवीरें जलाकर यह सिलसिला हमेशा के लिए समाप्त कर दिया है, उसने अपने आप से कहा। इसके आगे जो भी है वह सब भ्रम है।

उसने तय किया कि वह आज फिर से अपने दोस्त को बुलाएगा और साथ बैठकर शराब पिएगा। वह दोस्त से कहेगा कि संभव हो तो वह उसके साथ में ही रुक जाय।

दोस्त के अपने लफड़े थे। वह आया तो पर शराब पीकर चलता बना। जेबकतरे को रात भर नींद नहीं आई। उसे रात भर न जाने कैसी कैसी आवाजें सुनाई देती रहीं। फुसफुसाहट की आवाजें, हँसने की आवाजें, कामुक चीखें, बच्चों की किलकारियां, बूढ़ों की कराह, नई आवाजें, बहुत पुरानी और फंस फंस कर आती आवाजें। वह रात भर अपने कानों में उंगलियां ठूंसे लेटा रहा। रात भर उसे प्यास लगती रही पर उसने पानी की कल कल की आवाजों से काम चलाया। उसके पैरों में इतना जोर नहीं बचा था कि वह उठकर पानी पी सके।

सुबह होते होते सब कुछ शांत हो गया। उसका सिर बोझिल था। रात का नशा उतरने की बजाय पूरे शरीर में बीमार होकर पसरा हुआ था। उसने उठकर गटागट पानी पिया और फिर लेट गया। नींद की एक हल्की सी लहर आई और आकर चली गई। वह दोबारा उठा तो उठकर बाथरूम

गया और तब तक नहाता रहा जब तक कि पानी ही नहीं खत्म हो गया। पहले की तरह वह नंगे ही कमरे में आया और देर तक पानी सुखाता रहा। कपड़े पहनते हुए उसने पुरानी शर्त को संशोधित किया और अपने से एक नई शर्त बदी। उसने अपने आप से कहा कि इस शहर की आखिरी निशानी के बतौर आज वह आखिरी पर्स उड़ाएगा और उसके बाद वह यह काम हमेशा हमेशा के लिए छोड़ देगा। वह उस आखिरी पर्स को फेंकेगा नहीं और उस पर्स के साथ यह शहर हमेशा हमेशा के लिए छोड़ देगा।

रोज की तरह जब वह काम पर निकला तो उसके पैरों में वह पुराना आत्मविश्वास लौट आया था। साथ में वह हल्का सा भावुक हो रहा था कि वह अपना काम हमेशा के लिए छोड़ देने वाला है। न जाने कितनी स्मृतियां इस पल उसके साथ थीं। उसकी आँखों में जैसे उसका पूरा जीवन तैर रहा था। वे कितने प्रसंग जिसमें खतरा बस उसे छूकर निकल गया था। वे प्रसंग उसमें भरोसा और ताकत भरते रहे थे। पर उस सबके उलट आज उसने सोचा कि ऐसे किसी मौके पर उसका खेल खत्म हो सकता था। यह सोचते ही वह लड़खड़ाया। उसे लगा कि जैसे नींद का एक झोंका आया और पल भर में गुजर गया।

नींद का यह झोंका दोबारा तब वापस लौटा जब वह अपने शिकार की जेब में हाथ डाल रहा था। वह अपने शिकार की जेब में हाथ डाले हुए सो गया। जब उसका हाथ पकड़ा गया तब वह सो रहा था। उसके शिकार ने उसे एक झटका दिया। झटके से जब उसकी नींद पल भर के लिए कुनमुनाई तो उसे कुछ खाने की इच्छा हुई। उसे याद आया कि कल शराब पीने के बाद उसने खाना नहीं खाया था। भूख ने उसे जाग्रत बनाया और वह हाथ छुड़ाकर भागा। जब वह भाग रहा था तो वही हत्यारी नींद फिर से उस पर सवार हो गई। उसी नींद के बीच उसने देखा कि उसका पीछा करने वाला अकेला नहीं है। अब एक पूरा समूह उसका पीछा कर रहा है।

तब नींद के बीच ही पल भर के लिए वह डर प्रकट हुआ जिससे हड्डियों तक में कंपकंपी दौड़ जाती है। यह डर उसके लिए एकदम नया है। पर वह नींद में है इसलिए उसे लगता है कि उसके साथ जो कुछ भी हो रहा है सपने में हो रहा है। सपने में ही वह निश्चिंत हो जाता है। उसे निश्चिंत पाकर पीछा करते हुए लोग भी निश्चिंत हो गए हैं। अब वह धीरे धीरे पीछा कर रहे हैं। जब वे उसे पकड़ लेते हैं तो पाते हैं कि वह अब भी सो रहा है। उसे सोता पाकर उसे पकड़ने वाले लोग भी सो जाते हैं और नींद में ही उसे मारने लगते हैं।

जब वह मार खा रहा होता है तब वह नींद में है इसलिए उसे खुद को मारते हुए लोग नहीं दिखाई देते हैं जो कि खुद भी सो रहे हैं। उसे अपने ऊपर बहुत सारी तितलियां दिखाई देती हैं। असंख्य तितलियां। उसे लगता है कि वह उन सब को एक एक कर जानता है। वह उनके रंगों से उनकी गति से और उनकी उड़ने की आवाज से उन्हें पहचान सकता है। तितलियां भी उसे पहचानती हैं। इसलिए वे एक एक कर उसके ऊपर बैठने लगती हैं। तितलियां हवा से भी हलकी हैं इसलिए उसे उनका भार नहीं महसूस हो रहा है।

मारने वाले लोग जब जी भर के उसे मार चुके होते हैं तब कहीं जाकर उनकी नींद टूटती है। वे जेबकतरे से दूर हटने लगते हैं। तब उन्हें दिखाई देता है कि जेबकतरे के शरीर पर बहुत छोटे छोटे रंग-बिरंगे पंख उग आए हैं। वे उसे अचरज से देर तक देखते रहते हैं। तभी पंखों में हरकत

शुरू होती है। वे बढ़ना और फड़फड़ाना शुरू करते हैं। उन पंखों के फड़फड़ाने की आवाज लोगों ने पहले कभी नहीं सुनी है। जब अचरज से उनके कान चौड़े हो रहे होते हैं उसी समय जेबकतरा करवट बदलता है और धीरे धीरे उठकर बैठ जाता है। वह अपने रंगीन पंखों को बहुत हसरत के साथ सहलाता है और उड़ने के लिए तैयार हो जाता है।

जब वह उड़ रहा होता है तो वहां जमा लोग इस हद तक चकित होते हैं कि उनकी पलकें तक झपकना भूल जाती हैं। वे इतना भी नहीं कर पाते कि जेब से मोबाइल निकालें और इस अचरज भरी घटना की तसवीर उतारें। वे उसे तब तक देखते रहते हैं जब तक कि वह उड़ते उड़ते आसमान में गायब नहीं हो जाता। उसके गायब होने के बाद वह पल आता है जब कि वे एक दूसरे को देख पाएं। वे पाते हैं कि उनमें से कोई भी एक दूसरे को नहीं पहचानता। तब उन्हें लगता है कि जैसे वे सब एक साथ कोई सपना देख रहे हों। सपने की बात सामने आते ही वे निश्चिंत हो जाते हैं और सपना टूटने का इंतजार करने लगते हैं।

●

निवेदन

कहानी विशेषांक के सभी रचनाकारों को अवगत कराना है कि मानदेय भुगतान के लिए सीधे बैंक खाते में धनराशि ट्रांसफर की नई व्यवस्था लागू की गयी है।

सभी से अनुरोध है कि अपने बैंक खाते का पूर्ण विवरण नाम, बैंक और शाखा का नाम, खाता संख्या एवं आईएफएससी कोड ई-मेल से सीधे- bahuvachan.wardha@gmail.ocm पर प्रेषित करें।

पूनम की रात

मनीष वैद्य

सावित्री की दिनचर्या सधी और बंधी हुई थी। तकरीबन हर रात ही ऐसा होता कि पिछली रात का कोई तारा सावित्री की नींद में चुभता। उस तारे की आहट से वह अचकचाती उठ बैठती। कपड़े संभालती, आगे आ गए बालों को पीछे करती। मटके से एक लौटा पानी उलीचती और गटक-गटक पी जाया करती। फिर गोदडियां तह करती झाड़ू उठा लेती। दूसरी खोली में सास खर्राटे भर रही होती और आंगन में उसका भरतार गोबिन घोड़े बेचकर सो रहा होता। सावित्री का बेटा लड्डू झोली में दुबका होता। अँधेरी ओलड़ी की कच्ची जमीन पर खजूर के खोडिए से बनी झाड़ू की सरसराहट से धूल और रेत के कणों के साथ सूखे पत्ते भी दहलीज की तरफ दौड़ पड़ते। झाड़ू जिस तरफ भी घूमती, उधर से ही धूल-कचरा बुहार लाती। वह बरसात के खाली दिनों में अपने लिए ऐसी झाड़ूएं बना लेती, जो पूरे साल फर्श को झाड-बुहार कर साफ-सुथरा करती रहती।

जब वह सारा कचरा बुहारकर आंगन की तरफ बढ़ती तो सास जोर से खंखारती, इसका आशय यह होता कि वे भी जाग चुकी हैं और बहू को काम करते देख रही हैं। उस खंखारने और कचरे को आंगन के पार करने के ठीक बीच वक्त पर आंगन का कोई फूल चटकता और आसमान की अँधेरी छाती पर भोर का तारा चमकने लगता।

अभी ठंड तेज नहीं हुई है। सावित्री पैरों में बाणा डालती, आंगन में पड़े डिब्बे में पानी भरती और मवडिया नाले की ओर दिशा मैदान के लिए निकल पडती। उसके पैरों के बाणे सूखे पत्तों को रौंदते हुए चर्र-चर्र करते आगे बढ़ते। ठंडी गुलाबी हवाओं के झौंके उसके शरीर को छूते तो भीतर कहीं देह-राग की अछूती तरंगे हिलोरें लेने लगती। अँधेरी रात में भी वह पगडंडियों को चीन्हती ठीक नाले की झाड़ियों के पीछे जा बैठती। उसके उठते तक गांव की दूसरी नवेली बहुएं और खिसिर-खिसिर करती छोरियों का हुल्लड़ भी उधर ही आने लगता।

वह आधे रास्ते लौटती तब तक अँधेरे में भोर की उजास घुलने लगती। घास के तिनकों पर ठहरी मोती जैसी ओस की बूंदे बाणे से टकराकर उसके पैरों को छूने लगती। मानो उसके पैर पखार रही हो। दूसरी सयानी औरतों के साथ सास भी उधर जाती हुई उसे स्कूल से थोड़ा आगे मिल जाया करती। सास-बहू में कोई संवाद नहीं होता, बस पूरे चेहरे पर घूंघट काढ़े वह एक तरफ हो जाती और उस झुंड के निकलने पर ही आगे बढती। यह गांव की बहुओं का कायदा था और इसे वे न जाने कब से निभाती आ रहीं थी।

घर लौटती तो हल्के उजाले में आंगन दमकने लगता। लकड़ी के दरवाजों के आसपास बेलें फूलों से अट जाती। दीवारों पर बने रंग-बिरंगे हाथी-घोड़े जैसे दौड़ पड़ने को बेताब होते। भीत से उठता मोर नाचने लगता। बारिश के बाद कच्ची भीतों को लीप-छाब कर जब वह उन पर रंग उकेरने लगती तो हाथी-घोड़े, मोर-मोरनी, चिड़िया-पंछी, बेल-बूटे, तुरही बजाता आदमी और पानी लाती औरतें यक-ब-यक खुद ही दीवारों पर आ थमते। जैसे वह कोई मोहिनी मंत्र जानती थी और उसके मंत्र से बिद्ध ये सब यहां चले आए हों। लेकिन अभी तो वह खुद अपनी ही घर-गृहस्थी पर मोहित हो उठी। ठीक तभी हवा के तेज झोंके से उसके आंचल का पल्लू उड़ने लगा और सावित्री बच्चों की-सी अल्हड़ता में खिलखिला पड़ी। फिर आसपास नजरें घुमाती खुद ही लजाने लगी। बाहर आंगन के मटके से लोटा भर पानी लिया और रगड-रगड़ कर हाथ-पैर धोने लगी। कोरी देह पर ठंडे पानी की बूंदे पड़ी तो वह लरजने लगी। मानो देह ताप पर ये बूंदे छन्न करती उडी हों।

उसे चुहल सूझी। उसने चुल्लूभर ठंडा पानी लिया और आंगन में खटिया पर घोड़े बेचकर सो रहे गोबिन के चेहरे पर छींट दिया। अचकचाकर गोबिन की नींद खुली तो सामने अपने आंचल का पल्लू मुंह में दबाए सावित्री थी। सुबह के हल्के कोहरे में लिपटी सावित्री के चेहरे पर शरारती बच्चे-सी मुस्कान बिखरी हुई थी। उसका सांवला चेहरा भोर की उजास में ज्यादा नमकदार होकर दमक उठा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में गोबिन के लिए नेह का आमंत्रण था। गोबिन ने अंगडाई ली और लपककर उसकी कमर को ऐसे पकड़ा कि अरे...अरे कहते हुए वह सीधे उसके पास खटिया पर जा गिरी। वह आगे बढ़ता कि उससे पहले ही सावित्री ने उसे दूसरी तरफ धक्का दिया और अपना आंचल खींचती हुई आंगन के कोने में खड़ी मुस्कुराने लगी। गोबिन मन मसोसकर रह गया।

उसकी सास से पटवारिन अम्मा सच ही कहती है- 'कहां से ढूंढ लायी, ऐसी गुणी सतवंती नार. .. ये तो सच्ची की सावित्री दिखे है, जो यमराज से भी भिड़कर अपने लकडहारे पति सत्यवान के प्राण छीन लायी थी। देख तो जबसे आई है तेरे तो घर आंगन की जगर-मगर ही बढ़ गई। मेरी चार बहुओं में से एक भी ऐसी होती तो मेरा बुढापा सुधर जाता। सब की सब कमत्या...आलसी दारी. .. खुद सजी-संवरी ने रेट और घर देखो तो खाने दौड़े म्हारे देखो, म्हारा घर-आंगणा मत देखो'

सावित्री की सास मन ही मन फूल जाया करती पर पटवारिन अम्मा के सामने घमंड की बात कहना ठीक नहीं। बरसों उनके खेतों में दाडकी-मजूरी करते कटी है, उनके सामने हमेशा ऊंच-नीच का ध्यान रखती है। भीतर ही भीतर बहू पर छाती फुलाती और प्रत्यक्ष में कहती 'अरे ऐसी बात नहीं है बड़ी बहू ...कहां तुम्हारी बहुएं... एक से बढ़कर एक अप्सरा जैसी सुंदरियां... धूप में घड़ी भर खड़ी हो जाएं तो लाली आ जाए, उनकी झम-झम आँखें ही बोलती हैं। मुलक भर में दिया लेकर ढूंढों तो एक भी ऐसी न मिले... पूरे गांव-इलाके में हैं किसी की ऐसी बहुएं और फिर हम लोगों के तो घर भी छोटे से हैं, इन्हें चक-पक करने में वक्त कितना लगता है...अब आप लोगों की ऊंची-ऊंची हवेलियां और बड़े-बड़े अवेर-कोठार...'

पटवारिन और रुखाई पर उतर आती-'थोबड़े के साथ-साथ बहुएं थोड़ा तमीज-तासीर भी बांध लातीं तो...'

पटवारिन के जाने के बाद सावित्री की सास उसे पास बुलाती और उसके कान के पीछे काजल की ऊंगली फेर देती। मन ही मन बुदबुदाती-मेरी बहू को किसी की नजर न लगे। यह बात सही

थी कि सावित्री पटवारिन की बहुओं की तरह सुंदर नहीं थी, लेकिन जोबन का रंग और नूर तो उस पर भी फबता था। भरी-पूरी कद-काठी में सांवली काया पर भरा-भरा बदन, तीखे नैन-नक्श, गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, कसी हुई कांचली, बेल-बूटे कढ़ी हुई ओढ़नी और कांच जड़े रंग-बिरंगे घेरदार घाघरे में जब बाहर निकलती तो छोरे-छपारे ही नहीं, सयाने-अधेड़ और बूढ़े-ढाड़े तक मुड-मुड़कर देखने लगते। यह बात दीगर थी कि किसी में उसके सामने पड़ने या छींटाकशी करने की हिम्मत नहीं थी। सावित्री अलग ही मिट्टी की बनी थी। अलग तरह की आंच पकी थी उसकी देह... उसकी देह में उसका ताप महसूस होता था... खासकर काणा पटेल वाले मामले के बाद तो कोई उसकी तरफ देखकर आह भरना भी मंजूर नहीं करता।

उसने काणा की ऐसी जग हँसाई कराई कि वह अपने बेटे-बहुओं से नजरें मिलाने लायक भी नहीं बचा। सावित्री के मामले से पहले तक वह औरतों को अपने पैर की जूती समझता था। उसके लिए मान-मर्यादा, इज्जत-सोहबत, उमर और गांव का कोई लिहाज नहीं बचा था। उसकी इन्हीं हरकतों के कारण गांव में उसका कोई सम्मान नहीं करता था। कोई पास बैठाने तक को तैयार नहीं होता। वह चार भाइयों के परिवार का अकेला वारिस होने से डेढ़ सौ बीघा जमीन का मालिक था। शुरुआत से उसकी सोहबत अच्छे लोगों से नहीं रही और बचपन से ही वह मांस-मदिरा का शौकीन बन गया। धीरे-धीरे जवानी की कोपलें फूटने के साथ तो वह अपनी मंडली के साथ सारी-सारी रात नौटंकियों में नाच देखने जाने लगा। बड़े घर से होने के कारण उसकी ऐब ढंकती गई।

इतनी बड़ी जमीन के लिए उसे कई मजदूरों की जरूरत होती थी। वह मजदूरों से खूब सख़्ती से काम लेता था लेकिन मजदूरिनों के मामले में उतना ही दिलदार बन जाया करता था। वह जवान, कमसिन तथा खूबसूरत मजदूरिनों को काम पर रखता और उन्हें अकेले में हवेली या खेत पर बने मकानों में काम के बहाने बुलाता और उनकी आबरू पर डाका डालता। ज्यादातर मजदूर औरतें पहले ही किस्मत की मारी और गरीबी की सतायी हुई हुआ करती थी। उनके पिता या पति लंबे वक्त से उसी के यहां काम करते हुए उसकी ताबेदारी में रहते थे। इसलिए खून का घूंट पीकर रह जाया करते थे। पानी में रहते हुए मगर से बैर लेना कहां आसान है। इस शातिर मगर के पैने दांत तो गांव से लेकर थाने-कस्बे ...कहां-कहां तक फैले हैं, यह बात हर कोई जानता था। इतने पर भी कोई औरत हिम्मत कर कभी आगे बढ़ने की कोशिश करती तो काणा के आदमी उसके परिवार के पुरुषों से मारपीट करते या उनकी झोपड़ियां जला दी जाती या उन्हें झूठे पुलिस केस में फंसा दिया जाता। इन सब स्थितियों में किसी को, कहीं से न्याय की उम्मीद नहीं थी। कुछ गैरतमंद औरतें कुंए-कुंडी में कूदकर अपनी जान भी दे देती लेकिन इन सबसे काणा की आदतों पर कोई फरक नहीं पड़ता था।

काणा पटेल अधेड़ उमर में सांवले रंग का मजबूत काठी और नाटे कद का आदमी। उसकी पकौड़े की तरह की फूली हुई नाक उसके चेहरे से बड़ी थी। उसका नीचे वाला होंठ हमेशा ही नीचे की तरफ झुका रहता, जिससे पीले दांत झांकते रहते थे। सिर पर आगे के बाल उड़ जाने से दोनों कानों के आसपास और पीछे ही कुछ बाल बचे थे, बाकी तो पूरा सिर गंजा था। उसकी चाँद इतनी चिकनी थी कि बारिश की बूंदे गिरे तो कोई बूंद टिक न पाती, गिरते ही फिसल जाती। मोटे होने से गले का कुछ हिस्सा दब-सा गया था। वह सफेद कुरता पायजामा पहनता। कुरते के ऊपर के

दो बटन वह ज्यादातर खुले ही रखता, इससे उसकी घने काले बालों से ढंका सीना हमेशा उघड़ा रहता। उसके गले में सोने की मोटी चौन पड़ी रहती और हाथ की उंगलियों में गुलाबी, पीले और हरे रंग के रत्नों वाली सोने और चाँदी से मढी अंगूठियां पहने रहता।

गांव में उसके अनाचार के कई किस्से दबी जुबान कहे सुने जाते, लेकिन किस्से सुनाने वाला यह जरूर जोड़ देता कि किस्सा सुनते ही भूल जाना कि मैंने तुम्हें कुछ कहा-सुना। इस तरह गांव की हवाओं में उसके किस्से तैरते रहते। इन किस्सों से उसे कोई ऐतराज भी नहीं था, बल्कि ये तो उल्टे उसके शौर्य और उसकी ताकत का ही बखान करते थे। कहा तो यहां तक जाता है कि वह जन्म से काणा नहीं था, किसी औरत के दरांती मारने से ही उसका एक बल्ब हमेशा के लिए बुझ गया था। इसके बाद भी वह अनाचार पर अनाचार करता रहा। गांव के लोग उसके पाप का घड़ा भरने का इंतजार करते हुए जीने को मजबूर थे और औरतें उसका शिकार होने को मजबूर थी। सामने आकर कोई उसके खिलाफ कुछ बोलने तक का साहस नहीं कर पाता था। आखिरकार वह गांव का अन्नदाता था। सबसे ज्यादा जमीन उसके पास थी, लिहाजा मजदूरी के मौके भी उसी के यहां ज्यादा थे।

दूसरे काश्तकारों के पास दस-बीस बीघा से पचास-साठ बीघा तक की जमीनें ही थी, जिनमें परिवार के लोगों के काम करने के बाद कम ही मजदूर लगते थे। मजदूर लगते भी थे तो महज बुवाई-कटाई जैसे कामों के लिए... बाकी दिनों में घर-परिवार को पेट भर रोटी देने के लिए तो लोग काणा की ही शरण में थे। गांव में जमीन वाले लोग ही कितने थे, ज्यादातर तो मजदूर ही थे... रुपये के सोलह आने में से चव्वनी के पास खेत तो बारह आने मजदूर परिवार। ये हर दिन सुबह काम पर जाते, तब कहीं जाकर शाम को चूल्हे का धुँआ आसमान की तरफ निकलता। यह क्रम कई बरसों से चल रहा था या शायद उससे भी पहले कई सदियों से... काणा के पहले जब उसके पुरखों ने पहली बार इस धरती को खेती करने लायक बनाया होगा... तब से ही यहां मजदूर रहते रहे। जमीन का रकबा थोड़ा बड़ा हो तो गांव में बिना मजदूर खेती की बात कोई सोच भी कैसे सकता है। खेती और मजदूर इसीलिए पास-पास रहते आए थे। इनकी कई पीढ़ियों का पसीना इन खेतों में गहरे तक धंसा हुआ था। यह पसीना हर साल मोतियों की तरह अनाज के दानों से खलिहान और बुखारियां भर देता, इनका थोड़ा-सा हिस्सा उन मजदूरों के परिवार की भूख मिटाने को मिलता, जबकि ज्यादातर काणा पटेल जैसे बड़े किसानों के ट्रैक्टरों पर लदकर मंडी चला जाता और इस तरह उनके खजाने बढ़ते रहते।

हां, तो अब आते हैं काणा और सावित्री के उस मुख्तसर किस्से पर, जिसे आप सब बड़ी देर से सुनना चाहते हैं तो किस्सा कुछ यूं है कि जब सावित्री ब्याह कर ढोल-ढमाके से गोबिन के घर आई तो पूरे गांव में उसकी चर्चा होनी लाजमी भी थी। आखिर गांव था ही कितना बड़ा... बात इस-उसके कानों चढती हुई ऐन काणा के कानों तक भी पहुंच ही गई कि खाल पार के तिग्गडे पर रहने वाले गोबिन की नयी-नवेली बहू के चेहरे पर जोबन का नमक ऐसा दमकता है कि देखने वाला लट्टू हो जाए... भाग खुल गए गोबिन के तो... जन्म के बाद ही बाप मर गया था। मजदूरी कर जैसे-तैसे मां ने पाला-पोसा और जब से पंद्रह का हुआ तो मां को घर बैठाकर खुद मेहनत-मजूरी करने लगा। रोज की मेहनत से कंधे चौड़े हो गए। अठारह-बीस का होते-होते गबरू जवान दिखने लगा.

.. और अब ऐसी पत्नी मिली कि सारे गांव में चर्चा थी।

काणा ने सुना तो उसकी लार टपकने लगी। काणा अपने संगी-साथियों को लेकर कुंए के पास वाली हवेली के छज्जे पर बैठने लगा। लोग जानते थे कि छज्जे पर बैठकर वह यहां पानी भरती औरतों को ताकते हुए उनकी टोह लेता। जब पहली बार सावित्री को उसने देखा तो सुध-बुध खो बैठा... उसे दिन में भी उसके सपने आने लगे। अब उसे वह किसी भी हालत में पाना चाहता था। संगी-साथियों ने चेताया भी कि हुजूर... एक-एक कदम फूंक कर रखने की जरूरत है। वह मरकही गाय की तरह सींग मारती है और घोड़े की तरह दुल्लती झाडती है पर वह भी घाट-घाट का पानी पी चुका था। उसे गुमान था कि औरतों के बारे में उससे ज्यादा कौन जान सकता है। हर औरत की दुखती रग जानने और हर औरत को मुट्ठी में कर लेने का इतना पक्का यकीन था कि उसने अपने संगी-साथियों की बात को बड़े ही हल्के में उड़ा दिया। उसके ऊपर तो एक तरह का नशा तारी था। अब तक कभी किसी ने उसका सामना नहीं किया था तो उसे यही लग रहा था कि थोड़ी-बहुत उछल-कूद के बाद आज नहीं तो कल यह मुर्गी भी उसके जाल में फंस ही जाएगी।

आखिरकार काणा ने जाल बिछाया और फड़फड़ाते पंछी की तरह सावित्री उसमें फंस ही गई। उसकी सास को एकाएक जाड़ा देकर बुखार चढा तो घर भर के गोदडे-गोदड़ी ओढाने के बाद भी शरीर में सूखे पत्ते की तरह थरथराहट नहीं रुकी। दो-तीन दिन में उसकी कमजोरी इतनी बढ़ गई कि बिस्तर पकड़ लिया। काणा ने गोबिन को कुछ काम बताकर अपने आदमियों के साथ शहर भेज दिया। इधर सावित्री को खबर भेजी कि जुवार कटना है तो बडली वाले खेत पर पहुंच जाए... वहां बाकी गांव की औरतें भी आ रही है।

सावित्री ने पहले तो मना कर दिया फिर सास के कहने पर कि इससे शाम तक घर में जुवार के कुछ दाने आ जाएंगे तो उसने अपनी दरांती की धार पत्थर पर घिसकर तेज की और घर के कामकाज जल्दी-जल्दी निपटाकर बडली के खेत तरफ निकल गई। यह खेत आसपास बडलियों (पहाड़ियों) से घिरा था और दूर-दूर तक जुवार के बड़े-बड़े पौधों के सिवा वहां कोई नहीं था। गांव की कोई औरत नहीं थी। सावित्री को कुछ आशंका हुई। काणा के किस्से उसने भी सुन रखे थे। उसे एक झटके में सब कुछ समझ आ गया। गोबिन को बाहर भेजना और उसे यहां बुलाना। उसका दिमाग तेजी से घूम रहा था। पल भर को इच्छा हुई कि दौड़ लगा दे गांव की तरफ। वह कुछ सोच रही थी कि तभी जुवार के खेत से काणा निकला और सीधे उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसे उसका आशय समझने में एक पल भी नहीं लगा। फिर भी उसने दोनों हाथ जोड़ सिर झुकाकर परनाम किया और एक तरफ सरककर खड़ी हो गई, लेकिन काणा के माथे पर तो शैतान की सवारी थी। उसने आगे बढ़कर पट्ट से सावित्री का हाथ पकड़ लिया। काणा के लिए अनहोनी हो गई कि सावित्री ने उसके हाथ को उलटकर मोड़ा और फुर्ती से कमर में रखी दरांती उसकी एक आँख के सामने ले जाकर दहाड़ी... 'खबरदार, जो एक कदम आगे बढ़ाया तो यहीं चीरकर रख दूंगी।' थरथराता हुआ काणा दो कदम पीछे हट गया। दरांती से ज्यादा धार सावित्री की आँखों में थी। काणा बुरी तरह सहम गया। उसके हाथ-पैर अब भी कांप रहे थे। आज पहली बार किसी सवा सेर से पाला पड़ा था।

फिर न जाने एक पल में क्या बदला कि सावित्री ने दरांती वापस अपनी कमर में खोंसते हुए कहा- 'लाला, मुझे पाना इतना आसान नहीं कि इस अकेले जंगल में मान जाऊं... जो सच में लगन

हो और कलेजे में जान-दम हो तो कार्तिक की पूनम वाली रात सोनगढ़ी के मेले में हजारों की भीड़ के बीच आम ऐलान के साथ पान का बीड़ा खिलाओ तो देखूंगी तुम्हारी हवेली भी...' उसके इस कहने में अजब-सी कशिश थी और गजब की अदा थी कि काणा तो लहालोट हो गया। उसे अपने कानों पर सहसा यकीन ही नहीं हुआ कि उसने अभी-अभी जो सुना, वह सच है या उसका भ्रम... लेकिन भ्रम की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वह अब भी उसी तरह खड़ी हुई उसकी तरफ तिरछी मुस्कान बिखेर रही थी...

उसका बस चलता तो वह दिन-रात को जल्दी-जल्दी बदल देता। वह कर सकता तो पंचांग के पन्ने उलट देता और कैसे भी कार्तिक पूनम ले आता... पर उसके हाथ में कुछ नहीं था, सिवाय इंतजार करने के...और उससे इंतजार ही तो नहीं हो पा रहा था... हर दिन बदलता तो लगता एक साल बीत गया... वह बार-बार दिन गिनता...फिर दिन के घंटे और घंटों के मिनिट... एक-एक पल उस पर भारी पड़ रहा था। फिर वह पूनम वाली पूरे चाँद की रात के सपने में खो जाता। सपना उचटता तो वह फिर घड़ियां गिनने लगता...

आखिरकार बड़ी मान-मन्नौव्वल की कार्तिक पूनम भी आ गई... पूरे चाँद की रात नदी के किनारे शंकरजी की डेरी के आसपास मेला भरता है। इलाके के बीस गांव के लोग जुटते हैं...औरतें. ..बच्चे-बूढ़े...खूब भीड़ मचती है... पूरी रात रोशन चाँदनी में पहले शंकरजी की बारात निकलती है. ..माथे पर चंदन का त्रिपुंड लगाए हर कोई सुध-बुध खोकर नाचता है... बम-बम भोले के नारे लगते हैं। भजन मंडलियां एक से एक भजन गाती हैं कि सुनते ही रहो... हर कोई मगन मन गाता है। सुनसान रात में हारमोनियम, ढोलक और खंजड़ियों की ताल पर भजन नदी की धार के साथ बहते रहते हैं... भजनों और नारों-जयघोषों की चिल्लपों के बीच कुछ सुनाई नहीं देता। पूरे जुलूस में पैर रखने की जगह नहीं... लोग टूटे पड़ रहे हैं, पालकी को किसी तरह एक बार कंधा लग सके तो पुन्न ही पुन्न... पंडे हाथ तक नहीं लगाने दे रहे... देर रात स्नान कर गीले कपड़ों में ब्राह्मण ही पालकी उठाते हैं... मंदिर के सेवादार बाकी लोगों को हड़काते हैं, दूर धकेलते हैं...चलो हटो...दूर हटो, चलो हटो... की आवाजें तेज होती जाती है।

आज की रात काणा पर भारी है। वह झूमकर नाचता है, सुध-बुध खोकर नाचता है... भोले में मन रमा है या अपनी इच्छा पूरी होने की खुशी में तन-मन से मगन है... लोग हैरत में है कि आज वह किस नशे में हैं कि नाचते हुए उसके पांव ही नहीं थम रहे कि आज उसका पोर-पोर खुशी से सराबोर है कि आज उसके चेहरे पर अजीब-सी खुशी की दमक है... उसे प्रतीक्षा है, पालकी के मंदिर पहुंचने की। नदी से स्नान कर शंकरजी के मुखौटे को शिवलिंग पर चढाया जाएगा... पूजा-अर्चना होगी। महंत महाराज के कुछ देर कीर्तन और प्रवचन होंगे... उसके बाद मंदिर में दर्शन के लिए कतारें लगेंगी और लोग प्रसाद के लिए धक्का-मुक्की करेंगे। तब तक तो बहुत रात बीत जाएगी। क्या करें... पालकी के मंदिर पहुंचते ही भजनों का सिलसिला थमेगा और इधर पांडाल में कीर्तन करती औरतों में सावित्री को पान का बीड़ा ... कुर्ते की जेब में पान का बीड़ा टटोला... जिसे शाम से ही बंधवा लिया था... बनारसी पत्ते पर गुलकंद, इलायची और चमन बहार की खुशबू से दमकता चाँदी की वर्क में लिपटा बीड़ा अपनी सही-सलामत जगह पर था... भोले आज उसे मन मांगी मुराद देंगे... एकबारगी तो उसकी दरांती से डर ही गया था, दरांती से या उसकी धारदार आँखों से,

... लेकिन काणा भी शिकारी है शिकारी... वह अपने आप पर मुग्ध हो गया तथा मोगरे के नूरजहां इत्तर का एक और फाहा अपने हाथ पर मलने लगा...

मंदिर के ओटले पर पालकी रखी जा चुकी थी, थोड़ी ही देर में पंडितों की पूजा -अर्चना के मंत्र गूंजने को थे। भजन और कीर्तन की स्वर लहरियां शांत हो चुकी थी। हारमोनियम, ढोलक और खंजड़ियां थककर खामोश पड़ी थीं। मुख्य पंडितजी आ ही रहे थे कि काणा औरतों वाले पांडाल में घुस आया... औरतों के बीच ढोलक के पास बैठी सावित्री इसी पल के इंतजार में थी। वह उसे देखकर एक तरफ खिसक गई लेकिन काणा तो शैतान था ही, उसके ठीक सामने जाकर पान का बीड़ा उसकी ओर बढ़ाया ही था कि उसके बाएं गाल पर सावित्री के दाएं हाथ का तड़ाक तमाचा इतनी जोर से पड़ा कि उसे लगा कहीं तेज रोशनी फूटी है- 'यह आज की बदतमीजी के लिए ...' और वह संभलता तब तक दाएं गाल पर फिर एक चटाक तमाचा पड़ा ... 'यह उस दिन की हरकत के लिए...' तब तक तो सारी औरतें उसकी तरफ बढ़ गई... उसके संगी-साथी भी मामला बिगड़ते देख इधर-उधर खिसक लिए। वह बचता हुआ पांडाल से निकलकर सीधे मंदिर के ओटले के नीचे ठोकर खाकर गिर पड़ा। इस बार सावित्री ने अपना बाणा उठाकर सिर पर दे मारा। निशाना बिलकुल सही था. .. बाकी औरतें अपने बाणा उठाए उसके पीछे भागीं लेकिन वह भाग निकला, यहां से वहां तक पूरी भीड़ ने उसे बाणा से पिटते हुए देखा था... बच्चे-बच्चे ने खुद अपनी आँखों से यह नजारा देखा था।

काणा के लिए यह वाकया अप्रत्याशित था और उसके लिए ही क्या पूरे इलाके में जिसने भी सुना, उसी ने दांतों तले उंगलियां दबा ली। उसे और उसकी आदतों को हर कोई जानता था लेकिन एक दिन ऐसा भी आएगा, यह कभी किसी ने नहीं सोचा था। उस रात के अँधेरे में काणा कहां-कहां गिरता-पड़ता, अपनी ही बेबसी और जगहँसाई पर खीजता-कुढ़ता कितनी रात गए थेगलिया कुंए की खेत में बनी अपनी सुनसान हवेली में पहुंचा। किसी को नहीं पता। भीतर तक धँसे गहरे अपमानबोध के साथ उसने बाकी रात आँखों ही आँखों में काटी। क्या-क्या नहीं सोचा उसने...? सोच का समंदर ठाठें मारता रहा... सुबह का सूरज उजाला लेकर आया था, लेकिन उसे इस उजाले से चिढ़ होने लगी। उसने हवेली के दरवाजे भीतर से भेड़ लिए, पूरे पर्दे खींच दिए। रोशनदानों में कपड़े ठूंस दिए।

लेकिन हवेली से बाहर पूरे गांव, इलाके और दुनिया में उजाला फैल गया था। इस उजाले में उस अँधेरे की किरच भर भी शेष नहीं थी। भोर के तारे के साथ उजास से भरी सावित्री गांव की दूसरी औरतों के साथ मेले से लौट रही थी। औरतें पूछती है- 'उसका यही हश्र करना था तो उसी दिन बडली वाले खेत में ही कर देती। यहां क्यों बुलाया...?

वह कहती है 'वहां कौन देखता, यहां तो जमाने ने देखा। वहां अकेले में मार खाकर फिर किसी और की जिंदगी में जहर घोलता। अब इतनी जिल्लत के बाद वह आगे दस बार सोचेगा। उसका मुखौटा गिराना जरूरी था।'

औरतें उसे देखती रह गई. वह लंबे-लंबे डग भरती हुई आगे बढ़ रही थी। बाकी औरतों ने भी आगे बढ़कर उसके साथ अपने कदम मिला दिए।

●

सांझी छत

मनीष कुमार सिंह

घर का रास्ता लगभग पहले जैसा ही था बस थोड़ा परिवर्तन ये था कि इस बीच नगर-निगम वालों के लगाए पौधे आदमकद हो गए थे। गुमटी पर जमाने से चल रही चाय की दुकान वैसी ही खुली थी। मोड़ पर बैठने वाला पान वाला अभी भी कत्था-चूना लगाता हुआ दिखा। घर के दरवाजे और उस पर लगे सांकल व बरामदा की सूरत पहले जैसी थी। अंदर के कमरे क्या बदले होंगे?

बरामदे में चहलकदमी कर रहे बड़े भाई ने उसे देखकर बस इतना पूछा कि कौन सी गाड़ी से आए हो। भाभी ने अपनी कोठरी के दरवाजे का मटमैला परदा जरा सा सरकाकर यह जायजा लिया कि उनका पति किससे बात कर रहा है। उसे देखकर वे तनिक मुंह बिचकाकर अंदर हो गयीं। चाय-पानी को पूछना तो दूर बीबी-बच्चे का हालचाल तक की खबर नहीं ली। वह सब कुछ देखते हुए भी निरपेक्ष मुद्रा अख्तियार करके घर के अंदर आया। आंगन के तीन ओर कोठरियां थीं। वह सीधा मां और बाबूजी की कोठरी में पहुंचा। पांव छूने पर पहले से ज्यादा बूढ़ी लग रही मां ने खाट से उठने का उपक्रम करते हुए पूछा। 'बहू और मोनू को साथ क्यों नहीं लाया?'

वह बिना कोई जवाब दिए घड़े से गिलास में पानी उड़ेलकर पीने लगा। फ्रिज बड़े भाई की कोठरी में था। पुराने मॉडल का ही सही जिसके फ्रिजर में इस्कीमो के घर इग्लूठ के आकार की बर्फ जमी रहती।

बाहर कुल्फी वाले की घंटी सुनायी दी। बचपन में वह इस घंटी को सुनकर वह मचलकर भागता था। दादाजी, पिताजी, बड़े या मझले चाचाजी से जिद् करके खरीदवाता। वे मना करते लेकिन फिर मान जाते। आज खुद खरीदकर खाने का भी जी नहीं करता है। बस यार-दोस्तों के साथ कैंटीन में बैठकर चाय पीता है। कुल्फी खाकर जो तृप्ति तब मिलती थी वह अब कहां। उसे सहसा यहां आने की निःस्सरता का अनुभव होने लगा। खामखाह का नॉस्टेल्जिया। न कोई लेना न देना और यहां पहुंकर सभी का फूला मुंह देखो। सबके सब कुंठित..। हद दर्जे के खुदपरस्त। सभी के मन में अपरिभाषेय मलबे के रूप में न जाने क्या क्या दबा हुआ है।

मां कब रसोई में गयी यह पता नहीं चला। प्लास्टिक के एक पुराने ट्रे में चाय और मगज के दो लड्डू लेकर वह आ रही थी। उसने गौर किया कि प्याली के किनारे टूटे हुए थे। ज्यादा चीनी वाली लोकल ब्रांड की चाय। लड्डू भी बेमजा थे। वह सामने दीवाल पर टंगे कैलेंडर में शिवजी के परिवार को देखने लगा। शिव-पार्वती, गणेश और कार्तिकेय। पंखे की खड़खड़ाहट के साथ कैलेंडर

भी आवाज करता हुआ डोल रहा था। इस उपक्रम में दीवाल पर निशान बन गए थे। शिव-परिवार का चित्र लोगों में शायद भक्तिभाव जाग्रत करने के लिए कारगर होगा लेकिन वह कुछ सोचकर मन ही मन हँस पड़ा। अजीब विरोधाभास है। शिव के गले में सर्पमाला की भांति आबद्ध थे जबकि कार्तिकेय का वाहन मोर सर्पभक्षी है। उधर गणेशजी का वाहन चूहा बिना सांप के आतंक के सन्निकट बैठा है। शक्ति स्वरूपा पार्वतीजी दुर्गा ही तो हैं जिनकी सवारी सिंह से नंदी बैल को कोई भय नहीं है। विरुद्धों का अजीब सामंजस्य है।

आंगन में पीपल का पेड़ आज भी ज्यों का त्यों खड़ा था। उसकी जड़ बगुले के पैर की तरह फैले हुए थे। गिलहरियां उस पर चढ़ उतर रही थी। उसके बिलकुल पास चौखट पर आकर एक गिलहरी किवाड़ के नीचे उग आए एक पौधे में अंकुरित नन्हें फल खाने की चेष्टा कर रही थी। उसने लड्डू का एक टुकड़ा उंगलियों से उसकी तरफ फेंका। फुर्ती से उस भेंट को स्वीकार करके वह दुबारा पेड़ पर चढ़ गयी।

घर में एक अघोषित विभाजन पहले ही विद्यमान है। किसी दिन बड़े भाई पूरी तरह अलग हो जाएंगे। मां-बाबूजी किसके हिस्से आएंगे यह एक यक्ष प्रश्न हो सकता है क्योंकि उनकी संपत्ति जैसे-खेत-जमीन, यह पुश्तैनी मकान, चौकी-खाट, आलमारी, बर्तन-भांड़े और मां के गहने का ही सवाल नहीं था अपितु मां-बाबूजी को बुढ़ापे में रखने का दायित्व का भी उलझा हुआ प्रश्न निहित था।

'बाबूजी की सेहत कैसी रहती है?' उसने एक सामान्य प्रश्न किया। 'संझा को आएंगे तो देख लेना।' मां ने निरपेक्ष मुद्रा में जवाब दिया। उसे लगा कि वह व्यंग्य कर रही है क्योंकि उसके सवाल में मामूली जिज्ञासा भर थी। चिंता का कोई नामोनिशान न था। फिर लगा कि मां सहज भाव से कह रही है। उसके संज्ञान में यह तथ्य था कि पिछले कुछ महीनों में उनकी तबियत ठीक नहीं चल रही है। इस दौरान मां ने उससे पैसों की कोई मांग नहीं कि और न ही उसने खुद अपनी ओर से कुछ भिजवाया।

सांझ को बाबूजी आए। दरवाजे पर खटखट होते ही अशक्त दिखने वाली मां चपलता से उठी और किवाड़ खोला। बाबूजी का शरीर केले की तरह गल गया था। बड़े भाई की तरह किस ट्रेन से आए हो यह न पूछकर वे उसे ध्यान से देखने लगे। प्रणाम और आशीर्वाद के बाद बाद उन्होंने उसे घूरते हुए कहा- 'काफी दुबले हो गए।'

इस बात पर वह कुछ नहीं बोला। औलाद को बहुत दिनों बाद देखने पर मां-बाप की सामान्य प्रतिक्रिया माना। बाहर आदमी कमाने जाता है। बैठे-ठाले रहने का समय किसके पास है। यहां की कस्बाई सोच चाय-पान की गुमटी पर महफिल सजाकर गप हांकने तक सीमित है। टूटे चप्पल मोची से सिलवाकर अनंत काल तक इस्तेमाल करने की जिद्द, फटी धोती व झरते प्लास्टर वाली दीवालें देखने की अभ्यस्त आँखें किसी की तरक्की बर्दाश्त नहीं कर सकती हैं। पहले खाना खाने से पूर्व और खाने के बाद ढंग से हाथ धोने की आदत डाल ले। उसे घर का प्रत्येक सामान ऐसा लग रहा था मानो बरसों तक जमीन में दबा रहने के बाद निकाला गया हो। छत पर जगह-जगह सीलन के निशान थे। जब तक कोई अति आशावादी अपनी कल्पना से इसे मार्डन आर्ट न समझ ले तब तक यह दृश्य बेहद अवसाद उत्पन्न करता था। घर में कोई आ जाए तो उसे बैठाने में शर्म आएगी। बड़े भाई की कोठरी में दादाजी के समय का शीशम का पलंग पड़ा दिख रहा था। बिना बंटवारे के ही

उन्होंने एक तरह से कब्जा कर लिया। देखो जरा पलंग की मजबूती पर कई जमाने बीत जाने के बाद भी कोई फर्क नहीं पड़ा है। भला निर्जीव चीज की भी इतनी आयु होती है। अनेक लोग इस बीच गुजर गए। लोग उत्तरोतर किशोर, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध होते गए।

बड़े भाई की छह वर्षीय बेटी माला दौड़कर उसके पास आ गयी। 'तुम मटरू चाचा हो ना?' वह पहली बार मन से मुस्कुराया। 'हां ठीक पहचाना और तुम कौन हो?' उसने जानबूझकर कौतुक करने के लिए पूछा।

'मैं माला...?' वह किवाड़ से सटकर खड़ी हो गयी। एक हाथ में प्लास्टिक की गुड़िया थामे हुई थी। घर में पुकारे जाने वाले इस मटरू नाम को बड़े शहर में कोई नहीं जानता था। आज यह नाम सुनकर उसे अच्छा लगा। घर वाले बच्चों के नाम ऐसे-वैसे रख देते हैं। 'इधर आओ।' उसने माला को बुलाया।

'ना...।' वह इठलाती हुई बोली। उसने उसे गोद में उठाया। इतने दिनों बाद मिल रहा है। बच्चों को कहां याद रहेगा। 'मोनू को क्यों नहीं लाए?' माला ने पूछा। लो इसे तो सब याद है। 'चलो तुम्हें उसने पास ले चलते हैं।' वह बोला।

'मटरू चाचा टमाटर और कटहल फल माने जाते हैं या सब्जी?' माला ने अपनी आँखें चमकाते हुए पूछा। अरे यह कैसा सवाल...! वह फेर में पड़ गया।

'हमारे स्कूल में मैडम ने पांच फल और सब्जियों के नाम लिखने को कहा है।'

'तुम्हें किसी और फल-सब्जी का नाम नहीं सूझा?'

'नहीं...बात यह है कि एक बच्चे ने टमाटर और कटहल को फल में लिखा था। उसके पापा ने यही बताया था। इस पर मैडम ने काट दिया। इसलिए पूछ रही हूं।' वह जोर से हँसने लगा। देश में किन-किन जगहों पर कटहल को फल माना जाता है? कम से कम शहरों में तो ये सब्जी में गिना जाएगा। टमाटर का मामला जरा अलग है। यह बॉर्डर लाइन पर है। वह माला को लेकर चौक की ओर निकल गया। उसे टॉफी-चॉकलेट दिलाने का इरादा था। चौक पर एक खाली मैदान हुआ करता था। पहले बिलकुल खाली रहता था। अब कुछ कार और दुपहिया खड़े थे। फिर भी काफी जमीन खाली थी। यहां साल-छह महीने पर कव्वाली, कुश्ती दंगल इत्यादि हुआ करते थे। अभी भी होते होगे। दुर्गा-पूजा का पंडाल यही लगता है। दो बच्चे प्लास्टिक की थैली को डोरी से बांधकर हवा के प्रवाह के विरुद्ध दौड़ते हुए उड़ा रहे थे। बहुत बरस पहले वह भी कभी ऐसा ही किया करता था। जब तक घर से कोई मां और दादी के नाराज होने की पक्की। खबर नहीं लाता तब तक प्लास्टिक और अखबार का पन्ना उड़ाने की सफल-असफल कोशिश करता रहता।

माला को दुकान के सामने लाकर उसने मर्तबानों की ओर इशारा करके कहा, 'ले लो...क्यों चाहिए।' वह जरा सकुचा गयी। 'अरे चुप मत रहो। बोलो...।' उसने प्रोत्साहन दिया। फिर खुद कुछ टॉफी और चॉकलेट लेकर उसके नन्हें हाथों में पकड़ाया।

लौटते हुए पूरे रास्ते माला उसकी उंगली थामे तरह-तरह की बातें पूछती रही। मटरू चाचा यह मंदिर हनुमानजी का है या शंकर भगवान का...? आपकी पतंग कितनी ऊंची जाती थी, वगैरह। उसने हलवाई के यहां जब जलेबी खाने को कहा लेकिन बच्ची में लालसाधिक्य का अभाव था। बस टॉफी-चॉकलेट से संतुष्ट थी। घर पहुंचकर वह खुले दरवाजे के अंदर घुसकर जोर से किलकारी मारती

हुई चिल्लाई। 'हाथी, घोड़ा, पालकी जय कन्हैयालाल की।' घर में सभी खामोश सदस्यों का ध्यान उसकी तरफ आकृष्ट हुआ। 'ये देखो,' उसने अपनी दोनों हथेलियां खोली, 'मटरू चाचा मेरे लिए क्या लाए हैं।'

बेटी के हाथ में टॉफी-चॉकलेट देखकर भाभी की मनःस्थिति तनिक बदली। 'दिन भर हुड़दंग मचाती रहती है यह। स्कूल का होमवर्क पूरा करने को कहा तो नानी मरने लगती है।' इस भर्त्सना को सुनकर उसने माला का पक्ष लिया। 'अभी बहुत छोटी है।'

'चलो मटरू चाचा हम लोग छत पर चलते हैं।' वह उसकी उंगली पकड़कर पूरे अधिकार से खींचती हुई बोली। 'चल जाकर अपना काम कर।' मां ने उसे झिड़का। 'थका- मांदा आया है और तू उसे अपने में उलझा रही है।'

'जाने दो मां।' वह उसके साथ ऊपर गया। सीढ़ियां जर्जर थीं। छत की काली, खुरदुरी और कबूतरों की बीट से जगह-जगह पटी थी। एक कोने में कटी पतंग गिरी हुई थी। पतंग का फीका पड़ा रंग देखकर लगता था कि कई दिन पहले गिरी होगी। छत के एक कोने में बड़ी सी दरार साफ दिखायी दे रही थी। उसे याद आया कि इसी जगह पर कभी बड़े भाई तिरपाल तानकर बरसात का पानी इकट्ठा करते थे। कहीं से एक बगुला पकड़कर लाए थे। उसे खिलाने के लिए तिरपाल के संग्रहित पानी में मछलियां छोड़ देते थे। आज उसी जगह से पानी टपकता है।

आंगन में बड़े भाई के खटिया पर बैठ जाने की वजह से मां ने एक बार सबके लिए चाय बनायी। चाय पीते ही पता चला कि उसमे तुलसी की पत्तियां डाली गयी हैं यानी कि मां को उसकी पसंद याद है। कस्बाई माहौल ऐसा ही होता है। 'भाग्य खराब हो तो शेर भी मकड़ी के जाले में फंस जाता है।' बड़े भाई अब उससे बड़ी आत्मीयता से अपना दुखड़ा बयान करने लगे। 'ठेकेदारी शुरू की थी लेकिन बीच में पेंच आ गया। पार्टनर भाग निकले और मैं फंस गया। जेब से जमा-पूंजी लगानी पड़ी। मुनाफे की बात छोड़ो।'

'पार्टनर कौन थे?' उसने एक सामान्य जिज्ञासा दिखायी।

'एक तो अपना वीरेश्वर था। नाम सुना होगा...। इंटर फेल है दूसरा रामऔतार बाबू का लड़का हरिहर...। इसमें वीरेश्वर ने बेईमानी की। समझ लो कि आज शहर में अपना पूरा व्हाइट हाउस बना लिया है। गाड़ी, घोड़ा, नौकर सब हैं।'

उसे लगा कि बड़े भाई के जख्म से मवाद बह रहा है। 'तुमको नहीं पता होगा। उसका खानदान भूखों मरता था। घर में लाई-चबेना का ठिकाना नहीं था लेकिन उसका बाप बाहर निकलता था तो मूंछों पर घी चिपोड़ लेता।'

वह कहना चाहता था कि कलयुग में पूंजी और प्रचार के बिना कुछ नहीं होता है लेकिन चुप रहा।

लोग महानगर को खामखाह लानत भेजते हैं। कुछ भी करो वहां कोई फालतू की तांक-झांक नहीं करने जाता। सबकी अपनी-अपनी जिंदगी है। इधर लोग जिंदगी का कम से कम आधा समय दूसरों के बारे में जानने और सूंघने में लगा देते हैं। पहले की बात और थी। अच्छा है कि आज वह यहां नहीं रहता है। ऐसे माहौल में कोई क्या खाक तरक्की करेगा...। आसपास कोई नाली या पीकदान होता तो वह खंखारकर थूक देता। यहां लोग एक-दूसरे को नीचा दिखाकर और उनकी असफलता एवं औसत दर्जे के जीवन पर खुश होकर एक कुंठित आनंद का आस्वादन करते हैं।

घर की रेलिंग से प्लास्टर का एक टुकड़ा टूटकर सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ नीचे गिरा। जर्जर चीज चाहे कितनी भी ऊंची हो गिरकर बिलकुल तल पर आती है। पूरा मकान ही जीर्ण-शीर्ण है। मरम्मत में जितना लगेगा उससे अच्छा है कि नया खरीद लो लेकिन यह बात ये लोग कहां समझेंगे। कहने में भी खतरा है। न जाने क्या समझ लें।

'पूरा घर टूट रहा है। आदमी पेट पाले या छत बनवाए। फूस जलाकर या तो ताप लो या उसे छत पर बिछा दो।' पास में पीढ़ा पर बैठकर बाबूजी ने गर्मी के मारे अखबार मोड़कर पंखा करना शुरू कर दिया। गर्मी के विरुद्ध अपने इस क्षुद्र संघर्ष में पराजित होकर उन्होंने अखबाररूपी पंखा नीचे रखकर मानो अपनी पराजय स्वीकार कर ली। 'धरती को बुखार चढ़ रहा है। हर साल पहले से ज्याादा गर्मी पड़ती है।'

माला अपने खिलौने लेकर उन सबके बीच आ गयी। सारे खिलौने लकड़ी की एक गाड़ी में रखकर वह उसे खींचने लगी। थोड़ी देर तक इस उपक्रम में लीन रहने के बाद जमीन पर चुक्की-मुक्की बैठकर सबको टुकुर-टुकुर देखने लगी। 'ऐ बिटिया जमीन पर मत बैठो। इधर खटिया पर आ जाओ।' बाबूजी ने कहा। पीढ़ा, खटिया और चटाई सरीखे बहुउद्देशीय निर्मितियों पर बैठने-लेटने और औंधे होने का काम खूब होता है।

'तुम्हें जितनी तनखाह मिलती होगी उससे ज्यादा कुटुंब के लोगों की उम्मीदें होगी कि उन्हें कुछ मदद मिले।' बड़े भाई का स्वर निरंतर विगलित होता जा रहा था। 'मुझे मालूम है...आदमी की आमदनी आठ आने होती है तो लोग रुपये-डेढ़ रुपये की आस लगाकर बैठते हैं।'

भाभी ने प्लास्टिक के बदरंग प्लेट में नमकीन लाकर सामने लगा। प्लेट में तीन चम्मच पड़े थे। सुबह वाली बेरुखी छोड़कर उन्होंने नजदीक मोढ़े पर बैठकर उससे अनुरोध किया। 'नमकीन लो। ये यहां की सबसे अच्छी दुकान से लाए हैं। ये माला सारा फेंक-फांक देती है। इससे छिपाकर रखा था।' वह बोला। 'शरारत नहीं करेगी तो कैसे मालूम होगा कि घर में कोई छोटा है।'

'तुम नहीं जानते हो।' भाभी ने कहा। 'हफ्ते भर पहले इसके पापा कुल्फी लाए। खाते हुए इसने अपनी फ्रॉक गंदी कर दी। फिर जानते हो अगले दिन सुबह जागने पर मुझे हिलाकर क्या कह रही थी...। मम्मी मोनू मुझे सपने में दिखा था। कह रहा था कि थोड़ी कुल्फी मेरे लिए भी बचाकर रखना। मैं भी खाऊंगा। इस पर माला पूछने लगी कि तुम्हारे आते-आते तो कुल्फी पिघल जाएगी। तब तक इसकी नींद खुल गयी।' कहते-कहते भाभी साड़ी के पल्लू से आँखों की कोर पोछने लगीं। चाय सस्वर सुड़कते हुए सबका बतियाना जारी रहा।

थोड़ी देर में चाय की तीनों प्यालियां समरसता में जूठी होकर नल के नीचे पड़ी थी।

'दुनिया में हर आदमी के पास पैसा नहीं होता है लेकिन बाजार हर जगह लगा हुआ है।' बाबूजी के स्वर में दोनों बेटों के साथ बैठने की खुशी के साथ हल्की निराशा भी घुली थी। 'पहले नून-तेल-लकड़ी का बाजार लगता था। आज हर इनसानी रिश्ते का बाजार सजा हुआ है।.... जड़ से जुड़े रहने पर धूप और पानी फलता है। डाल से टूटा एक पत्ता हो या जड़ से अलग मजबूत तना, देर सबेर जिंदगी देने वाली यही धूप और पानी उसे मिट्टी में मिला देती है।' अपनी सरीसृप समान पंक्तियां द्वारा वे सूखे पत्तों के ढ़ेर के बीच सरसराते हुए बढ़े जा रहे थे। वह उनकी बातें सुनते हुए भी कहीं और खोया हुआ था।

गमछा से मुंह पोछते हुए वे बिना संदर्भ के एक और वक्तव्यनुमा बात बोले। 'शहर में लड़की पड़ोस तक भी जाती है तो बिना फेशवॉश से मुंह धोए और क्रीम लगाए नहीं निकलती। यहां लड़कियां हफ्ते में एकाध बार बाल संवारती होगीं।' गतकालिकता के दोष से ग्रस्त इस कथन को उसने वृद्धजनों के जनरेशन गैप वाली सोच समझकर झेला।

वह जमीन की ओर नजरें गड़ाए हुए था। इसी आंगन में दोनों भाइयों का छोटे-छोटे बालों वाला पहलवान कट बनवाने का पाक्षिक कार्यक्रम होता। दोनों जमकर विरोध करते कि वे अमुक फिल्म हीरो वाली स्टाइल की बाल रखेंगे लेकिन बाबूजी की त्यौरी के आगे उनकी एक न चलती। यहां जिंदगी कितनी आराम से चलती है। महानगर में बेतहाशा भागते इनसान के पास थक जाने के बावजूद विश्राम का समय नहीं होता है। हां रात में सोते हुए अर्धविराम जरूर ले लेता है। क्षण भर के लिए उसे लगा कि शहर में उसका वक्त जेल की कोठरी में एक युवा कैदी के यौवन की तरह व्यर्थ बीत रहा है।

बड़े भाई की कोठरी के दरवाजे पर लगा परदा अभी हटा हुआ था। उसने देखा कि दीवाल का प्लास्टर भुरभुराकर झर रहा है। कमरे की पुताई बदरंग हो चुकी है। शायद बड़े भाई ने यह देख लिया था कि वह कोठरी का जायजा ले रहा है। 'एक तरफ की छत धसक गयी है। पानी चूता है। सारा घर मरम्मत मांगता है। कोई क्या-क्या करे।' नन्हीं माला इधर-उधर पड़े ईटों को उठाकर एक के ऊपर एक रख रही थी। 'अरे क्या कर रही है?' उसकी मां ने कहा। 'हाथ-पैर पर गिर गया तो चोट लग जाएगी।'

'घर बना रही हूं मां।' वह लाड़ से बोली। उसके जी में आया कि उसके हाथों से लेकर खुद घरौंदा बनाने लगे। माला अचानक मुड़कर बिना किसी को संबोधित किए बोली- 'सब लोग मिलकर बनाएंगे तो हमारा यह घर क्यों नहीं पहले जैसा सुंदर नहीं बनेगा। मेरे हाथ छोटे हैं पर दादाजी, पापा और मटरू चाचा के हाथ तो इतने बड़े-बड़े हैं।' सभी लोग बस उसकी ओर ताकते रह गए।

'बाबूजी हम लोग मिलकर छत क्यों नहीं बनवा सकते हैं?' वह सहसा बोल उठा। बिना किसी पूर्वनिर्धारित योजना के कहा गया संवाद लोगों के कानों में पड़ने पर सहसा कोई प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न कर पाया।

'आज अच्छी हवा चल रही है। उमस घटी है। मच्छर-वच्छर नहीं दिख रहे हैं। अगर बारिश नहीं हुई तो छत पर बिछावन लगाऊंगा।' बाबूजी के चेहरे पर मगही पान खाने के बाद वाली चमक छायी हुई थी। शिव परिवार के चित्र वाला कैलेंडर शाम की ठंड़ी हवा में जैसे उमंग से लहरा रहा था।

●

हरि अनंत, हरि कथा अनंता

निर्मला तोदी

न जाने वे सब कहां मिले थे। अपनी आपबीती अपने कसैले, कड़वे जहरीले अनुभव सुना रहे थे। अपनी-अपनी यात्राओं से लौटकर आए थे। क्या ऐसे भी यात्रा-संस्मरण होते हैं? जीवन यात्रा संस्मरण?

धरती का कोई टुकड़ा था या आसमान का? या उनका अपना अलग अंतरिक्ष था? बादलों के स्याह झुरमुट के बीच उनका ठिकाना था या किसी बुजुर्ग पेड़ की खोह? क्षितिज का वो कोना भी हो सकता है, जहां हर शाम सूरज सुस्ताता है। मुझे नहीं पता। अब आप जनाब यह मत पूछिएगा कि फिर मैंने उन्हें कहां सुना और कैसे? जो सुना वो एकदम साफ था। एक एक सिसकी, एक-एक सांस, एक-एक शब्द। हां उनके पास भी अपनी सांसें थी, अपने शब्द और सिसकियां भी।

मैंने जो सुना वो लिख रही हूं। थोड़ा-थोड़ा। पूरा लिखना मेरे लिए कहां संभव है? भाषा सब कुछ, सारे अनुभव कहां समेट पाती है? यह सच है कि इसमें मनगढ़ंत कुछ भी नहीं।

सबसे पहले उसने कहना शुरू किया, जो अभी-अभी आई थी। ताजा सी, हांफती सी.....

मैं उस कोख से आ रही हूं, जहां कुछ भी नहीं था। एक खाली कोरी दुनिया थी। फिर भी मैं पहुंच गई। जितनी जल्दी गयी, उतनी ही जल्दी निकाली भी गयी। मेरी भूल थी वहां जाना, फिर भी मैं चाह रही थी मेरी भूल को इस तरह न सुधारा जाए। वो अपनी खाली दुनिया मेरे साथ बसा ले। एक ऐसी दुनिया जिसमें हम दोनों हो। उसके पास सिर्फ उसका शरीर था। एक निर्जीव शरीर। जो उसका और उसके घरवालों का पेट भर रहा था। उस शरीर में मेरे लिए कोई जगह नहीं थी।

कुंती ने कर्ण को पैदा करके बहा दिया था। मुझे पैदा होने से पहले नर्सिंग होम के डस्टबिन में। समाज को पिता का नाम चाहिए। वो नाम सूर्य के समान ही बड़ा था,जिसे छू भी नहीं सकते। होटल के एक कमरे में बिताई रात का कोई नाम नहीं होता। सात सितारा होटल के कमरे में, पूरी होटल में, रोशनी ही रोशनी जगमगाती है। दिन से सौ गुणा शाम के बाद का समय रोशनी से दिपदिपाता है। फिर भी वहां के अँधेरे, अँधेरे में ही डूबे रहते हैं। बहुत भयानक होते हैं वे अँधेरे।

मैं कवच-कुंडल लेकर पैदा नहीं होती, मालूम है मुझे। लेकिन मैं उनका कवच -कुंडल बन सकती थी। नाम की वैशाखी के बिना चलने की हिम्मत चाहिए। उसमें वो हिम्मत नहीं थी अगर हिम्मत होती, डर और कमजोरी से घुटने टेक नहीं दिए होते, तो उस रात वह सब होता ही क्यों? मैं बन सकती थी, मैं बनना चाहती थी उनका सहारा लेकिन उनका हाथ मेरे हाथ में आता तब न!

उसकी मां ने ही कहा था- ना बेटी इसे रखने की भूल न करना। वह मां की बात मान रही थी, समझ रही थी। एक मां एक मां को मां बनने से रोक रही थी। और इस तरह मैं पहुंच गई यहां, तुम सब के पास।

मैं भी सुनाऊं अपनी कहानी?

वैसे मेरी कहानी में नया क्या है? मुझे अब मालूम हुआ कि आजकल यह बहुत ही आम बात है। पहली बार जब मैंने सुना एकदम से बिजली का झटका लगा था। क्या ऐसे भी होता है इस आज की पृथ्वी पर। मुझे तो वह भी अनहोनी लगी थी कि राजा दुष्यंत शकुंतला को भूल गया। और अब आज के जमाने में यह एक बहुत ही मामूली सी बात है। लोग ऐसे पलटी मारते हैं कि बस. .. मैं अपने कान से सुनकर आई हूं- 'नाट ए बिग ईशू। बस दस मिनट लगेंगे।' 'ओह माई गॉड।'

दोनों में कितना प्रेम था। लोग उन जैसों को ही तो पागल प्रेमी कहते हैं। साथ-साथ जीने मरने की कसमें खाते थे। मैं वैसे ही माता-पिता चाहती थी। कितनी सुंदर थी वो। मेरे कारण वो रो रही थी, बताओ उस समय मुझ पर क्या बीती होगी? उनमें इतना... इतना... इतना प्रेम था कि प्रेम में देह की सुध-बुध खो बैठते थे। मैंने प्रवेश किया खुले आकाश के नीचे। चारों तरफ बादल। रूई से मुलायम बादल। उस दिन आसमान पर एक तारा भी नहीं था। चाँद भी नहीं। बादलों की चमक बता रही थी चाँद है वहीं कहीं। उन्होंने ही छिपा रखा है उसे अपने भीतर। मैं भी ठीक वैसे ही रहना चाहती थी उसके अंदर। एकदम महफूज।

वे जल्दी ही शादी करने वाले थे। लेकिन जैसे ही मेरे आने की आहट सुनाई दी, कर्कश घंटियां बजने लगीं। वहां देवता नहीं थे। दानवों के हाथों दुंदुभियां बज रही थी। जो प्रेम से देह की यात्रा थी, वहां प्रेम था ही नहीं। मुझे नहीं चाहिए ऐसे माता-पिता। अच्छा हुआ उन्होंने झट से यह निर्णय लिया। इस पृथ्वी पर मैं ऐसे ही रहूं मुझे बिना प्रेम का शरीर नहीं चाहिए था।

वे दो जाति के थे। अच्छा होता है ना! जाति बंधन मुक्त जीवन। वहां समाज की कट्टरता बीच में नहीं खड़ी थी। वे स्वतंत्र थे। वो कह रहा था- 'तुम्हें पता है, मुझे अभी पढ़ना है, विलायत जाना है। इस झमेले में पड़कर मैं अपना करिअर चौपट नहीं कर सकता। हमसे गलती हुई, लेकिन ध्यान रखने की जिम्मेदारी तुम्हारी ज्यादा बनती है।'

वो कह रही थी- 'हम शादी करने वाले थे। तुम हमेशा कहते थे, मुझे बच्चे बहुत अच्छे लगते हैं। मैं पूरी एक क्रिकेट टीम बनाऊंगा।'

'वो सब ठीक है अभी मुझे पांच साल इन झंझटों से एकदम दूर रहना है। अगर तुम अकेली बिना मेरे नाम के पाल सकती हो तो रखो। मैं अब तुमसे पांच साल बाद ही मिलूंगा। वैसे भी तुम इस मामूली सी बात को बेकार में इतना तूल दे रही हो। इट्स नॉट ए बिग इशू। सिर्फ दस मिनट लगेंगे।' जिस कॉन्फिडेंस से वह बोल रहा था, जिस सहजता से, लगता था इसके पहले भी वो यह सब कर चुका है। वो समझ गई थी, वो उसके लिए सिर्फ एक जरूरत थी।

वो चुप रही। उसके अंदर भी वही चल रहा था। अपना करिअर, अपना स्वार्थ, अपनी जरूरतें, अपना हिसाब-किताब। उसका अपना जीवन। उसका जीवन उसके लिए मेरे जीवन से बहुत-बहुत -बहुत बड़ा था। मैं एक छोटा सा ईशू था, जिसे सिर्फ दस मिनट में खत्म हो जाना था।

वह बाहर खड़ा रहा। अपने फोन के साथ। वो मासूम अंदर कमरे में। मैं उसकी धड़कन सुन

रही थी। नहीं... नहीं... हमारी एक ही धड़कन थी। जो बड़े जोर-जोर से बज रही थी। फिर उसे गहरी नींद आने लगी। मुझे भी। अब मैं यहां हूं। तुम लोगों के पास। मेरा बहुत मन करता है एक बार उसे देख आऊं। वो जरूर बहुत उदास होगी। आसमान पर फैले तारों को देख रही होगी। उसे आसमान देखना अच्छा लगता था। मैं उससे मिल आऊं?'

'नहीं' आवाजें एक साथ सुनाई दी। वहां कभी न जाना। हम पीछे पलटकर कभी नहीं देख सकती। हमारी यात्रा में पीछे पलटकर देखने की मनाही है। और सब चुप हो गई।

अब उसकी आवाज सुन रही थी, जो सबसे नन्हीं सी थी। उसने कहना शुरू किया- 'अब मै क्या कहूं? एक ऐसी दुनिया से आ रही हूं, जिससे घृणा होती है। कल्पना से परे। ऐसा भी होता है वहां।'

वह छोटी सी बच्ची थी। गुड़िया जैसी। गुड़ियों से खेलने के दिन थे। उसकी गुड़िया को तोड़-मरोड़ कर खिड़की के बाहर फेंक दिया गया था। सोचो तो सही उसकी जगह पहुंच गयी मैं! स्कूल जाती थी, आठवीं क्लास में थी। और यह हादसा। एक बच्ची के पेट में बच्चा। एक भयानक डरावना हादसा ही तो था। वो रोती जाती थी और कहती जाती थी--

'मम्मी मुझे अकेली छोड़कर क्यों गई? तुमने कहा था- दरवाजे की घंटी बजे तो दरवाजा मत खोलना। मैं दो घंटे में आ जाऊंगी। अब तुम बड़ी हो गई हो, अकेली रह सकती हो। मन लगाकर पढ़ना।'

मैं मन लगाकर पढ़ ही तो रही थी। दरवाजे की घंटी नहीं बजी, फोन की घंटी बजी। पास वाले अंकल का फोन आया- 'मम्मी से बात कराओ।'

'अंकल मम्मी घर पर नहीं है।'

'अच्छा! तो और कौन है घर पर?'

'कोई नहीं अंकल बस मैं हूं।'

'तुम अकेली हो?'

'हां! मैं बड़ी हो गई हूं, अकेली रह सकती हूं।'

उसकी मम्मी बुदबुदायी-- 'उस नीच को मालूम पड़ गया था कि तुम अकेली हो।'

'मम्मी! उसने कहा कि मैं भी अकेला हूं, चलो साथ बैठकर आइसक्रीम खाते हैं।' मैंने कहा भी कि अंकल मैं पढ़ रही हूं, लेकिन उन्होंने कहा कि मैं आता हूं तुम दरवाजा खोलो। फिर जिद करके अपने घर ले गए। सब कुछ हो जाने पर उन्होंने मुझे डराया, अपनी पिस्तौल दिखाई कि मैं किसी से कुछ न कहूं।'

'मैं क्या करती, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।'

'बेटा तुम्हें उस दिन बता देना था। मैं उसी दिन उसे जान से मार देती।' मम्मी उस दिन आप बाहर से आते ही मुझ पर बरस पड़ी थी। 'क्या लड़की है? आई हूं तब से, घंटा भर हो गया, बाथरूम में घुसी हुई है। अब मुंह लटकाकर क्यों खड़ी हो?'

'बाथरूम में मैं क्या कर रही थी, मेरी क्या हालत थी, क्या बताऊं? पूरे शरीर में बिच्छू काट रहे थे, शावर के नीचे खड़ी थी लेकिन जलन बढ़ती जा रही थी। आपके सामने आने के लिए अपने आप को तैयार कर रही थी। आप डांटे जा रही थी। इतनी बड़ी हो गई है, थोड़ी देर अकेले नहीं रह

सकती। हालत देखो इस लड़की की, ऐसे खड़ी हैं जैसे अकेले में किसी भूत ने पकड़ लिया हो।'

'मम्मी वो भूत से भी भयंकर था। वो भी बार-बार यही कह रहा था कि तुम्हीं तो बोली कि अंकल मैं बड़ी हो गई हूं। देखूं तो तुम कितनी बड़ी हो गई हो, देखूं तो।'

'मैं आपसे क्या कहती? मेरी घिग्घी बंध गई थी। अपनी प्रिंसीपल से भी ज्यादा आपसे डरती हूं। उस समय पिस्तौल के डर के जितना बड़ा आपका डर खड़ा था। शायद आप मेरी ही गलती बताती। मैंने इंटरनेट पर सब पढ़ा लेकिन यह सब भी हो सकता है, मैं समझ नहीं पायी। मुझे नहीं मालूम था कि यह सब भी होगा। अब क्या होगा?' मम्मी! अब क्या होगा?

'कुछ नहीं होगा। अब तू बिलकुल भी मत डर। वो सब कुछ भूल जा बच्ची। एक बुरे सपने की तरह।'

हां सपना! एक सपना मैं रोज देखती हूं।

मम्मी रोज सपने में उसकी पिस्तौल मेरे हाथ में होती है। वह मेरे सामने खून से लथपथ मरा हुआ पड़ा होता है। जैसे- मैं उस दिन पड़ी थी।

उसकी मम्मी ने अपनी बेटी को इतनी जोर से अपने अंदर भींच लिया जैसे वापस अपनी कोख में छुपा लेगी। उस समय मुझे भी लगा था, सचमुच बाहर की दुनिया अब रहने लायक नहीं बची लेकिन मुझे तो बाहर आना ही था, सो मैं आ गई। उस गंदी दुनिया से, घिन आती है मुझे। उसे तो कुछ पता ही नहीं था। बार-बार कह रही थी-- 'अब क्या होगा मम्मी?'

उसकी मम्मी ने कहा-- 'कुछ भी नहीं होग। तू मत डर। मैं हूं ना। सब ठीक हो जाएगा। बस तुझे एक बात ध्यान रखनी है कि किसी से कुछ नहीं कहना है।'

फिर मैं पहुंची उस कमरे में जहां अँधेरा था। रोशनी मेरे ही ऊपर थी। अजीब सी गंध लिए। जो आदमी और औरत कमरे में आए थे। देखने में भूत जैसे डरावने यह जो भूत नाम है, मैंने इन्हीं से सीखा है। सफेद कपड़े और मुंह पर पट्टी। जो बोलना था वह पहले बोल चुके। हाथ पर दास्ताने कि हाथ मैले न हो। क्या हाथ के दास्ताने हाथ को, जेहन को, आत्मा को मैले होने से बचा लेते हैं?

मैं तुम सबके पास पहुंच गयी। बस वो भी अपनी सही जगह अपने बचपन, अपनी स्कूल अपनी सहेलियों के पास चली जाए, यही दुआ करती हूं। इतना कहकर वो एक गहरी नींद में चली गयी शायद। सबकुछ भुलाते हुए। इस बार उसकी यात्रा सचमुच बहुत भयानक थी।

अब मैं अपनी कहानी सुनाऊं, तुम सब से अलग घटा है मेरे साथ- उन्हें बच्चा चाहिए था, बच्चे के लिए उन्होंने क्या नहीं किया, डॉक्टर के चक्कर लगाए, मिन्नतें मांगी, मंदिर-ज्योतिषी। बच्चा उन्हें मिलना ही चाहिए, मैं जाऊंगी उस कोख में। और गयी भी। मुझे लगता उनकी ममता मुझे बुला रही है, उनकी आवाज सुनाई देती। मैं गयी। वो खुद ही बच्ची सी लगती। जैसी बाहर से दिखती वैसी ही भीतर सुंदर, कोमल, मुलायम, शांत।

उनका एक हाथ हर समय पेट पर ही टिका रहता, जैसे मैं अंदर नहीं, उनकी गोद में हूं। मैं सुख की नींद सोती लेकिन मेरी मां हिलने से भी डरती, एकदम सीधी सोयी रहती। सीधे सोए-सोए उनकी पीठ जलने लगती, लेकिन करवट नहीं लेती थी। घरवाले सीधी सोयी हुई की पीठ के नीचे हाथ देकर सहला देते। देवकी ने जेल में बच्चों को जन्म दिया, वो भी उस चार दीवारी में सीधी सोयी मेरे आने की कल्पना करती, मुस्कुराती लेकिन अंदर बैठा डर सहमा देता। वो डर कल्पना को सोखकर,

खुशी के पल छीन लेता। सूनी-सूनी आँखों से चुपचाप पंखे को घूमते देखती रहती। सीधे सोए-सोए खाने से उन्हें गैस हो जाती, तुम्हें पता है सीधे सोकर उल्टी करना कितना कठिन है?

'बड़े कष्ट सहती होगी,बेचारी।'

अरे, नहीं! आस की डोर पकड़े खुश रहने की चेष्टा में रहती, एक ही बात का विश्वास लिए कि इस बार सब ठीक होगा। वही खाती जो मेरे लिए सही है। उनके कमरे में ढेरों किताबें पड़ी थी कि प्रेगनेंसी में कैसे और क्या करना चाहिए, कि बच्चे और मां दोनों के लिए अच्छा हो, वे उन्हें नहीं पढ़ती थी। मुझे मालूम है यह सब इसके पहले तीनों बार खूब पढ़ी थी।

'इसके पहले तीन बार?'

हां हां तीन बार! इस बार मेरी जिद थी मैं उनकी बेटी बनना चाहती थी। मैं हार गयी। उनका जप सुनता रहता। अंदर ही अंदर लगातार जप करती, बड़ी एनर्जी थी उसमें, मेरे लिए लोरी थे, वे जप। मैं सो जाती, वो साधना करती रहती। कठिन तपस्या।

उनकी सहेलियां आती, उनका मन लगाने, लेकिन मैंने नोटिस किया उनका मन मेरे में ही अटका रहता, वो सिर्फ मेरे साथ ही रहना चाहती। जब उनकी मम्मी यानी मेरी नानी आती उन्हें बहुत अच्छा लगता, मुझे भी। वो जितनी देर रहती पेट पर, पीठ पर, पैर पर, छाती पर हाथ फेरती रहती, बाते भी वैसी ही, हिम्मत बंधाने वाली। बड़े प्रेम से अपने हाथों से खिलाती हम मां बेटी को बहुत अच्छा लगता। वो नर्स बेड पैन देती, इतनी मीठे से बात करती और वो जो मेरे पापा थे, दिन भर काम से बाहर रहते, लेकिन रात को उठ-उठकर संभालते। सच कहूं, चार महीनों में मुझे दुनिया जहान का प्रेम मिला। आगे मेरी किस्मत में नहीं था।

क्यों? फिर क्या हुआ?

उस दिन की याद आकर कंपकंपी आती है, वो एक अँधेरी रात थी। अचानक मेरा दम घुटने लगा, मैं सोच रही थी अब मैं बड़ी हो गयी हूं, मेरे हाथ पैर में ताकत आ रही है, मैं खूब जमकर खेलूंगी, दौडूंगी, नाचूंगी। सभी खुश होकर मेरे साथ खेलेंगे, नाचेंगे। मेरे थोड़ा सा हाथ हिलाते ही नानी कहती 'अब इस बदमाश के क्रिकेट खेलने के दिन आए हैं 'और मेरी मम्मी अपने दोनों हाथों से ऐसे थामती जैसे मैं गिर न जाऊं।' डॉक्टर सोनो-ग्राफी की मशीन लेकर आई, उससे मेरे फोटो सबने देखी। डॉक्टर ने बधाई दी कि आपका बेबी एकदम ठीक है, ग्रोथ अच्छी हो रही है। फोटो देखकर सब कह रहे थे-देखो-देखो जीभ हिल रही है। सब अपनी धड़कन रोके मेरी धड़कन सुन रहे थे, जो जोर-जोर से बज रही थी। जरा सोचो, मेरी फोटो से वे इतने खुश थे, मुझे पाकर कितने खुश होते?

लेकिन उस ऊपरवाले की मर्जी कुछ और ही थी। नियति ने कुछ और ही रच रखा था। अचानक अंदर एक जहरीली गैस भरने लगी, जलती हुई ज्योति बुझ गयी, जोर से दरवाजा खोलकर किसी ने मुझे धक्का दिया। मैं कैसे बाहर आती, कोई कितना ही धक्का दे। मेरी प्यारी मम्मी चीख रही थी। उन्होने मुझे कसकर भींच लिया था, फिर भी हम दोनों हार गयी। कितना लड़ती निकालने वाले की ताकत हमसे बहुत ज्यादा थी। कोई पीर फकीर पैगंबर बचा नहीं पाया। मशीन से वे मेरी धड़कन सुना करते थे, अब वो धड़कन गुम हो रही थी, सांस गले के बीच अटक गयी थी। एक मजबूत रस्सी से मुझे फांसी पर लटकाया गया था।

एक बात पूछना चाहती हूं, कृष्ण ने अभिमन्यु के अंश की उत्तरा के गर्भ में रक्षा की थी, वो

कृष्ण तब कहां थे, वहां क्यों नहीं आए? उनके कमरे में फोटो टंगी है, बड़ी सी हांडी से माखन खाते माखनचोर की फोटो। वो उसे टकटकी बांधे देखती रहती। एक फोटो और थी, वो नर्स से कहती- मुझे ऐसी ही सांवली-सलोनी राधा-रानी चाहिए जो ठुमक-ठुमक नाचती रहे,पूरे घर-आंगन में। नानी को माखनचोर चाहिए था। मैं सोचती इनके जुड़वा होने चाहिए। लेकिन ...

पेट पर बंधा ताबीज, रंग-बिरंगी अंगूठियां, दवाइयां कुछ भी रक्षा-कवच नहीं बना। एक आंधी आई और सब खत्म। उनकी बहुत याद आती है, मैं उनकी बेटी जरूर बनूंगी, तुम सब देखना, मैं एकबार फिर जाऊंगी देखना, इस बार हारूंगी नहीं, तुम सब देख लेना। वो इस तरह अपने में गुम हुई शायद फिर जाने की तैयारी करने लगी थी।

अब दूसरी कहानी उसने शुरू की-

अब मेरी भी सुन ही लो...। दोनों पढ़े-लिखे। दोनों में प्रेम। मां घर संभालती। अपने दोनों बच्चों के इर्द-गिर्द घूमती रहती। उन्हें खूब पढ़ाती। सुंदर हँसमुख मां। मुझे भी ऐसी ही मां चाहिए थी। गोरी-गोरी एकदम चिकनी चमड़ी वाली। उसके बाल भी कितने मुलायम थे। बड़ा भाई था सात साल का। मैं उसे भाई कहूं? अभय भैया? जब स्कूल के कपड़े पहनकर स्कूल जाता, एकदम राजकुमार लगता। अपनी छोटी बहन का हाथ पकड़कर स्कूल ले जाता था। मैं सोचती ये दोनों के बीच में मैं होऊंगी। इनकी छोटी बहन। दोनों मेरा हाथ पकड़ कर चलेंगे। उस छोटी की खिलखिलाहट से मैं झूम उठती। दोनों भाई-बहनों में छोटी-छोटी बात पर झगड़ा भी होता। खेलते-खेलते कब झगड़ पड़ते पता ही नहीं चलता और फिर वही खेल शुरू। खिलौने भी तो ढेरों थे। छोटी टीवी के सामने खड़ी होकर नाचती। मां देख-देखकर निहाल होती रहती। मैं भी वैसे ही...। जब छोटी भइया कहती तो उसकी जुबान से अमृत टपकता। मैं भी वही अमृत अपनी जुबान पर चाहती थी। या कहूं उससे ज्यादा ही। छोटी भी तो मेरी बड़ी दीदी होती। मैं छोटी के पलंग पर सो लेती। अरे सुनो! उसके घर में पालना पड़ा था। जिस पर पहले अभय भैया फिर छोटी सोया करते थे। पालना बेकार और खाली स्टोर रूम में पड़ा था। मैंने सोचा वे कितने खुश होंगे। उस पालने को फिर से सजाकर। उस पर घंटियों वाला खिलौना और टिक-टिक करती घड़ी टांगेंगे। फिर से मुलायम तकिया बनेगा छोटा सा। मुलायम सी चद्दर ओढ़ने की। जिस पर वो अपने हाथों से तितलियां बनाएगी रंग-बिरंगी उड़ती हुई तितलियां। उन्हें गुनगुनाने की आदत थी। खाना बनाते हुए गुनगुनाती। खाने में मिठास घुल जाता। उनकी गुनगुनाहट में नशा था। उन्होंने वह पालना अपने घर से निकाल दिया है। मैं मीठी नींद सो रही थी उनकी कोख में। वह मेरे लिए जन्नत से बढ़कर थी कि उनकी बातें सुनाई दी। सुनकर मेरा तो दम ही निकल गया। लेकिन न जाने क्यों मैं जिंदा बची रह गई। कितना अच्छा होता सचमुच ही उसी समय मेरा पूरा दम निकल जाता। मुझे औजारों से न निकालना पड़ता। उन्हें भी तकलीफ नहीं होती। मेरी मम्मी थी वो। मेरे कारण उनको तकलीफ हुई। पैसे खर्च हुए। बहुत बूरा हुआ। उन्हें मैं नहीं चाहिए थी। वे बात कर रहे थे। उनके पास पाई-पाई का हिसाब जो था। वे तीन बच्चे एफोर्ड नहीं कर सकते। एक बच्चे पर कितना खर्च होता है। दूध पानी तक का हिसाब। दोनों बच्चों के दो कमरे हैं अब तीसरे को कैसे कहां फिट करेंगे। मेरे लिए उनका घर दुनिया का सबसे बड़ा सबसे सुंदर घर था। उसमें मेरे लिए जगह नहीं थी। सामने पार्क था। बालकनी थी। छोटी अपनी सहेलियों के साथ पार्क में खेला करती थी। मम्मी और माया दीदी दोनों मिलकर सब काम करती

थी। मालती मौसी अभय और छोटी के लिए थी। फिर भी मम्मी को लगा, वो तीन बच्चे नहीं संभाल पाएगी। मैं पूछना चाहती थी आपकी मम्मी ने भी तो छह बच्चों को पाला था। जमाना दूसरा था। मानती हूं मैं।

वो चलती मुझे भीतर गुदगुदी सी होती। जब छोटी गोदी में होती मेरा मन करता छोटी को चिकोटी काटूं। जैसे वो मंटू को छेड़ती है मैं भी करूं। मुझे भाई-बहन चाहिए थे। बहुत सारे भाई-बहन। बड़ा सा परिवार। उनके लिए वे दो ही बहुत थे। वही उनका पूरा परिवार था और वो एकदम से चुप हो गई।

यह सब थोड़े ही दिन चला मेरे आने की खबर ने उनके चेहरे का रंग ही बदल दिया। जैसे ग्रहण लग गया हो। उन्हें देश की बढती जनसंख्या की चिंता नहीं थी। मानती हूं मैं, हमारे देश में हम दो हमारे दो का नारा है। लेकिन उन्हें अपनी सुविधा की ही चिंता थी। मैं एक भूल थी जिसे उन्होंने बड़ी आसानी से सुधार लिया था। वे मम्मी के जो पति थे, कहते थे कि सोसाइटी में लोग उनका मजाक बनाएंगे। उन्हें सोसाइटी की चिंता थी। होनी भी चाहिए। आज के जमाने में कौन पैदा करता है तीन-तीन बच्चे। वे भी कह रही थी कि मैं अपनी सहेलियों को और सबको कैसे बताऊंगी कि मैं प्रेग्नेंट हूं। ना बाबा! सब मेरा मजाक उड़ाएंगे। पता नहीं क्या कमेंट्स मिलेंगे। फेस बुक पर... ओह नो। वो बोलती जा रही थी, 'बच्चों पर खराब असर पड़ेगा। मंटू, छोटी कभी भी एक्सैप्ट नहीं करेंगे। उन्हें भी हमारी तरह अपने फ्रेंड्स के सामने शर्म आएगी।' छोटी अपनी गुड़िया, जिसका नाम मिन्नी था, के साथ दिन भर खेलती थी,अपने साथ अपने पलंग पर सुलाती थी स्कूल जाते समय बाई करके जाती थी, क्या मुझे वैसे ही प्यार नहीं करती? एक बार उन दोनों से जानते तो सही।

गलती मेरी ही थी। मैंने ही उन्हें चूज किया था। मुझसे देर हो गयी। छोटी की जगह अगर मैं आ जाती मेरा भी उतना ही लाड़ होता। उनकी जान बसी है छोटी में लेकिन उन्होंने मुझे इस तरह निकाल फेंका जैसे कि मैं उनका अंश नहीं। मैंने मम्मी को देखा था। दो पल के लिए उदास हुई थीं बस दो पल के लिए।

उस दिन उनकी बातें सुनकर ही मुझे मालूम हुआ कि उनके लिए अपने दोनों बच्चों को पालना भी कितना बड़ा पहाड़ सा काम है। मुझे लगता था कि जैसे गुड्डे गुड़िए से खेलते हैं अपना मन बहलाते हैं वैसे ही वे अपने बच्चों का काम करना इन्ज्वाय करती हैं। लेकिन जब मैं पेट में आई उन्होंने दोनों को पालने की तकलीफों की न खतम होने वाली लिस्ट पढ़ना शुरू किया तो मैं अचरज में पड़ गई। कितनी गलत थी मैं। अपने बच्चों से प्रेम था उन्हें। लेकिन जिम्मेदारियां उस प्रेम से भी बड़ी थी। मुझे पता था आगे क्या होने वाला है। मैं क्या करती? हाथ पैर भी तो नहीं थे मेरे कि मैं उन्हें चलाकर याद दिलाती मैं भी छोटी जैसी आपकी बेटी हूं। एक बार अपने पेट पर प्रेम से हाथ फेरकर मुझे सहला तो दो। उन्होंने ऐसा भी नहीं किया। उन्होंने मुझे महसूसा ही नहीं। केवल एक पोजिटिव रिपोर्ट ने हिला दिया था उन्हें। क्या अपने शरीर के अंश से ममता नहीं होती। ममता जगाने से ही ममता होती है?

मेरे साथ क्या हुआ, क्या बताऊं? एक कहानी और शुरू हुई।

उन्हें लड़का चाहिए था। मुझे पहले ही मालूम होना चाहिए था। वैसा ही शरीर लेती जैसा उन्हें

चाहिए था। लड़के वाला लेकिन यह भी सच है कि मैं उनकी पसंद से ऐसा नहीं करती। क्या यह सही है कि मेरा शरीर, मेरी आईडेंटिटी पूरी की पूरी उनकी पसंद की हो। चलो मैं मानती हूं मेरे में उनके जीन्स होते। शरीर उस कोख में बनता, उनका दिया हुआ शरीर फिर भी...।

फिर भी मेरा शरीर। बच्चे माता-पिता की पसंद, उनकी आज्ञा, उनकी परंपरा, उनके संस्कार, उनका अनुशासन, उनकी चाहत सभी मानते हैं। फिर भी शरीर... हमें अपना शरीर अपनी पसंद का चाहिए ना? इतनी सी भी आजादी नहीं?

जैसे ही उन्हें मालूम हुआ कि लड़की है उन्होंने मुझे एक बेकार फालतू सामान की तरह निकाल फेंका। एक औरत ही 'हाय बेटा, हाय बेटा' करती है। जरा सोचो तो वो मेरी मम्मी बनने वाली की डरावनी सी सास उसे अपने वंश की बेल बढ़ाने वाला चाहिए था। अपनी बेटी पर जान छिड़कती है फिर भी...। बेटे के बेटा चाहिए। राम जाने पहले दो पोतियों के समय किस दया माया ने रोका था। उन्हें तो ठीक-ठाक ही रखती है। पर अब उनके लिए भाई चाहिए। एक बार कोई उन लड़कियों से तो पूछे। क्या उन्हें यह सब पता है। अभी वे छोटी हैं। उन्हें नहीं मालूम होगा। कोई उनसे जाकर पूछे तो कि उनके भाई होना चाहिए, इसलिए वे यह सब कर रहे हैं, क्या ठीक है? लड़के के लिए वे फिर ऐसा करेंगे। बार-बार करेंगे। लड़की को चीर-फाड़कर निकालेंगे। लड़के के लिए वे बार-बार प्रेगनेंट होंगी बार बार।

हां-हां तुम ठीक कहती हो, मुझे भी मालूम है, इस पृथ्वी पर बहुत से कानून बने हैं, यह सब रोकने के लिए लेकिन फिर भी...।

जितने कानून बने हैं, उनसे ज्यादा उन्हें तोड़ने के रास्ते हैं वहां। जीवन बचाने वाले डॉक्टरों का एक पूरा क्रिमिनल रैकेट है, इन सब कामों के लिए। उन्हें पकड़ने वालों ने ही माया की खनक के लिए एक सुरंग बनाई है बच निकलने के लिए। इसलिए यह सब काम छुपकर लेकिन खूब धड़ल्ले से होता है। एक बड़ा धंधा है जैसे मेहतर सफाई करता है वैसे ही वे भी। हां-हां तुम सब ठीक कह रहे हो। मैंने मेहतर से उनकी तुलना गलत की। अरे मेहतर तो गंदगी की सफाई करता है और वे तो जीवन एक झटके में साफ कर देते हैं। डॉक्टर हैं ना।

मुझे तो लगता है ये लोग पेट के अंदर ही सेक्स पता करके उसे बदल देंगे। शायद विज्ञान की यह एक क्रूर देन होगी। तब हम क्या करेंगे। वो हमें पूरा बदलकर रख देंगे। इतना कहकर वो एकदम से सुन्न हो गई।

उनका रिसर्च चलता रहता है, न खत्म होने वाला रिसर्च। और उसके लिए बिकते हैं हम। हम नहीं हमारा लोथड़ा। अड़तीस हफ्ते का जीवन हमारा। उन्हें हर हफ्ते या कहूं हर दिन का शरीर चाहिए रिसर्च के लिए। वहां क्या नहीं बिकता? कोई यह बताए, अब के किसी ने जवाब नहीं दिया। बोलने को क्या बचा था?

लेकिन संस्मरण अभी भी बहुतों के बताने बाकी थे।

हरि अनंत हरि कथा अनंता की तरह इन सबकी कथा भी अनंत थी। मेरे में और सुनने की ताकत नहीं बची थी। और सुन भी लेती तो पाठकों आप तक कितना पहुंचा पाती। शायद कभी पहुंचा पाऊं। फिर कभी...।

●

वेताल का जीवन कितना एकाकी

पंकज सुबीर

वह लगभग बूढ़ा आज भी उसी जगह पर बैठा है। गर्मी की उतरती हुई उदास शाम में किसी भूरे पत्थर से बनाए हुए स्टेचू की तरह स्थिर बैठा है। तालाब का वह किनारा जहां पानी हवा के थपेड़ों से समुद्र की लहरों की तरह आ-आकर किनारे को छूता है। ठीक वहीं। तालाब के किनारे एक पगडंडी जैसी कच्ची-पक्की सड़क है। जो सुबह शाम तालाब के किनारे घूमने के लिए बनाई गई है। यह पगडंडी तालाब के किनारे-किनारे सांप की तरह लहर खाकर गई है। दूर पहाड़ की तलहटी में जाकर आँखों से ओझल हो जाती है। पगडंडियों का दूसरा सिरा अकसर कहीं नहीं होता। वे किसी धुंए की तरह हवा में घुल जाती हैं। पगडंडी के एक तरफ तालाब है और दूसरी तरफ पेड़ों की कतार है। इन पेड़ों के नीचे कहीं-कहीं कुछ सीमेंट की बेंचें बनी हुई हैं। यह कतार भी पगडंडी का सिरा पकड़ कर पहाड़ तक चली गई है। इस कतार में तरह-तरह के पेड़ हैं। आम, अमलतास, गुलामोहर, शिरीष, अशोक और कुछ अलग-अलग रंगों के फूलों के भी पेड़ हैं। कुछ लगाए गए हैं और कुछ बरसों पुराने हैं। एक पेड़ में लगे हुए फूल सूख कर लकड़ी बन जाते हैं और गिर पड़ते हैं। ऐसा लगता है जैसे किसी ने नक्काशी कर के लकड़ी के फूल बनाए हों। जमीन पर इस प्रकार के बहुत से फूल बिखरे हुए हैं, पांच पंखुड़ियों वाले लकड़ी के फूल। बच्चे इन्हें बीनकर ले जाते हैं और अलग-अलग रंगों से रंग कर घर में सजा देते हैं। कभी न मुरझाने वाले फूल बना देते हैं इनको। बचपन में संदीप ने भी खूब इकट्ठे किए हैं ये फूल। शाम होते ही तालाब के किनारे दौड़ पड़ता था इन्हें बीनने।

उसी लकड़ी वाले फूल के पेड़ के नीचे उस बूढ़े की स्थाई बैठक है। वह बेंच पर नहीं बैठता, जमीन से उभरी हुई पेड़ की जड़ों के बीच बैठने की जगह उसने अपनी बना रखी है। जड़ों पर अधलेटा होकर बैठा रहता है वह। जहां वह बैठता है वहां से तालाब, उसके पीछे का पहाड़ और किनारे-किनारे जाती पगडंडी, पेड़ों की कतारें, सब किसी लैंडस्केप की तरह दिखाई देता है। गर्मी की उतरती हुई शाम में सड़क से खड़े होकर देखने पर यह पूरा लैंडस्केप बहुत उदास रंगों से रंगा हुआ केनवास दिखाई देता है। हल्के और भूरे रंगों से रंगा हुआ। वह बूढ़ा भी उन रंगों में समाया हुआ ही लगता है। उसके कपड़े भी अकसर मिट्टी के रंग के, पत्थर के रंग के, पेड़ों के तने या जड़ों के रंग के ही होते हैं। उसका चेहरा भी मिट्टी के रंग का ही है, मिट्टी में गड़ी हुई, उभरी हुई पेड़ की जड़ों जैसा इसीलिए वो बूढ़ा इस पूरे दृश्य में मर्ज हो जाता है, बिना कोई अतिरिक्त प्रभाव के। दूर से देखने पर ऐसा लगता है जैसे वहां बूढ़ा न होकर पेड़ की कुछ ज्यादा उभरी हुई जड़ है कोई या फिर भूरी मिट्टी का

बना हुआ ढूह है कोई। रंग और स्थिरता के कारण ऐसा लगता है। गिरगिट की तरह वह बूढ़ा अपने आस-पास की चीजों के जैसा अपने आप को कर लेता है। मानों वह भी गिरगिट की तरह छिपना चाहता हो, कि कोई उसे देख नहीं ले। और सचमुच अब हो भी ऐसा ही गया है, वहां आने-जाने वालों, वहां से गुजरने वालों, किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह बूढ़ा वहां पर बैठा है। वह निस्पृह-सा बैठा रहता है और पेड़ पर लकड़ी के फूल टूट-टूटकर उसके आसपास बिखरते रहते हैं। उन सूखे हुए फूलों के बीच बैठा वह सूखा हुआ बूढ़ा ऐसा लगता है जैसे अजल से इसी प्रकार बैठा हुआ है और न जाने कब तक ऐसे ही बैठा रहेगा।

संदीप चूंकि जानता है कि वह बूढ़ा वहां पर है, इसलिए उसे वहां बूढ़े की आकृति दिखाई दे रही है। संदीप पगडंडी के इस तरफ तालाब के किनारे एक पत्थर पर बैठा है तालाब के पानी में पैर डाल कर। बूढ़े के बारे में जो कुछ उसे पता है वह ये है कि ये बूढ़ा कुछ पागल है। अजीब-अजीब सी बातें करता है। संदीप ने तो नहीं की बातें; लेकिन जिन लोगों ने की हैं, उनका कहना है कि बूढ़े की बातें बेसिर-पैर की होती हैं। बातें करते समय जाने कहां-कहां के संदर्भों पर बातें करने लग जाता है। इन संदर्भों के बारे में बातें करते-करते वो आक्रामक भी हो जाता है। गुस्सा हो जाता है एकदम। ऐसा लगता है जैसे अभी हाथापाई पर ही उतर आएगा। अकसर मूल बात को छोड़कर उन संदर्भों पर ही इस प्रकार बातें करने लगता है, मानों मूल चर्चा यही चल रही थी। जाने कौन-कौन से नाम लेता है, जगहों के, व्यक्तियों के, वस्तुओं के। कुछ नाम तो समझ में आते हैं, लेकिन कुछ तो बिलकुल किसी अन्य भाषा के ही लगते हैं। ऐसी जगह जिसके बारे में पहले कभी सुना ही नहीं गया हो।

संदीप का दोस्त रवि एक बार आधे घंटे तक बूढ़े के पास बैठकर आया था। आया, तो हैरान-परेशान आया था। जो भी एक बार उससे बात कर लेता है, वो दूसरी बार बूढ़े से बात करने की कोशिश भी नहीं करता। बूढ़ा भी अपनी तरफ से ऐसी कोई कोशिश नहीं करता है। उसे तो वैसे भी दुनिया से कोई मतलब है ही नहीं शायद। कोई आए, कोई जाए, उस बूढ़े को कोई फर्क नहीं पड़ता है। बस वह उसी प्रकार बैठा अपने आप में खोया रहता है। किसी से उसकी आँखें तक नहीं मिलती हैं, मुस्कुराना या दूसरा भाव व्यक्त करना तो फिर भी बहुत दूर की बात है। संदीप खुद भी यहां नियमित शाम को टहलने आता है, लेकिन उसे याद नहीं कि बूढ़े से उसकी कभी नजरें मिली हों। बूढ़ा वहां पर रहकर भी अनुपस्थित ही रहता है। एक-दो बार संदीप ने आते-जाते नजर मिलाने की कोशिश की, लेकिन बूढ़े की आँखें कहां देख रही हैं, ये संदीप को समझ ही नहीं आया। किसी भी एंगल में खड़े हो जाओ, बूढ़े की आँखों से आँखें मिलती ही नहीं हैं। बूढ़ा गिरगिट की तरह भौतिक रूप से अदृश्य रहने के साथ-साथ हर तरह से अदृश्य रहने की कोशिश करता है। संदीप का मन कई बार होता है कि वह जाकर उस बूढ़े के पास बैठे, उससे बातें करे, लेकिन रवि के अनुभव सुनने के बाद डर रहता है। वैसे भी संदीप खुद ही बहुत इंट्रोवर्ट है, बस अपने आप में ही खोया रहने वाला। ऐसे में दोनों एक समान ही हो जाएंगे, तो बातें क्या करेंगे। मगर फिर भी वहां लकड़ी के फूलों वाले पेड़ के नीचे बैठा हुआ वह बूढ़ा, संदीप के लिए वह दरवाजा है, जिस पर साफ लिखा है कि इस दरवाजे को खोलना मना है और चूंकि यह लिखा है इसलिए ही संदीप का मन सबसे ज्यादा उत्सुक होता है इस दरवाजे को खोलने के लिए।

बूढ़ा शाम का झुटपुटा होते ही यहां आ जाता है। पैदल आता है। धीरे-धीरे टहलता हुआ आता है। कंधे पर झोला लटकाए। ठंड के दिनों में एक लंबा ओवरकोट, सर पर ऊनी टोप और गले में मफलर डाले हुए आता है। बरसात में रेनकोट पहने, छतरी लगाए आता है। कोई भी मौसम हो आता जरूर है। आता है और चुपचाप जड़ों पर बैठ जाता है। वहां बैठ कर दूर तालाब के पीछे डूबते हुए सूरज को देखता है। देखता रहता है। सूरज का डूबना ही वो घटना है, जिसके बारे में कह सकते हैं कि बूढ़ा इसको देखता है। बाकायदा देखता है। वरना तो तालाब के किनारे क्या हो रहा है? कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, वह आँख उठाकर भी नहीं देखता। लगभग एक घंटे का समय उसी प्रकार वहां बैठकर व्यतीत करता है और फिर उठकर उसी प्रकार मंथर गति से चलता हुआ पगडंडी से सड़क पर आता है, सड़क पर धीमे-धीमे चलता हुआ विलीन हो जाता है दिशा के धुंधलके में। रहस्य के कुहासे में खो जाता है अगले दिन तक के लिए।

संदीप ने एक नजर लकड़ी के फूल के पेड़ की तरफ देखा, बूढ़ा अपने साथ लाए हुए झोले में से कुछ निकाल रहा है। कपड़े का यह झोला भी जब जड़ों पर रखा होता है, तो जड़ ही हो जाता है। बूढ़ा झोले में से कोई किताब निकाल रहा है। नहीं किताब नहीं है, शायद कोई पत्रिका है। पेड़ के नीचे जो हल्के-भूरे रंग का स्थाई साम्राज्य है उसमें झोले से अचानक निकाली गई यह रंग-बिरंगी पत्रिका किसी कौतुक की तरह आई है। बूढ़ा अब उस पत्रिका को पलट रहा है। यहां से देखने पर ऐसा लग रहा है कि वो पढ़ नहीं रहा है पत्रिका को, बस देख रहा है। किसी-किसी पन्ने पर हाथ भी फेर रहा है।

संदीप ने चारों तरफ देखा, आज अपेक्षाकृत कम लोग हैं तालाब के किनारे। बस वह बूढ़ा है, संदीप है और कुछ बच्चे हैं जो पेड़ों के पीछे छोटे से मैदान में फुटबाल खेल रहे हैं। इक्का-दुक्का लोग हैं जो आ-जा रहे हैं, लेकिन रुक नहीं रहे हैं। आज सीमेंट की बेंचें भी सारी खाली पड़ी हैं। तालाब का यह किनारा अब कुछ महीनों तक ऐसे ही रहेगा, गर्मी के बीतते ही बरसात आ जाएगी। आने वालों की संख्या और कम हो जाएगी। फिर ठंड का मौसम आते ही तालाब का किनारा एक बार फिर गुलजार हो उठेगा। गर्मी आते ही लोग शाम की बजाय सुबह टहलना शुरू कर देते हैं। गर्मी की उमस भरी शाम में अपने-अपने वातानुकूलित घरों से निकलना किसे अच्छा लगता है? आज तो आने वालों की संख्या और भी कम है। छुट्टियां होने के कारण शायद लोग यात्राओं पर भी निकल गए हैं। संदीप ने आस-पास देखा और कुछ देर तक सोचता रहा। फिर कुछ सोचता हुआ वहां से एकदम उठ गया और लकड़ी के फूल वाले पेड़ की तरफ बढ़ गया।

जब संदीप वहां पास पहुंचा तो बूढ़ा पत्रिका को देखकर वापस झोले में रख रहा था। इतनी सावधानी के साथ रख रहा था कि जैसे वह पत्रिका कोई जिंदा वस्तु है जिसे चोट लग सकती है। पत्रिका को संभालकर झोले में रखने के बाद बूढ़े ने झोले पर लगे बड़े-बड़े दोनों बटन लगाकर उसे बंद कर दिया। संदीप एकदम पास खड़ा था लेकिन बूढ़े ने मानों उसे देखा ही नहीं था। पेड़ की जड़ों पर ही बैठी हुई दो गिलहरियां संदीप की उपस्थिति को भांपकर सजग हो गई थीं। ये गिलहरियां बूढ़े की उपस्थिति में बिलकुल आराम से जड़ों पर फुदक रही थीं, मगर संदीप के आते ही दोनों हाथ हवा में उठाकर, कानों को सीधा खड़ा किए, नथुनों को फड़फड़ाते हुए आसन्न खतरे को भांप रही थीं। कुछ देर तक संदीप को देखते रहने के बाद दोनों ने एक दूसरे को देखा फिर फुदकती हुई भागीं।

संदीप ने देखा कि वो दोनो गिलहरियां बूढ़े के ऊपर चढ़कर फुदकती हुई दौड़ीं और बूढ़े के सिर पर से छलांग लगाकर पेड़ पर कूद कर सरपट ऊपर चढ़ गईं। बूढ़े पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ा। जैसे बूढ़े और गिलहरियों दोनों के लिए यह रोजमर्रा की आम बात हो।

संदीप को पास आकर लगा कि बूढ़ा उतना भी बूढ़ा नहीं है जितना दूर से दिखाई देता है। अधिक से अधिक साठ साल का है वो। वो कपड़े जो दूर से देखने पर मटमैले, गंदे दिखाई देते हैं, वो असल में वैसे हैं नहीं, बस उनके रंग ही वैसे हैं। बूढ़े का चेहरा धूप खाया हुआ चेहरा है।

'नमस्ते अंकल.....।' संदीप ने जब बूढ़े की ओर से उसके आने पर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं आते देखी तो वह खुद ही बोल पड़ा।

उत्तर में बूढ़े ने कुछ नहीं कहा, बस एक बार नजर उठा कर संदीप की तरफ देखा। देखा भी आँखों में नहीं, बस यह देखा कि कौन है। बूढ़े की नजरें संदीप के पैरों से चलती हुई बस आँखों के ठीक पहले आकर रुक गईं और लौट भी गईं। संदीप ने देखा कि बूढ़े की गर्दन बस एक बार हिली, मानों यही संदीप के अभिवादन का उत्तर हो।

'मैं यहां आपके पास बैठ जाऊं अंकल?' संदीप ने कोई उत्तर नहीं आते देख अपनी तरफ से भरसक आवाज में नरमी रखते हुए पूछा। उत्तर में बूढ़े ने उस दिशा में एक उचटती-सी दृष्टि डाली जिस दिशा में संदीप खड़ा था। उस दिशा में, संदीप पर नहीं। फिर उसने अपना झोला जो पास ही एक जड़ पर रखा था, उठाकर अपनी गोद में रख लिया। संदीप को लगा कि यही संकेत है इस बात का कि बैठ जाओ। संदीप झोले को हटाने से खाली हुए स्थान पर जाकर बैठ गया।

बैठने के बाद एक बार फिर मौन छा गया। संदीप ने बूढ़े को एकदम से पास से देखा। वह चुप बैठा बस बूढ़े को देखता रहा। देखता रहा या शायद ऑब्जर्व करता रहा। दो मिनट, पांच मिनट, दस मिनट, समय बीतता रहा और संदीप वहां बैठा बूढ़े को समझने की कोशिश करता रहा। इससे पहले कि कोई बात शुरू करे, कम से कम समझ में तो आए कि बात किससे करनी है। उस पर बूढ़े को लेकर जो बातें उसके दिमाग में पहले से हैं, उनके चलते वह बात शुरू करने की हिम्मत ही नहीं कर पा रहा है। उसने देखा कि बूढ़ा न कुछ देखता है, न सुनता है, उसकी आँखें किसी भी दृश्य को देखती नहीं हैं। बूढ़ा शायद किसी भी दृश्य को देखना ही नहीं चाहता है। उसके कान किसी भी ध्वनि को सुनते नहीं हैं। संदीप ने देखा कि बूढ़े की आँखें इतनी अभ्यस्त हैं कि वह सब कुछ देख ही नहीं रही हैं, जो बूढ़ा देखना नहीं चाहता। एक दो बार बच्चों की फुटबाल वहां आई, बच्चे उसे उठाने आए, संदीप ने वह सब देखा लेकिन बूढ़े की आँखों के लिए उस दृश्य को देखने का आदेश शायद बूढ़े की तरफ से नहीं आया था, इसलिए आँखों ने वह सब कुछ नहीं देखा। फुटबाल जब एकदम पास आकर धप्प से गिरी थी तो संदीप के कानों ने एकदम उस ध्वनि को सुनकर उसे सचेत किया, लेकिन बूढ़े के कानों ने ऐसा कुछ नहीं किया। कितनी अच्छी अवस्था है न ये, कि आपकी इंद्रियां केवल वही ग्राह्य करें, जो आप करना चाहते हैं। बाकी सब कुछ जो हो रहा है, चल रहा है, उससे आपकी इंद्रियां निस्पृह बनी रहें। कितने अभ्यास से किया होगा बूढ़े ने यह सब कुछ।

'मेरा नाम संदीप है अंकल....।' संदीप को लगा कि बहुत देर हो गई है कहीं से बातचीत का कोई सिरा तो पकड़ना ही होगा इसलिए उसने बूढ़े की ओर देखते हुए कहा। संदीप को यह वाक्य मानों किसी खला में जाकर बिला गया। बूढ़े के कानों ने उस पूरे वाक्य को इग्नोर कर दिया। वे

पांच शब्द जो उस वाक्य में थे, ब्लैक होल में समाकर नष्ट हो गए। कोई दृश्य बने और उसे देखा ही न जाए, कोई शब्द उत्पन्न हो और उसे सुना ही न जाए, तो कितना व्यर्थ होता है इनका उत्पन्न होना। बूढ़ा पहले की ही तरह बस हवा को देख रहा था। संदीप को चिढ़ सी हुई उस बूढ़े पर, ऐसा भी क्या वीतरागीपन कि कोई आपके ठीक पास आकर बैठा है, आपसे बातें कर रहा है और आप उस पर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं।

'वॉकर.... क्रिस्टोफर किट वॉकर....।' बूढ़े की ही आवाज थी यह। मगर इतनी अस्पष्ट थी कि संदीप को सुनने के लिए पूरा ध्यान लगाना पड़ा। क्रिस्टोफर वॉकर....? बूढ़ा कहीं से भी विदेशी तो नहीं दिख रहा। यदि क्रिश्चियन भी है तो भी यहां भारत में क्रिश्चियंस के नाम इस प्रकार के नहीं होते हैं। यह नाम तो स्पेनिश या स्वीडिश अधिक लग रहा है। नाम और बूढ़े में कोई तालमेल ही नहीं दिखाई दे रहा है। मगर यह नाम कुछ सुना हुआ सा लग रहा है संदीप को। संदीप ने अपने दिमाग पर जोर डाला कि कहां सुना है इस नाम को, मगर एकदम से कुछ याद नहीं आया कि यह नाम उसने कहां सुना या पढ़ा है। नाम की ध्वनि उसे बहुत सुनी हुई और परिचित सी लग रही है।

'क्रिस्टोफर किट वॉकर.... बहुत अच्छा नाम है, आप क्रिश्चियन हैं?' संदीप ने अपनी जिज्ञासा को प्रश्न में बदलते हुए कहा। इस प्रश्न पर संदीप को पहली बार बूढ़े की तरफ से कुछ प्रतिक्रिया दिखाई दी। और वह प्रतिक्रिया थी बहुत हल्के से चौंकने की प्रतिक्रिया।

'कौन क्रिस्टोफर किट वॉकर...? मेरा नाम तो धनंजय है, धनंजय कुमार शर्मा।' बूढ़े ने इस बार थोड़ी सी स्पष्ट आवाज में कहा। इस बार चौंकने की बारी संदीप की थी। इस बार बूढ़ा किसी दिशा में नहीं देख रहा था उसकी आँखें संदीप के चेहरे पर थीं। आँखों में नहीं थीं लेकिन चेहरे पर तो थीं आँखें। बूढ़ा कुछ बदला हुआ सा था। उसकी आवाज भी पहले जैसी नहीं थी। ऐसा लगा कि यह वो बूढ़ा नहीं है।

'फिर क्रिस्टोफर किट वॉकर कौन है अंकल? अभी-अभी आपने उसका नाम लिया था।' संदीप ने आवाज को संतुलित रखते हुए प्रश्न किया।

'मैंने कब लिया ये नाम? तुमने लिया है यह नाम तो, मैंने तो यह कहा कि मेरा नाम धनंजय कुमार शर्मा है।' बूढ़े की आवाज में एकदम नाराजगी आ गई। संदीप को रवि की बात याद आ गई कि बूढ़ा बात-बात में तुनक जाता है। संदीप ने आगे इस नाम पर बहस नहीं करने का निर्णय लिया।

'आप यहीं कहीं आस-पास रहते हैं या कहीं दूर से आते हैं टहलने यहां?' संदीप ने नाम की बहस को बदलकर स्थान की चर्चा कर दिया। संदीप के शब्द एक बार फिर से जैसे उत्पन्न हुए थे वैसे ही समाप्त हो गए। कहीं कोई प्रभाव उन शब्दों का दिखाई नहीं दिया। बूढ़ा जो कुछ देर पहले कुछ सचेत सा दिख रहा था अब एक बार फिर से किसी प्रस्थान बिंदु पर जाकर खड़ा हो गया था। संदीप के लिए स्थिति फिर से असहज हो गई थी।

'डेंकाली से....।' बूढ़े की आवाज एक बार फिर से बहुत अस्पष्ट हो गई। डेंकाली...? यह कौन सी जगह है? इतने विचित्र नाम का कोई मोहल्ला या कॉलोनी तो उसके शहर में नहीं है। आस-पास इस नाम का कोई गांव या शहर भी नहीं है, बूढ़ा किस जगह की बात कर रहा है ये?

'डेंकाली के जंगल से....।' बूढ़े की आवाज उसी प्रकार मद्धम है। डेंकाली का जंगल? यह कौन सा जंगल है? शायद उधर पहाड़ों के पार कोई आदिवासी बस्ती हो, ऐसे नाम तो आदिवासी गांवों

के ही हो सकते हैं। यह बूढ़ा तो सड़क की तरफ से आता है, इसे कभी पहाड़ों की तरफ से आते हुए नहीं देखा। डेंकाली के जंगल...? यह नाम भी संदीप को कुछ सुना हुआ सा लग रहा है, कहां सुना है यह नाम?

'वहां आपका घर है?' संदीप ने हिम्मत बांधते हुए पूछा। हिम्मत इसलिए कि बूढ़े का कुछ भरोसा नहीं कि अभी अपनी कही हुई बात से पलट जाए।

'वहां भी है....।' बूढ़ा अभी भी ट्रांस में ही है। इस प्रकार बोल रहा है कि वाक्य का अंतिम शब्द बस अनुमान से ही समझना पड़ रहा है संदीप को कि हां यही शब्द होगा। संदीप को उलझन हुई कि इसके बाद अगला प्रश्न क्या पूछा जाए? बूढ़ा कब क्या उत्तर दे दे।

'कभी-कभी योरोप के एक पुराने किले में रहता हूं, कभी रेगिस्तान में अपने वॉकर समतल पर रहता हूं, कभी मित्र द्वीप पर तो कभी हवा महल में।' बूढ़े की बात पूरा होते ही संदीप को रवि की बात याद आ गई कि बूढ़ा न जाने किन-किन जगहों के, लोगों के नाम लेता है। हां बूढ़े की बात में 'वॉकर' शब्द आने से संदीप को यह पता चल गया कि बूढ़ा अब क्रिस्टोफर वॉकर होकर बात कर रहा है। संदीप ने बूढ़े को गौर से देखा, वह किसी ओर दुनिया में था, यहां इस पेड़ के नीचे नहीं था। संदीप को लगा कि बूढ़ा लगातार धनंजय शर्मा और क्रिस्टोफर वॉकर के बीच आवाजाही कर रहा है। यह कोई ड्यूल पर्सनालिटी वाली भी बात नहीं है, बूढ़ा या तो यहां पेड़ की जड़ पर बैठा होता है, या किसी यात्रा में होता है।

'पढ़ते हो या जॉब कर रहे हो?' इस बार बूढ़े ने संदीप के चेहरे की तरफ देखते हुए कहा। यह प्रश्न धनंजय शर्मा की तरफ से था, ऐसा संदीप को पूछने के अंदाज से लगा।

'जी मैंने एमबीए किया है यहीं से। कैंपस सेलेक्शन भी हो गया है। बस अब पांच-छह दिन में बेंगलुरु जाकर ज्वाइन करना है।' संदीप ने कुछ अदब के साथ उत्तर दिया। इस बार संदीप शब्दों पर प्रतिक्रिया जैसा भाव भी बूढ़े के चेहरे पर दिखाई दिया। संदीप को अपनी बात पर बूढ़े की यह प्रतिक्रिया कुछ अच्छी नहीं लगी, वह दूसरी तरफ देखने लगा।

'मतलब पांच-छह दिन बाद तुम भी यहां नहीं दिखोगे? वहां आकर तालाब में पैर लटकाकर नहीं बैठोगे? वहां उस किनारे पर लगे हुए पेड़ में तालाब से लाकर पानी नहीं डालोगे। यहां-वहां उग आई गाजर घास को उखाड़ कर नहीं फेंकोगे।' बूढ़े के चेहरे पर और आवाज में पहली बार संदीप को उदासी का गहरा प्रभाव महसूस हुआ। इस बात ने संदीप को एक बार फिर से चौंका दिया। चौंका दिया इस बात पर कि वह तो यह समझता था कि बूढ़ा यहां आने-जाने वाले, यहां बैठने वाले किसी व्यक्ति पर कोई ध्यान ही नहीं देता है मगर यह तो सब देखता है, जानता है। वह यहां आकर क्या-क्या करता है, वह एक-एक बात बूढ़े को पता है। जैसे वह यही देखता हो बैठकर।

'जी अंकल... अब पढ़ाई पूरी हो गई है, तो अब तो जाना ही पड़ेगा। अब जिंदगी जहां ले जा रही है, वहां जाना ही होगा। और जाने में कुछ न कुछ तो पीछे छूट ही जाएगा। करिअर, प्रोग्रेस यह सब भी तो जिंदगी में देखना ही होता है।' इस बार संदीप ने कुछ साफ्ट आवाज में कहा।

'जिंदगी कहीं नहीं ले जाती, हम ही जाते हैं, और इल्जाम जिंदगी को दे देते हैं। और पीछे कुछ न कुछ छूटता तभी है जब हम छोड़ना चाहते हैं। वरना कोई जरूरी नहीं कि छोड़ा जाए।' बूढ़े ने कांपती आवाज में कहा। संदीप को लगा कि बूढ़े की आवाज कुछ भर्रा भी गई है। मगर बूढ़े के चेहरे

को देख कर नहीं लग रहा कि वह भावुक हो रहा है। फिर संदीप को ऐसा क्यों लगा कि बूढ़े की आवाज भर्रा गई है।

'आप क्या करते हैं अंकल...? मेरा मतलब आप कहीं गवर्मेंट जॉब करते हैं या...?' संदीप को पूछते हुए लगा कि उसका प्रश्न अपने आप में ही उलझ रहा है, वह जो कुछ बूढ़े से पूछना चाह रहा है, उसे पूछने में उसके शब्द साथ नहीं दे रहे हैं। संदीप ने अपनी बात को बीच में ही छोड़ दिया। बूढ़े ने पूरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। संदीप अपनी बात समाप्त कर चुप हो गया। कुछ देर की चुप्पी रही।

'मैं..... वैसे यह बताना नहीं चाहिए लेकिन तुमको बता देता हूं... मैं डेंकाली के जंगलों के जंगल गश्ती दल का कमांडर हूं। अज्ञात कमांडर....। वही, जिसके बारे में किसी को भी नहीं पता है।' बूढ़े की आवाज इस बार और भी ज्यादा अस्पष्ट हो गई। अंतिम वाक्य हवा की सरसराहट की तरह था। संदीप को आवाज की लरजिश से ही पता चल गया कि यह क्रिस्टोफर वॉकर है मगर यह है कौन?

'अब मैंने वीआरएस ले लिया है, वालेंटरी रिटायरमेंट... पहले मैं जॉब में था, गवर्मेंट जॉब में। फिर ऐसा लगा कि अब कोई मतलब नहीं है जॉब करने से। किसके लिए किया जाए तो बस रिटायरमेंट ले लिया। अपने आप को मुक्ति देना भी जरूरी होता है। समय पर अपने आप को मुक्त कर देना चाहिए। कम से कम कुछ सांस तो आ सके।' इस बार सधी हुई आवाज में कहा बूढ़े ने, यह आवाज धनंजय शर्मा की है।

संदीप ने इस बीच चुपचाप से अपने मोबाइल में गूगल सर्च पर क्रिस्टोफर वॉकर अंग्रेजी में लिख कर सर्च किया। बहुत से रिजल्ट सामने आ गए। उसने दूसरे नंबर पर दिख रही विकीपीडिया की लिंक पर क्लिक किया, तो विकीपीडिया का पेज सामने आ गया। छोटा सा पेज जिसमें बस तीन सूचनाएं थीं। क्रिस्टोफर जे. वॉकर -ब्रिटिश हिस्टोरियन, क्रिस्टोफर वॉकर -जिब्राल्टेरियन ट्राय एथेलीट एंड सायक्लिस्ट, क्रिस्टोफर किट वॉकर -द रियल नेम ऑफ कॉमिक बुक कैरेक्टर द फैंटम। शुरू के दो नाम तो नहीं हो सकते, यह तीसरा..... कॉमिक बुक कैरेक्टर द फैंटम... यहीं से कुछ संकेत मिल सकता है। संदीप ने द फैंटम लिख कर गूगल को इमेज सर्च पर डाल दिया। कई सारी तसवीरें उसके सामने खुल गईं। फैंटम की...। ओ तो ये है क्रिस्टोफर वॉकर उर्फ फैंटम....। यह तो कॉमिक बुक का कैरेक्टर है, सुपर हीरो वेताल। हिन्दी में भी यह कॉमिक्स आ चुका है, लेकिन हिन्दी में इसका नाम फैंटम नहीं था वेताल था। संदीप के पापा की लाइब्रेरी में रखी हैं ये कॉमिक्स सीरीज, और कई बार अपने पापा को उन्हें पढ़ते हुए भी देखा है। उसे बड़ा अजीब लगता है पापा को कॉमिक्स पढ़ते हुए देखकर। बचपन में उसने भी पढ़ा है इन कॉमिक्स को, पापा से मांगकर। देते समय हर बार पापा का वही इन्स्ट्रक्शन 'संभालकर पढ़ना....और पढ़कर वापस वहीं रख देना जहां से उठाई थी।' बड़ा होने के बाद उसने तो पढ़ना छोड़ दिया मगर पापा को वह अब भी पढ़ते देखता है कभी-कभी। जब भी पापा इनको पढ़ते हैं तो उनके चेहरे पर एक अजीब सा सुकून दिखाई देता है।

वैसे तो उसका बचपन कॉमिक्स पढ़ने वाला बचपन नहीं रहा। उसका बचपन तो टीवी पर कार्टून शो देखने वाला बचपन रहा है। कॉमिक्स तो तब तक बीते समय की बात हो चुके थे। उसके

बचपन में डोरीमॉन, पॉकीमॉन, ऑगी एंड काकरोचेज जैसे टून कैरेक्टर शामिल हैं लेकिन उसने पापा की लाइब्रेरी से निकाल-निकालकर वेताल के लगभग सारे कॉमिक्स पढ़े। वेताल.. जो जंगल में रहता है, अजीब सी बैंगनी रंग की पोशाक पहनता है, आँखों पर काला चश्मे जैसा नकाब। पोशाक के ऊपर काले-नीले धारियों वाला अंडरवियर, उस पर खोपड़ी का निशान, कमर पर बंधी हुई मेखला और उस पर दोनों तरफ टंगे हुए रिवाल्वर, पैरों में काले लंबे गम बूट, लगभग घुटनों तक के। उंगली में एक अंगूठी, जिस पर खोपड़ी बनी है, जब भी किसी गुंडे को घूंसा मारता है तो उसके चेहरे पर खोपड़ी का निशान बन जाता है, जो कभी नहीं मिटता। अच्छे लोगों के लिए वह एक स्वास्तिक की तरह का चिह्न छोड़ता है, सुरक्षा का। बचपन में वो पापा की लाइब्रेरी से उठा लाता था इन कॉमिक्स को। पुराने और पीले पड़ चुके पन्नों को बहुत आहिस्ता-आहिस्ता पलट कर पढ़ता था। पापा ने बहुत संभाल कर रखा हुआ है उन्हें आज भी। डेंकाली के जंगल... हां ये नाम वहीं तो सुना था। डेंकाली के जंगल में ही तो खोपड़ीनुमा गुफा में रहता है वेताल, जिसकी पहरेदारी खतरनाक बौने करते हैं। खतरनाक बोने बांडार। वेताल की पोशाक उसे पूरी तरह ढक लेती है, उसका चेहरा क्या शरीर का कोई भी हिस्सा जरा सा भी नहीं दिखता, जंगल में कहते हैं कि वेताल चेहरा जिसने देख लिया वो जिंदा नहीं बचता।

'आखिरकार हर बात की कोई तो सीमा होगी। कब तक बस यूं ही एक ढर्रे में बंधी जिंदगी को जीते जाइए। अपने लिए जहां कोई समय नहीं हो, बिलकुल भी समय नहीं हो। बस यही सोच कर मैंने रिटायरमेंट ले लिया। कोल्हू के बैल की तरह गोल-गोल घूमते हुए अपना ही तेल निकल गया पूरा। वास्तव में कोल्हू में तेल तिल्ली का नहीं निकलता है, तेल तो बैल का ही निकलता है।' बूढ़े ने कुछ कठोर आवाज में कहा। संदीप ने बूढ़े के चेहरे की ओर देखा। इस बार फिर वहां पर कुछ भाव नजर आ रहे थे। तल्खी के भाव। नाराजगी के भाव। संदीप ने बूढ़े के चेहरे पर गुस्सा देखा तो उसे रवि की बात एक बार फिर से याद आ गई। मगर कुछ ही देर में बूढ़े के चेहरे के भाव सामान्य हो गए।

'आपके घर में कोई नहीं है क्या। मतलब आंटीजी, बच्चे.... आपका परिवार?' संदीप ने बूढ़े के चेहरे के भाव सामान्य होते हुए देखे तो तुरंत प्रश्न किया। बूढ़े ने कोई उत्तर नहीं दिया। पेड़ पर से एक गिलहरी बूढ़े के कंधे पर कूदी और वहां से सर्राते हुए पीठ से होती हुई जमीन पर कूद का दूसरी ओर भाग गई। संदीप का पूरा का पूरा प्रश्न मानों एक बार फिर किसी अँधेरी गुफा में समा गया। संदीप को याद आया कि वेताल जिस गुफा में रहता है वो भी तो अँधेरी गुफा है, खोपड़ीनुमा अँधेरी गुफा, जिसमें खोपड़ी के निशानों वाला उसका सिंहासन है।

'हैं न, पूरा परिवार है मेरा। डायना है, दो बच्चे हैं किट और हेलोइस, मेरा घोड़ा तूफान है, भेड़िया शेरा, बाज फ्राका और रेक्स है। और बांडार बौनों का मुखिया गुर्रन भी हमेशा मेरे साथ रहता है। बूढ़े बाबा मोज्ज भी साथ ही बने रहते हैं। और हां मुझ से पहले वाले बीस वेताल भी तो मेरे साथ ही रहते हैं, वो भी तो उसी गुफा में दफन हैं, जिसमें मैं रहता हूं....मेरे साथ, इक्कीसवें वेताल के साथ। दुनिया की नजर में वेताल अमर है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है, वेताल का बेटा अपने पिता के मरने के बाद उसे गुफा में ही दफन कर देता है और उसकी पोशाक पहनकर दुनिया के सामने आ जाता है, वेताल बनकर। इसीलिए दुनिया की नजरों में वेताल कभी नहीं मरता। वह हमेशा

जिंदा रहता है, वह अमर है कभी नहीं मरेगा वो।' बूढ़ा बुदबुदा रहा है। मतलब वह एक बार फिर से क्रिस्टोफर किट वॉकर बन चुका है।

बूढ़े की बातों में पहली बार 'वेताल' नाम भी आया है, संदीप का अनुमान बिलकुल सही है। संदीप को अब बूढ़े के बात करने का पैटर्न समझ में आ गया है। बूढ़ा धनंजय शर्मा और वेताल या क्रिस्टोफर किट वॉकर के बीच रह-रह कर ट्रांस्फार्म करता है। और यह ट्रांस्फार्मेशन इतनी तीव्र गति से होता है कि सुनने वाला कुछ समझ ही नहीं सकता कि अचानक ये क्या हो गया है। रवि जो कह रहा था कि बूढ़ा जाने किन लोगों, जगहों की बातें करता है, तो वह यही बातें हैं। अभी बूढ़े ने जो नाम लिए हैं, इन नामों को संदीप जानता है। यह वेताल का परिवार है। उसकी पत्नी डायना पामर, जुड़वां बच्चे किट और हेलोइस, गोद लिया बेटा रेक्स, और उसके जानवर। वेताल की कॉमिक्स में यह उसके साथ आने वाले पात्र हैं। वेताल की पत्नी डायना पामर वॉकर को बहुत खूबसूरत दिखाया गया है कॉमिक्स में। जब पहली बार उसने कॉमिक्स में डायना को देखा था तो उसे क्रश हो गया था डायना पर। ठीक-ठाक रूप से डायना उसका पहला क्रश थी। बाद में उसने कॉमिक्स वेताल के लिए नहीं पढ़े बल्कि डायना के लिए ही पढ़े, बस डायना को देखने के ही लिए।

'क्या होता है परिवार? कुछ लोग जो आपके साथ जुड़ते हैं, कुछ दूर तक साथ चलते हैं फिर उसके बाद अचानक एक दिन छोड़ जाते हैं हमें, एक दम अकेला... बहुत सारी यादों के साथ..।' बूढ़े ने इस बार कुछ स्पष्ट आवाज में कहा। उसकी आवाज में तल्खी और उदासी दोनों का सम्मिश्रण था।

संदीप ने देखा सामने तालाब के उस सिरे पर सूरज का लाल-सिंदूरी गोला बस तालाब के पानी को छूने ही ही वाला है। तालाब के पानी में अभी से सूरज की लाल-सिंदूरी रंग घुल रहा है। जब सूरज एकदम डूबने पर आ जाता है उस समय एक विचित्र प्रकार की शांति छा जाती है चारों तरफ, जैसे सूरज के जाने का मातम छा गया हो। पशु-पक्षी, प्रकृति सब एकदम मौन साध लेते हैं सूरज के डूबते समय। विज्ञान कहता है कि सूरज कहीं नहीं जाता, लेकिन प्रकृति को देखें तो उसके व्यवहार से तो यही लगता है कि सूरज जा रहा है, विदा हो रहा है।

'मेरे दो बच्चे हैं.... किसलय और हेतल... हेतल नाम मेरे एक गुजराती दोस्त ने रखा था, मुझे बेटी का नाम 'हे' से ही रखना था और बेटे का 'कि' से.... होता है न कोई नॉस्टेल्जिया....। बहुत खोजने पर मिले थे ये नाम। किसलय और हेतल। अब दोनों यूएस में जॉब कर रहे हैं। शादी भी हो गई है दोनों की। फैमिली के साथ वहीं सैटल होने का लगभग फाइनल कर लिया है उन लोगों ने। बढ़िया पैकेज मिलता है। बेटा-बहू और बेटी-दामाद चारों ही इस प्रकार के पैकेज पा रहे हैं। अपना पूरा समय अपनी कंपनियों को बेच दिया है। उसके बदले में डॉलर्स मिल रहे हैं। हरे-हरे डॉलर।' बूढ़े की आवाज में थकान आ रही है। उदासी जब गहरी होती है तो वह भी थकान का भ्रम पैदा करती है।

संदीप ने बूढ़े की बात समाप्त होने के बाद कुछ नहीं कहा। उसके पास कुछ कहने को नहीं था इसके बाद। उसकी भी तो यही स्थिति है। वह भी तो जा रहा है इसी प्रकार पैकेज पर। एक यूएस बेस्ड एमएनसी में। कुछ साल यहीं इंडिया में काम करना है उसके बाद अगर सब कुछ ठीक-ठाक रहा, उसका परफार्मेंस अच्छा रहा, तो उसके भी यूएस जाने के चांसेस हैं। संदीप को याद

आया, उसके एमएनसी में बैंगलुरु जाने की बात पर पापा ने बहुत धीमे से कहा था -'इतनी दूर जाने की क्या जरूरत है? अब तो अपने आस-पास भी अच्छी कंपनियां आ गई हैं। यहां भी जॉब तो मिल ही सकता है।' संदीप मम्मी-पापा की इकलौती संतान है। संदीप ने कुछ रूखे स्वर में कहा था -'यहां जॉब तो है, पर न उन जॉब्स में कोई फ्यूचर है और न कोई बढ़िया पैकेज है। अभी बाहर नहीं निकलूंगा तो यहीं पर सड़ के रह जाऊंगा।' संदीप को अब भी याद है कि उसके 'सड़ के रह जाऊंगा' कहने पर पापा ने चश्मे में से उसकी आँखों में आँखें डालकर देखा था जैसे संदीप की कही हुई बात से उन्हें चोट पहुंची हो।

'आपने लव मैरिज की थी अंकल या आपकी अरेंज मैरिज हुई थी?' संदीप को पापा की आँखें याद आते ही अपने अंदर एक झुरझुरी सी महसूस हुई। उसने अपने आप को असहज होने से बचाने के लिए एक हल्का प्रश्न बूढ़े से पूछ लिया। बूढ़ा अपनी गोद में रखे झोले पर हाथ फेर रहा है।

'लव मैरिज... मेरी डायना के साथ लव मैरिज हुई थी, डायना पामर के साथ। पता है कहां हुई थी? कीलावी में समुद्र के सुनहरे तट पर, जहां आधी रेत है और आधा सोना है। कीलावी का अर्थ जानते हो? कीलावी का अर्थ होता प्यार, इसलिए कीलावी के तट पर जाने के लिए जरूरी है कि आपके दिल में प्यार हो। जंगल में कहा जाता है कि 'जो बिना प्यार के कीलावी के तट पर आए, उसे यहीं मरने दो...'। वाम्बेसी पुरोहितों ने पहले हमारी शादी करवाई, फिर उसके बाद हम दोनो कीलावी के समुद्र में जाकर नहाए..... खूब नहाए... उसके बाद समुद्र से निकल कर हम परंपरा अनुसार सुनहरे तट की रेत में लोटे, एक-दूसरे पर हमने सुनहरी रेत डाली। वह सुनहरी रेत हमारे शरीर से चिपक गई और उसके बाद हमने मणि महल में प्रवेश किया। मणि महल, जो किसी अश्वेत राजा ने कीलावी के सुनहरे तट पर अपनी पत्नी के साथ सुहागरात मनाने के लिए बनाया था मगर बाद में उसकी पत्नी की प्रसव के दौरान मौत हो गई। उसके बाद वो राजा कभी वहां नहीं लौटा, लौटता तो पत्नी की यादें उसे वहां घेरतीं। हमने परंपरा के अनुसार उसी मणि महल में प्रवेश किया। और जैसी परंपरा है मणिमहल के बाद जंगल में जाना पड़ता है। हम भी मणिमहल से जंगल की ओर निकल गए। मणिमहल के बाद जंगल में जाना हमारे समय की नियति है। पहले विवाह, फिर समुद्र के पानी में जाना, फिर सुनहरी रेत में लोट लगाना, फिर मणिमहल और अंत में जंगल..... यही तो है हम सबका जीवन... कहीं कोई बदलाव नहीं है। थोड़ा या ज्यादा हम सबका जीवन ऐसे ही बीतता है। बस ऐसे ही.....।' बूढ़े का पूरा व्यक्तित्व जैसे यह कहते समय वहां से अनुपस्थित हो चुका है। संदीप वहां है नहीं, और वह ये बातें संदीप से नहीं कर रहा है। मानों किसी अज्ञात से बातें कर रहा है वो बूढ़ा।

जब भी बूढ़ा क्रिस्टोफर किट वॉकर उर्फ वेताल में ट्रांस्फार्म कर जाता है, तो संदीप के पास पूछने को कोई प्रश्न या करने के लिए कोई बात नहीं होती है। इस प्रकार की बातों पर वो क्या कहे आगे। बिना सिर-पैर की बातें। बूढ़े की आँखें अब डूबते हुए सूरज की ओर स्थिर हैं। संदीप भी उस दिशा में ही देखने लगा जिस दिशा में बूढ़ा देख रहा है। बूढ़ा जिन जगहों और चीजों की बातें कर रहा है वो सारी वेताल के कॉमिक्स की हैं। कीलावी का सुनहरा तट, मणि महल और वाम्बेसी पुरोहित।

'हर बार यही सोच कर मन को तसल्ली होती है कि बच्चे अपनी जिंदगी में सैटल हो गए

हैं। उनकी जिंदगी अब व्यवस्थित हो गई है। मगर बीच में यह भी खयाल आता है कि उनकी जिंदगी तो व्यवस्थित हो गई, मगर हमारा क्या? हमें क्यों उजाड़ा गया? हमने बच्चों को पैदा किया, पाला, पढ़ाया, बड़ा किया..... तुम कह सकते हो कि यह तो हर मां-बाप का काम ही है, उसमें हमने नया क्या किया। मगर इन सबमें हमने बहुत बार अपनी इच्छाओं को मारा। बहुत कुछ ऐसा किया जो हम नहीं करना चाहते थे। मैं गवर्मेंट जॉब में था, जब बच्चों की इच्छाओं का खर्च सैलेरी से पूरा नहीं कर पाया, तो मैंने भ्रष्टाचार शुरू किया। रिश्वत लेना, गलत काम करना, सब शुरू किया। मैं मोह में फंस गया था अपने बच्चों के। मैं उन्हें सब सुख देना चाहता था। और उसी के लिए मैंने, जो उस समय तक गलत को गलत ही मानता था, वही करना शुरू कर दिया। जिस दिन मैंने पहली बार रिश्वत ली थी, उस दिन रात भर मुझे अपने मुंह में खून का स्वाद आता रहा था। कई बार कुल्ला किया, पानी पिया, मगर वह स्वाद रात भर रहा। फिर उसकी आदत हो गई मुझे।' कहते हुए बूढ़ा सूरज की ओर देखते हुए कुछ क्षण को चुप हो गया 'पैदा किया, पाला, पढ़ाया किसके लिए? मल्टी नेशनल कंपनियों के यहां ले जाकर बेचने के लिए। हमने बच्चों को थोड़े ही पाला था, हमने तो एमएनसी के गुलामों को पाला था। पाला था कि हमारे गुलाम अच्छे दामों में वहां बिक सकें। बिक गए... सचमुच अच्छे ही दामों में बिक गए..... डॉलर्स में बिके.... मगर हमें बेचने के बाद भी कुछ नहीं मिला। एमएनसी को गुलामों की जिंदगी का कंट्रोल मिला और गुलामों को डॉलर्स मिले.... हमें. ... हमें कुछ नहीं मिला... हम तो उजड़ ही गए....।' बूढ़ा जब धनंजय शर्मा हो जाता है तो उसकी आवाज में उदासी कभी अकेले नहीं आती है। उदासी के साथ हमेशा गहरा तंज रहता है। अपने आप पर तंज। और इसी तंज के कारण उसके होंठ एक तरफ से कुछ तिरछे हो जाते हैं। चेहरा विकृत जैसा होने लगता है उसका।

संदीप को याद आया कि दो-तीन दिन पहले जब हर महीने की तरह वह मम्मी को महीने भर का राशन खरीदवाने के लिए मॉल लेकर गया था, तो इस बार मम्मी ने बहुत सारी रेगुलर खरीदी जाने वाली चीजें नहीं खरीदी थीं। कस्टर्ड, चोकोस, केक मिक्स, बादाम, अखरोट, मैगी, चॉकलेट्स, टॉफियां, बिस्किट्स, ऐसे बहुत से आइटम थे जो हर महीने की लिस्ट में सबसे पहले खरीदे जाते थे, उनको मम्मी ने नहीं खरीदा था। इनमें से कुछ सामान तो आदत के कारण उठाकर ट्रॉली में रख भी लिया था मम्मी ने फिर बाद में हटा दिया था। उसने मम्मी से पूछा भी था कि यह सब क्यों नहीं खरीद रही हो इस बार। मम्मी का उदास सा उत्तर आया था 'अब कौन खाएगा इन्हें? बेकार पड़े रहेंगे....।' उत्तर देने के साथ ही मम्मी की आँखें पनीली हो गई थीं। किनारों से नमी छलक आई थी, जिसे उन्होंने बहुत सफाई से रूमाल में सोख लिया था। संदीप को अपने अंदर भी उस दिन कुछ पिघलता हुआ महसूस हुआ था। बहुत ज्यादा नहीं, बहुत हल्का सा कुछ महसूस हुआ था। उस दिन ट्रॉली आधी भी नहीं भरी थी, जबकि हर बार यह होता था कि बहुत सा सामान मम्मी ढूंढ़-ढूंढ़ कर ट्रॉली में डालती थीं, और एक ही बात कहती थीं 'यह तुझ पसंद है न, इस बार कुछ अलग तरीके से बनाऊंगी इसे...।' उनके चेहरे पर एक अजीब सा उल्लास, एक अजीब सा प्रकाश होता था यह कहते समय। किसी गहरे आंतरिक सुख का प्रकाश, किसी अंदरूनी शांति का उल्लास लेकिन उस दिन उनके चेहरे पर वह सब कुछ नहीं था, उसकी जगह एक गहरी उदासी थी, एक सन्नाटा था। उस दिन कैश काउंटर पर पेमेंट करते समय मम्मी ने होम डिलेवरी के बारे में भी जानकारी ली थी,

जबकि पहले जब भी संदीप ने कहा था होम डिलेवरी से मंगवाने को, तो उन्होंने झिड़कते हुए हर बार मना किया था 'अपने हाथ से जाकर सामान लाना चाहिए। होम डिलेवरी में तो वो सब सड़ा-गला सामान भेज देते हैं।' उस दिन चलते समय मम्मी ने होम डिलेवरी का नंबर वगैरह भी लेकर अपने मोबाइल में फीड कर लिया था।

'डेंकाली के जंगलों में जो फुसफुसाते कुंज हैं, वो असल में यादों के कुंज हैं, हम सब उन यादों में फंस जाते हैं। जब हवा उस कुंज में खड़े हुए पेड़ों को छूकर गुजरती है, तो पेड़ फुसफुसाने लगते हैं। व्हिस्परिंग फॉरेस्ट ऑफ स्वीट मेमोरीज। मैं जब भी तूफान पर सवार होकर शेरा के साथ वहां से गुजरता हूं, तो वो पेड़ किट-हेलोइस-डायना, किट-हेलोइस-डायना, फुसफुसाने लगते हैं। पहले यह पेड़ वेताल-वेताल फुसफुसाते थे मेरे वहां से गुजरने पर, मगर अब......।' बूढ़े की आवाज बहुत थकी हुई लग रही है। जैसे बहुत लंबी यात्रा करके आया हो वो।

पिछले कुछ दिनों से संदीप को घर में एक अजीब सा सन्नाटा महसूस हो रहा है। वही सन्नाटा जो अभी डूबते सूरज के कारण तालाब के किनारे पर हो रहा है। कुछ दिनों से घर बहुत चुप-चुप है। वह घर जो खिलखिलाता था, जगमगाता था, आजकल बुझा हुआ है, चुप है। पापा इतनी खामोशी के साथ घर में आते हैं कि उनके आने की आहट न हो जाए कहीं। मम्मी, बहुत मद्धम हवा की तरह घर में चल रही हैं। किसी सरसराहट की तरह उनके आने-जाने को महसूस कर रहा है संदीप। ऐसा लग रहा है जैसे घर किसी अँधेरी और बंद गुफा में कनवर्ट हो गया है, जहां प्रकाश, हवा, ऊष्मा यह सब अचानक आने बंद हो गए हैं। और एक घुटन, सीलन और अँधेरा ही हर तरफ फैल गया है। हर वक्त ऐसा लगता है जैसे घर के अंदर एक ठंडा कोहरा फैला हुआ है, सीला-सीला सा कोहरा, जिसके आर-पार होकर घर में रहने वाले तीनों लोग एक-दूसरे को देख ही नहीं पा रहे हैं। देखने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन कोहरा और घना और घना होता ही जा रहा है। संदीप ने देखा बूढ़ा अपने झोले को और ज्यादा कस कर पकड़े हुए डूबते सूरज की ओर टकटकी बांधे हुए है। संदीप को पहली बार बूढ़े पर दया आई।

'और आंटी.... वो कहां हैं आजकल? यहीं हैं या बच्चों के पास यूएस में हैं?' संदीप ने बूढ़े को सहज करने के लिए प्रश्न किया। उसे पता है कि जिन मां-बाप के बच्चे यूएस में सैटल हो गए हैं, उनकी मांएं अकसर अपने पति को भारत में छोड़कर अमेरिका के चक्कर काटती रहती हैं। नाती-पोतों को पालने के लिए, बड़ा करने के लिए। मोह में बंधी हुई चौदह-पंद्रह घंटों की कष्टप्रद यात्रा करते हुए आवाजाही करती रहती हैं। जीवन भर कभी हवाई जहाज में नहीं बैठने वाली ये हाउस वाइफें लंबी-लंबी यात्राएं बच्चों के लिए करती हैं, करती रहती हैं। संदीप का प्रश्न बूढ़े को सामान्य करने के लिए था, लेकिन उस प्रश्न से बूढ़े पर कोई भी फर्क नहीं पड़ा, वह पहले की ही तरह उसी मुद्रा में बैठा रहा।

'कौन....? डायना....? डायना पामर वॉकर...? वह पहले यहीं थी.... फिर किट और हेलोइस जब सात समंदर पार चले गए तो उसका जीवन वेताल और बच्चों के बीच बंट गया। कभी जंगल में रहती वेताल के पास, तो कभी सात समंदर पार उड़ कर जाती। वेताल शिखर के पास हवाई जहाज उसको लेने आ जाता और वो उड़ जाती भूलकर अपने घुटने का दर्द, लो बीपी, शुगर, कोलेस्ट्राल. .. सब कुछ भूल कर अकेले ही हवाई यात्रा पर निकल जाती। मैं उसे वेताल शिखर के पास तक

छोड़ देता। उसके बाद वो अकेली ही जाती। बिलकुल अकेली...। डायना, जो कभी रेल में भी अकेली नहीं गई, वो जाने किस आकर्षण में बंधी निकल पड़ती अकेली ही। लौटती तो बहुत थकी हुई होती। यहां आते ही उसके घुटने दर्द से कराहने लगते। बीपी लो होने लगता। जंगल में अब उसका मन नहीं लगता था। उसके पखेरू सात समंदर पार थे। वह अपना मन वहीं छोड़कर आती, जंगल में तो बस उसका बीमारियों से टूटा हुआ शरीर ही लौटता था। फिर एक दिन....... जंगल से सात समंदर पार और सात समंदर पार से जंगल की यात्रा करते-करते तन टूट गया। वह सारी यात्राएं स्थगित करके और लंबी यात्रा पर निकल गई। बहुत लंबी यात्रा पर। किट, हेलोइस, वेताल, सबको पीछे छोड़कर निकल गई वो....।' बूढ़े की आवाज बहुत हल्के से कांप रही है। संदीप ने गौर से देखा कि कहीं बूढ़ा रो तो नहीं रहा है, लेकिन बूढ़े का चेहरा बिलकुल पत्थर बना हुआ है। रोना तो बहुत दूर की बात है उसके चेहरे पर किसी भी प्रकार के कोई भाव नहीं है, एकदम पत्थर की मूर्ती की तरह दिखाई दे रहा है बूढ़ा। संदीप को अब बूढ़े पर बहुत दया आ रही है, लेकिन समझ नहीं आ रहा कि वह अपने आप को कैसे अभिव्यक्त करे।

'तुमने आंटी के बारे में पूछा था न कि वो अब कहां है, यहां है या यूएस है? वो अब कहीं नहीं है, न यहां है न यूएस में है। वह अब कहीं नहीं है, घुल गई है हवा में.....। यहां आती थी तो बच्चों की चिंता उसे सताती थी और वहां जाती तो मेरी। मैं जॉब के कारण जा नहीं पाता था उसके साथ। वहां रहती तो मेरी चिंता में घुलती और यहां रहती तो बच्चों की, नाती-पोतियों की चिंता में। वह कहीं भी सुखी नहीं थी। उसका परिवार बंट गया था। वह बंटे हुए हर हिस्से के साथ रहना चाहती थी, जो संभव नहीं था।' बूढ़े ने इतना कहकर कुछ देर के लिए बोलना बंद किया और सिर झुकाए बैठा रहा 'उसके जाने के बाद मैंने वीआरएस ले लिया। काश पहले ही ले लिया होता... तो कम से कम उसे खोता तो नहीं। मगर हम हमेशा यही सोचते हैं कि अभी तो बहुत समय है। अभी तो किया जा सकता है। और एक दिन अचानक पता चलता है कि बिलकुल समय नहीं था। बिलकुल भी..... समय तो रेत की तरह फिसल गया था हमारी मुट्ठी से।' बूढ़ा सिर झुकाए हुए है, संदीप को लगा कि कहीं वो रो तो नहीं रहा। संदीप ने बहुत डरते-झिझकते बूढ़े के कंधे पर हाथ रखा। हाथ रखते ही संदीप को अपनी हथेली में झुरझुरी महसूस हुई। शायद बूढ़े को बहुत दिनों से किसी ने छुआ नहीं है। उसका शरीर स्पर्श की संवेदना को भूल चुका है, तभी तो संदीप के स्पर्श पर उसके शरीर ने असामान्य प्रतिक्रिया दी। बूढ़े का शरीर संदीप के स्पर्श पर सिहर रहा है।

'आप चले क्यों नहीं जाते किसलय और हेतल के पास? अब यहां अकेले क्यों रह रहे हैं। आपकी देखभाल करने वाला भी कोई नहीं है यहां। बच्चे तो बुलाते ही होंगे न अपने पास?' संदीप ने यह प्रश्न बहुत हिम्मत कर के पूछा। यह प्रश्न चुभने वाला भी हो सकता है अगर परिस्थितियां विपरीत हों तो लेकिन बूढ़े ने इस प्रश्न पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, वह पहले की ही तरह सिर को झुकाए बैठा रहा। बूढ़े ने सिर को इस प्रकार झुका रखा है कि उसका चेहरा भी दिखाई नहीं दे रहा है संदीप को। उस पर सूरज के लगभग ढल जाने के कारण चारों तरफ हल्का सांवला अँधेरा बिखर गया है।

'क्यों जाऊं मैं.....? मैं ही क्यों जाऊं....? एमएनसी मेरी सुनंदा को खा गई, अब मैं भी वहां चला जाऊं...?' बूढ़ा उसी प्रकार सिर झुकाए हुए बुदबुदाया। 'हम लोग जो साठ से नब्बे के दशक

के बीच पैदा हुए, हम बहुत मूर्ख हैं। इन तीस सालों में मूर्ख ही पैदा हुए हैं... इमोशनल फूल्स.. हम जड़ों से उखड़ना नहीं चाहते। हमारी जड़ें जाने किस-किस प्रकार की मूर्खताओं में गड़ी रहती हैं, जिनको हम छोड़ना नहीं चाहते। नब्बे के बाद पैदा हुए तुम लोग हमारी तुलना में बहुत सुखी हो। तुम लोग इमोशनल नहीं हो, तुम लोग मूर्ख नहीं हो। तुम नॉस्टेल्जिक नहीं होते। तुम लोग अंदर से सूखे हुए हो। तुम लोग इनसान, पशु, पक्षी, वस्तुएं, जगहें... किसी के साथ कभी अटैच नहीं होते हो, हर समय डिटैच मोड में रहते हो। हमें हमारे मां-बाप ने पैदा किया था, तुम्हें एमएनसी और बाजार ने अपने लिए पैदा किया है। तुम्हें अंदर से सुखा दिया गया है। अच्छा किया है। इक्का-दुक्का तुम्हारे जैसे होंगे जो पूरी तरह से सूखने से बच गए हैं, इसलिए तुम उस किनारे के पेड़ में पानी डालते हो, तालाब में पैर डालकर बैठते हो और...... और किसी बूढ़े को यहां अकेला बैठा देखकर उससे बातें करने चले आते हो। यह जो थोड़ी बहुत नमी तुम्हारे अंदर बची है, यह भी तुम्हारी कंपनी सुखा कर खत्म कर देगी महीने दो महीने में। कंपनियों को मॉइश्चर्ड वस्तुएं नहीं पसंद हैं। नम चीजें भारी होती हैं, इस्तेमाल करने में कठिनाई होती है और उनमें फंगस लगने का भी खतरा रहता है। जैसे मुझमें लगा हुआ है। और नमी ही हमें अटैच करती है, सूखापन हमें हमेशा डिटैच करता रहता है। वो हमें कभी अटैच होने ही नहीं देता।' बूढ़े ने बहुत लंबी बात को धीमे-धीमे, एक-एक शब्द को चबा-चबा कर बोलते हुए समाप्त किया।

चारों तरफ शाम का धुंधलका गहरा रहा है। फुटबाल खेलने वाले लड़के भी अब फुटबाल बंद करके एक पेड़ के पास इकट्ठा हो गए हैं, सभा विसर्जित करने के लिए। सिर में सिर मिलाए बातें कर रहे हैं और हँस रहे हैं। संदीप को पता है उनकी बातों का विषय क्या होगा। इस उम्र में बस एक ही तो फेंटेसी होती है जो सिर पर चढ़ी रहती है हर समय। उसे ऐसा लग रहा है जैसे कोने में लाल टी शर्ट पहना हुआ लड़का वह खुद ही है और काले लोवर में रवि खड़ा है। संदीप और रवि दोनो किनारे पर खड़े होकर अपनी-अपनी फेंटेसियों की बातें कर रहे हैं। रवि कुछ बोल्ड है, उसकी बातें कभी-कभी उस बिंदु तक भी पहुंच जाती हैं कि संदीप के गाल सुर्ख हो जाते हैं। रवि वह हर बात खुलकर कहता है, जिसे संदीप इशारों में कहने की कोशिश करता है। रवि... जो पिछले महीने ही उड़ गया है कैनेडा। अब साल-दो साल में कभी एकाध बार भारत लौटेगा भी तो इस शहर में शायद एक-दो दिन को ही आएगा। यह शहर जहां उसके मां-बाप बूढ़े होते हुए उसकी प्रतीक्षा में समय काटते रहेंगे। और किसी दिन मर-खप जाएंगे। उसके बाद रवि और इस शहर के बीच जो कुछ भी संपर्क था, वह भी समाप्त हो जाएगा। फिर रवि अगर भारत लौटेगा भी तो शायद यहां नहीं आए। क्यों आएगा? फिर बचेगा ही क्या यहां पर। सोचते ही सोचते संदीप को लगा कि वह रवि के बारे में नहीं सोच रहा है, वह तो अपने ही बारे में सोच रहा है। कहानी तो वही है बस पात्र ही तो बदल रहे हैं। वह भी तो अब जब जा रहा है तो कैसे कह सकता है कि अब वह कब लौटेगा, और बैंगलूरू तक तो ठीक, उसके बाद अगर वह भी बाहर चला गया तो उसका भी तो वही होना है, जो रवि या किसलय या हेतल का हुआ है। जिसकी तरफ यह बूढ़ा इशारा कर रहा है। संदीप का हाथ अभी तक बूढ़े के कंधे पर ही रखा हुआ है, उसने धीरे से अपना हाथ वहां से हटा लिया।

'अंकल समय के साथ सब कुछ बदलता है। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। हम सबको भी उसके साथ बदलना ही पड़ता है। बदले बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मेरी पीढ़ी आपकी

पीढ़ी से अलग है, आपकी पीढ़ी अपने से पहले वाली से अलग रही होगी। यह जो अलग होना है यही तो परिवर्तन है अंकल। अगर यह नहीं किया जाएगा, तो हम समय के साथ चल ही कैसे पाएंगे?' संदीप ने कुछ देर तक पसर गए मौन को तोड़ते हुए कुछ समझाइश वाले अंदाज में कहा। बूढ़े का सिर अभी भी झुका ही हुआ है, वह अभी भी नीचे ही देख रहा है।

'यह तो वैसा ही कि आप ट्रेडमिल पर जॉगिंग के लिए खड़े हो, और उसकी स्पीड खुद ही बढ़ाते जा रहे हो, और तेज और तेज, और तेज.... फिर कह रहे हो कि समय की गति बढ़ती जा रही है, इसलिए उसके साथ दौड़ने के लिए हमें भी अपनी गति बढ़ानी पड़ेगी। नहीं.... परिवर्तन कुछ नहीं होता.... जिस प्रकृति का नाम ले-लेकर हम परिवर्तन की दुहाई देते हैं, वह कब और कितना बदलती है? बताओ तो नहीं.... हम ही अपने समय को बदलते जा रहे हैं। पहले फैंटेसी को सच की तरह प्रस्तुत किया जाता था, उससे इमोशनल नुकसान होता था, लेकिन अब तो झूठ को फैंटेसी की तरह प्रस्तुत किया जाता है, उसका क्या नुकसान हो रहा है, यह तुम लोग कभी नहीं समझ पाओगे। यह हुआ है परिवर्तन।' बूढ़े ने बिना सिर को उठाए लगभग सपाट से स्वर में संदीप की बात का उत्तर दिया।

संदीप ने देखा कि शाम अब लगभग रात हो गई। तालाब का वह किनारा बिलकुल सुनसान हो गया है। लैम्प पोस्ट पर लगे स्ट्रीट लाइट के हैलोजन बल्ब जल उठे हैं। उनकी जर्द पीली रोशनी कुछ देर पहले ढल चुके सूरज की धूप का स्थानापन्न बनने का असफल प्रयास कर रही है। आस-पास अब कोई नहीं है, बस संदीप और वह बूढ़ा ही वहां बैठे हैं। संदीप को लगा कि अब यहां से चलना चाहिए उसे भी और बूढ़े को भी।

'चलिए अब छोड़िए इन बातों को। मेरी तो आपको सलाह है कि आप अपने बच्चों के पास चले जाएं। वहां नाते-पोतियों के साथ आपका मन लग जाएगा। धीरे-धीरे आदत हो जाएगी। यहां रहेंगे तो आपको पिछली यादों में ही रहना होगा, और यादें आपको बार-बार परेशान करेंगी। आप बहुत इमोशनल व्यक्ति हैं, आपका अकेले रहना ठीक नहीं है।' संदीप ने एक बार फिर से बूढ़े के कंधे पर हाथ रख दिया। इस बार बूढ़े के शरीर ने संदीप के स्पर्श पर कोई असमान्य प्रतिक्रिया नहीं दी। पहले जैसा कंपन संदीप को अपनी हथेली पर महसूस नहीं हुआ। कुछ देर तक बूढ़े ने कोई उत्तर नहीं दिया संदीप की बातों का। वह पहले की ही तरह सिर झुकाए जस का तस बैठा रहा।

'क्यों जाऊं? क्या करूंगा वहां जाकर? सुनंदा तो खाना बना लेती थी, छोटे बच्चों की केयर कर लेती थी, साफ-सफाई कर लेती थी। वह तो वहां जाकर बच्चों का जीवन थोड़ा आसान कर देती थी। मैं जाऊंगा तो मैं तो उनका जीवन और कठिन कर दूंगा। सुनंदा तो बच्चों के भी काम कर देती थी वहां। उसको तो आदत थी। मैं जाऊंगा तो उनके काम तो छोड़ो, मेरे काम भी उन ही लोगों को करने होंगे। मैं तो उनकी मुश्किलें बढ़ा दूंगा। इसलिए क्यों जाऊं वहां उनको परेशान करने। उनकी जिंदगी को अव्यवस्थित करने।' बूढ़े ने सिर झुकाए हुए ही संदीप की बात का उत्तर दिया। बहुत देर से बूढ़े ने सिर नहीं उठाया है ऊपर, शायद वह अपने चेहरे के भाव छिपाना चाह रहा है संदीप से।

'नहीं-नहीं अंकल, ऐसा नहीं है, यह तो आप सोच रहे हैं, आपके बच्चे ऐसा थोड़े ही सोचेंगे। आखिर को प्यार करते हैं वो आपसे। आप उन पर बोझ कैसे हो सकते हैं। आप जाइए तो सही,

मुझे विश्वास है कि वो आपको जरा सी भी परेशानी नहीं होने देंगे। मेरी बात मानिए चले जाइए उनके पास। प्लीज...। प्लीज अंकल....।' इस बार संदीप ने अपनी जगह से उठकर बूढ़े के एकदम सामने अपने घुटनों पर बैठते हुए दोनों हाथ बूढ़े के कंधे पर रखते हुए कहा। और अपनी आवाज में अधिकार का पुट घोलते हुए कहा संदीप ने।

'नहीं रेक्स मैं नहीं जा सकता। वेताल होने का मतलब ही अभिशप्त होना है। हमें अपनी ही गुफाओं में मरना होगा। मरकर गुफाओं में ही दफन होना होगा, जहां हमसे पहले के वेताल भी दफन हैं। यह सिलसिला इसी प्रकार चलना है। अनंत काल तक। तुम बस एक काम करना, जब मैं चला जाऊं तो बौने बांडारों से कहना कि वे बोलते नगाड़ों से संदेश पहुंचा दें किट और हेलोइस तक। उनको आना होगा तो आ जाएंगे... नहीं तो मुझे तो गुफा में दफन होना ही है। तुमने सुना नहीं, जब मैं तूफान पर बैठ कर जंगल से निकलता हूं तो पीछे से क्या आवाजें आती हैं- 'वेताल का जीवन कितना एकाकी, वेताल का जीवन कितना एकाकी.....' तो यह तो श्राप है एकाकीपन का, जिसे हम वेतालों को अकेले ही भोगना है। बिलकुल अकेले......।' कह कर बूढ़ा कुछ देर को चुप हुआ फिर गुनगुनाने लगा 'वेताल का जीवन कितना एकाकी, वेताल का जीवन कितना एकाकी.....'।

संदीप ने बूढ़े के चेहरे को ऊपर उठाया अपने हाथों से। चौंक गया, बूढ़ा वहां था ही नहीं। बूढ़े की जगह उसके पापा बैठे थे। एकदम उसकी आँखों में आँखें डाले हुए। संदीप घबराया और चौंक कर पीछे हटा। पीछे पेड़ की एक जड़ में उसका पैर उलझा और वो पीठ के बल पीछे की तरफ गिर गया। संभलकर उठने की कोशिश कर रहे संदीप ने देखा कि हैलोजन की पीली रोशनी में पापा का चेहरा बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहा है। बिलकुल पत्थर का बना हुआ चेहरा जैसे किसी मूर्ति का होता है, भावहीन चेहरा। पापा शून्य में देखते हुए गाना गा रहे हैं 'वेताल का जीवन कितना एकाकी, वेताल का जीवन कितना एकाकी.....'। संदीप उठा तो एक बार फिर से लड़खड़ाया, गिरते-गिरते बचा मगर संभलकर खड़ा हुआ और मुड़ कर तेज कदमों से चल दिया। पीछे से गाने की और उसके साथ रोने की भी आवाज आ रही थी जो संदीप के तेजी के साथ चलने के कारण मद्धम होती जा रही थी। संदीप अब दौड़ रहा था... दौड़ता जा रहा था...।

●

एक झरना जमींदोज

प्रज्ञा

जैसा उन्हें उस वक्त देखा, मैं वैसा ही पेश करने की कोशिश करूंगा जनाब! न कम,न ज्यादा। अब किस्सों में मेरी दिलचस्पी गहरी है पर इसका मतलब ये कतई नहीं है कि मैं चार आना, बारह आना का गोलमाल कर दूं। यूं करने को वो भी कर सकता हूं और ऐसा कि झूठ को सच और सच को सफेद झूठ। पर आज नहीं। ध्यान रखूंगा कि किस्से में तसव्वुर का तूमार इस कदर न बांधता जाऊं कि मेरी आँखों के सामने खुला सच गायब हो जाए और बात की जगह मैं बेबात की हांकने लगूं। इतनी नाइंसाफी... नहीं जनाब! ये गुनाह नहीं करूंगा। मैं आपको सौ फीसद सच बयान करूंगा। हां, एक-आध फीसद ऊपर-नीचे हो सकता है तो इतनी छूट तो किसी दिलचस्प किस्से के एवज में मुझे मिलनी ही चाहिए। अब इनसान हूं कोई कैमरा तो हूं नहीं कि किस्से के किरदारों का हर अंदाज तसवीर में कैद कर लूं और उनकी गुफ्तगू, उनकी खामोशी, आँखों का दरिया और दश्त दोनों हू-ब-हू निकाल लाऊं। फिर भी दावा करता हूं इन आँखों ने जो देखा, कानों ने जो सुना- मैं उसे ही तवज्जो दूंगा, नाक को नहीं। नाक न जाने क्या-क्या सूंघ लेती है और नाक के इशारे पर चलने से आँख-कान की ऐसी-तैसी हो जाती है। इसलिए नाक की सुनना और सुनकर उसकी राह पर चल पड़ना बड़ा जोखिम का काम है। ऐसा कि आदमी बस पागल हो जाए। आप ये न समझें कि सच्चे किस्सों की दुश्मन एक नाक ही है। अब मेरी जबान को ही लीजिए, ये भी कुछ कम नहीं बल्कि नाक से इसे कुछ ज्यादा ही समझिए। यूं भी नाक के ऐन नीचे लबों की किवाड़ में बड़ी मुस्तैदी से आँख-कान की सोच को अपने मर्जी मुताबिक रंग देती है। दिमाग से इसकी बरसों पुरानी आशनाई ठहरी। उसी के दम पर जोखिम पालती है। दिमाग के हुक्म की तामील ऐसे करती है कि मैं किस्से को पेश करना चाहता हूं पर जबान अपनी टांग अड़ा देती है। बड़े लंबे पैर हैं इसके। बस हुजूर! ये जान लीजिए कि अपना किस्सा सौ फीसद बचाने में को मैं अपना जिगर लिए तलवार पर दौड़ता हूं और आप कितनी आसानी से कह देते हैं कोरी हकीकत है अफसाना कहां? क्यों जनाब हकीकतें, अफसानों की बुनियाद नहीं होतीं?

पर आपको पहले ही बताए देता हूं ये काम इतना आसान न होगा। आप समझदार हैं इशारा ही बहुत होगा। मान लीजिए, जबान रोकने के बाद भी फिसल ही गई... तो? कीड़े पड़ें इस मुई जबान में, न आगा देखे न पीछा इसे किसी करवट चैन नहीं।

तो किस्सा मुख्तसर-सा कुछ यूं है कि उस दिन मुझे कोई काम न था। वैसे तबियत का काहिल नहीं हूं पर कभी-कभी अंदाज काहिलाना हो ही जाता है। मेरी काहिली भी आला दर्जे की है जनाब!

काम से तौबा कर लेगी पर तफरीह को चाँद पर भी चली जाएगी। उस रोज मेरी सूरत से ही काहिली टपक रही थी, आईने ने सुबह से ही ये राज फाश कर दिया था। काहिली के इस आलम में मैंने सोचा क्यों न घुमक्कड़ी के शौक को परवान चढ़ाया जाए पर ज्यूं ही हाथ अलमस्त होकर जेब में पड़ा वो इस कदर कंगाल निकली कि एक ठाठदार दिन बिताने की उसकी औकात न थी। घुमक्कड़ी कहीं मेरे फक्कड़पने पर कुर्बान न हो जाए इसलिए मैं अपने कदमों का भरोसा लिए पहुंच गया अपने पुराने दिनों के भीड़ भरे उस रेस्तरां में। ये लड़कपन से मेरा पक्का यार है। मैंने यहां के किस्सों से खूब कमाया है और आप जैसे कितने ही मेहरबानों की दाद भी पाई है। न, न जनाब! इस जगह को देखकर ऐसे नाक-भौं न सिकोड़िए। हां, फर्श जरा चीकट परतों से सजा है, खाना भी सस्ता है, भीड़ बहुत ज्यादा है पर है ये जिंदा कहानियों का अड्डा। यहां हर तरफ कहानियां बिखरी हैं। वो देख रहे हैं,अरे! वही आपकी नाक की सीध में, देखिए हां, वहीं उस कोने की टेबल पर। रोजगार की तलाश में दर-दर भटकते नौजवानों ने उसे आबाद किया है। चेहरे देखिए कैसे कुम्हला रहे हैं पर उम्मीद का दामन कैसे कसके थामे हैं। जरा टेबल की सूरत भी देखिए जिस पर जिस्म की खुराक की बजाय उनके कागजात बिखरे हैं। आँखें कागजों पर ऐसे चिपकी हैं कि आज ही बारोजगार होने का इल्म ढूंढ, बेरोजगारी के सब तिलिस्म भेद लेंगी। 'हिम्मत-ए-मरदा, मदद-ए-खुदा'- टेबल बार-बार इसकी ताईद करती जान पड़ रही है। मेरी नजरों से छिप नहीं सका लकड़ी के चार पतले पायों पर नौजवानी का सबसे भारी बोझ टिका था। लकड़ी सागवान थी या शीशम मैं क्या जानूं जनाब? इस काबिलियत से मैं जरा महरूम हूं।

अब देखिए! एक तरफ उन नौजवानों का हौसला है तो ठीक उनसे दाईं ओर की चौथी टेबल पर ही गौर फरमा लीजिए। जिस्म है या मांस की चलती-फिरती आलीशान इमारत। सामने रखी खुराक ऊंट के मुंह में जीरा। हद है, इन्हें देखकर लगता है जिंदगी के लिए खुराक नहीं, खुराक ही जिंदगी हो चली है। देख लीजिए, तिल धरने को जगह नहीं है पर दस्तरखान पर खाना ऐसे लदा है कि जिंदगी का आखिरी खाना हो। निवाला भकोसने का ये हुनर सबके पास नहीं होता। किरदार और भी हैं, जरा वहां देखिए! चंद शेरदिल बूढ़े भी यहां हैं। अरे! वहां उस बाहर खुलते दरवाजे की ओर। दिखे न अब वो पेंशनयाफ्ता बूढ़े। इनके इत्मीनान की आप न ही पूछें। इनकी बला से दुनिया वक्त से आगे कहीं भी और कितनी ही दूर भागी चली जाए। घर से बेजार ऐसे बैठे हैं कि रात तक कितने मुल्कों की कहानियां कह-सुन जाएंगे। घर जो इनके लिए घर नहीं रहे, ये घर तलाशते यहां जमे हैं। शरीर अधमरे हैं पर बातें सुनिए इनकी, पड़ोसी मुल्क को चुटकियों में लोहे के चने चबवा आएं। जनाब! यहां बैठे-बैठे पोपले मुंह से दुश्मन के दांत खट्टे कर आएंगे। अब टेबल तो कई हैं जनाब, किस-किस का किस्सा कहूं? ये सब पुराने हैं। यहां इनसान भी ज्यादा हैं और कहानियां उनसे भी ज्यादा।

जनाब! नए किस्सों का शिकार करना पड़ता है। वे आपकी झोली में यूं ही नहीं टपक पड़ते। मैं चुनकर ऐसी जगह ढूंढ निकालता हूं, जहां कुछ तीखा-तीता किस्सा मिले। मेरा दावा है हुजूर! बेरौनक चेहरों के पीछे भी बड़े अल्हड़ किस्से होते हैं और अल्हड़ उम्र भी खासी बेरौनक। बस नजर होनी चाहिए उनकी दास्तां ताड़ जाने की। ये वो हुनर है जो सबमें नहीं होता। गर होता तो आप ही न भेद लेते मेरी ही तरह चेहरों के पीछे के किस्से। तो बस, मैं किसी टेबल को निशाना साधकर और अपनी टेबल को मचान बना किस्से के किरदारों की घात में बैठ जाता हूं। वक्त, घड़ी की सुइयों

से नहीं मेरे किस्से की तलाश पर जाकर दम लेता है। मेरी नाक सबसे अच्छे किस्से की खुशबू सूंघ लेती है। मेरी रूह उसकी धड़कन पहचान लेती है और मैं अपनी काहिली को बेहतर अंदाज देकर यहां ऐसे बैठ जाता हूं कि मुझे दुनिया की कोई परवाह ही नहीं। मानो मैं हूं और मैं हूं ही नहीं और जब सबकी निगाह में मैं बेकार आदमी बन जाता हूं तो वे मेरी मौजूदगी में भी बेपरवाह अपने एहसासात की गुफ्तगू को मीलों तक दौड़ा देते हैं। बस मैं इसी मौके को आप लोगों के लिए हड़प लेता हूं। शिकार की गर्दन पर मेरी पकड़ इस कदर मजबूत होती चलती है कि वो फौरन से पेश्तर मेरा निवाला बनने के लिए हाथ जोड़ने लगता है।

तो लीजिए हुजूर! आज की मेरी खोज मुकम्मल हो गयी। शिकार मेरे ऐन सामने है। मेरे होने को न होना मानकर बेतकल्लुफ और बेफिक्र। बस मेरे मन के मुताबिक। अब मेरी करामाती नजर किस्सा खोज लाई। यूं करामाती नजरों की सीध में बेजबान बैठे कानों ने भी कुछ कम कमाल नहीं किया था। अकसर किस्सा कुरेदने के लिए ये कान कई करतब करते हैं। सबसे पहले तो मेरे कुछ लंबे और घने बालों की ओट में ये बेहद कम ही दीखते हैं। अब बेकान इनसान से किसी को कैसा खतरा? फिर मैं अपने बेहैसियत बाने में पूरे जमाने की काहिली उंडेलकर ऐसा जादू करता हूं कि लोगों की नजरों से गायब ही हो जाता हूं। बस इसी पल मैं कानों को बालों के पर्दे की आड़ में शातिराना अंदाज में साध लेता हूं। बालों के पर्दे में एक नामालूम-सी शख्सियत में मेरे कान, मेरे किस्से के किरदारों की आवाज के रास्ते मुस्तैद हो जाते हैं। मजाल है आवाज की कोई हरकत मेरे कानों से रास्ता बदलकर कहीं और चल दे। इसके बाद कान-आँख की यारी मुझे नवाजती है फिर आज तो दिल से उठती शबनम ने भी जान लगा दी। मैंने इल्म से ही नहीं इश्क में भी कई बेग़ैरत हादसे झेलकर जान लिया था कि मेरे सामने बैठे ये दोनों इश्क की राह पर चलकर बहुत दूर निकल आए हैं। उनके चेहरे और हरकतें उनका फसाना बयान कर रही थे। वो नए जोड़ों जैसे शर्मीले कतई नहीं थे। नए जोड़ों की कुछ न पूछिए जनाब। शुरू-शुरू में तो वक्त से वक्त चुरा लाने का ऐसा हुनर साधते हैं कि आप न ही पूछें तो बेहतर। बात नहीं, बेबात मुस्कुराते रहेंगे। ठीक यहीं कितनी टेबलों पर ऐसे-ऐसे जोड़ों के किस्से दफ्न हैं कि आपको कहां तक बतलाऊं? वैसे इस बड़े शहर में गरीब आशिक के लिए इश्क की मनमाफिक जगह भी कहां हैं? पर जिसने इस जगह को खोज लिया उसे मुंह मांगी मुराद नसीब हुई। तो कहां था मैं? हां नए जोड़ों पर... मुस्कुराते हुए, हर पल एक-दूजे को छूने की उनकी कोशिशें। जिगरा है हुजूर। भरी महफिल में दिल निकालकर हथेली में सजाकर बढ़ा देते हैं। बड़े गौर से देखा है हुजूर मैंने, मोहतरमा के बाल कायदे से बने हैं फिर भी मियां जी बार-बार लट को उलझा समझ, सुलझाने पर आमादा हैं और कुछ ही देर में मोहतरमा भी खुल जाती हैं। अब सबके सामने पाकीजगी भी निभानी है और इश्क भी लड़ाना है तो इठलाती हुई मियां के दिल, नहीं- नहीं जेब के पास न जाने कौन-सी गर्द हरदम झाड़ती ही रहती हैं। कभी-कभी तो मैंने देखा है इतना सारा खाना मंगवाने पर भी घंटों बैठकर खाने को चुभलाकर सब बिगाड़ देते हैं। प्याले में चम्मच चक्कर खाती है और खाती ही चली जाती है। प्याला उठाने की एक हरकत होती है और अगले ही लम्हे कुछ ऐसी हँसी की बात होती है कि चम्मच फिर प्याले में पसर जाती है। मैं बदनसीब उसे ताकता चला जाता हूं। नदीरों की तरह उनकी चाय और निवालों पर मेरी आँखें घंटों लगी रहती हैं और मैं मन मसोसकर चचा की याद कर लेता हूं- 'गो हाथ को जुम्बिश नहीं आँखों

में तो दम है...’

तो अब इस नए किस्से पर लौट आइए। उनके इश्क की बात मेरे लिए काफी सुकून से भरी थी। जो खुशी मुझे कभी नसीब न हुई इन लोगों को तो हुई। उनका पैरहन उनकी खुशी का अफसाना बयां कर रहा था। कोई हीरे-पन्ने, नीलम-जवाहरात उनमें न जड़े थे। न ही सोने-चाँदी के तारों की बुनावट उस पर थी। मुझ कमनसीब की तेज आँखों ने पकड़ लिया कि ये रेस्तरां किसी टाट की मानिंद था और उनकी पोशाकें उसमें रेशम का पैबंद। चेहरों पर भी खाए-पिए का नूर टपक रहा था। मेरे दिल पर दिमाग का हथौड़ा टन्न-टन्न बजने लगा- ये रेशम किसी रेशमी जगह न होकर इस टाट में आखिर क्यों अटका? और मेरे मन की आवाज ने मुझसे कहा इश्क के दिनों का मौसम उनके लिए शायद यहां अब तक रुका खड़ा है। दोनों उसके गुलमोहर में बैठने फिर चले आए हैं यहां। पहले भी यहां आते रहे हैं ऐसे आशिक। यूं समझिए किस्से का सिरा मेरे हाथ प्यासे को दरिया-सा लगा। अब तो मान जाइए मेरी काबिलियत का लोहा। न भी मानें पर अब सिरे से सिरे और रेशे से रेशे जोड़कर मुझे अफसाना बुनना है। यानी अब मैं अपने काम को अंजाम देने वाला हूं। मैं उनके उस गुलमोहर को जीने की उम्मीद में लग गया जो मेरी जिंदगी में बहार बनकर कभी नहीं उतरा था। उसके चटख लाल अंगारे मेरी शाख पर कभी न खिले थे। नन्हीं-नरम पत्तियों से भरी उसकी मजबूत डालें मेरे यहां कभी न झूमी थीं। फिर शाख के छाते के नीचे कोई शोख किस्सा भी कहां इठलाया था? प्यार हरेक की जिंदगी का सच कहां होता है? हां कई बार इश्क-सा मुझे जरूर महसूस हुआ था पर वो इ-श्-क की तरह था कभी पूरा इश्क नहीं।

तो अब मेरे आँख-कान-नाक ने उनके गुलमोहर का रुख किया।

‘याद है बहार! कितनी बेताबी से यहां तुम मेरा इंतजार करती थीं। कितना खिल जाती थीं तुम यहां मुझे देखकर। जानती हो इस जगह का नाम सिर्फ गुलिस्तां ही हो सकता है जिसमें आज भी मेरी बहार रुकी है। ये गुलिस्तां जो पतझड़ में भी बहार था। बेइंतहा गर्मी में भी तुम ही मेरी ठंडक थीं। उदास अँधेरे में तुम मेरी रोशनी। मुझे यकीं दिलाओ न आज फिर बहार। फिर से अपने सारे रंग और रोशनी लिए तुम मेरे बरामदे में दाखिल हो जाओ।’

आह! बहार...क्या नाम था। हो न हो इस बहार के आशिक का नाम गुल ही होना था। कुछ और हो भी कैसे सकता था? उसके लबों से निकले अल्फाज मेरा कलेजा निकाले लिए जा रहे थे। उस बहार का ये गुल कितना शीरीं था। ये बहार कितनी खुशनसीब थी। किस कदर शबनमी था ये गुल। कलेजा चीरकर उसके एहसास सारी फिजा में तैरने लगे। एक नज्म थी जो माहौल में धीमे-धीमे गूंज रही थी। कोई इतना दिलकश भी होता है भला? अब मैंने जाना बहार का रंग इसी गुल से बरकरार है। गुल के एहसास की गहराई पाने मेरी नजर ने बहार की आँखों में झांका। पर ये क्या जनाब! आप भी वही देख रहे हैं जो मैं देख रहा हूं? या मेरी आँखों का धोखा है। मैं हैरान हूं। जरा देखिए तो हुजूर! उसकी बहार को। चलिए मैं ही दिखाता हूं आपको। बहार के आंगन में एक कली न चटखी। उसके कानों ने ये नज्म सुनी ही नहीं। एक बेहरकत खामोशी। हैरान था मैं,ये गुल की बहार हो सकती है भला? माना कि मेरी नजरों का धोखा हो पर जनाब! उसकी नजरों में कोई गहरा समंदर न दिखा। कहां डूब रहा था ये गुल? मेरी हैरानी ने मेरी दिलचस्पी को हजार गुना बढ़ा दिया था। मेरी नाक कुछ सूंघने को बेताब हो उठी।

'याद है तुम्हें घंटों हमारा यहां बैठना? वक्त की हर बंदिश से परे...वक्त ही क्यों जमाने की हर बंदिश से परे। हम थे और हमारा मौसम था। तुम्हें बांहों में भर लेने का जुनून था। तुम फौलाद थीं और मैं चट्टान था। मेरी जान! उन दिनों तसव्वुर में भी बस प्यार ही था। मेरा एक दिन भी तुम्हारे प्यार के बिना न गुजरा था। मेरा तसव्वुर भी मुझे अकसर यहीं पहुंचा देता था। रोज नींद में चलकर मैं यहां तुमसे मिलने चला आता। नींद थी या खुमार था पर ये गुलिस्तां हमेशा मुझे महकता मिलता था।'

अर्से बाद किस कदर ये गहरा प्यार मुझे बहाए ले जा रहा था। ओह! आज हीर-रांझा, शीरीं-फरहाद, चक-हब्बा, सोहणी-महिवाल का बरसों का अधूरा फसाना गुल की शक्ल में पूरा हुआ जान पड़ रहा था। कोई नज्म महकने लगी। इस गुल पर मेरा दिल आ गया। ऐसे गुल चमन में अब कितने कम ही खिलते हैं। बहार नोंचते हाथ यहां ज्यादा हैं। पर ये क्या, गुल के हाथों ने बहार का हाथ थामा ही था कि उसने हाथ खींच लिया। धीमे से नहीं झटके से। इतनी बेरुखी? इश्क की बेकायदा दुनिया ने कबसे कायदा सीख लिया? हाय! ये बहार शबाब पर होकर भी अधूरी थी। मेरा शक यकीन में बदल रहा था। गुल, गुल था, बहार बदली हुई थी। उसके लिए इश्क की किताब बंद होकर दुनिया के फलसफे में आखिर क्यों ढलने लगी? बहार की हर हरकत बयां कर रही थी कि ये गुलिस्तां अब उसे रास न आ रहा था। उसकी आँखें गुल पर नहीं इधर-उधर लगी थीं। शायद इस चमन में उसे दूसरी आँखों की परवाह हो चली थी। गुलिस्तां का अँधेरा ही नहीं आज उस पर चढ़ी जमाने की गर्द भी उसने देख ली। अब न उसे नज्म सुनाई दे रही थी न माहौल की खुशबू उसे दीवाना बना रही थी। दिल ने बड़ी साफगोई से कहा- हाय! मेरा गुल,किस कदर बेखबर था। उसके इश्क का गुलिस्तां मुरझाकर सूखने को था। उसकी आँखों को अपनी तबाही दीख नहीं रही थी जिसे मेरी नाक ने अब तक सूंघ लिया। मेरा दिल जोर-जोर से चीखने लगा- बहार! तुम इतनी जल्द बदल गईं? तुम क्या गुल को भी बदल डालोगी? कितनी बेदर्द हो बहार...प्यार को प्यार न रहने देने पर आमादा। मेरे कानों ने गुल की फरियाद सुनी-

'कुछ बोलो न बहार? आज फिर से खोल दो शायरी का पिटारा। जबानी याद है तुमको वो नगमें जो हम साथ गुनगुनाया करते थे। आज फिर मेरी फरमाईशें हों और तुम्हारी आवाज। आज भी फिक्र न हो जमाने की, न कोई पर्दादारी हो। दोहरा दो-'चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार सजे... जिंदगी-सी प्यारी वो गजल, हमारी मोहब्बत की पहचान।'

आह! क्या याद दिला दिया प्यारे गुल! बहार के सच्चे आशिक। सारे चमन में तुम-सा कोई दीवाना नहीं। पर अब भी बहार, गुल से उखड़ी और बेजार। ओ! बहार के आशिक, हाय! हाय! गुल, तुम्हारा इश्क अपने उरूज पर है। तुम्हारी यारी आज भी गुलशन से है पर बहार तो होंठ सिए बैठी है। यूं मुस्कुरा भी रही है जैसे एहसान किए जाती हो। मैंने भांप लिया हुजूर! आप माने न माने इस लम्हे में पुरानी मोहब्बत की तासीर बाकी नहीं है। बहार, बहार ही थी पर नजाकत कुछ ज्यादा थी। गुल को अपनी खूबसूरती का एहसास कराती नजाकत। वो खूबसूरती जिसके आगे अब ये गुलिस्तां फीका था। गुल अपनी रौ में था नहीं तो एहसास-ए-कमतरी में खाक हो जाता। पर जनाब, मेरा पुराना तर्जुबा है। जान लीजिए, ये गुल आखिर कब तक गुल रह सकेगा? बहार की मोहब्बत में दिखावे का बारीक रेशा मैंने देख लिया है। दुनियादारी का रेशा। वो प्यार जो दुनिया के डर से महफिलों में लड़खड़ाए, प्यार कहां रहता है? इश्क के बीच ये नजाकतें गुलिस्तां खाक करती हैं। मैंने देख लिया

जमाने की दीवारों ने बहुत जल्द बहार को कैद कर लिया। तेजी से भागते वक्त को उसका घड़ी-घड़ी देखना। कुछ कहने को होना और अचानक खामोश हो जाना। गुल की बातों में उसका दीदा न लगना हाय! हाय!... बहार कैद है और गुल आजाद पंछी। उफ्फ...पर सुनिए तो सही कुछ कह रही है- 'वक्त बदला, उसके साथ जमाने का चलन भी करवटें ले गया पर तुम न बदले गुल। आज भी बिलकुल वही। राई-रत्ती का फर्क नहीं। उस वक्त भी तुम्हें माजी कितना सुकून देता था। हरदम उसमें गाफिल रहते। मैं आज की बात करती तुम फौरन अपने कल में छलांग लगा देते। तुम्हारा सुरमई माजी, तुम्हारे इश्क के फसाने, तुम्हें दिलोजान से चाहने वाली दिलकश और मासूम माशूकाएं। याद हैं मुझे ख्वाब की आगोश में जाती मेरी सारी शामें जहां तुम थे, कुछ गजलें थीं रटी-रटाई जिन्हें मौका-बेमौका तुम किसी रस्म-सा निभा देते थे और तुम्हारी खुशी के लिए मैं भी उनमें डूबती चली जाती थी। पर मेरे आगे जिंदगी की चट्टानी असलियतें थीं और तुम्हें हवा में उड़ते बुलबुले पसंद थे। उनके छिटककर बिखरने का लुत्फ उठाते थे तुम। मैं तुम्हारे संग मुस्कुराती थी पर कमाल है वो बुलबुले मुझे तो कभी नहीं दिखे। तुम्हारी खुशी की खातिर ही मैं उन्हें न देखते हुए भी खुश हुआ करती थी ठीक वैसे ही जैसे तुम्हारी बातों में सामने बैठी मैं तुम्हें कम ही दिखाई देती थी।'

ये क्या हुजूर? मेरे शौक और आदत को जिसे मैं अपना पेशा बना चुका था इन लफ्जों ने एक झटके में चूर-चूर कर डाला। मेरा प्यारा गुल और बहार की जानलेवा बातें। यकीं की हद से बाहर। एक तरफ फिरनी की मिठास और दूसरी तरफ नीम चढ़ा करेला। कौन गलत? कौन सही? ये सवाल हल करना मेरे लिए बवाल-ए-जान। पर मैं कोई मुंसिफ तो था नहीं और किस्से में किसी की तरफदारी से बचना भी था। माना मुंसिफ नहीं पर मैं इनसान तो हूं। इनसान जिसके पास एक दिल है और ईमान से कहूं तो मेरा दिल गुल के संग धड़क रहा था जनाब। इधर हँसते हुए अपनी बात कहते-कहते बहार बहुत संजीदा हो गई। उसे सुन और देखकर मैं भी हैरान-परेशान था। मन अभी भी अपने गुल की ओर भाग रहा था। उसकी मुलायम बातों का जादू मेरे सर चढ़कर बोल रहा था। उफ! सुनिए, उसने जैसे अपना दिल निकालकर रख दिया हो।

'तुम्हें याद है उस साल की वो आखिरी शाम। हमारी वो मुलाकात। वो ढलता साल, नई जिंदगी का आगाज था। वो फव्वारा यहां से कुछ दूर ही है। सांझ के साथ उस फव्वारे की सतरंगी रोशनी में भीगते हुए हम नहा गए थे। याद करो तुम उसे झरना कहती थीं। सतरंगी झरना। फव्वारे के बीच बनी नुमाइशी चट्टानों पर पानी सरगम की तरह उछलता था। बड़ी से छोटी चट्टान पर गिरता पानी और उसकी बौछारें तुम्हारे चेहरे पर जमती जा रही थीं। सर्द रात में ठंडी बूंदों की बारिश और तुम्हारे चेहरे का नूर। अपने हुस्न से बेपरवाह तुम्हारा बूंदों को उचककर अपने चेहरे पर रच लेने का जज्बा। मेरी हथेलियों में भर गईं थीं वो सब बूंदें। चलो न आज फिर वही नूर लौटा लाएं।'

गुल अपनी आदत से मजबूर प्यार में गले नहीं सर तक डूब चला था। मेरा बरसों का तर्जुबा यों जाया न गया। गुल हर हाल में प्यारा था। गौर से देखिए उसके चेहरे को, आज भी उस शाम का जादू बरकरार है। उसकी आँखें चमक रहीं हैं, वह बेताब है बहार को अपनी आगोश में लेने के लिए। पर बहार की नजरें हर असर से बेखबर। बेखबर न कहिए बेअसर कहना ही मुनासिब होगा। बड़ी सख्त जान है जनाब। माशूक के दिल को जैसे जानती ही नहीं। इतना संगदिल होना भी क्या ठीक है? अरे! अरे सुनिए कुछ कह रही है। ध्यान से देखिए उसके चेहरे को उसने ठीक अभी-अभी

गुल पर एक चुभती-सी हँसी फेंकी है। ऐसी कि कलेजा दोफाड़ कर दे।

'वो इश्क का मौसम था। तुम्हें नादानियां रास आती थीं और मेरी उम्र ही नादान थी। नादान बने रहने के सुकून के क्या कहने फिर नादान साथ मिल जाए तो और भी मजा। तुम्हारी आदत में मेरी उम्र घुल चुकी थी। तुम पहले से जानते थे नादानी को मखमली एहसास बनकर बहना खूब आता है। मैं बहती रही, दूर तक बहती चली गई। पीछे तैरना सीख गई। बहना तुम्हारे संग था और तैर मैं खुद रही थी।'

बहार के इस तंज ने मेरी अब तक की खोज पर पानी फेर दिया था। क्या करता जनाब? मेरा कानों को कुछ और सुनाई दे रहा था और आँखें कहीं और देख रही थीं। नाक कुछ समझने में नाकाम थी। अचानक कान बहार पर लग गए थे और आँखें गुल के मासूम, प्यार भरे चेहरे से हटने का नाम नहीं ले रही थीं। कितना सुकून था बहार की खामोशी में और बहार के बोलने से गुलिस्तां तबाही की हद तक जाने लगा। जबान ऐसी कि कोई कोई तेज कटार सीने में दर्द देती उतरती ही जा रही हो।

'सच कहो बहार! तुम्हें वो झरना जरा भी याद नहीं आता?'

बहार के तूफान खड़ा करने पर भी गुल अपनी बात से डिगा नहीं। क्या जिगरा पाया है, भई वाह। अब तो पत्थर का मोम होना तय था। अरी! मान भी जाओ बहार। मैं जैसे उसकी चिरौरी करने लगा। पर मेरा होना तो उसके लिए न के बराबर था। मुझे फक्त एक किस्सा चुराना था उनके वक्त से और मेरे होने को उसने जान लिया तो फिजूल है मेरी कलाकारी।

'जो तुम्हें झरना दीखता था उसमें मैं अपना घर देखती थी गुल...मैं घर चाहती थी। घर जो हमारा ठिकाना हो। जिसका एक पुख्ता पता दर्ज हो। पता, जिसकी पक्की गली हो किसी मोहल्ले की। मोहल्ले का कोई शहर भी जरूर हो। और तुम अकसर मेरे हाथ पर जन्नत लिखकर चूम लेते थे। बहुत दिनों तक अपनी अल्हड़ उम्र में उस जन्नत को घर समझकर हथेली को गाल से सटाए मैं पूरी रात गुजार देती थी। डरती थी गोया हाथ हटाते ही मेरा घर तबाह हो जाएगा और मेरी जन्नत, दोजख हो जाएगी। मैं बिलकुल तुम जैसी हो चली थी। जैसा तुम रंगते वैसी हो जाती थी। नीली,लाल, गुलाबी, पीली.... सतरंगी झरने-सी।'

हुजूर! अब मैं ठिठका। मेरे कानों तक आती बहार की बातों को मेरी आँख-नाक नहीं मेरा दिल जरा-जरा तवज्जो दे ही बैठा। मैंने गौर किया कि बहार की इस शिकायत में एक सादगी तो थी जो हुस्न बनकर उस पर छाई थी। जिसे मैं अब तक गुल का करिश्मा समझे बैठा था। उसके प्यार का जादू... मैं अचानक भीतर तक हिल गया। क्या मैं भी तो बहार को अपनी ही तरह रंगने की कोशिश नहीं कर रहा था? यानी गुल का होकर बहार के खिलाफ खड़ा था। ये सोचकर मेरे के रोंगटे तक झनझना गए।

'चलो न बहार! लौटा लाते हैं हम फिर अपने गुलमोहर को। तुम फिर बहार बनकर इस गुल को खिला दो। देखना, फिर से इश्क का मौसम चला आएगा।'

गुल की आवाज लरज रही थी। उसकी पेशानी पर दर्द की लकीरें सिकुड़ रही थीं। पर बहार को उसकी बातों से जरा मसर्रत न हुई।

'याद है तुम कहा करते थे-गुल खिलता है तो बहार आती है। यानी बहार का वजूद गुल से था। कितने दिन मैंने इसे सच माना। पर मेरा वजूद? 'चंद सिक्कों की चाँदनी ने तुमको जला डाला है' -यही कहा था तुमने? पर तुम्हारे अरमानों के आसमान को मेरा वजूद, वो मेरे सिक्के ही तो पूरा

करते आए थे। मेरे पसीने की चमक से चमके वो सिक्के ही तो तुम्हारे हर आराम का सामान थे। याद है न तुम्हें? तुम्हारे लिए इश्क कोरी लफ्फाजी था। सच से आँखें मिलाने का वो एक लम्हा मेरी जिंदगी का कुल हासिल बन गया। मैंने झूठ को झूठ कहना और मानना सीख लिया। फिर झूठ की स्याह चादर हटते ही बाहर का पूरा आसमान मेरे इंतजार में मिला। वहां खुली हवा थी, फूलों की खुशबुएं थीं। सब साफ देख पाने की रोशनी थी और ढेर सारे सपने थे जिन्हें सच होना था। न वहां फरेब की जगह थी और न मैं अधूरी थी। लेकिन देख रही हूं तुम्हारे लिए आज भी कुछ भी नहीं बदला। आज भी सब वैसा ही है। तुम काफी हुनरमंद थे। तुम्हारी लफ्फाजी ने देर से ही सही पर मुझे उन मासूम माशूकाओं के चेहरे दिखा दिए थे जिन्हें तुम्हारे मुताबिक मेरी ही तरह चाँदनी ने कभी ख़ाक किया होगा। हम सब बहार थीं गुल, तुम जिनसे आबाद थे।'

मेरे आगे दिल का आईना चूर-चूर हो गया। इश्क की किताब में रखे ताजा गुल सूखकर झड़ने से लगे। उनका रंग लाल न था। वे काफी काले नजर आ रहे थे। अचानक उनके झड़ने से पहले मुझे बहार के सूखे जख्म का रंग दिख गया। दोनों रंग किस कदर मिल रहे थे कि अलगाना नामुमकिन। मेरी आँखों से मानो एक झूठ का परदा उठ चला। उस वक्त बहार पर गजब निखार था। गुल सबसे बेजार, हवा में बुलबुले टटोल रहा था। बहार ने अब चलने का मन बना लिया था। मुझे उसकी हरकतों से साफ पता चल रहा था। उसे चले ही जाना चाहिए था। गुल वहां से उठा ही नहीं। उसकी जबान से अलविदा का हर्फ भी न फूटा। उसकी नजरों से मिन्नत का जादू एकदम काफूर हो चला। उसके चेहरे पर इश्क के तमाम फसाने जो अभी तक मुझे खींच रहे थे वहां अचानक मैंने एक ठंडा आदमी पाया जो सच की आग से बचने के लिए पहले ही बर्फ हो गया था। अलविदा,बहार ने भी नहीं कहा पर जो कहा वो अलविदा ही था।

'मैं कोई परी नहीं थी गुल! हाड़-मांस की औरत थी। मेरे पास अपने ख्वाबों की तामीर के लिए कोई जादू की छड़ी नहीं थी। मेरे ख्वाब तुम्हारे संग पूरे होने थे... पर तुम कलाकार आदमी थे जिंदगी में डूबकर नहीं सीखी थी तुमने जीने की कला। याद है न तुम कोहनी के सहारे आसमां तकते थे और मैं घुटनों के बल धरती देखा करती थी। तुममें फनकारों की गजब अदाएं थीं, कितने ही शायरों के अल्फाज। मुझे तसल्ली देने को तुम्हारे पास किसी और से चुराया हुआ फलसफा था पर मैं जिंदगी के सच की तलाश में थी। वो तुम्हारे झूठ पर एतबार का मौसम था...बीत गया। सोचा था तुमसे कभी न मिलूंगी ...पर आज तुम्हारे शहर में होने और तुम्हारे इसरार पर यहां हूं...सोचती आई थी तुम अब तक माजी से निकल आए होंगे। हमसफर नहीं पर हम दोस्त तो रह ही जाएंगे। अफसोस! जब मैं थी तब तुम्हारी बातों में माजी था आज तुम हो और तुमने मुझे माजी बना डाला। खुश रहो गुल मैं अपने आज संग जाती हूं।'

गुल कहीं खोया-सा था। शायद उसने बहार को सुना ही नहीं। पर मैं देख रहा था, बहार की आँखों में- एक झरना उठा और जमींदोज हो गया। उसके चेहरे पर अपने फैसले का नूर था। बहार अकेली नहीं गई दरवाजे के बाहर मैं भी उसके साथ निकल आया।

यहां दर्द, जख्म हो रहा था सब देखते-सुनते, और आप! आपका क्या आप तो यही कहेंगे कि किस्सा बढ़िया था।

●

एक कल्चर कार्यशाला का मध्यांतर

राजेंद्र लहरिया

किसी बेसहारा बुजुर्ग- जैसे गांव के स्कूल के पीले-बदरंग कमरों और आदमकद बाउंड्रीवाल के बीच कच्चे प्रांगण में उस दिन विष्णु माट्साब टेबिल-कुर्सी डाले कागजी काम निबटा रहे थे और विद्यार्थी फटी-पुरानी टाट पट्टियों पर अपनी किताबों- कॉपियों के साथ बैठे थे। तभी अचानक राम मोहनजी विष्णु माट्साब के सामने आ उपस्थित हुए; और अपने दोनों हाथों की हथेलियां अत्यंत करीने से जोड़कर मद्धिम आवाज में बोले, 'गुरुजी नमस्कार!'

सुनकर विष्णु माट्साब ने जवाब में 'नमस्कार' कहा; और सवालिया निगाहों से राममोहनजी की तरफ देखा था।

यह देखकर राममोहनजी ने आगे कहा, 'मुझे तो आप जानते ही होंगे..... मैं राममोहन हूं!' कहने के बाद उन्होंने एक बार फिर अपनी दोनों हथेलियां पूर्ववत् जोड़ ली थीं, और होंठों पर मुस्कुराहट छोड़ दी थी।

इसकी प्रतिक्रिया में विष्णु माट्साब ने उन्हें बैठने को कहा था, तो वे साधिकार सामने पड़ी कुर्सी पर आसीन हो गए थे। उसके बाद उन्होंने अपने कुरते की आस्तीनों को थोड़ा-थोड़ा ऊपर को चढ़ाया और कोहनियां कुर्सी के हत्थों पर रखकर परम इत्मीनानपूर्वक अपने परिचय को विस्तार दिया था, जिसका निचोड़ था कि उन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. किया हुआ है... लेकिन वकालत नहीं की; और वे जनसेवा को ही सबसे बड़ी सेवा मानते हैं और लगभग आठ वर्षों से उसी में लगे हुए हैं- 'समझ लो कि उन्होंने उसी का व्रत ले रखा है।... और इसलिए 'पार्टी' ने उन्हें जिले का ग्रामीण उपाध्यक्ष मनोनीत किया है.... और इन दिनों वे.... मंत्रीजी के कुछ गिने-चुने कृपा-पात्रों में से एक हैं।'

इसके बाद उन्होंने विष्णु माट्साब को अपने विचारों से अवगत कराया था कि देश इन दिनों बड़ी हलचलों के बीच से गुजर रहा है और ऐसे समय में अगर हम एकजुट नहीं हुए, तो हमारी अस्मिता ही खतरे में पड़ जाएगी.... इसलिए वे अपने गांव में भी कुछ करना चाहते हैं!

'कुछ..... मतलब कोई कार्यक्रम वगैरा?..... कोई नेता वगैरा आ रहे हैं?.... क्या होगा?.... क्या करना चाहते हैं?'... माट्साब के भीतर कई सवाल उठ खड़े हुए थे अचानक। वे जिज्ञासु हो उठे थे।

राममोहनजी ने जवाब दिया, 'देखो गुरुजी, हमारी सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि हम अपने-आपको ही भूलते जो रहे हैं!... वह वही देश है जिसमें शिवाजी और महाराणा प्रताप जैसे वीर

हो चुके हैं, जिसमें विवेकानंद और महात्मा गांधी जैसे मनीषी हो चुके हैं!.... आज से हजारों साल पहले हमने ऐसे बाणों का आविष्कार कर लिया था जो दुश्मन को मारने के बाद लौटकर तरकश में आ जाता था। क्या आज का विज्ञान इतनी प्रगति कर सका है अभी? आज से लाखों साल पहले हमने ऐसा पुष्पक विमान बना लिया था जिसमें न डीजल डालने की जरूरत पड़ती थी न पेट्रोल की। यहां तक कि उसमें ड्राइवर की भी आवश्यकता न थी। बताइए! अपने-आप इच्छित स्थान की ओर चलता था वह हवाई जहाज-बिना किसी ड्राइवर के- कितनी प्रगति की थी हमने साइंस के क्षेत्र में आज से हजारों-लाखों साल पहले!' कहते-कहते उत्फुल्लता और जोश उनके चेहरे से झलक उठा था।

माट्साब ने महसूस किया था कि बात सही है। और उम्र तो बहुत ज्यादा नहीं है लेकिन कोरा बी.ए., एल.एल.बी. नहीं है सामने वाला! ज्ञानी है!

'गुरुजी, हमारे इसी देश में भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए, जिन्होंने रावण और कंस जैसे अत्याचारियों का वध किया था। इसी देश में भीम और अर्जुन जैसे वीर हुए, जो हाथियों को उठाकर आकाश में फेंक देते थे। इसी देश में भरत जैसे वीर बालक हुए थे, जो शेरों के साथ खेलते थे। आज हमारी क्या हालत हो गई है?... आज हम इतने शक्तिहीन हो गए हैं कि अपने अधिकार भी नहीं ले सकते हैं- इसका अर्थ है कि हमारी भुजाओं में अब वह शक्ति नहीं रही है।' कहते हुए राममोहनजी ने अपनी दोनों भुजाएं कुर्सी के हत्थों से ऊपर सामने की ओर उठा दीं; गोया कि अपनी उन भुजाओं से अपने कहे हुए को किसी तरह साबित करने वाले हों। मगर उन्होंने वैसा कुछ न करते हुए, कहा, 'हमें अपनी इन भुजाओं में अब वह शक्ति लानी होगी, क्योंकि अब समय आ गया है।... इसलिए हम चाहते हैं कि गांव के युवक, बालक और बूढ़े- सभी रोजाना सुबह किसी एक जगह इकट्ठे होकर कुछ व्यायाम वगैरा किया करें, जिससे शरीर शक्तिशाली होगा, और वहीं उन्हें कुछ नैतिक शिक्षा भी दी जाए, जिससे उनका मन शक्तिशाली होगा।... इस कार्य में हमें अपना सहयोग चाहिए गुरुजी. .. यह देश-सेवा है, जिसे हम सभी को करना है।'

माट्साब एकबारगी कुछ न समझ सके- दरअसल उनकी समझ में व्यायाम, नैतिक शिक्षा और देश-सेवा का कोई तालमेल न बैठा। वे इस विषय में थोड़ा स्पष्ट होना चाहते थे, कि उसी समय राममोहनजी को एक छोटे-से लड़के के बुलावे पर किसी अज्ञात जरूरी कार्यवश तुरंत वहां से चले जाना पड़ा। चलते-चलते वे विष्णु माट्साब को एक बार फिर देश-सेवा के लिए उकसा और फिर मिलने का वादा कर जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए वहां से चले गए।

उसके कुछ दिनों बाद हुआ यह कि विष्णु माट्साब ने खुद व अपने सोलह वर्षीय बेटे ब्रह्मस्वरूप के लिए राममोहनजी के बताए अनुसार पैंट व कमीजें सिलवा लीं; और व्यायाम व नैतिक शिक्षा हेतु रोज प्रातःकाल गांव के पास एक खाली मैदान में जाने लगे। राममोहनजी तो थे ही। उनके पास पहले से ही पैंट और कमीज उपलब्ध थीं। देखा-देखी और प्रेरित किए गए कुछ और भी युवक लोग वहां पहुंचने लगे थे। उनके पास राममोहनजी, विष्णु माट्साब और ब्रह्मस्वरूप की तरह पैंट-कमीजें तो न थीं। सादे कपड़े थे लेकिन वे पहुंचते थे। फिर भी कुल मिलाकर बहुत बड़ी संख्या नहीं हो पाती थी वहां। वे ही गिने-चुने लोग। इसकी खूब चर्चा भी हुई थी गांव में।

और कुछ ही दिनों में वहां जाने वाले रह गए राममोहनजी, विष्णु माट्साब और ब्रह्मस्वरूप। उन्होंने कुछ दिनों तक अपना जाना जारी रखा, उसके बाद निरुत्साह से वे भी बंद हो गए।

लेकिन समय का अधपके फोड़े के मवाद की तरह बहना जारी रहा।

उसके बाद राममोहन जी प्रायः रोजाना स्कूल-टाइम में माट्साब के पास आकर बैठते-बतियाते थे। उनके बतियाने के विषय पूरी तरह एक-दूसरे की रुचि के अनुकूल होते थे, इसलिए इस बतियाने में ऊब का तो कभी कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता था। राममोहनजी जब भी कभी एक-दो दिन के लिए गांव से बाहर-शहर तक- जाते, तो लौटकर माट्साब को सारा कार्यक्रम ब्यौरेवार सुना देते। उनके इस 'कार्यक्रम' में प्रायः देश-सेवा या राष्ट्रसेवा या जनसेवा अथवा स्वयंसेवा ही हुआ करती; और वह थी काफी रोचक हुआ करती थी।

इसी तरह से एक दिन, जब राममोहनजी शहर से लौटे और स्कूल में आए थे तो उनके एक हाथ में मिट्टी का सकोरा था, जिसमें नील घुली हुई थी और दूसरे में लकड़ी के छोर पर कपड़े की पट्टी लपेटकर बनाई गई कूंची थी। सकोरा उन्होंने मेज पर रख दिया था और कूंची को हाथ में पकड़े हुए ही वे माट्साब से मुखातिब हुए, 'आज आपके स्कूल की दीवार पर कुछ लिखना है।'

'क्या लिखना है?' माट्साब ने सहज ही पूछा था।

'चिंता मत कीजिए!... कोई पार्टी-पौलिटिक्स नहीं है!' उनकी आँखों में माट्साब के लिए आश्वासन था, 'मुझे मालूम है कि यह सरकारी स्कूल है और आपके बाल-बच्चे भी हैं।' वे संजीदगी के साथ बोले, और सकोरा उठाकर बाउंडरी की तरफ बढ़े और उन्होंने सकोरे में कूंची बोर-बार कर बाउंडरी के प्लास्टर पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिख दिया :

'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान।'

इसके बाद स्कूल से बाहर चले गए; और उन्होंने सामने वाले मकान की सफेदी वाली दीवार पर भी लिखा :

'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान।'

उसके बाद स्कूल के लड़के बाउंडरी पर लिखे नारे को बार-बार पढ़ रहे थे : 'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान'... 'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान'....

सुन-सुनकर विष्णु माट्साब प्रसन्न थे।

छुट्टी के वक्त उनके कानों में फिर वे ही शब्द गूंज रहे थे- लड़के घर जाते हुए दोहरा रहे थे- 'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान'...

स्कूल बंद करते-करते एक बार फिर विष्णु माट्साब की निगाह बाउंडरी पर चली गई। लिखा हुआ नारा कितना सुंदर लग रहा था। एक बार वे भी मुंह ही मुंह में बुदबुदा उठे थे- 'भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान'। और घर चले गए- प्रसन्नता से भरे हुए।

और वही प्रसन्नता अगले दिन स्कूल में प्रवेश करते वक्त भी उनके चेहरे पर बरकरार थी; और उसी प्रसन्नता के साथ उन्होंने स्कूली-चर्चा प्रारंभ की थी : 'जन गण मन अधिनायक जय हे' राष्ट्रगान हुआ, कक्षाएं अपनी-अपनी टाट पट्टियों पर बैठ गईं; वे खुद हाजिरी-रजिस्टर लेकर अपनी कुर्सी पर आ बैठे : कि उसी समय उनकी निगाह यकायक बाउंडरी पर लिखे नारे की तरफ चली गई; और वहां देखकर वे सनाका खा गए : नारे में तब्दीली थी! और वह भयानक तब्दीली थी! वजह यह कि नारे के बीच से 'नहीं' गायब था और अब नारा बड़ा मनहूस दिख रहा था! अब वह इस तरह था : 'भारत माता का अपमान, सहेगा हिंदुस्तान।'

अपमान सहेगा हिंदुस्तान! भारत माता का अपमान सहेगा हिंदुस्तान!... यह किसने किया है?. ... वे विचलित हो उठे थे।

यों बात कोई बड़ी भारी न थी। बस नारे के बीच से एक शब्द किसी चीज से घिस कर मिटा दिया गया था। (बेशक इससे नारे का सारा अर्थ उलट गया था) लेकिन माट्साब के तईं वहां सवाल किसी शब्द या अर्थ का नहीं, भावना का था। राष्ट्रीय भावना का था। किसी भी लड़के की इस शरारत पर वे अब भीतर ही भीतर बेचैन होकर उबल रहे थे। बार-बार उनकी निगाह नारे पर जा पहुंचतीः

भारत माता का अपमान, सहेगा हिंदुस्तान

ओफ्फो! कैसी विकट शरारत की है किसी लड़के ने। अगर उन्हें उस लड़के का पता लग जाए जिसने ऐसा किया है तो एक बार तो वे उसकी चमड़ी उधेड़कर रख दें। उसे अच्छी तरह समझा दें कि क्या मतलब होता है इस तरह बदमाशी करने का। उफ्, राष्ट्रीय भावना तो पूरी तरह मर चुकी है इस पीढ़ी की!... सोचते हुए उनका मुंह उतर गया था, और वे अपने भीतर क्रोध की आग को दबाए- किंकर्तव्यविमूढ़ हुए बैठे हाथ मल रहे थे। आखिर इतना बड़ा 'राष्ट्रीय अपराध' स्कूल के किस लड़के ने किया है? कैसे पता लगाया जा सकता है उस लड़के का? सवाल एक नारे का नहीं है, सवाल उस चीज का है- उस भावना का- जो नारे के भीतर निहित थी। और उसे किस प्रकार विरोधी भावना में बदल दिया है किसी लड़के की शरारत ने।

माट्साब के भीतर गुस्सा उछल-कूद मचाए हुए था; पर वे उसे जबरदस्ती जब्त किए हुए थे। कुछ देर उसी हालत में बैठे रहे वे, लेकिन जब जब्ती से बाहर हो गया तो यकायक कुर्सी से बड़े हो लड़कों से मुखातिब हो गए। उनकी आवाज बदली हुई थी, 'खड़े हो जाओ सभी लड़के।' गुस्सा उनकी आँखों से ही नहीं, पूरे चेहरे से झांक उठा था।

सभी लड़के तत्काल खड़े हो गए और उनके मुंह की ओर ताकने लगे। उन्होंने बाउंडरी पर लिखे नारे की तरफ उंगली से इंगित कर लड़कों पर निगाह घुमाई, 'वहां क्या लिखा है? पढ़ो तो कोई लड़का।'

जवाब में कई लड़कों ने पढ़कर शब्द उछाले, 'भारत माता का अपमान, सहेगा हिंदुस्तान।'

'कल किसी ने पढ़ा था इस नारे को?' उन्होंने एक बार फिर सभी लड़कों पर निगाह फेरी।

लड़कों की तरफ से कोई जवाब नहीं आया। वे सब यथावत खड़े रहे- अपनी-अपनी जगह पर। जिन्होंने कल उस नारे को कई-कई बार दोहराया और रटा था, वे भी चुप थे। पता नहीं क्यों पूछ रहे हैं माट्साब? कोई बात तो जरूर है। तभी तो गुस्से में दीख रहे हैं माट्साब। पर उनकी समझ में यह न आ रहा था कि आखिर माट्साब से, पढ़ाई से और इस नारे से क्या मतलब है।... थोड़ी देर में लड़कों के बीच से, एक का जवाब आया, 'मैंने पढ़ा था माट्साब।'

'क्या लिखा था कल?'

'कल तो था- भारत माता का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान।' लड़के ने साफ-साफ उच्चारित किया।

माट्साब को एक बार फिर याद आया कि कल अनेक लड़के उस नारे को दोहरा रहे थे। वे एक बार फिर सभी लड़कों पर निगाह फेर कर दहाड़े, 'इस नारे के बीच में 'नहीं' शब्द किसने मिटाया है?... देख रहे हो वह घिसी हुई जगह।.... बताओ किसने किया है यह?'

लड़कों को सांप सूंघ गया। सन्नाटा! जरूर इसीलिए नाराज हैं माट्साब।

माट्साब एक बार फिर दहाड़ उठे, 'जिसने भी किया है वह अभी बता दो मुझे, नहीं तो मैं सबकी चमड़ी उधेड़ता हूं अभी।' चेहरा तमतमा उठा था उनका।

लड़के भय से काठ हो गए थे : बेहरकत। चेहरों पर हवाईयां।

उसी समय राममोहनजी स्कूल की बाउंडरी के भीतर घुसे। उन्होंने माट्साब का कठोर चेहरा और लड़कों को सकते में खड़े देखा तो एकबारगी कुछ न समझे। माट्साब के पास पहुंचकर बोले, 'क्या बात है गुरुजी?'

माट्साब ने उंगली उठाकर राममोहनजी को नारा दिखा दिया- उनका ही लिखा नारा, 'पढ़ लो इसे।' स्वर आहत था।

राममोहनजी ने पढ़ा; और उनके होंठों पर एक रहस्यभरी मुस्कुराहट खेलने लगी। बोले, 'गुरुजी, इन लड़कों को बैठने को कह दो। और आप शांत हो जाइए, फिर बात करेंगे अपन लोग।... मुझे मालूम है, किसने किया है यह सब।'

माट्साब ने लड़कों की ओर देखा और उन्हें बैठ जाने को कहा दिया; तथा राममोहनजी उस समय अपनी खिन्नता को मुस्कुराहट में लपेटे लौट गए थे।

अगले दिन विष्णु माट्साब स्कूल आए तब उनका चेहरा तना हुआ था। अलबत्ता रोज की तरह राष्ट्रगान वगैरह से स्कूल शुरू हुआ। पर माट्साब विचलित बने रहे। उन्होंने अपनी कुर्सी पर बैठकर एक के बाद एक हाजिरी रजिस्टरों को खोलकर उनमें कुछ देखा, और थोड़ी देर बाद उनमें से एक रजिस्टर में हाजिरी लेने लगे। एक के बाद एक लड़के का नाम और जवाब में 'हाजिरसाब' या 'उपस्थित सिरमानजी' या 'यस सर' का उच्चारण। इसी क्रम में ज्ञानचंद के बाद वाले लड़के का नाम आया, 'शमशाद खां' जवाब में एक काले-मरियल-से लड़के ने अपनी जगह पर खड़े होकर कहा, 'यस सर'।

माट्साब की निगाहें हठात् लड़के के चेहरे पर जा टंगीं, उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। लड़का डरा हुआ-सा अपनी जगह से चलकर टेबिल के पास आकर खड़ा हो गया। माट्साब ने अपनी नुकीली निगाहें क्षण भर को लड़के के चेहरे पर टिका दीं, उसके बाद कहा, 'शमशाद, दीवार पर क्या लिखा है- पढ़ना उसे।' उन्होंने बाउंडरी पर लिखे नारे की तरफ उंगली से इशारा किया।

शमशाद ने वहीं खड़े-खड़े दीवार की तरफ मुंह किया, और वह धीरे-धीरे पढ़ने लगा, 'भा...रत... माता... का... अप.... मान... सहे....गा.... हिंदु....स्तान।'

'एक बार फिर!' आदेश मिला।

लड़के ने फिर पहले ही की तरह पढ़ा।

'इसे तूने कल पढ़ा था?'

लड़के ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

'क्या लिखा था कल?'

लड़के ने पहले ही की तरह दीवार पर लिखा हुआ पढ़ दिया।

'यही लिखा था कल?'

लड़के ने हां में सिर हिलाया।

'बीच में एक शब्द मिटा हुआ है- वह नीली-सी घिसाई दीख रही है- उस जगह क्या लिखा था?'

लड़के ने नकारात्मक सिर हिलाया।

'मुंह में क्या बोल नहीं है?' बिष्णु माट्साब यकायक दहाड़ पड़े, 'मुंह से बोल, क्या लिखा था उस जगह?'

लड़का कांप गया। धीरे-से बोला, 'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं लिखा था?... याद करके बता, क्या लिखा था?'

लड़के ने सहमते हुए कहा, 'याद नहीं है मास्साब।'

'याद नहीं है। .... क्योंरे...' माट्साब ने और लड़कों की ओर देखा, 'तुममें से कोई बता सकता है कि बीच में जो शब्द घिसकर मिटा दिया गया है, वहां क्या लिखा था?'

'नहीं लिखा था मास्साब!' एक लड़के ने तुरंत जवाब दिया।

'क्यों रे' माट्साब फिर शमशाद से मुखातिब हुए, 'यह तो कह रहा है वहां 'नहीं' लिखा था। बता, लिखा था या नहीं?'

'लिखा था।' शमशाद ने कहा।

'अच्छा, तो उस 'नहीं' को किसने मिटाया है बता?' माट्साब ने आगे पूछा।

'पता नहीं है मास्साब।' शमशाद ने कहा।

'अच्छा, पता नहीं है। तब से, क्या लिखा था- यह पता नहीं था, और अब 'नहीं' लिखा था- यह पता है; लेकिन 'नहीं' को किसने मिटाया है- यह पता नहीं है।' कहकर विष्णु माट्साब ने और लड़कों की तरफ देखकर आदेश दिया, 'लाओ तो एक नीम की हरी सांट।'

सुनकर दो बड़े लड़के सांट लाने चले गए; और वे जरा-सी देर में नीम की एक-एक सांट तोड़ कर ले आए, और उन्होंने दोनों सांटें मेज पर रख दीं। माट्साब ने उनमें से एक सांट हाथ में ली, और शमशाद की ओर देख कर पूछा, 'बोल, 'नहीं' को किसने मिटाया है?'

शमशाद डर के मारे घिघिया उठा, 'मैंने नहीं मिटाया मास्साब।'

'ऐसे नहीं बताएगा।' सांट ऊपर को तन गई, 'हाथ आगे कर।'

कांपता नन्हा हाथ आगे बढ़ा। बेरहम सांट पूरे जोर से हथेली पर गिरी और साथ ही एक मरियल चीख वहां पसरे सन्नाटे पर तिर गई।

'बोल किसने मिटाया है?'

'मैंने नहीं मिटाया मास्साब।'

फिर सांट।... फिर चीख।

'बोल, किसने मिटाया है?'

'मुझे नहीं मालूम मास्साब।... मैंने नहीं मिटाया मास्साब।'

फिर सांट।... फिर चीख।

फिर सांट।... फिर चीख।... और साथ ही माट्साब को दीखता था वह मनहूस बना दिया गया नारा : भारतमाता का अपमान, सहेगा हिंदुस्तान

...दरअसल बीती शाम को ही राममोहनजी ने बिष्णु माट्साब के पास पहुंचकर उनसे कहा था,

'आप शायद अभी भी समझे नहीं हैं।'

माट्साब ने इनकार में सिर हिलाया था, 'नहीं, मेरी समझ में अभी नहीं आया है।'

'अरे गुरुजी,' राममोहनजी की आँखें चमक उठी थीं, 'यह किसी न किसी मुसलमान की करतूत है।'

'मुसलमान...?' माट्साब सोच में पड़ गए एकबारगी, 'लेकिन कोई मुसलमान स्कूल के भीतर कैसे देखने आता कि वहां क्या लिखा हुआ है?'

'मैं दावे के साथ कह सकता हूं गुरुजी, कि ऐसा किसी मुसलमान के अलावा और कोई नहीं कर सकता... चाहे वह कोई गांव का आदमी हो या स्कूल का कोई लड़का।...'

स्कूल के लड़कों में हिंदू-मुसलमान का तो कभी विचार किया ही न था बिष्णू माट्साब ने। लेकिन राममोहनजी ने इतने आत्मविश्वास से कहा था कि विचार करना पड़ा।

... स्कूल के रजिस्टरों में सिर्फ एक ही नाम था- शमशाद खां। बहुत सीधा-सा लड़का शमशाद। क्षण भर को ऊहापोह में पड़ गए थे माट्साब लेकिन पूछताछ पर उसके जवाबों से संदेह पुष्ट हो गया था।...

और बार-बार माट्साब का वही सवाल था, 'बोल किसने मिटाया है?' और जवाब में शमशाद के दो ही वाक्य थे, 'मैंने नहीं मिटाया मास्साब।'... 'मुझे नहीं मालूम मास्साब।' और इसके साथ ही माट्साब के हाथ की सांट थी। और शमशाद के हाथ की हथेली! माट्साब का चेहरा बिगड़ गया था। एक हिंसक गुस्सा और चीखों- बिलबिलाहटों के बीच एक हथेली लहूलुहान हो गई थी, पर सांट रहम न खाती थी।....

और फिर उस वाकये के बाद जो कुछ हुआ, वह मुख्तसरन यह कि राममोहन जी अगले दिन किसी काम से गांव से बाहर चले गए थे। शमशाद पिछले तीन दिनों से स्कूल नहीं आया था। तब तक बिष्णु माट्साब का गुस्सा लगभग ठंडा हो चुका था।....

....उस दिन कक्षाएं लगी हुई थीं। बिष्णु माट्साब कुर्सी पर बैठे हुए एक हाजिरी-रजिस्टर में कुछ लिख रहे थे। तभी कुछ नवयुवक स्कूल के गेट से घुसे, जीना चढ़कर स्कूल की छत पर जा बैठे। उन नवयुवकों को बिष्णु माट्साब जानते थे- वे सभी गांव के ही थे; और अठारह-बीस से पच्चीस-तीस के बीच के थे तथा साल-दो साल, चार साल पहले बी.ए. या बी.एस.सी. या बी.कॉम. थर्ड या सेकंड डिवीजन पास करके गांव लौट आए थे। उनमें से एक-दो ने अपने अधिकृत डिवीजन में एम.ए. या एम.एस.सी. भी कर रखा था। और वे सभी उन दिनों नौकरी की उम्मीद से हताश होकर गांव में डटे हुए थे। हालांकि उनमें से अधिकांश को नौकरी की बहुत ज्यादा जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि उनके घरवालों के पास पर्याप्त रकबे में मौरूसी जमीन-जायदादें थीं। बी.ए.-एम.ए. होने के प्रचलित मकसद के मुताबिक वे सभी नौकरी के उम्मीदवार थे, और उसकी नाउम्मीदी के साथ गांव में मस्ती काट रहे थे।

उनमें से कुछ जीन्स पहने हुए थे, कुछ घुटन्ने; और कुछ गहरे रंगों की सिल्की तहमद लपेटे हुए थे।

उनकी एक पूरी कंपनी थी। और उस कंपनी में से किसी के भी पास करने के लिए कोई भी काम न था। उनमें से अधिकतर, सवेरे उठकर अपने लिए अंग्रेजी या देशी दारू के एक पौवे का

इंतजाम अवश्य कर लेते थे। गांजा-चिलम तो सभी की जरूरत थी- और दिन भर की जरूरत थी। दारू वे अपनी-अपनी सुविधानुसार कहीं भी पी लेते थे, लेकिन गांजे की दम लगाने व दिन में बैठने के लिए उनकी कुछ जगहें मुकर्रर थीं- जैसे कि गोपी सेठ की दुकान, या मंदिर वाली बगीची, या नदी किनारे किसी कछवारी वाले की मडैया या फिर छुट्टी के पहले या बाद के समय स्कूल के अहाते के नीम का चबूतरा और कभी स्कूल की ही छत।

जहां भी उनकी कंपनी जमती, दो-चार घंटों की फुरसत लेकर जमती। तब एक के बाद दूसरी चिलमें होतीं, सिगरेटें होतीं, साथ में मोबाइल फोनों में भरे गाने होते और गप्पें होतीं।

छत पर बैठक जम जाने के बाद, उनमें से एक ने वहीं से कहा, 'माट्साब, आज क्या छुट्टी नहीं होगीऽ?'

माट्साब ने उधर देखा। उसी समय वहां बैठे दूसरे लड़के ने निहायत लापरवाही के साथ किसी फिल्मी गीत के टुकड़े की तरह गाना शुरू कर दिया, 'भारत माता का अपमान सहेगा ऽ ऽ हिंदुस्ता ऽ ऽन।....

यह सुनकर बिष्णु माट्साब का ध्यान छुट्टी वाले प्रश्न को छोड़कर 'अपमान' और 'हिंदुस्तान' पर जा पहुंचा; और वे तकलीफजदा होकर बोल उठे, 'पता नहीं किसने अच्छे-भले नारे को उलटा कर दिया है?.... कितना खराब लगता है।'

गाने वाले शैलेंद्र ने जवाब दिया, 'करने को क्या कोई विदेश से आया था।'

'पता नहीं, किसने किया है।' माट्साब ने कहा।

'पता क्यों नहीं?... रघुराज ने घिस दिया था रूमाल पानी में भिगो कर।' शैलेंद्र ने नशे की झमक में बड़ी सहजता से कह दिया।

माट्साब दंग रह गए सुनकर। रघुराज ने! उन्होंने वहीं बैठे रघुराज की ओर इस तरह देखा मानो उन्हें शैलेंद्र के कहे पर विश्वास न हुआ हो; और वे उस पर खुद रघुराज की पुष्टि चाहते हों। रघुराज के होंठों पर एक उद्दंड-सी मुस्कुराहट नाच उठी। वह बोला, 'माट्साब, तुमने बाजार की दीवारों पर लिखा देखा होगा- यहां पेशाब करना मना है- और यह भी देखा होगा कि लोग उसी लिखे हुए के नीचे खड़े होकर बड़े आराम से पेशाब करते रहते हैं।... इसलिए कभी-कभी कोई उस 'चेतावनी' में से एक शब्द हटा देता है और हिदायत हो जाती है- यहां पेशाब करना है।... ठीक ऐसे ही ये नारा है। कहने या लिखने से क्या होता है कि भारत माता का अपमान नहीं सहेगा हिंदुस्तान?... और कर कौन रहा है भारत माता का अपमान?... वे ही तो कर रहे हैं जो चिल्लाते हैं, नारे लगाते हैं- भारत माता का अपमान नहीं सहेगा हिंदुस्तान।... सही बात तो यह है माट्साब कि ऐसी चेतावनियों और नारों से कोई फर्क नहीं पड़ता- चाहें उन्हें सीधा रहने दो या उल्टा कर दो।..... रघुराज लगातार बोले जा रहा था और गांजे से चढ़ी हुई आँखों से देखे जा रहा था माट्साब की तरफ।

माट्साब हतवाक् थे। उन्हें रघुराज की बातों में से एक गहरी सच्चाई मुंह उठाती नजर आ रही थी। हालांकि शिक्षक होने के कारण शिक्षा और संस्कार देने वाली बातों का महत्व भी उन्हें स्मरण हो आया था उस समय। फिर उन्हें लगा था कि शिक्षा और संस्कार देने वाली बातें अब सिर्फ बातें हैं, कोरी बातें। और रघुराज की बातें सिर्फ बातें नहीं हैं।... वे देर तक उन बातों की पृष्ठभूमि में खोए रहे थे, जिसमें तमाम नवयुवकों सहित रघुराज- शैलेंद्र थे, राममोहनजी थे, और इन सबके बीच

था शमशाद।...

और उस दिन स्कूल की छुट्टी करते वक्त बिष्णु माट्साब के भीतर एक अपरिचित किस्म की बेचैनी थी।....

और फिर उसी दिन, दिन मूंदे से पहले, बिष्णु माट्साब अपने-आप में खोए हुए- से पड़ोस के गांव जमालपुर की ओर जा रहे थे; और कुछ देर बाद उसी अनमनस्क हालत में उधर से लौटे आ रहे थे।

उसके बाद हुआ यह था कि स्कूल की छुट्टी के बाद बिष्णु माट्साब रोजाना शमशाद के गांव जमालपुर की ओर चल देते थे; और आधे रास्ते से ही अपने गांव की तरफ लौट आते थे....

....दरअसल बात यह थी कि जिस दिन दिन मुंदे से पहले बिष्णु माट्साब शमशाद के गांव की तरफ जा रहे थे, रास्ते में एक परिचित ने बातों ही बातों में उन्हें बताया था कि जमालपुर के सकूरअली फकीर का लड़का दो दिन पहले स्कूल से लौटकर अकस्मात् बीमार पड़ गया था; और कल सवेरे मर गया।...

यह सुनकर विष्णु माट्साब को भीतर एक धक्का-सा लगा था। उन्हें यह तो पता नहीं था कि यह खबर कितनी सच्ची थी, कितनी झूठ?...

अलबत्ता उनका इतना पता था कि 'उस दिन' के बाद से शमशाद स्कूल नहीं आ रहा था।. ... उसके बाद उनके भीतर एक हूक-सी उठती थी और उनकी इच्छा होती थी वे शमशाद से मिलकर माफी मांगें... इसलिए रोज चल देते थे उसके गांव की तरफ। मगर बीच रास्ते में ही सोचने लगते थे कि शमशाद कहीं अगर सच में मर गया होगा तो...? तो बीच से ही लौट पड़ते थे अपने गांव की ओर।.... कई दिनों तक इसी तरह चलता रहा। हर दिन बिष्णु माट्साब एक नई बेचैनी के साथ होते।... और फिर बोलते समय के साथ वे एक दिन उस हालत में जा पहुंचे, जिसमें आदमी दूसरों से ही नहीं बल्कि खुद से भी अपरिचय का रिश्ता कायम कर लेता है।

●

खतरनाक

राकेश तिवारी

वह अधेड़ लग रही थी। हालांकि अड़तीस से ऊपर नहीं होगी। एक गोरी-चिट्टी युवा स्त्री उसे मनोचिकित्सक के पास लाई है। वह उसे ऊपर से नीचे तक देखता है। उसके उड़े हुए बाल देखकर लगता था किसी महिला के साथ उसकी हाथापाई हुई होगी जिसने बाल नोंचने के बाद जलती हुई लौ से झुलसा दिए होंगे। पर सच यह था कि उसके काफी बाल झड़ चुके थे और वे घने लगें, यह सोचकर उसने हाल ही में कलरिंग कराई थी।

मनोचिकित्सक उसे आरामदेह कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए मुस्कुराता है। यह जानने के लिए उसकी जवाबी मुस्कुराहट का इंतजार करता है कि वह हिंसक प्रवृत्ति की तो नहीं है। इन दिनों उसकी छवि बहुत ही मुंहफट, बल्कि आक्रामक स्त्री की हो चुकी है, ऐसा उसकी युवा सहेली ने फोन पर बताया था। मनोचिकित्सक फिर से मुस्कुराता है और उसे गौर से देखता है। उसके तांबई चेहरे पर गालों की हड्डियां उभरी हुई थीं और वह बेहद भोंडा लगने वाला तोतई रंग का सलवार-सूट पहने थी। मनोचिकित्सक मौसम की, लजीज व्यंजनों कीऔर जाने किधर-किधर की फालतू बातें करने लगता है। शायद यह सामान्य लगने वाले जटिल मरीजों की जांच-परख से पहले की कवायद हो। वह बार-बार मुस्कुराता है, क्योंकि मानता है कि मुस्कुराहट सामने वाले को अहिंसक बनाने का कारगर औजार है।

मुस्कुराते हुए ही वह धीरे-से शिमला और नैनीताल पहुंच जाता है। फिर रोप-वे की बातें करते-करते जानना चाहता है कि उसे ऊंचाई से डर तो नहीं लगता? साथ आई युवती को उन बेसिर-पैर की बातों से ऊब होने लगी। डॉक्टर की मुस्कुराहट से भी, जो देखा जाए तो, आकर्षक थी। उसका बस चले तो वह डॉक्टर के कमरे में रखी हर चीज को पत्रिकाओं की तरह उलट-पुलट कर देखने लगे। पर यह अभद्रता होती। वैसे भी, वहां उलटने-पलटने के लिए था ही क्या। एक मेज, चार कुर्सियां, प्लास्टिक का एक स्टूल, एक लैपटॉप, दवाइयों के कुछ सैंपल, एक पैन, राइटिंग पैड, उस दिन का टाइम्स ऑफ इंडिया, दो-तीन किताबें। कमरे के एक कोने में वॉशबेसिन था जिसके करीब एक डस्टबिन रखा था। एक और डस्टबिन डॉक्टर की टांगों के पास पड़ा था। अखबार और किताबें उसकी मेज पर दाएं हाथ के पास रखी थीं, जिन्हें उठाने का मतलब डॉक्टर का ध्यान खींचना होता। मनोचिकित्सकों के पास स्टेथोस्कोप होता होगा या नहीं, यह जानने की युवा स्त्री को बड़ी जिज्ञासा हो रही थी। बेचैनी की हद तक। इसके लिए मेज की दराज खोले बिना वह किसी नतीजे

पर नहीं पहुंच सकती थी।

मनोचिकित्सक झुलसे बालों वाली से पूछता है कि उसे नींद अच्छी आती है? वह हँसती है, 'रात भर मॉस्क्यूटो रैकेट लेकर मच्छर मारती हूं। दिन में ऊंघती हूं।'

ऐसा लगा, उसकी इस बात पर बाहर वाले कक्ष में एक छोटी मेज के सामने बैठा डॉक्टर का सहयोगी हँसा। कौन जाने दूसरा सहायक, जो उनके अंदर आते वक्त वाटर प्यूरीफायर के पास खड़ा बोतल में पानी भरता हुआ दिखाई दिया था, वही हँसा हो। कमरे के बीच का दरवाजा बंद था। दरवाजा हमेशा बंद रहता था, ताकि मरीज को तसल्ली हो कि उनकी बातें कोई नहीं सुन रहा। लेकिन मरीज के अंदर दाखिल होने के बाद ये दोनों चौकन्ने होकर अंदर की तरफ कान लगाए बैठे रहते हैं। उनमें से एक काफी हट्टा-कट्टा था। दूसरा भी ठीक-ठाक ही था। दोनों ही किसी को दबोच कर काबू करने में सक्षम थे।

मनोचिकित्सक उसके खानपान और भूख के बारे में पूछताछ करने के बाद अचानक जानना चाहता है कि क्या उसे गुलाब पसंद हैं? अधेड़ लग रही झुलसे बालों वाली स्त्री साफ इनकार कर देती है। वह उसके चेहरे को देखता है। वह समझ जाती है कि डॉक्टर के देखने में सवाल छुपा है। बताने लगती है, 'मुझे फूल पसंद नहीं।'

डॉक्टर मन ही मन कहता है,वह तो इसका चेहरा बताता है।

'क्यों?' वह पूछता है।

'उसे पसंद हैं। हर रंग के, हर गंध के।'

वह पेन उठाकर पैड पर कुछ लिखता है और उसकी युवा सहेली की ओर देखता है, जिसका ध्यान अब झुलसे बालों वाली की ओर खिंच चुका था। युवती डॉक्टर का आशय समझ गई। बोली, 'अपने पति के बारे में बात कर रही हैं।'

'ओह। ...उन्हें बुके बहुत मिलते होंगे ना?' मनोचिकित्सक ने पूछा। युवा स्त्री ने बताया था कि उसका पति राजनीति में है।

कुछ देर रुककर उसने दूसरा सवाल किया,'सो व्हाट, अगर उन्हें पसंद हैं तो? इस दुनिया में ज्यादातर लोगों को फूल पसंद होते हैं।'

'लेकिन सब पराग-चोर नहीं होते।' झुलसे बालों वाली बताती है। वह थोड़ा परेशान हो जाता है। डॉक्टर की उलझन का हल युवा स्त्री के पास नहीं है। वह अगल-बगल देखने के बाद केवल पराग-चोर का अर्थ स्पष्ट कर पाती है, 'वो...जो फूलों का पराग चुरा ले।'

डॉक्टर की उलझन कम नहीं हुई। पराग-चोर का मतलब तो वह भी समझ रहा था। वह अधेड़ लगने वाली स्त्री से ही पूछता है, 'पराग कैसे चुराते हैं?...मतलब मनुष्य पराग कैसे चुराता है?'

'वह मनुष्य नहीं है।'

'मतलब कि भंवरा है?' मनोचिकित्सक तिरछी निगाहों से देखता हुआ होंठों ही होंठों में मुस्कुराता है।

'प्लीज, रहने दीजिए। 'भंवरा' बड़ा ही रोमांटिक शब्द है। इट साउंड्स पॉजेटिव।'

तल्खी उसकी पुतलियों पर सवार हो गई थी। मनोचिकित्सक ने उसे पानी पेश किया और उसके शांत होने का इंतजार करने लगा। उसने फिर से कुछ लिखा। यहां आने से पहले युवा स्त्री ने

मनोचिकित्सक को फोन पर बताया था कि उसकी एक सहेली है, जो अजीब-सी हरकतें करने लगी है। अजीब-सी बातें करती है। कभी-कभी तो बड़ी कोफ्त होती है। कभी-कभी तरस भी आता है। हालांकि तरस खाना उसे पसंद नहीं है।

ऐसी बहुत सारी बातें बताने के बाद युवती ने चिंतित स्वर में डॉक्टर से पूछा था कि उसकी सहेली को इस हालत से बाहर निकालने का कोई रास्ता है? मनोचिकित्सक पति-पत्नी के संबंधों के बारे में खोद-खोदकर पूछने लगा। युवती घबरा गई। उसने कहा, वह ज्यादा बता नहीं सकती। मनोचिकित्सक ने मरीज को लाने के लिए कहा और बताया कि केस को आमने-सामने व सीधी बातचीत से ही समझा जा सकता है। देखना होगा कि कॉग्नीटिव बिहेविअर थेरैपी से काम चलेगा या कुछ और जरूरत है। पर्सनेलिटी डिसऑर्डर का मामला तो नहीं है। दवाइयों की जरूरत है या नहीं। कहीं फेमिली थेरैपी तो जरूरी नहीं है। क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट के पास भी रेफर करना पड़ सकता है। युवती ने फेमिली थेरैपी के बारे में पूछने के बाद यह बताना जरूरी समझा कि उनके परिवार में पति-पत्नी और एक बेटी है दस-बारह साल की लेकिन इनका मामला थोड़ा पेचीदा है। पति नहीं आ पाएंगे। मनोचिकित्सक ने कारण पूछा तो उसने कुछ बातें स्पष्ट कीं। कुछ नहीं कीं।

'तो उसे हमिंगबर्ड कह सकते हैं?' मनोचिकित्सक ने बात को हल्का-फुल्का करने के लिए अपनी घुन्ना मुस्कुराहट के साथ अधेड़ स्त्री से पूछा था।

'यह कौन-सी चिड़िया है, मैं नहीं जानती।'

'हिंदी में उसे क्या कहते हैं, मैं भी नहीं जानता। पर मैं उसे गुनगुन चिड़िया कहता हूं। बहुत ही खूबसूरत और बहुत छोटी चिड़िया है। वह खुद को हवा में स्थिर रखने के लिए मधुमक्खियों, भंवरों और टिड्डियों की तरह तेजी से पंख फड़फड़ाती है, जिससे गुनगुनाहट जैसी ध्वनि निकलती है।..और हां, वह फूलों का पराग चूसती है।'

अधेड़ स्त्री उस चिड़िया की कल्पना करते हुए मुस्कुराई। फिर गरदन झटक कर बोली, 'आपको बता दूं, मुझे छोटी चिड़ियों से बहुत प्यार है। और आपने इतनी खूबसूरत और मासूम चिड़िया से उस व्यक्ति की तुलना की?'

'सॉरी मैं तो पराग-चोर...।'

'आप भंवरों और चिड़ियों को पराग-चोर कैसे कह सकते हैं?' वह तैश में आ गई। उसकी आवाज सुन कर डॉक्टर के दोनों सहायक अंदर आ गए। उन्हें ऐसी हिदायत थी। कई बार मरीज बेकाबू हो जाते हैं। उनका काम है तैयार रहना।

मनोचिकित्सक उन्हें सब ठीक होने का इशारा करने के बाद बगलें झांकने लगा। फिर बेबस होकर युवा स्त्री की ओर देखा। उसकी हालत देखकर युवा स्त्री का चेहरा सुर्ख हो गया था। अपनी खिसियाहट मिटाने के लिए मनोचिकित्सक ने विषय बदलते हुए पूछा,'वैसे कोई और तकलीफ?'

'नहीं।'

'मन उदास रहता है?'

'हां।'

'कभी-कभी रोना आता है?'

'आ जाता है।'

मनोचिकित्सक का मन करता है, वह उसे 'शुक्रिया, मेहरबानी' कह दे।

'उस वक्त कैसी इच्छा होती है? मतलब कभी ऐसा विचार मन में आता है कि जिंदगी बेकार है?'

'विचार आए या न आए, क्या फर्क पड़ता है? जिंदगी तो है ही बेकार।'

उसने अधेड़ स्त्री को कुछ बातें समझाईं। सोच को पॉजिटिव रखने की नसीहतें दीं। वह तटस्थ बनी रही तो डॉक्टर ने फिर से पिछली बात का सिरा पकड़ लिया 'तो पराग चुराने वाले जिस व्यक्ति की बात आप कर रही थीं, और जो, आपके मुताबिक भंवरा नहीं है, गुनगुन चिड़िया नहीं है, मनुष्य भी नहीं है...तो वह है क्या?'

उसने महिला के चेहरे की तरफ देखा।

'भालू है।'

मनोचिकित्सक का दिमाग फटना चाहता है लेकिन वह याद करता है कि वह तो मनोचिकित्सक है और उसके दिमाग को ऐसी बातों से फटना नहीं चाहिए। झुलसे बालों वाली स्त्री, जो अधेड़ लगती थी, अपनी रौ में बोलती जाती है। कि वह (भालू) बहुत मोटी खालका बना है। उसकी खाल में भालू की तरह घने बाल हैं। वह मधुमक्खियों के छत्ते से भी सटासट शहद निकाल सकता है और गटागट गटक सकता है। वे उसे काट नहीं सकतीं। डंक के विरुद्ध उसके बाल ढाल का काम करते हैं। उसे मधु पसंद है।'

'लेकिन आपने तो कहा था वह पराग चुराता है?'

'मधु किससे बनता है?'

'पराग से।' डॉक्टर ने झेंपते हुए कहा।

'तो ये दो अलग-अलग बातें कैसे हुईं भला?'

डॉक्टर को लगा, वह उससे उगलवाने के चक्कर खुद ही फँस रहा है। इसीलिए वह दुबारा झेंप कर रह गया। इस झेंप में वह युवा स्त्री की तरफ नजर नहीं उठा पाया।

'राइट। बात तो एक ही है।' डॉक्टर ने थके स्वर में कहा। उसकी सवाल-जवाब करने की इच्छा खत्म होती लग रही थी। मनोचिकित्सक को चुप देखकर झुलसे बालों वाली ने अपनी ओर से सवाल कर दिया- कि क्या वह कभी उत्तरी अमेरिका गया है? मनोचिकित्सक ने गरदन को दो बार हिला कर इनकार किया। वह बोली, 'डिस्कवरी तो देखते होंगे?' उसने स्वीकृति में सिर हिलाया, पर आश्चर्य के साथ। कि यह कैसा सवाल है। अधेड़ स्त्री ने झट-से एक और सवाल दाग दिया- 'डिस्कवरी पर कभी ग्रिजली बेअर देखा? भूरा भालू?'

वह उसका उत्तर मिले बिना ही बताने लगती है कि भूरे भालू मांसाहार के लिए मछलियों का शिकार करते हैं। वे बहुत आसानी से मछलियां पकड़ लेते हैं।

मनोचिकित्सक का मन अब भी बुझा हुआ लग रहा था लेकिन अधेड़ स्त्री ने अपनी बात जारी रखी, 'जब वह मत्स्यकन्याओं का आलिंगन करता है तो भालू की तरह ही एकदम अशिष्ट तरीके से- बेअर हग।'

मनोचिकित्सक की उदासी मामूली हैरानी में बदल गई। वह 'मत्स्यकन्याओं' को होंठों ही होंठों में उच्चारित करता है। युवा स्त्री उसकी मदद करना चाहती है, 'मतलब यह कि जब वह स्त्रियों

को हग करता है तो...।'

यह बात मुंह से निकलते ही युवा स्त्री भयभीत-सी हो गई। उसने डॉक्टर से एक वादा चाहा। कि वह कभी किसी को नहीं बताएगा कि मरीज को कौन लेकर आया था। वह हैरान रह गया। ऐसा क्यों, उसने पूछा। युवा स्त्री ने बताया कि कभी-कभी प्रभावशाली लोग अपने निजी जीवन की बातों को सार्वजनिक जीवन के लिए खतरा मानते हैं। ऐसे में वह (खुद) परेशानी में पड़ सकती है।

उसका इशारा अधेड़ स्त्री के पति की तरफ था। मनोचिकित्सक ने उसे आश्वस्त किया कि वह ऐसा नहीं करेगा। यों भी, मरीजों को लाने वालों के बारे में पूछताछ कोई नहीं करता, जब तक कि पुलिस केस न हो। युवा स्त्री को तसल्ली हुई।

डॉक्टर इस छोटे से व्यवधान के बावजूद मत्स्यकन्याओं में उलझा था। उसने फिर से अधेड़ स्त्री पर ध्यान केंद्रित किया। वह फिर से बताने लगी मत्स्यकन्याओं की बात करते हुए उसे आत्मग्लानि नहीं होती। कोई अफसोस या पछतावा नहीं होता। पूरी बेशर्मी के साथ सिर उठा कर बात करता है। वह उस छोटी चिड़िया की तरह गुनगुन नहीं करता। भालू की तरह डों-डों करता है। उसके शब्द लड़खड़ाते नहीं, बल्कि उसके मुंह से शब्दों का फव्वारा फूटता है।

डॉक्टर 'मत्स्यकन्याओं' को फिर से बुदबुदाता है। तभी वह स्पष्ट कर देती है, 'मत्स्यकन्याएं। मतलब जलपरियां।...लेकिन, उन दिनों वह मुझे वनकन्या कहता था। जंगली औरत। जिसमें ऐसा ताब होता है...ऐसा ताब होता है कि...जाने दीजिए।'

वह हँसती है और खुद को ऊपर से नीचे तक देखती है। मनोचिकित्सक भी उसे ऊपर से नीचे तक देखता है। इस खंडहर में ताब! वह भी हँसना चाहता है, पर हँसता नहीं। युवा स्त्री को देखता है, जिसने बताया था कि किसी को हँसता देख कर उसकी सहेली बहुत सतर्क हो जाती है। युवा स्त्री नजरें दीवार की ओर फेर लेती है, क्योंकि मनोचिकित्सक भी युवा है और उसे कनखियों से देख रहा है।

'आप किन दिनों की बात कर रही थीं?'

'जब मैं उसके प्रेम में पड़ी थी। सोलह साल पहले की बात है।'

कुछ देर की खामोशी के बाद वह अपने बालों पर हाथ फेरती हुई बोली- 'मेरे बाल झड़ गए। चेहरे पर झुर्रियां नजर आने लगी हैं। फेशियल कराने से कुछ नहीं सुधरता। एजिंग को भले कुछ समय के लिए रोक लो, लेकिन जो भालू करता है, उसके असर को...वह उम्र से ज्यादा मारक है।'

वह रुआंसी हो गई।

'आपके पति तो कविताएं भी लिखते हैं शायद?...मैडम ने फोन पर बताया था।' वह इस बार मैडम (युवती) की ओर सीधे देख कर मुस्कुराता है। युवती भी बिजली की तरह हल्का-सा कौंधती है। झुलसे बालों वाली का चेहरा गुस्से में बदरंग हो जाता है- 'घंटा लिखता है कविता। भालू सिर्फ तुकबंदी कर सकते हैं- डों-डों, डोंडों-डों।'

मनोचिकित्सक को यह डों-डों तुकबंदी बहुत अच्छी लगी। वह मुस्कुराता है। पूछता है, 'सीधे शब्दों में बताइए कि आपके साथ क्या हुआ?...आइ मीन, आप क्या महसूस करती हैं?'

'ठगा हुआ।' वह तुरंत जवाब देती है। मनोचिकित्सक खुद ही ठगा-सा रह जाता है। वह इसका मतलब जानना चाहता है। वह कहती है, 'मैं नहीं समझा सकती कि कैसा महसूस होता है। ठगे

जाने में सबसे बुरा यह होता है कि आपको पता होता है ठग लिया गया।'

मनोचिकित्सक के सवाल अचानक ही चुक गए। अधेड़ स्त्री अब भी तुकबंदी पर अटकी थी। वह बताना चाहती थी किडों-डों की औलाद (उसका पति) कैसी फूहड़ कविताएं लिखता है लेकिन वह यह सब नहीं बताती। कहती है, 'जैसे वह जानता है कि राजनीति कैसी हो, भाषण कैसा हो, बयान कैसा हो, वैसे ही वह जानता है कि तुकबंदी कैसी हो।'

युवा स्त्री डॉक्टर को समझाने लगती है, 'साहित्य जगत में ऐसे लेखन को कविता कोई नहीं मानता, लेकिन राजनीतिक हलकों में तुकबंदियां कभी-कभी बड़ी मूल्यवान हो जाती हैं क्योंकि फेसबुक, व्हाट्सएप वगैरह पर चलाने से मकसद पूरा करती हैं, जिसके लिए उन्हें लिखा जाता है।'

'ये जो भालू है ना...।' अधेड़ स्त्री बोलना चाहती है कि उससे पहले डॉक्टर बोल पड़ता है, 'ग्रिजली बेअर या आपके पति?'

'आप भालू ही कहिए।'

'मतलब कि जिसके साथ आप रहती हैं?'

डॉक्टर को थोड़ा चुहल सूझ रही थी। वह कोई उत्तर नहीं देती। केवल बताती है कि भूरे भालू को मत्स्यकन्याओं से खेलने में परम सुख प्राप्त होता है। वह उन्हें वहां से पकड़ता है जहां से उनका शरीर मनुष्य का होता है। कमजोर हिस्से से। धड़ के मछली वाले निचले हिस्से से नहीं। वहां से फिसल जाने का खतरा रहता है।

मनोचिकित्सक ठीक-ठीक समझ पाने में पेश आ रही दिक्कत के बारे में बताना चाहता है और कुनमुनाता है। लेकिन पूछता दूसरी तरह से है,'आपके घर में एक्वेरिअम है?'

'हां, वो एक्वेरिअम, लाफिंग बुद्धा, घोड़े के चित्र और ऐसी कई विचित्र चीजों को शुभ मानता है।'

'आपको कभी ऐसा लगता है कि उस एक्वेरिअम में मत्स्यकन्याएं तैर रही हैं? या कभी ऐसा लगा हो कि भालू उनकी ओर बढ़ रहा है?'

वह उसकी आँखों में झांककर उसके भय को ढूंढना चाहता है। अधेड़ स्त्री अपनी छूट गई अधूरी बात को जारी रखती है, 'वह एक-एक मत्स्यकन्या का नाम लेकर उसके साथ जल-क्रीड़ा का उल्लेख करता है। उसे संकोच नहीं होता। मैंने कहा था ना, कि उसके शब्द लड़खड़ाते नहीं, बल्कि उसके मुंह से फव्वारे की तरह फूटते हैं। वह बताता है कि मत्स्यकन्याएं उसके पीछे इस तरह भागती हैं जैसे मछलियां रोशनी के पीछे। दरअसल, रोशनी वह खुद दिखाता है। ऐसी रोशनी जो केवल हमारा भ्रम होता है। '

मनोचिकित्सक को सिगरेट की तलब लगी है। वह अपने अंदर छटपटाहट महसूस कर रहा है। ऊपर से इस स्त्री की बातें। वह पांच मिनट का समय मांगते हुए उसकी सहेली से कहता है,'आप इन्हें समझाइए कि डॉक्टर कविता की भाषा नहीं समझते।'

वह बाहर निकल गया। दोनों सहेलियां बातें करने लगीं। युवा स्त्री समझाती रही कि उसे इस तरह नहीं, बल्कि सीधे-सीधे बात करनी चाहिए। अगर वह समझेगा नहीं तो कोई निदान नहीं सुझा सकता। वह युवा स्त्री की ओर देखती रही। सुना कुछ नहीं। जैसे उसके दोनों कानों के बीच कोई सुरंग हो और बातें यहां से वहां निकलने का रास्ता बना लेती हों।

वह आठ मिनट बाद लौटा। लघुशंका से निपटकर उसने वॉशरूम में हाथ धोए, कुल्ला किया और हाथों को सूँघा। सिगरेट की गंध आ रही थी। दुबारा हाथ धोए और आते ही 'हां तो अब बताइए' कह कर अधेड़ लगने वाली महिला की ओर देखा। वह थोड़ा तरोताजा लग रहा था।

'एक फिल्म थी 'पायरेट्स ऑफ दि कैरेबियनः ऑन स्ट्रेंजर टाईड्स'। आपने देखी?' अधेड़ स्त्री ने उल्टा उसी से सवाल किया। इंतिहाई सवालों से परेशान कर देने वाले मरीजों से कभी-कभी ही साबका पड़ता है।

'शायद। मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा। मुझे फिल्मों के नाम याद नहीं रहते।'

'खैर, ये जो भालू है, अपनी उम्र बढ़ाने के लिए जलपरियों के आंसू पीने की तमन्ना नहीं रखता। जैसा फिल्म में होता है। ये उनकी रोजमर्रा की मुस्कुराहटें पीता है। उसी से इसकी उम्र बढ़ती है। और जानते हैं, जलपरियों से भालू क्या कहता है?'

'क्या?'

'मुझे देखिए,' वह अपनी बात से भटक कर एकाएक अपने हाथों को उलटने-पलटने लगती है और उदास हो जाती है, 'लगता है, बहुत जल्दी ही बुढ़ापा आ जाएगा। कितनी झुर्रियां पड़ गईं। इसका कोई इलाज है?'

स्त्री को पटरी पर लाने के लिए डॉक्टर पूछता है, 'भालू जलपरियों से क्या कहता है?'

'यही कि तुम कब तक गूंगी बनी रहोगी? अपने आप को अभिव्यक्त करो। अपनी कूवत पहचानो। आगे बढ़ो। अवसर तुम्हारा इंतजार कर रहा है। तुम केवल सुंदर ही नहीं हो, तुम्हारे पास सुंदर विचार भी हैं। सुंदर सोच है। साहस है। अपनी गूंगी जबान को शब्द दो। अभी तुम आधी स्त्री और आधी मछली हो। पोखर में रहने वाली। समुंदर में उतरो। तुम्हारा खुलापन तुम्हें पूरी स्त्री बना देगा। एक संपूर्ण स्त्री। तुम्हारे पर निकल आएंगे।'

उसने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए, धीरे-धीरे बताया था। मनोचिकित्सक का मुंह खुला रह जाता है। अधेड़ स्त्री उसे समझाती है,'वह 'पर' नहीं,'पैर' कहता है।'

मनोचिकित्सक के सिर में खुजली होने लगी। जैसे अंदर कीड़े बिलबिलाने लगे हों। युवा स्त्री उसकी स्थिति समझ रही है। वह बहुत सारी बातें खुलकर बताना चाहती है लेकिन डरी हुई है। भरोसा नहीं कर पा रही कि ये बातें दरवाजों और दीवारों से बाहर नहीं निकलेंगी। इसीलिए जब वह कोई टिप्पणी करती है तो किसी भी सूरत में अधेड़ स्त्री के पति का नाम नहीं लेती। वह खुद को हिम्मत देती है और मामूली हस्तक्षेप करती है, 'कुछ लोग जैसे यह जानते हैं कि कामयाब राजनीति कैसी हो,काम का भाषण और बयान कैसा हो, कविता कैसी हो, वैसे ही यह भी जानते हैं कि काम की स्त्री कैसी हो। कुछ मामलों में वे बहुत ही क्षमतावान होते हैं।'

युवती कुछ और कहना चाहती थी, लेकिन उससे पहले अधेड़ स्त्री बोल पड़ी, 'वह जानता है कि जलपरियों के पैर नहीं होते। उन्हें खड़े होने के लिए पैरों की सख्त जरूरत होती होगी। उसे जलपरियों की कमजोरियों को समझने में महारथ हासिल है। वह इसका बड़े मनोयोग से और लगातार अध्ययन करता है।'

मनोचिकित्सक फिर से परेशान होने लगा था। बोला, 'अब तो आप दोनों ही उलझा रहे हैं। साफ-साफ बताएं। कोई घटना जो कहानी की तरह हो, या कोई दृश्य जो फिल्म की तरह हो।'

अधेड़ स्त्री ने युवती की ओर देखा। कुछ इस अंदाज से जैसे कह रही हो, तुम्हीं बता दो। युवा स्त्री ने गला साफ किया। मानो, गीत गाने वाली हो। फिर थोड़ा रुककर बात शुरू की जामुन के पेड़ से कोई पांच हाथ की दूरी पर एक मेज और दो कुर्सियां लगी थीं। पेड़ के पीछे से चाँद झांक रहा था। पत्तियों से छनकर आ रही चाँदनी एक लड़की के चेहरे और बालों पर पड़ रही थी, जो राजनीति का 'र' नहीं जानती थी लेकिन राजनीति में जाना चाहती थी। चाँदनी रात में उसे राजनीति की वर्कशॉप में बुलाया गया था। दो ही लोग थे, एक वह लड़की और दूसरा रात में राजनीति सिखाने वाला। लॉन में हरी दूब आधी हरी और आधी मटमैली लग रही थी। कभी-कभी हरे हिस्से में ओस की बूंदें झिलमिला जातीं। मेज पर बीयर के कैन थे, रोस्टेट चिकन था, भुने हुए काजू थे, एक डायरी थी और एक पेन।

युवती ने अपनी जांघों के पास से उघड़ आई लैगिंग को कुर्ते से ढांपते हुए कहा 'उस चाँदनी रात में लड़की को राजनीति का कुपाठ सिखाया गया। लड़की की भूरि-भूरि प्रशंसा के मंत्रजाप से चाँदनी की शीतलता में सौंदर्य धीरे-धीरे पिघलने लगा। पिघलते सौंदर्य को जब हथेलियों में समेटा जा रहा था तब मेरी सहेली बेडरूम की बत्ती बुझा कर खिड़की से देख रही थी। लड़की को बताया गया कि स्त्री और पानी एक जैसे होते हैं। जितना गहरे (नीचे) उतरोगे, उतना ही ऊपर उठोगे। उस रात लड़की को पता चल गया कि राजनीति और कुछ नहीं, कुरूपताओं का कोलाज है।'

उसने गहरी सांस छोड़ी और अपनी सहेली की ओर संकेत करते हुए बताया कि इस तरह का प्रशिक्षण लेते इन्होंने कई राजनीतिक कार्यकर्त्रियों और कवयित्रियों को देखा है। वह प्रशिक्षु महिलाओं को राजनीति के या साहित्य के आसमान में सितारों की तरह टांग देने का बड़ा ही विश्वसनीय आश्वासन देता है। वह अपने प्रभामंडल से चकित करने के लिए कई तरह के लटकों-झटकों और जुमलों का इस्तेमाल करता है।'

'आप कविताएं लिखती हैं? या आपकी रुचि राजनीति में...?' मनोचिकित्सक ने युवा स्त्री से प्रश्न किया तो उसने सिर झुका लिया। वह सफाई देना चाहता था कि उसने युवती की बेहतरीन और सिर के ऊपर से निकल जाने वाली हिंदी से प्रभावित होकर यह सवाल पूछा था। लेकिन जानता था कि सफाई देना और भी हास्यास्पद होगा।

अधेड़ स्त्री के पति के बारे में लगगभ निर्मम खुलासे और युवा स्त्री के सिर झुका लेने के बाद तीनों के बीच सन्नाटा पसर गया। सभी एक-दूसरे की ओर देखने से बच रहे थे। युवा स्त्री ने इस सन्नाटे को तोड़ने और अपनी झुकी हुई गर्दन को उठाने के लिए फिर से अपनी बात रखी,'अति महत्वाकांक्षा कभी-कभी बहुत खतरनाक होती है। राजनीति में तो और भी ज्यादा। वह व्यक्ति राजनीति में आक्रामकता की और स्त्रियों के समक्ष विनम्रता की सीमाएं छू लेने में पारंगत है। राजनीतिक हलकों में और स्त्रियों के अंतरंग जगत में उसे चुंबक कहा जाता है।'

इस पर मनोचिकित्सक ने छोटी-सी टिप्पणी की जिसकी कतई आवश्यकता नहीं थी, 'ओह, तो यह है।'

'सिर्फ यही नहीं है।' कहते हुए अधेड़ स्त्री निराश और दुखी होने की जगह, अचानक बहुत उत्साहित हो गई, 'मत्स्यकन्याओं को देखते ही उसके मुंह से लार का सोता फूट पड़ता है।'

असहाय-सा लग रहा मनोचिकित्सक फिर से उसकी सहेली की ओर देखता है और पैड पर

कुछ नोट करता है। सहेली भी कुछ-कुछ असहाय-सी लगती है। अधेड़ लगने वाली स्त्री फिर से बताने लगती है, 'आपने कभी देखा, कोई अपनी अलग-अलग दिन की लार को कांच के मर्तबान में संभाल कर रखता हो, ताकि उसकी नुमाइश की जा सके? सोचिए।'

'ओह,' डॉक्टर इस तरह कहता है जैसे किसी नतीजे पर पहुंच गया हो, 'ये तो बेशर्मी है।'

अधेड़ स्त्री को वह बेशर्मी याद करते हुए उबकाई-सी आने लगती है। मनोचिकित्सक पूछता है, 'लेकिन नुमाइश क्यों?'

'पता नहीं। इसके पीछे कोई सोचा-समझा इरादा भी हो सकता है।'

डॉक्टर ने सिर खुजाया, 'मैं चाहता था आपके पति भी यहां आएं।... लेकिन लगता नहीं। ...आ पाएंगे?'

'वो नहीं आएगा। मैं चाहती भी नहीं।'

वह उदास हो गई थी। डॉक्टर ने घड़ी देखी। कोई नया मरीज शायद अभी-अभी पहुंचा था। अधेड़ स्त्री ने मनोचिकित्सक के चेहरे को देखा, 'एक बात बताइए, क्या भालू की लार से एंटीवेनम टाइप कुछ नहीं बन सकता? नपुंसक बनाने वाला वैक्सीन?'

मनोचिकित्सक स्तब्ध रह गया। वह जान रहा था कि कभी-कभी वह अचानक ही सटक जाती है। जब वह सटकती है तो आक्रामक होने लगती है। वह बुदबुदाया। मानो उस स्त्री से नहीं, बल्कि अपने आप से पूछ रहा हो कि इतना जहर वह अपने अंदर क्यों पाले हुए है?

वह तल्खजबां हो गई, 'आपके चिकित्सा विज्ञान की भाषा में गुस्से को जहर कहते हैं?'

मनोचिकित्सक घिघियाने लगा। वह आक्रामक लगने लगी। हाथ हिला-हिलाकर बोलने लग गई, 'फर्ज कीजिए, आपकी पत्नी अपने प्रेमियों के बारे में आपसे बात करे...।'

उसकी ऊंची आवाज सुन कर डॉक्टर के दोनों सहयोगी फिर से कमरे में दाखिल हुए। पत्नी के प्रेमियों की बात करते ही डॉक्टर उखड़ गया था। अपनी पत्नी का कोई एक भी प्रेम प्रसंग वह नहीं जानता था। पर उसे अपनी पत्नी पर पूरा भरोसा था।

'घबराइए नहीं,' अपने गुस्से को काबू करते हुए उसने आहिस्ता से कहा, 'मुझे आपकी पत्नी के बारे में ऐसी कोई जानकारी नहीं है। केवल कल्पना करने को कह रही हूं। ...मान लीजिए कि वो विस्तार से बिस्तर का वर्णन करे.. तो आपको गुस्सा तो आएगा? उसे हम आपके अंदर का जहर कहेंगे?'

मनोचिकित्सक ने बड़ी मुश्किल से खुद को संभाला। उसके सहयोगी बाहर जा चुके थे। झुलसे बालों वाली उसके चेहरे पर आ-जा रहे भावों को पढ़ रही थी। अचानक ही वह फिर से फट पड़ी, 'गुस्सा क्या होता है यह आप नहीं जान सकते, क्योंकि आपके साथ सब कुछ ठीक ठाक है लेकिन मेरा बस चले तो, मैं ...।'

एक सहयोगी ने दरवाजे की दरार से अंदर झांका।

'आप क्या...?' डॉक्टर ने पूछा।

'मैं उसका...।'

'क्या?'

वह अपनी दो उंगलियां खोलकर कैंची का निशान बनाती है और झटके से दोनों उंगलियों को

मिला देती है- खचाक।

'क्या काटा?' डॉक्टर घबरा कर पूछता है।

वह जवाब देने की जगह भौंहें चढ़ाकर हवा में देखने लगती है जैसे रूठ गई हो। डॉक्टर प्रश्न भरी निगाहों से युवा स्त्री की ओर देखता है। फिर जल्दी से कुछ नोट करता है। युवा स्त्री मुंह फेर लेती है और छत की ओर देखने लगती है, जहां सफेदी के बीच लटके पंखे के अलावा कुछ नहीं है। डॉक्टर की घबराहट बढ़ने लगी। उसकी कनपटियां उसके कानों में सांय-सांय बजने लगी थीं। मरीजों की हालत देखकर वह कभी इमोशनल नहीं होता बल्कि कई बार बातचीत में रस लेने लगता है। उन्हें बेकाबू होते देख वह घबरा जाता है इसीलिए वह अपनी मेज पर पेपरवेट या ऐसी कोई भारी चीज नहीं रखता। कांच का सामान या धारदार वस्तुएं उसके पूरे कमरे में कहीं नहीं मिलेंगी।

वह उठ खड़ा हुआ और अपना मुंह युवा स्त्री के कान के पास ले गया। युवा स्त्री घबरा जाती है हालांकि विश्वास नहीं होता कि डॉक्टर खुल्लमखुल्ला कोई बेहयाई करेगा। वह चेहरा पीछे हटाने की कोशिश करती है। डॉक्टर बुदबुदाता है, 'कोई धारदार या नुकीली चीज इनके हाथ नहीं पड़नी चाहिए। चाकू, कैंची, पेंचकस वगैरह-वगैरह।'

वह अंगड़ाई ले रही अधेड़ स्त्री की ओर देखते हुए कहती है, 'ये तो उस आदमी के मुकाबले जरा भी खतरनाक नहीं हैं। कुछ लोग धारदार चीजों के बगैर नुकसान पहुंचा देते हैं।'

'ये खुद को नुकसान न पहुंचाएं इसलिए कह रहा हूं।' डॉक्टर धीरे-से बोला। युवती ने बताया कि वह उसका आशय समझ गई। वह तो केवल यह बताना चाहती है कि हिंसा हथियारों और औजारों के बिना भी हो सकती है।

मनोचिकित्सक के अंदर सिगरेट की तलब और पानी की प्यास हूक की तरह एक साथ उठी। वह मरीज के रुख्सत होने से पहले ही बाहर निकलने को उतावला हो गया।

●

टाइम बम

राकेश कुमार सिंह

बवेला एक बुत को लेकर शुरू हुआ था।

मुख्य शहर के उपनगर के सीमांत पर खड़ा था वह बुत जिसका अपमान कर दिया गया था। बुत के गले से फटे-पुराने जूतों की माला डाल दी गई थी। जिस चौरस चबूतरे पर वह बुत स्थापित था उस पर कुछ अस्थियां बिखेर दी गई थीं।

शहर के बुद्धिजीवियों और चिंतनशील लोगों का विश्वास था कि यह इलाके के उन मनचले छोकरों की धृष्टता है जो चबूतरे के एक हिस्से पर चॉक से विकेट पूर कर क्रिकेट खेला करते हैं; जबकि कुछ तीखे तेवर वाले लोग इसे असामाजिक तत्वों की शरारती कारस्तानी मान रहे थे। कुछ भीरू लोग तो इसे अशनि-संकेत की संज्ञा दे रहे थे.... किसी अशुभ या संभावित भूकंप-तूफान का संकेत!

पहले यह स्थान मुख्य शहर से सात किलोमीटर परे, वनक्षेत्र था। पसरते शहर के सुरसा की भांति फैलते जाते मुंह ने वन-क्षेत्रों को चबा-निगल लिया था। संरक्षित वन-क्षेत्र तक ईंट-गारे के अवैध कंक्रीटारण्य में तब्दील होता गया था।

पर्यावरण पर स्यापा करती-छाती कूटती संस्थाओं की चिल्ल-पों शांत रखने हेतु वन के बोनसाईकरण का निर्णय लिया गया था। वहां खड़े उस बुत के चारों ओर लगभग आधे वर्गमील भूमि पर कंटीले तार की बाड़ लगाकर जमीन को पार्क बनाने हेतु अधिग्रहित कर लिया गया था।

अब इस सुरक्षित क्षेत्र के मध्य चबूतरे पर स्थापित वह प्रतिमा किसकी थी और कब से वहां उपस्थित थी इसका कोई निश्चित, पुख्ता, प्रामाणिक और ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध ही नहीं. ...। यह प्रतिमा प्राचीन भी हो सकती थी, मध्ययुगीन भी, मुगलकालीन भी और ब्रिटिशकालीन भी।

वहां के आदि निवासी, जो मूर्ति के बारे में कोई सिक्केबंद जानकारी दे सकते थे, अब मलीन इलाके की झुग्गी-झोपड़ी में दमे-टी.बी. से ग्रस्त- बेरोजगारी- भूख से त्रस्त दम तोड़ चुके थे।

चबूतरे के निकट ईद के रोज मेला लगता था। चबूतरा इमामबाड़े के रूप में भी इस्तेमाल कर लिया जाता था। होली-दशहरा मिलन के दिनों में चबूतरे पर फूल-गुलाल-बेलपत्र चढ़ाकर मन्नतें भी मांगी जाती थीं। कुल मिलाकर यह स्थल धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक समरसता का प्रतीक था।

धूप की तपन, हवा के अपरदन, बारिश के थपेड़ों, शीत की सिकुड़न और किरकिटिया छोरों की छेड़छाड़ से वह बुत काफी टूट-फूट चुका था।

मूर्ति का चेहरा इतना भग्न था कि पहचान तो क्या, लिंग-निर्धारण तक असंभव था। अलबत्ता बुत की देह पर कोटनुमा लिबास था। कोहनियों के आगे टूटे बाएं हाथ की ठूंठ, बांह पर, एक बाजूबंद सा उकेरा हुआ था। दायां हाथ तो कंधे से ही गायब था। पैरों में राजस्थानी जूतियां थी, पर ऐसी जूतियां तो स्त्री-पुरुष, दोनों के प्रयोग में आती हैं।

... नीचे घाघरे जैसा घेरदार कोट धारण किए वह प्रतिमा एक विचित्र पशुनुमा आकृति पर खड़ी थी। सवारी की गर्दन के ऊपर का हिस्सा भी नदारद था। कबंध की गर्दन पर अयाल (बाल) नहीं थे अतः शेर होने की संभावना नहीं थी। पूंछ की ठूंठ पतली थी अतः घोड़ा होने की संभावना भी शून्य फीसदी थी। सवारी के कदम तले, फर्श में जड़ी, वक्त के दबाव तले घिसी-पिसी, संगमरमर की पट्टिका पर लिखी इबारत पुरातत्ववेत्ताओं की प्रतीक्षा करती कब की मिट-मर चुकी थी।

चबूतरे, मूर्ति या उसकी सवारी की बाबत इतने तफसील से बताने की न तो जरूरत थी; न ही कभी प्रतिमा के इतने गहन निरीक्षण की आवश्यकता ही पड़ती, यदि उस बुत को लेकर यह बखेड़ा न खड़ा हुआ होता।

कभी किसी बखेड़े की आशंका थी भी नहीं पर घटनीय हो या अघटनीय, कभी न कभी तो पहली बार ही घटित होता है। हर चीज की शुरुआत कभी न कभी तो 'पहली बार' से ही होती है। जब कोई चीज पहली बार होती है तो उसमें एक अजीब-सा रोमांच होता है। एक अनूठी सनसनी का अनुभव होता है।

स्थानीय छुटभैये नेता किस्म के छोकरों के लिए यह रोमांचक सनसनी एक अभिनव उत्तेजना वाला अनुभव था। लिहाजा उन्होंने स्थानीय गतिविधियों में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराई। बोलने की आजादी का लाभ उठाते हुए धड़ाधड़ बयान जारी करने लगे।

म्यूनिसिपैलिटी से लेकर लोकसभा तक के चुनाव लोकतंत्र की ओट में येन-केन प्रकारेण जितवा डालने में माहिर एक युवा नेता का बयान आया....

'यह हिंदू-समाज की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचाने का कुत्सित प्रयास है। विदित है कि यहां होली-दशहरे में पूजा-अर्चना होती है। कुछ असामाजिक तत्वों ने हमारी सर्वधर्म समभाव की गंगा-जमुनी संस्कृति की अक्षुण्णता पर घृणित प्रहार करने हेतु यह सुनियोजित षडयंत्र रचा है।'

दूसरे गुट के एक दादा टाइप नेता ने नहले पर दहला जड़ा।

'यह महज कोई चबूतरा नहीं बल्कि एक कब्र है जिस पर मुजस्समा बहुत बाद में तामीर किया गया है। यह मुगलिया सल्तनत के तर्जे-तामीर का बेहतरीन नमूना है। यहां ईद का मेला लगता है, ताजिए उठते हैं। इसकी तौहीन हमारे मजहबी अकीदे को मजरूह करने की बेहूदा हरकत है। यह दानिस्ता साजिश नाकाबिल-ए-बर्दाश्त है।'

एक जेंटलमैन ने टिप्पणी की थी....

'येस, दिस इज अ ग्रेव, बट, ऑफ ए क्रिश्चियन सेंट। यह घटना अल्पसंख्यक ईसाई समुदाय की धार्मिक भावनाओं पर एक मर्मांतक आघात है। हम आहत हैं पर ईश्वर उन्हें क्षमा करें जो यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।'

एक अन्य गुट के युवा छात्र नेता ने भी अपने पत्ते खोलते हुए कहा, 'यह प्रतिमा एक क्रांतिकारी आदिवासी योद्धा की है जिसने गदर के समय फिरंगियों से लोहा लेते हुए वीरगति पाई थी। इसका

अपमान समस्त दलित-आदिवासी जन का अपमान है। सामंती शक्तियों द्वारा संचालित इस व्यवस्था में जब हमारे महान शहीद-स्मारक की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं तो हम हाड़-मांस के मनुष्यों की सुरक्षा एक बड़ा सवाल है।'

ये चारों बयान एक ही दिन शहर के एक चार-पेजी, दैनिक 'तोप' में छपे जो शहर की एक बंद गली के आखिरी मकान में छपता था और नुक्कड़ तक पहुंचते-पहुंचते खत्म हो जाता था।... पर अखबार तो फिर अखबार ही होता है। लोकतंत्र का चौथा पाया होता है।

'तोप' के लिए यह घटना महज एक बिकाऊ मसाला थी जिसने उसका प्रसार दस गुणा बढ़ा दिया था परंतु 'तोप' ने चींटी मारने हेतु जो तोप दागी थी उसकी गूंज राजधानी तक जा पहुंची थी।

एक स्कैंडल शीट दैनिक 'तोप' द्वारा आसमान में उछाली गई इस 'सेन्सेशनल स्टोरी' के गुब्बारे को राज्य के अखबारों-चैनलों ने तेजी से लपक लिया था। अखबारों के फ्रंट पेज पर सुर्खियां थीं और चैनलों पर बहस शुरू हो गई थी... 'नगर में तनाव। शहर की स्थिति भी विस्फोटक! दंगे की आशंका!'

अन्य राज्यों में दरपेश ऐसी घटनाओं और इसके बाद बरपा हुए कहर-हंगामें से सबक लेने वाले नगर के बुद्धिजीवियों और गणमान्य प्रतिष्ठितों ने विवेक से काम लेने का निर्णय किया। अपीलें जारी की गईं, शांति-सद्भाव बनाए रखने की विनती की गई पर अलाव तो जल चुकी थी।

सुलगते अलाव की आंच राजधानी तक जा पहुंची थी। मौके भुनाने वाले, तवे चढ़ाने में सिद्धहस्त और पराई आग में रोटियां सेंकने में पटु लोग तैयारियों में जुट गए थे। इस सुलगते अलाव में गुपचुप फूंक मारने की प्रक्रिया तेज की जाने लगी थी।

जहां मुख्य घटना घटित हुई थी वहां तो यह किस्सा अब चाय-पान के ठियों पर चर्चा का विषय भर बनकर खत्म होने लगी थी, अलबत्ता मुख्य शहर का सूरज हर दिन कुछ ज्यादा सनसनीखेज रंग के साथ उगने लगा था। नगर में अब सांप्रदायिकता विरोधी नारे लग रहे थे। पर्यावरण के नष्ट होने और प्रशासन की निष्क्रियता से क्षुब्ध लोग विधानसभा के समक्ष धरने-प्रदर्शन कर रहे थे। अपमानित प्रतिमा के समक्ष उपवास और चिपको आंदोलन के कार्यक्रम तय किए जाने लगे थे।

आखिर प्रशासन के कानों पर जूं तब रेंगी थी जब इस रोजमर्रा की किलकिल से कुछ अलग प्रकार की एक नई घटना घटी।

एक सुबह मुख्य नगर की दीवारें-खंभे-शटर आतंकित करने वाले पोस्टरों से अटे दिख पड़े थे। पोस्टरों की मिली-जुली इबारतें कुछ इस प्रकार थी...' हम प्रशासन को कुंभकर्णी निद्रा से जगाना चाहते हैं। इतिहास साक्षी है कि अंग्रेजी सरकार के कानों की मैल पिघलाने हेतु तब असेंबली में बम फोड़े गए थे। हमने भी विवश होकर मुख्य नगर के सात महत्वपूर्ण जगहों पर शक्तिशाली टाइम-बम लगा दिए हैं, ताकि उनके धमाकों से बहरी व्यवस्था के कानों की मैल साफ हो सके। हमने यह कदम अत्यंत लाचारी और मजबूरी...।'

मजमून काफी लंबा था। पोस्टरों के नीचे कोने में संदेश जारी करने वाली संस्था का नाम लिखा था- 'प्रतिमा सुरक्षा समिति।'

यही संदेश अंग्रेजी में भी 'वी वांट टू अवेक द एडमिनिस्ट्रेशन... वी हैव बिन कंपेल्ड फॉर दिस ऐक्शन।'

स्थिति चिंतानक होने लगी थी। पुलिस सक्रिय हो उठी थी पर 'आइडल प्रोटेक्शन कमिटी' का कोई अता-पता नहीं मिल सका था। कुकुरमुत्ते की भांति रातों-रात उग आई इस संस्था का न तो कोई कार्यालय था न कोई संचालक। प्रेस फोटोग्राफर और पत्रकार खोजी अभियान में पिले पड़े थे।

उन कथित सात बमों की पड़ताल युद्धस्तर पर हो रही थी ताकि वक्त रहते उनका सुराग पा कर उन्हें निष्क्रिय किया जा सके। कूड़े के ढेर में, नालियों-सीवरों में, कचरा-पेटियों में..... जमीन-आसमान एक किए जा रहे थे। कुंओं तक में जाल डाले जा रहे थे पर इतने बड़े शहर में सात बमों की तलाश किसी सघनकेशी के सिर में सात जुओं की तलाश के समान थी।

रेडियो, टेलीविजनों, अखबारों और लाउडस्पीकर लगाए हनहनाती जीपों से जन-सामान्य को चेतावनी दी जा रही थी कि यदि कहीं कोई लावारिस पड़ा थैला, बैग, रेडियो, टेपरिकार्डर, पैकेट या बोरा दिखाई पड़े तो सावधान....। उसे हाथ न लगाएं कृपया सौ नंबर पर डायल कर अविलंब पुलिस को सूचित करें।

नगर का हर थाना बहुत व्यस्त हो गया था। हर दूसरे मिनट किसी बस-पड़ाव से, चौथे मिनट किसी मॉल से, और पांचवें मिनट रेलवे स्टेशन से लावारिस पड़ी चीजों की सूचनाएं पुलिस कंट्रोल रू में पहुंचने लगी थीं। पुलिस के प्रशिक्षित श्वान-दल और गश्ती वाहन बौराए कुत्तों की भांति दनदनाते भाग रहे थे। टोही कुत्तों के फड़कते नथुने बारूद की गंध पाने को फक्क-फक्क कर रहे थे परंतु तमाम भाग-दौड़ का नतीजा था... सिफर।

शहर के सात महत्वपूर्ण व संवेदनशील स्थलों को चिह्नित कर लिया गया था। बड़े मंदिर की हर दीवार खंगाली गई थी। बड़ी मस्जिद का हर कोना-खुदरा झाड़ा गया था। गिरिजाघर की ईंट-ईंट टटोली गई थी। विधान-सभा, परिषद, अनुसंधान केंद्र और उच्च न्यायालय के चप्पे-चप्पे पर 'मेटल डिटेक्टर' फिराए गए थे। बमों की सघन तलाश जारी थी पर इन व्यापक कार्रवाइयों का नतीजा ढाक के तीन पात की भांति मुंह चिढ़ाता रहा था।

'रेड-अलर्ट' घोषित कर दिया गया था। शहर के जरायमपेशा लोग गिरफ्तार किए जा रहे थे-चेक-नाकों पर नगर में आवगमन करते वाहनों को खंगाला जा रहा था। भूसे के ढेर में सूईयों की भांति छाने जा रहे थे वे कथित सात बम पर बम थे कि मिलते ही नहीं थे।

शहर के कुछ प्रतिष्ठित लोगों का खयाल था कि यह पड़ोसी देश की खुफिया संस्था के बहकावे में आए कुछ मुस्लिम उग्रवादियों का कार्य है। कुछ बुद्धिजीवियों को इसमें हिंदू कट्टरपंथियों का हाथ नजर आ रहा था। शहर के कुछ उदारवादी हिंदू और जहीन मुसलमानों ने इस संशय और भ्रम के निवारण हेतु बीच-बचाव की पहल की तो उन पर अपने समाज-कौम से गद्दारी के आरोप लगने लगे थे। उन्हें जयचंद या मीरजाफर की संज्ञा तथा कायर, नपुंसक और दुश्मनों के एजेंट की उपाधियां दी जाने लगी थीं।

कयास से चर्चा, चर्चा से बहस, बहस से तू-तड़ाक और फिर बात हाथापाई तक जा पहुंची थी। नतीजा, झगड़े। झगड़ों के बाद बिगड़ती स्थिति कुछ और विस्फोटक होने की उम्मीद परवान चढ़ी तो लूटपाट करने वाले असामाजिक तत्वों को हालात काफी उम्मीद आफजाह लगने लगे थे।

सांप्रदायिकता का सीधा अर्थ हिंदू-मुस्लिम तनाव से लगा लिए जाने की एक रूढ़ परंपरा रही है। ऐसे में एक दूसरे के पवित्र स्थलों पर अपवित्र पदार्थ फेंकने के किससे आम हैं पर नगर की

स्थिति यह थी कि हिंदू समाज में भी कई वर्ण और मुस्लिम समुदाय में भी कई वर्ग विभाजन होने लगे थे। एक ही धर्म-मजहब के लोगों के बीच फूट और वैमनस्य पैदा करने हेतु नए-नए फार्मूले इजाद किए जा रहे थे। धार्मिक सांप्रदायिकता को जातीय सांप्रदायिकता का बाना पहनाने के प्रजातांत्रिक यंत्र विकसित किए जा रहे थे। ऐसे बांध निर्मित किए जा रहे थे जिनसे वर्ग-विशेष की जनधारा से अगले मौसम में वोटों की फसल सींची जा सके।

प्रजातंत्र की भेंड को घेरने के बाड़े.... आजादी के बाद अविष्कृत नवीनतम नुस्खे... देश के हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, आसमिया, आदिवासी आदि-आदि.... सभी अचानक खतरे की जद में आ गए थे। खतरा... यानी भारतीय राजनीति का आधार! खतरा.... याने वोटों की सफल काटने का हंसिया।

मुख्य शहर और फिर पड़ोसी शहरों में दावाग्नि की भांति पसरती अफवाहें तनाव और संदेह-भय के निवारण हेतु राष्ट्रस्तरीय हलचलें प्रारंभ हो चुकी थीं। जन प्रतिनिधियों के लिए यह ऐसी कठिन परीक्षा की घड़ी थी जिसमें हर राजनैतिक दल एक दूजे से अधिक सक्रिय और सौ टका खरा उतरने को कृतसंकल्प हो चुका था। हरेक को घटना-स्थल की, मुख्य नगर की, फिर राज्य की और अंततः राष्ट्र की एक-दूसरे से ज्यादा फिक्र होने लगी थी। लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के हिमायती तो सभी थे पर इन शब्दों की बाबत उनकी धारणाओं और अंतर्विरोधों के कारण आम सहमति बन ही नहीं पा रही थी।

विभिन्न दलों से जुड़े शहर के छुटभैये नेता, बूथ-कैप्चर कर पोर्टफोलियो हथियाने के स्वप्न संजोने वाले स्वप्न योद्धा और विश्वविद्यालय के युवा-तुर्क इस तनाव और विवाद के कारणों के लिए एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रहे थे। पार्टी कार्यालयों से उल्लूओं की बीट झाड़ी-साफ की जा रही थी। अगले-पिछले तमाम विवाद सड़ी-फूली लाशों की भांति सतह पर उतारने लगे थे। सड़कों पर बहने लगा था उनके भीतर जमी सारी घृणा, कुंठा और वैमनस्य का मवाद...!

एक वर्ग दूसरे को अपमानित करने की खीर पका रहा था। दूसरो तीसरे को मजा चखाने की योजना बना रहा था। तीसरा दल पहले से अपने पिछले अपमान का प्रतिशोध लेने को कृतसंकल्प था। अब महात्मा गांधी, नंबूदरीपाद, नेहरू, अजय घोष, लोहिया, अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण, सुभाष चंद्र बोस, अमृत पाल डांगे.... आदि-आदि के अनुयायी, हर कोई किसी अन्य से बदला चुकाने के खाके खींच रहा था, जिसमें रंग भरने हेतु प्रतिद्वंद्वी के लहू की दरकार थी।

शहर में तपते बवंडरों की उठान देखते हुए, समय रहते सतर्कता बरती गई थी। कर्फ्यू लगा दिया गया था। सन्नाटा व्याप गया था शहर में.... तूफान के पूर्व वाली भयावह शांति...।

आखिरकार सन्नाटा भंग हुआ था। विभिन्न गुटों-दलों के उग्र हथियारबंद कार्यकर्ता अपने-अपने झंड़ों-डंडों के साथ सड़कों पर निकल पड़े थे। पिछली दीपावली की बची आतिशबाजियों को अगली दीपावली तक बचा रखने के धर्म और संयम से हीन.... उच्छृंखल छोकरों की भांति एक दूसरे पर लांछन.... गालियों... मां-बहन-बेटियों की छीछालेदर.... पथराव... हाथापाई! कहीं-कहीं से भीषण घमासान की खबरें भी मिलने लगी थी और.... इसी दौरान फट पड़े थे वे कथित सातों बम!

एक साथ। सात चौराहों पर। सात टाइम बमों के धमाकों ने शहर को दहला दिया थ। व्यवस्था की चिंदी-चिंदी उड़ गई थी। भौंचक्की व्यवस्था के पहरूए किंकर्तव्यविमूढ़ थे। केंद्र से राज्य, राज्य

से जिला मुख्यालय और जिला से शहरों तक टेलीफोन के तार घनघनाने लगे थे। जलते मकान की अलग-बगल की झोपड़ियों को बचाने की कोशिश की जा रही थी पर स्थिति अनियंत्रित होती जा रही थी।

मुख्य शहर के सात चौराहों पर खड़ी सात महापुरुषों की प्रतिमाएं एक ही रात में कोलतार पोत-चुपड़ दी गई थी। गले में जूतों के हार डाल दिए गए थे। कुछ के अंग-भंग की भी खबरें हवा में थीं। ये सातों महाशक्तिशाली टाइम-बम एक साथ ही फूट पड़े थे। हजारों मेगावाट की शक्ति वाले टाइम-बम। धमाके, संघर्ष, मारपीट, चाकू-छूरे.... आग्नेयास्त्रों के धमाके! गली-गली महाभारत। रक्तरंजित हो उठी थीं सड़कें। नालियां, रक्त के परनाले।

उन सात बमों के धमाकों से दहशतजदा देश लाक्षागृह की भांति धू-धू जलते उस शहर के नवीनतम घटनाक्रम की जानकारी हेतु टेलीविजन से आँखें चिपकाए था, रेडियो से कान जोड़े था। सोशल मीडिया आग में घी डालने का काम कर रहे थे.... निरंतर।

आखिर कौन सा ऐसा शहर था जहां वैसे दो-चार टाइम बम चौक-चौराहे-पार्क में स्थापित नहीं थे? यह जुदा बात थी कि उन बमों की सुईयां किसी दिन- तारीख-समय पर फटने को फिक्स थी या नहीं.... यह कोई नहीं जानता था। उस जलते शहर की एक चिंगारी.... और भक्क से उड़ जाने वाला था कोई एक और शहर।

कमाल यह था कि इतने हंगामे-हाहाकार के बीच उस शहर के सीमांत पर खड़ी वह भग्न प्रतिमा सुरक्षित-सलामत खड़ी थी जिसके लिए इतना कुछ हो रहा था, जो कि फट पड़े सात कथित बमों का मास्टर-कंट्रोल थी।

उस शहर....जी? शहर का नाम? छोड़िए भी। नाम से क्या फर्क पड़ता है? यह आजाद हिंदोस्तान का कोई भी शहर हो सकता है। कोलकाता, चेन्नई, मुंबई, दिल्ली या झुमरीतलैया। आप तो बस आम खाइए, पेड़ क्यों गिनते हैं? न पेड़ खत्म होंगे, न आम?

यह कहानी किसी भी शहर की हो सकती है। हरेक शख्स इस कथा में अपना क्षेपक जोड़ने को स्वतंत्र है। शायद किसी के क्षेपक से यह रहस्य खुल सके कि प्रतिमाओं के गले में जूतों के हार कौन डाल जाता है। चबूतरों पर अस्थियां कौन बिखेर जाता है? महापुरुषों की प्रतिमाओं पर कोलतार कौन लगता है या टाइम-बम कौन लगाता है।

इन सवालों के उत्तर शायद हर व्यक्ति के पास हैं पर यह कोई मुकर जाता है कि उसने तो कुछ देखा ही नहीं। वह तो कुछ जानता ही नहीं। डर है, क्योंकि शब्दों के मायने संदर्भों के मुताबिक निकालने की हरेक को आजादी है। पूरी आजादी है। लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है मान्यवर।

●

समाधि लेख

राकेश मिश्र

संपत्ति के नाम पर, तीन नीम के पेड़ थे जो बाबू राजेंद्र प्रसाद के हिस्से आए थे। हिस्से आए ये कहना शायद गलत होगा बल्कि उन्हें दिए गए थे। हिस्सा तो तब होता जब कोई बांट-बखरा होता, पर मुकदमे की गुंजाइश बनती, पंचायत बैठती या गांव में बड़े-बुजुर्ग बीच-बचाव कर किसी मान्य निर्णय पर पहुंचने की कोशिश करते। राजेंद्र प्रसाद के मामले में भी यह सब हुआ, लेकिन उनके चाचाओं के बीच। दोनों चाचाओं के बीच संपत्ति में बांट को लेकर चाहे जितनी मार-फौजदारी हो, इस बात पर जबरदस्त एका थी कि राजेंद्र प्रसाद का मौरूसी में कोई हक नहीं बनता है। हालांकि क्यों नहीं बनता, पर दोनों के अपने-अपने तर्क और दावे थे और उस पर दोनों में रार-तकरार भी था। और अपने कई अपने आपको छला हुआ भी महसूस करते थे। दरअसल राजेंद्र प्रसाद के पिताजी उनमें चाचाओं में बड़े भाई थे। अपने इंतजाम के बाद सौतेले बड़े भाई हो गए थे। यह हकीकत उनके जीते जी किसी के ध्यान में नहीं था बल्कि यदि कोई भूले से भी इसका जिक्र भर कर देता तो दोनों भाई मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे लेकिन उनके मरते ही जैसे उनकी अच्छाईयों, अपने छोटे भाइयों के लिए उनका समर्पण उनका त्याग सब कुछ मर गया था, और रह गया था सिर्फ यह नंगा तथ्य कि वे सौतेले थे। हालांकि सिर्फ सौतेला होने से राजेंद्र को संपत्ति से बेदखल नहीं किया जा सकता था बल्कि इस तथ्य से तो उनको दोनों भाइयों के बराबर अकेले ही हिस्सेदारी मिलती थी लेकिन इस तथ्य से परे दोनों चाचाओं के पास अपनी-अपनी कहानियां थीं और इन कहानियों के हिसाब से राजेंद्र के पिताजी ने अपने हिस्से भी जमीन अपने दोनों छोटे भाइयों के नाम लिख दी थी जिससे वे अपनी पत्नी और बाद में अपना इलाज करवा पाए। इन कहानियों में बहुत झोल थे, बहुत दरारें थीं लेकिन राजेंद्र ने कभी इन दरारों को चौड़ा करने की कोशिश नहीं की। इस मामले में वे अपने पिता के ही खून थे और गांव वालों के कई बार उकसाने, आग लगाने और चढ़ाने के बावजूद उन्होंने आँख मूंदकर अपने चाचाओं की कहानियों पर भरोसा किया। वे अपने उन्हें गांव वालों से ही लड़ते रहे कि जिन चाचाओं ने उनके पिता के गुजरने के बाद पाल-पोस कर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया अपने पैरों पर खड़ा होने के काबिल बनाया उन्हीं चाचाओं से वे लोग लड़वाने पर तुले थे हालांकि राजेंद्र का यह दावा कई अतिशयोक्तियों से भरा था। पाले-पोसे तो सिर्फ वे अपने पिताजी के समय ही गये थे, बल्कि गांव भर की पढ़ाई भी उन्होंने ही अपने जीते-जी करवा दी थी। उनके बाद तो वे लगभग टुअर ही हो गये थे। चाचाओं के घर में उनको खाना-कपड़ा यदि मिलता भी था तो सिर्फ

इस लिहाज से कि दूसरों के दरवाजे पर खाने की चर्चा से उनके खानदान की नाक कटती थी। और इस भरण-पोषण की जिम्मेवारी के एवज में उनसे जो हाड़-तोड़ मेहनत कराई जाती थी उसकी चर्चा ही बेमानी थी। ये तो लगभग तय ही हो चुका था कि उनकी बाकी जिंदगी अपने चाचाओं के बंधुआ मजदूर के रूप में ही बीतनी है लेकिन उनके एक कुटैव ने उनको बचा लिया। दरअसल उन्हें नाच देखने की बहुत तेज खुड़क थी। गांव के दस-बीस कोस के दायरे में भी कोई नाच हो तो राजेंद्र प्रसाद की उपस्थिति वहां अपरिहार्य थी। अपनी इस आदत के लिए उन्होंने कितनी मार खाई, कितनी गालियां सुनीं, चाचियों के ताने झेले, अपने छोटे चचेरे भाई बहनों की हिकारत सही लेकिन यह आदत उनसे नहीं छुड़वाई जा सकी बल्कि दिन-ब-दिन उनकी यह आदत हवस की तरह बढ़ने लगी। वे न सिर्फ नाच देखने जाने लगे बल्कि स्टेज पर छोटा-मोटा काम भी करने लगे। नाच में तो उनके लिए कुछ खास नहीं था लेकिन कोई नाटक-नौटंकी हो तो उनके काम का जलवा बढ़ जाता। वे नाटक-नौटंकी वालों का कोई भी काम करने को एक पैर पर तैयार रहते। पर्दा बांधने, स्टेज तैयार करने, लाइट पकड़ने, मेक-अप में मदद करने, माइक पर नाटक का प्रचार करने जैसे मुख्य काम से लेकर कलाकारों के लिए बाजार से सौदा-सुलुफ लाने, उनके लिए कुएं से पानी भर देने, पेट्रोमेक्स में पंप भरने जैसे टहलुआ कामों के लिए भी उनका उत्साह देखने बनता था। आखिर अपने 'कुटैव' के प्रति इसी उत्साह ने उन्हें अपने चाचाओं की गुलामगिरी से मुक्त किया और एक नाटक कंपनी के साथ भागकर उन्होंने अपने जीवन की नई दिशा और राह खोजने की कोशिश की। हालांकि नाटक कंपनी के साथ चले जाने में 'भागने' जैसा कुछ नहीं था, लेकिन उनमें चाचाओं ने उनके चले जाने को 'भागने' जैसे बदनाम जुर्म जैसी क्रिया में बदलकर एक साथ ही अपने जिम्मेवार होने का स्वांग रचने और उनमें वापसी के रास्ते बंद करने की एक साथ कोशिश की। अपनी इन कोशिशों में वे बहुत हद तक सफल भी हुए। बहुत दिनों तक राजेंद्र प्रसाद का नाम गांव के बच्चों के बीच गाली की तरह लिया जाता था। किसी बच्चे में नाच, नाटक के प्रति थोड़ी भी उत्सुकता देखकर साला, घर में राजेंद्र पैदा हो गया है, जैसा वाक्य 'आम-फहम' इस्तेमाल होता रहा लेकिन लगभग, लगभग दस वर्षों बाद जब राजेंद्र अचानक अपने गांव लौटे, तो उनका नाम 'गाली' नहीं बल्कि कुछ-कुछ गर्व करने लायक हो गया था। दरअसल वे अकेले नहीं आए थे, बल्कि एक फिल्म बनाने की पूरी यूनिट उनके साथ आई थी। तब लोगों को पता चला कि ये नाटक-नौटंकी सिर्फ गरियाने की चीज नहीं है, बल्कि यदि यही आप सच्ची श्रद्धा और लगन से किया जाए, तो गांव का लतमरूआ 'राजेंद्र भी सूट-बूट पहनकर विदेशी जैसे दिखते लोगों के बीच 'राजेंद्र बाबू' कहला सकता है। लोगों को यह जानकर तो लगभग गश ही आ गया कि इसी नाटक-नौटंकी में राजेंद्र बाबू बी.ए., एम.ए. पास हो चुके हैं और अब पी-एच.डी. करने वाले हैं। मतलब, जो बात पहले अभी ताना मारने जैसे अंदाज में कही जाती थी- बड़ा डॉ. राजेंद्र प्रसाद बन रहे हो, वह अब हकीकत बनने वाली थी।

हालांकि उस फिल्म की यूनिट में कोई हीरो-हिरोइन जैसा तामझाम नहीं था वह कोई डाक्यूड्रामा जैसा ही प्रोजेक्ट था, लेकिन पांच-सात दिनों में ही अपने शिड्यूल में वह राजेंद्र प्रसाद के प्रति गांव वालों का नजरिया और नज़र दोनों बदलने के लिए पर्याप्त था। इतना पर्याप्त कि शिड्यूल के आखिरी दिन गांव मे सरपंच ने यूनिट ने सम्मान में भोज का आयोजन भी किया और लगे हाथों राजेंद्र प्रसाद का नागरिक अभिनंदन भी कर डाला। जब इस अवसर पर राजेंद्र से भी कुछ कहने को कहा गया

तो उनकी आवाज भर्रा गई आँखें डबडबा आई और वे सिर्फ अपने चाचाओं का गुणगान करके बैठ गए कि आज वे जो कुछ भी हैं अपने इन्हीं चाचाओं की बदौलत हैं। गांव वाले खासकर सरपंच उनके संघर्ष की कहानी सुनने को उत्सुक थे लेकिन राजेंद्र प्रसाद अब इतने समझदार और दुनियादार हो चुके थे कि उन्हें पता था कि यदि अपने संघर्षों का दस प्रतिशत भी उन्होंने बखान कर दिया कि किस तरह उन्होंने रिक्शा चलाया, मेस के बर्तन मांजे, और कभी-कभी भीख भी मांगा, तो फिर से गांव वालों का नजरिया बदलते देर नहीं लगेगी। उन्होंने एक बार किसी कार्यक्रम में 'ओमपुरी' को बोलते सुना था कि उन्होंने भी ढाबे में कप-प्लेट धोए थे, बर्तन मांजे थे, लेकिन ये सब बातें वे 'ओम पुरी' बनने के बाद बता पा रहे थे। आदमी जब बड़ा हो जाता है तो उसके सारे छोटे काम महान और प्रेरणादायी हो जाते हैं। असफल आदमी द्वारा किए गए वही काम हिकारत और जुगुप्सा पैदा करते हैं।

गांव वाले चाहे जितना चढ़ाएं, राजेंद्र प्रसाद इस बात को भली-भांति समझते थे कि अभी अपने संघर्षों के बखान का समय नहीं आया है, इसलिए वे बार-बार अपने संघर्षों में जवाब में अपने पिता के अच्छे कर्मों और अपने चाचाओं के द्वारा दिए गए हौसले और संस्कारों की ही दुहाई देते रहे।

अपने किए गए अन्यायों का ऐसा भला प्रतिदान मिलता देख आखिर उनके चाचाओं को भी रोना आ गया। उन्हें लगा जैसे राजेंद्र के रूप में साक्षात उनके बड़े भाई खड़े हैं, आखिर क्या कुछ नहीं किया था उन्होंने उन दोनों के लिए, और आखिर क्या कुछ नहीं उठा रखा उन दोनों ने भी राजेंद्र को बरबाद कर देने के लिए। अपने अपराध बोध और पाप के भार के नीचे दबे दोनों चाचा लगभग अंकवार में भरकर राजेंद्र को अपने घर ले गए, और उसी रात बड़े चाचा ने ऐलान किया कि घर के दरवाजे से लगे हुए दिन गछिया में तीनों नीम के पेड़ बाबू राजेंद्र प्रसाद की संपत्ति हैं।

अपने चाचा का यह ऐलानिया बयान सुनकर पहले तो राजेंद्र यह समझ ही नहीं पाए कि आखिर वे किस चीज को संपत्ति बता रहे हैं। वे तीनों पेड़ लगभग उनकी उम्र के दुगुने रहे होंगे। पिताजी बताते थे कि उन्होंने अपने लड़कपन में अपने पिता यानी राजेंद्र के दादाजी की स्मृति में ये पेड़ लगाए थे। बचपन से ही राजेंद्र उन पेड़ों को अपने बाप-दादा की तरह ही देखते आए थे। इन्हीं पेड़ों पर छुपकर उन्होंने बीड़ी पीना सीखा था, रात में जब वे दूर-दराज से नाच देखकर लौटते थे तो चाचाओं के डर से यही पेड़ उनका रैनबसेरा होता था। चाचा के खेतों में दिन-रात हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद जब वे रूखा-सूखा खाकर इन पेड़ों के नीचे खाट डालकर सोते थे तो उन्हें मां की गोद जैसी अनुभूति होती। अपनी किस्मत को कोसते हुए अपने बाबू को याद करते हुए, अपनी अम्मा के लिए बिलखते हुए कई रातें उन्होंने इन पेड़ों से लिपटकर काटी थीं। ये पेड़ तो उनमें अपने सगे-संबंधियों से बढ़कर है, बल्कि यूं कहें कि सिर्फ यही पेड़ एक संबंधी हैं। तो फिर ये आज उनकी संपत्ति कैसे हो गए? वे उजबक सा अपने चाचा का मुंह देखने लगे।

बेटा, ये ठीक है कि तुम्हारे पिताजी यानी बड़के भैया तुम्हारे लिए कुछ नहीं जोड़ सके लेकिन हम सब जानते हैं कि ये पेड़ उन्होंने ही लगाए थे, इसलिए उनके वारिस होने के नाते अब तुम ही इन पेड़ों के मालिक हो। छोटे चाचा ने जैसे उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए समझाया।

लेकिन, चाचा, ये पेड़ तो हम लोगों के घर का ही हिस्सा है, आखिर हमारे घर को तो गांव में तिनगछिया घर कहा जाता है, बल्कि ये तीनों पेड़ तो इतने प्रसिद्ध हैं कि दूर-दराज वाले कभी-कभी

अपने गांव को भी तिनगछिया वाला गांव कहते हैं? राजेंद्र प्रसाद की आवाज में अब भी आश्चर्य बरकरार था।

बबुआ, हम तुम्हारे लिए कुछ कर नहीं पाए, लेकिन ये पेड़ अब तुम्हारे ही हैं, तुम जैसा चाहो इनका उपयोग कर लेना। बड़े चाचा ने जैसे अपने सीने से कोई भार उतारते हुए कहा।

दूसरे दिन, जब राजेंद्र प्रसाद गांव से वापस जा रहे थे तो यह भार वाकई उनके सीने पर सवार था। जब नाटक-कंपनी के साथ उन्होंने पहली बार गांव छोड़ा था, तो जैसे उनमें पांवों में पंख थे, उन्हें एकदम यकीन था कि आगे जो कुछ होना-हवाना है, उनके जिम्मेवार सिर्फ उनके हाथ-पैर हैं लेकिन उन पेड़ों को उनकी संपत्ति घोषित कर, उनके चाचाओं ने जैसे उनके पैरों में जंजीर डाल दी। इन पेड़ों से इतना लगाव रखने के बावजूद, इतने दिनों तक उन्हें वाकई उनकी कोई याद नहीं थी, वे भी गांवों की बाकी चीजों की तरह सिर्फ उनकी स्मृति का हिस्सा थे, लेकिन आज जाते समय वे उन पेड़ों को वैसे निहार रहे थे, जैसे अपने बाबू से जाने का आशीर्वाद मांग रहे हों।

शहर आने पर राजेंद्र को अहसास हुआ कि वे पेड़ सिर्फ उसके पैरों की ही नहीं बल्कि उसकी चेतना की भी जंजीर बन चुके हैं। 'संपत्ति' शब्द की तासीर ही शायद ऐसी होती है। जब तक वे सिर्फ पेड़ थे, बहुत आत्मीय और प्रिय होने के बावजूद पेड़ ही थे, लेकिन उनके संपत्ति घोषित होते ही वे खास और अहम वस्तु जैसे हो गए थे, जिसकी खोज-खबर रखनी जरूरी थी और हिफाजत की जिम्मेवारी भी।

अब तक के अपने जीवन संघर्ष में राजेंद्र प्रसाद को जब भी चुनौतियों का सामना करना पड़ा था उन्होंने अपने हाथ-पैरों पर ही यकीन किया था। ज्यादा-से-ज्यादा भाग्य, भगवान, नियति और कभी-कभी लोगों की दयालुता और जरूरत पर भी। लेकिन, अब गाहे-ब-गाहे अपनी परेशानियों के हल के रूप में वे उन नीम के पेड़ों को भी सोचने लगे थे। न सिर्फ सोचने लगे थे बल्कि लोगों से जिक्र भी करने लगे थे कि गांव की संपत्ति बेचकर वे कुछ नया करने की सोच रहे हैं। वैसे, नया करने लायक, उनके पास बहुत अवसर नहीं थे, लेकिन उपलब्ध अवसरों में ही उन्हें इस बात का जबर्दस्त आकर्षण था कि काश, उनके पास अपना कोई नया कैमरा होता। ड्रामा विभाग जिसके वे शोध छात्र होने वाले थे, में कैमरा था जरूर लेकिन वह विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट लोगों द्वारा ही छुआ जाता था। राजेंद्र बाबू की बड़ी हसरत थी कि वे अपना कैमरा लेकर बिलकुल फिल्मकार, फिल्ममेकर की चलें। ऐसा कैमरा, जिससे वे फोटो तो खींच ही सके, वीडियो भी बना सकें, और कभी-कभी यदि उसे ट्राइ पॉड, या स्टैंड पर लगाकर भी यदि काम करने का अवसर मिल जाए तो फिर अब इस जीवन से उन्हें हसरतें ही कितनी रह जानी थीं। अपने कैमरे की योजना और उससे पाली गई हसरतों के लिहाज से मरा से मरा कैमरा भी एक लाख से नीचे का नहीं आता था। भाग्य-भगवान, नियति और अपने हाथ-पैरों की तमाम कोशिशों से राजेंद्र प्रसाद की हैसियत तीस-चालीस हजार तक ही जुगाड़ कर सकने की थी, ऐसे में इन तीन पेड़ों के उनके संपत्ति घोषित हो जाने से, उन्हें एक दम से उस अदृश्य सृष्टिकर्ता और उसके नियंता पर यकीन हो आया कि है.. वह... है, जिसने सबके माथे पर अदृश्य लिखावट से उसकी नियति लिखी है, वही है, जिसके कारण तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, माकइल जैक्सन, पेले, और ओमपुरी पैदा होते हैं। जमाना चाहे, उन्हें कैसी गजालत दे, लेकिन वे अपनी इन्हीं अदृश्य लिखावटों से उभर ही आते हैं।

बस एक संकेत, एक इशारा, एक मौका चाहिए होता है... राजेंद्र प्रसाद को वह इसी तरह, नीम के पेड़ों के रूप में मिलना था, मिल गया।

अपने नियति में इन्हीं इशारों को समझते हुए वे एक सुबह अपने गांव पहुंच ही गए। अपने चाचाओं की फितरत को जानते हुए उन्होंने अपनी तरफ से कोई ढिलाई नहीं बरती थी। सरपंच साहब खुद उनके साथ थे और वह खरीदार भी जो उनके पेड़ों को खरीदने वाला था।

चाचा तो पहले उनका मंतव्य समझ ही नहीं पाए और जब समझे तो जैसे हजार बिच्छुओं ने डंक मारा हो इस तरह तिलमिला उठे- साले, बड़ा अकलमंद बने फिरते हो। बाप-दादा की संपत्ति कोई इस तरह बेचता है? कल तो घर-डीह में, खेत-बखार में हिस्सा मिलेगा तो उसको भी बेच खाओगे? यही संस्कार मिला है तुमको। चाचा अनर्गल सा चिल्लाने लगे। छोटे चाचा भी लगभग उसी सुर में साथ दे रहे थे- अच्छा किया था बड़े भाई साहब ने जो इसके लिए कुछ नहीं छोड़ा था, नहीं तो आज देखते वे भी कि कितना बड़ा कुलबोरन पैदा किया था उन्होंने।

राजेंद्र प्रसाद इन स्थितियों के लिए तैयार होकर आए थे। इसलिए अपने साथ सरपंच को लेकर आए थे। बात बढ़ती देख सरपंच ने समाधान सुझाया कि यदि वे लोग चाहते हैं कि ये नीम के पेड़ न बिके तो पंद्रह हजार प्रति पेड़ के हिसाब से वे राजेंद्र प्रसाद को पैंतालिस हजार का भुगतान कर दें। पेड़ का खरीदार भी इस बात की गवाही दे रहा था कि वह तो साठ हजार तक में खरीदने को तैयार था। सरपंच ने यह भी कहा कि सारे गांव के सामने उन दोनों भाइयों ने कबूला था कि ये पेड़ राजेंद्र प्रसाद की संपत्ति हैं इसलिए अब इस बात से मुकरने का कोई मतलब नहीं। साथ ही थोड़े चेतावनी भरे स्वर में उसने यह भी जोड़ा कि पहले भी इस बच्चे यानी राजेंद्र प्रसाद के साथ बहुत अन्याय हो चुका है, अब वे देखेंगे कि इस बार उसके साथ न्याय हो।

वे नीम के पेड़ बड़े अच्छे थे, घने थे, सायेदार थे। दोनों चाचाओं के बच्चे, फिर उनके बच्चे सब उसी की छाया में खेलकर बड़े हुए थे। चाचियां, उनकी बहुएं, सब अपना ज्यादा समय, उन्हीं के नीचे बितातीं थीं। उसमें झूले डाले जाते थे, ओल्हा पाती खेला जाता था, गाय-गोरू बांधा जाता था, नीम की पत्तियां बुहारकर जलाया जाता था जिससे मक्खी, मच्छर भागते थे। निबौलियां चुनकर खायीं जातीं। छटवाने पर जलावन भी निकल आता था। ये सब कुछ था लेकिन उसके लिए कभी पैसा देना पड़ सकता है, ये बात दोनों चाचा कभी समझ ही नहीं सकते थे। लिहाजा उन्होंने सरपंच के न्याय के जवाब में ऊपर वाले के न्याय की दुहाई दी और राजेंद्र को जो करना है करे के अंदाज में इस प्रकरण से अलग हो गए।

राजेंद्र सब सोच के ही आए थे, लेकिन उन्हें कहीं अंदर से लगता था कि शायद उनके चाचा पैंतालिस नहीं तो तीस हजार तक में तो मान ही जाएंगे। वे भी कहां चाहते थे कि ये पेड़ इस तरह से उनकी संपत्ति में बदलें। आखिर ये पेड़ उनके बाबू की आखिरी निशानी थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि इस पेड़ों के कटते ही इस गांव से उनका नाम भी उखड़ जाना था। रात में सोते वक्त जब उनकी आठ साल की भतीजी अपना गुल्लक लेकर उनके पास आई थी कि चाचा इतने पैसों में क्या वह एक पेड़ छोड़ सकते हैं, जिस पर उसका झूला टंगा है, और वहीं उसने अपनी गुड़िया का ब्याह करना भी तय कर रखा है तो राजेंद्र प्रसाद बुक्का फाड़कर रो पड़े लेकिन ये रूलाई थोड़ी देर तक ही रही। अगले ही पल उन्होंने अपने जी को कड़ा कर लिया। ये भावनात्मक बातें हैं, कोरी भावुकता।

उन्हें यथार्थ और वास्तविक स्थितियों पर कायम रहना चाहिए। आखिर उनके चाचाओं ने उन्हें बरबाद करने के लिए क्या कुछ नहीं किया। आज जब उन्हें अपना भाग्य बदलने का अवसर मिला है तो वे इसे इस तरह की बकवास और भावुकता भरी बातों से जाया नहीं कर सकते थे। दुनिया में सारे विकास इसी तरह के विनाश से ही संभव हुए हैं। वे तो मात्र तीन पेड़ बेच रहे हैं, इस दुनिया में, इस देश में तो लोगों ने क्या कुछ नहीं बेच दिया है। यदि दुनिया में इसी तरह लोगों ने सोचा होता तो आज भी दुनिया प्राक् इतिहास के युग से आगे नहीं बढ़ पाती। वे भी इसी दुनिया के आदमी हैं और उनको भी विकास करने का पूरा हक है और अपने विकास की शर्त भी कितनी छोटी है- सिर्फ तीन पेड़। जितनी बड़ी योजनाएं हैं उनकी, जितने बड़े सपने हैं, उसके लिहाज से तो उन्हें एक जंगल भी कम पड़ना चाहिए था। इन बड़ी बातों के साथ-साथ कुछ व्यावहारिक और ठोस बातें भी थीं कि इस समूचे पचड़े में सरपंच भी शामिल हो गया था। पेड़ों के खरीदार भी उसी वे ढूंढे थे, और पेड़ कटाई का अनापत्ति की गारंटी भी वही ले रहा था। शायद इसके एवज में वह दस-पांच हजार अग्रिम भी ले चुका था, ऐसे में, अब इस मामले से साफ अलग हो जाने का मतलब था- सरपंच से रार मोल लेना। वैसे जिस जीवन की कल्पना राजेंद्र प्रसाद ने की थी वहां सरपंच से 'रार' का कोई मतलब नहीं था, लेकिन वो इस दुनिया में प्रवेश ही कैसे कर पाएंगे। उस दुनिया में 'कैमरे' की ताकत से ही पहुंचा जा सकता था, और कैमरे तक पहुंच बनाने के लिए अपने आपको इस मोह माया से मुक्त करना ही था।

अंततः उन्होंने अपने सारे भ्रम सारे संदेह और मोह पर काबू पा लिया और अपने पेड़ अपनी संपत्ति सरपंच और ठेकेदार के हवाले कर ही दिया। केवल इतनी शर्त रखी उन्होंने कि ठेकेदार उन्हें पूरे पैसे एक साथ ही देगा और यदि पेड़ की कटाई पंद्रह दिन बाद हो। उन्होंने सोच रखा था कि उन पैसों से वे तब तक कैमरा खरीद लेंगे और फिर उस कैमरे में वे कम से कम उन पेड़ों की फोटो तो सहेज ही लेंगे। मन ही मन उन्होंने एक डाक्यूमेंट्री का खांचा भी खींच लिया कि कैमरे के वीडियो वाले मोड़ से वे इन पेड़ों के इर्द-गिर्द भी घट रहे, जिए जा रहे जीवन की भी जीवंत वीडियो बना लेंगे। वे अपने चाचियों, भतीजियों से मनुहार करेंगे कि वे उन पेड़ों के नीचे उसी सहजता से जीवन जीने की एक्टिंग करें और उन्हें यकीन भी था कि थोड़े ना नुकुर के बाद 'फिलिम' के नाम पर वे लोग मान भी जाएंगे। यदि ठीक से स्क्रिप्ट लिख ली गई तो ये पेड़ के वीडियो और उसकी कहानी ही उनको अपनी मनचाही दुनिया में धमाकेदार इंट्री दिला सकती है।

एकमुश्त अग्रिम रकम देने पर ठेकेदार आनाकानी कर रहा था लेकिन सरपंच की गारंटी पर तैयार हो गया। सरपंच ने यह भी समझाया कि पेड़ काटने का परमिशन लेने में ही पांच-सात दिन लग जाएंगे, और फिर बिक्री तो लिख ही रहा है राजेंद्र! सिर्फ पंद्रह दिन पेड़ न काटने की ही तो मोहलत मांग रहा है। सारा कुछ तय-तमाम करके राजेंद्र प्रसाद उत्फुलित मन से शहर रवाना हुए। उन्हें पक्का यकीन था कि एक सप्ताह के भीतर-भीतर ही वह अपने मनचाहे कैमरे के मालिक हो जाएंगे और फिर एक बार इन पेड़ों की तसवीर उतार लेने के बाद हमेशा-हमेशा के लिए अपने गांव को छोड़ देंगे। एक ख्याल तो यह भी आया कि उन पेड़ों के कटने का भी वीडियो वे शूट कर लेंगे लेकिन फिर उन्होंने इस ख्याल को झटक दिया अभी इतना कठकरेज वे नहीं हो पाए थे।

बाकी पैसों का इंतजाम करना उनके सोचे हुए से ज्यादा कठिन साबित हुआ लेकिन दस दिनों

तक जोड़-जुगाड़ करके उन्होंने इसे जमा ही लिया और ठीक बारहवें दिन उनके हाथों में उनके भविष्य की तिलिस्मी दुनिया की चाबी थी-उनका कैमरा।

कैमरे की आँख से देखते ही उनको समूची दुनिया एक अदभुत रहस्य, रोमांच से भरी दिखाई देने लगी। यही धूप, यही पेड़, यही छांव, यही नहीं नंगी आँखों से कितनी साधारण और रोजमर्रा की चीज लगती है, लेकिन कैमरे की लैंस से देखते ही उसमें कितने रंग, कितनी चमक, कितने अर्थ भर जाते हैं। उनके हाथ बटन से उतर ही नहीं रहे थे। हर आम और साधारण चीज जो रोज उनकी आँखों के सामने नामालूम तरीके से गुजर जाते थे, वो सब उनको नायाब और असाधारण लग रहे थे। अपनी नई आँखों से इस नए संसार में ऊभ चूभ कर रहे राजेंद्र प्रसाद को अचानक एक नया दृश्य सूझा। दरअसल वे मुगलसराय स्टेशन पर थे और गांव की तरफ जाने वाली ट्रेन का इंतजार कर रहे थे। ढलते दिन का समय था और प्लेट फार्म नं. बारह पर वैसी कोई भीड़ भी नहीं थी। वहां 'मे आई हेल्प यू' का एक कटरा जैसा बना था जिसमें एक महिला कांस्टेबल बैठी थी। कांस्टेबल वहां क्यों बैठी थी, इसे समझने के लिए थोड़ी दूर-दृष्टि की जरूरत थी, क्योंकि प्लेटफार्म के एक हिस्से में 'फ्रूट कार्नर' की दुकान पर एक नौजवान हेड कांस्टेबल खड़ा था, जो कनखियों से उस 'मे आई हेल्प यू' के कटरा को देख रहा था। महिला कांस्टेबल को अपने देखे जाने का भान था, इसलिए वह बार-बार कई एंगल से अपना पहलू बदल रही थी। उन बदलते पहलुओं पर उसके चेहरे का रंग भी बदल रहा था जो आम तौर पर पुलिस के चेहरों पर नहीं पाया जाता। राजेंद्र प्रसाद बहुत देर तक अपनी नंगी आँखों से ही इस अद्भुत प्रसंग का मजा लेते रहे। मन ही मन वे कोई स्क्रिप्ट भी सोच रहे थे कि यदि पुलिसवालों की प्रेम कहानी पर कोई फिल्म बनाई जाए तो वह शर्तिया हिट रहेगी। उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि हिंदी सिनेमा में अब तक पुलिस पर जितनी फिल्में बनाई गई हैं, सब में पुलिस वाले की प्रेमिका या पत्नी गैर पुलिसिया बैक ग्राउंड से है। वैसे ही यदि कोई हीरोइन भी यदि गलती से पुलिसवाली है तो उसका हीरो गैर पुलिस हैं अपने इसी उधेड़बुन में वे इस दृश्य को अपने कैमरे से देखने लगे। कैमरे से देखते ही उन्हें वह महिला कांस्टेबल एक अलग ही चरित्र दिखने लगी। ढलते सूरज की आभा उसके आधे चेहरे पर आ रही थी जिससे उसकी नाक में फंसा लौंग अद्भुत दीप्ति से चमक रहा था। धूप-छांह का ऐसा फोटोजेनिक चेहरा और दृश्य वे कतई अपने हाथ से नहीं जाने देना चाह रहे थे। साथ ही वे इस बात पर भी चौकन्ने थे कि यदि उस पुलिसवाली ने उन्हें फोटो उतारते देख लिया, तो कहीं वह चौकन्नी न हो जाए और जिस धूप-छांही दृश्य में किए वे फोटोग्राफी करना चाह रहे थे वह फ्रेम ही न टूट जाए, इसलिए वे थोड़ी आड़ लेकर अपना फ्रेम सेट कर रहे थे। एकदम सटीक दृश्य मॉनिटर पर उभरते ही उन्होंने जैसे ही क्लिक किया एक वजनदार हाथ उनके कंधे पर लगभग कस सा गया। दरअसल अपने फ्रेम बनाने के चक्कर में राजेंद्र प्रसाद उस जवान-जहान हेड कांस्टेबल को लगभग भूल ही गए थे जिसके कारण उस महिला कांस्टेबल के चेहरे पर वैसे फोटोजेनिक भाव आ रहे थे। यह भारी हाथ उसी का था।

- 'क्या कर रहा है बे? फोटू क्यों खेंच रहा है?' हाथ के साथ-साथ जब उसकी भारी आवाज भी राजेंद्र प्रसाद ने सुनी तो एकबारगी उनका सारा रूमान उतर गया।

- 'वइच तो : मैं तब्बी से इसको ताड़ रई थी। साला कुछ तो भी भारी लोचा है।' 'मे आई हेल्प यू' वाले कटरे से निकल के वह पुलिसवाली भी उसके पास आ गई थी। उसकी फंसी-फंसी आवाज

में भी सामने वाले की कंपकपी छुड़ा देने की ताकत थी। राजेंद्र प्रसाद को तत्काल यह बात समझ में आ गई कि क्योंकि आखिर फिल्म में हीरो-हीरोइन दोनों पुलिसवाले नहीं होते हैं।

- 'नहीं साहब, कोई लोचा-वोचा नहीं है।' मैं तो बस इनकी एक तसवीर उतारना चाहता था बस?

- 'क्यों? क्या ये ऐश्वर्या राय लगती तेरे को...' उस हेडकांस्टेबल ने उसका कंधा जोर से दबाते हुए कहा।

- लेकिन वह पुलिसवाली अपने को ऐश्वर्या राय न सही कुछ तो समझती ही थी। हेडकांस्टेबल का इस तरह बोलना शायद उसे नागवार गुजरा। उसने मामले को अपने हाथ में लेने की कोशिश करते हुए पूछा- सच-सच बोल, किसके लिए काम करता है तुम?

- सवाल इस तरह से पूछा गया था कि जवाब राजेंद्र प्रसाद के गले में बलगम बनकर फंस गया। उन्हें अहसास हो गया कि वे बैठे-बिठाए किसी बड़े चक्कर में फंस गए हैं। वे किसी भी तरह इस झंझट से निकल जाना चाह रहे थे। एक स्टार ज्यादा देखकर उन्हें लगा कि यह हेडकांस्टेबल ही उन पर कुछ दया दिखा सकता है। वे एकदम रिरियाने की मुद्रा में आ गए- नहीं सर! मैं किसी का आदमी नहीं हूं। मैं एक आम आदमी हूं। मैं तो सिर्फ कैमरे के लाइट एंड शेड के नजरिए से .... वो लगभग रूआंसे से हो गए, उनकी ऐसी हालत देखकर वह पुलिसिया थोड़ा पिघलता सा दिखा लेकिन उस महिला कांस्टेबल को फिर से मामला अपने हाथ से निकलता दिखा। उसे झल्लाहट हो रही थी कि जब फोटू उसकी खींची जा रही थी तो यह हेडकांस्टेबल क्यों खा-म-खा फुटेज खा रहा है? कहीं यह अपने स्तर से मामले को रफा-दफा ही न कर दे। उसने झट से चौकी इंचार्ज को फोन लगा दिया। चौकी इंचार्ज को जोर-जोर से अपनी आपबीती सुनाते हुए वह लगभग हेडकांस्टेबल को हड़का भी रही थी कि वह इस मामले में ज्यादा न ही पड़े तो अच्छा है।

- साली, कुतिया, आ गई अपनी औकात पर? हेड कांस्टेबल दांत पीसते हुए भुनभुनाया लेकिन यह भी समझ गया था कि मामला उसके हाथ से निकल गया है।

एक घंटे के भीतर-भीतर राजेंद्र प्रसाद की भविष्य की दुनिया लगभग लुट चुकी थी। वे थाने ले जाए गए। हेड कांस्टेबल ने वहां थोड़ी वस्तुस्थिति स्पष्ट करने की कोशिश भी की, लेकिन यहां वह महिला कांस्टेबल इस मामले को इस तरह सनसनीखेज और फाडू तरीके से बयान कर रही थी कि समूचा थाना उसे एक बड़ी घटना की तरह देख रहा था। थाना इंचार्ज ने डी.सी.पी. को फोन कर दिया और वो भी अपने दल-बल के साथ वहां पहुंच गए। वह महिला कांस्टेबल इतने बड़े-बड़े अधिकारियों के बीच अपने आपको केंद्रबिंदु मानकर फूले नहीं समा रही थी। वह सबके सामने शुरू से तफसील से बयान करने लगती कि कैसे वह 'मे आई हेल्प यू' वाले काउंटर पर बैठी थी और किस तरह उसने अपने जाल में फंसाकर इसको पकड़वाया। उसकी बातें सुनकर डी.एस.पी. ने हल्के से उसके गाल थपथपाए।

- 'तुम हो ही फंसने लायक! कोई भी फंस जाएगा।'

अपनी सफाई देते-देते राजेंद्र प्रसाद का गला फंस गया। इतनी बार वे अपनी स्थिति स्पष्ट कर चुके थे कि थाने में किसी भी नए आदमी को देखते ही अपनी सफाई देने लग जाते- 'सर... मैं तो सिर्फ लाइट एंड शेड में....'

दो दिन हो गए, राजेंद्र प्रसाद को थाने में। पुलिस अपनी छानबीन में कुछ भी पता नहीं कर पा रही थी। कैमरा छोड़कर राजेंद्र प्रसाद के पास से कुछ भी संदिग्ध बरामद भी नहीं हुआ था। फिर उनके पास उनके महाविद्यालय का आइडेंटिटी कार्ड भी था। कैमरे के फोटोग्राफ भी बहुत अजीब थे। उसमें हरियाली, धूप, सड़क, नदी, नाला, और बच्चों की मुस्कुराहटें थीं : इससे राजेंद्र प्रसाद को नक्सली या आतंकवादी भी नहीं साबित किया जा सकता था। अंततः तीसरे दिन डी.एस.पी. ने एस.पी. के निर्देश पर उन्हें थाने से आजाद कर दिया लेकिन उसने उनका कैमरा रख लिया। उसका तर्क था कि वह इस कैमरे को 'फोरेंसिक लैब' भेजा जाएगा ताकि इस बात की तस्दीक हो सके कि इसमें कोई गुप्त चिप इत्यादि तो नहीं लगी है।

- 'सर, तब हमें क्यों छोड़ रहे हैं? कहीं इसमें कुछ निकल ही गया तो फिर आप हमें पकड़ेंगे कैसे?'

- 'साले, पकड़ तो तुम्हें हम पाताल से भी लेंगे, कहते हुए डी.एस.पी. ने उसके गाल थपथपाए। चल- अभी भाग यहां से।'

राजेंद्र प्रसाद भारी कदमों से थाने से बाहर आए। वे कहां जाएं ये तय नहीं कर पा रहे थे। रक्क-भक्क से वे फिर थाने में ही घुस गए। डी.एस.पी. के हाथ पकड़कर लगभग गिड़गिड़ाने लगे- 'सर, मेरा कैमरा मुझे दे दीजिए।' मुझे नहीं दे सकते तो किसी को मेरे साथ भेजिए, मुझे एक बहुत जरूरी फोटो खींचनी है सर!

- 'भाग जा साले, शुक्र मनाओ कि सस्ते छूट गए, नहीं तो शक की बिनाह पे भी लोग जिंदगी भर एड़ियां रगड़ते रह जाते हैं, डी.एस.पी. ने अपनी तरफ से नरमी दिखाते हुए कहा। उसके इशारे पर एक सिपाही ने हाथ पकड़कर लगभग खींचते हुए थाने से बाहर निकाल दिया।

थाने के बाहर उस पुलिसिये ने ऐसे ही मजा लेते हुए पूछा- गुरु, इतना क्यों कौआ रोर मचा रहे हो? आखिर किसकी फोटू खींचनी है कोई टंच माल है क्या?... कह कर वह फिक्क से हँसा।

जवाब में राजेंद्र प्रसाद भी फिक्क से हँस दिए। वे चाहते भी तो क्या बता पाते और बता भी देते वह पुलिसिया क्या समझ पाता कि वह गांव में अपने पिता की स्मृति के आखिरी समाधिलेख वे नीम के पेड़ के फोटो क्यों खींचना चाहते थे? और यदि बाद में कैमरा मिल भी जाए तो वे समाधिलेख फिर से लिखे जा सकते हैं क्या?

●

नया पुर्जा

रिजवानुल हक

‘सर! क्रेन फिर रूक गई, नई ट्राली पुरानी ट्राली पर चल ही नहीं रही है’ असिस्टेंट इंजीनियर ने चीफ इंजीनियर से कहा।

‘ग्रीस लगा दो, नई ट्राली है, एडजस्ट करने में कुछ वक्त तो लगेगा ही, इतनी छोटी-छोटी बातों को भी मुझे ही बताना पड़ेगा? क्रेन के तरीक-ए-अमल से तो तुम वाकिफ ही हो?’

‘सर! ग्रीस लगाई तो थी, लेकिन उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ा। सर! ग्रीस वहां रूक ही नहीं रही है, ट्राली उसे बाहर फेंक दे रही है।’

‘तो तेल डाल दो, चिकनाई से तो हर चीज फिसलने लगती है।’

‘उससे भी कोई फायदा नहीं हुआ, तेल भी वहां रूक नहीं पा रहा है, नया पुर्जा खुद इतना चिकना है कि कोई चिकनाई वहां रूक ही नहीं रही है। सर! मुझे लगता है कि इस नए पुर्जे को चिकनाई की जरूरत नहीं है।’

‘चिकनाई तो हर किसी को चाहिए।’

‘सर! लगता है नई ट्राली पुरानी पट्री पर चलेगी नहीं’

‘उसे मेरे पास भेज दो......मैं देख लूंगा, चलेगी कैसे नहीं, उसका बाप भी चलेगा, तुम बहुत जल्द नाउम्मीद हो जाते हो’

असिस्टेंट ट्राली को बड़े जोश से चीफ के पास ले गया, उसने बारीकी से उसका जायजा लिया और बोला :

‘हां........यह ट्राली थोड़ी अड़ियल सी लगती है, ख़ैर.......अभी नई आई है, कुछ नखरे तो दिखाएगी ही, दो चार ठोकरें खाकर सब सही हो जाती हैं। जरा दो-चार ठोकरें तो लगाना’

‘सर! कहीं गलत ट्राली का इन्तेखाब तो नहीं हो गया?

‘हां, मुमकिन है कि इन्तेखाब के वक्त कोई गलती हो गई हो’

‘सर! इस गलती को अब सुधारा नहीं जा सकता? इस ट्राली को वापस भेजकर दूसरी मंगवा लीजिए।’

चीफ कुछ देर सोचने के बाद बोलेः ‘नहीं.......कमेटी के खरीदे सामान पर हम कुछ नहीं कर सकते, वैसे भी नए पुर्जे अकसर ऐसे ही होते हैं, इसलिए फिर से खरीदने पर भी नहीं कहा जा सकता कि वह अच्छा ही होगा, हमें इसको अपनी जरूरत के मुताबिक ढालना होगा।

'सर! अगर यह ट्राली न ठीक हुई तो क्या होगा?

चीफ झुंझलाकर बोले : 'बकवास बंद करो, आखिर क्यों नहीं चलेगी? तुम कहना क्या चाहते हो? ठीक है, खरीद कमेटी में मैं भी था, लेकिन उसे खरीदने का फैसला सिर्फ मेरा नहीं था, पूरी कमेटी का था......और एक बात याद रखना, मुझसे बात बढ़ाने की कोशिश मत करना, वरना मैं खूब अच्छी तरह जानता हूं तुम जैसे नए लोगों से कैसे निपटा जाए?

असिस्टेंट को गुस्सा तो बहुत आया लेकिन उसने यह सोचकर खामोशी अख्तियार कर ली कि अभी यह पहली नौकरी है, और फैक्ट्री की मालूमात भी इतनी अच्छी नहीं, इसलिए थोड़ी बहुत जलालत बर्दाश्त करना चाहिए लेकिन चीफ की तेज नजरें समझ गईं कि असिस्टेंट को यह बात गिरां गुजरी है तो उसने मामले को रफा-दफा करने के इरादे से कहा- 'घबराने की कोई जरूरत नहीं, मैंने अपनी जिंदगी में न जाने कितने नए और अड़ियल पुर्जो को सही किया है, इसकी क्या बिसात है? फिलहाल इसे स्टोर में रख दो मैं कल देख लूंगा.......दूसरी क्रेनें तो सही चल रही हैं ना?'

'जी हां! बाकी सब ठीक चल रही हैं।'

'ठीक है, इसको मैं कल सही कर दूंगा।'

चीफ ने अगले दिन ट्राली को स्टोर से मंगवाकर उसका बगैर जायजा लिया, उसके पहिए घुमाए, बेरिंगों में तेल डाला, एक आध पेंच ढीले किए, और कसे, एक आध जगह हाथ से हल्की हल्की चोटें कीं, फिर पट्री में लगाकर क्रेन शुरू करने का हुक्म दिया, क्रेन शुरू की गई, ट्राली एक झटके के साथ आगे बढ़ी और थोड़ा चलकर रुक गई, उसके बाद बहुत कोशिश के बावजूद ट्राली वहां से टस से मस न हुई चीफ ने झुंझलाकर गुस्से से उस पर हथोड़े से कई चोटें रसीद कीं और क्रेन का स्विच आन कर दिया, ट्राली थोड़ा आगे बढ़कर फिर रुक गई, चीफ ने एक बार फिर ट्राली को वहां से खुलवाकर बाहर निकलवाया और रेती से घिसवाना शुरू किया, ट्राली अभी घिसी ही जा रही थी कि पीछे से कुछ टूटने की एक तेज आवाज आई, जिसे सुनकर उन्होंने असिस्टेंट से कहा:

'जाओ, देखो क्या हुआ?'

'लेकिन सर.........!!'

'क्या? बोलो........'

'सर! यह ठीक नहीं हो रहा है।'

'क्या ठीक नहीं हो रहा है?'

'यही सर......जो आप...... इस नई ट्राली से घिसवा रहे हैं, फिर नई ट्राली खरीदने का फायदा ही क्या रहा?'

चीफ ने थोड़ा झिड़कते हुए कहा :

'इसे मेरे ऊपर छोड़ो कि इससे कैसे काम निकालना है। तुमसे जो कहा जा रहा है वह करो, वहां जाओ देखो क्या हुआ है?'

इतना सुनकर असिस्टेंट चला गया, चीफ ने रेती से ट्राली घिसवाने के बाद उसे क्रेन में लगवाकर फिर स्विच आन कराया, इस बार ट्राली चलने लगी, यहां तक कि आखिरी सिरे तक पहुंच गई, लेकिन वहां पहुंचकर एक तेज आवाज के साथ फिर रुक गई, जबकि वहां पहुंचकर उसे खुद-ब-खुद वापस आना था, कई बार क्रेन का स्विच आन किया गया, उसके बैरिंगों में तेल डाला

गया, हथोड़े से चोटें की गईं, लेकिन लाहासिल। उस पर कोई असर नहीं हुआ, यहां तक कि जब ट्राली निकालने की कोशिश की गई तो वह हिल तक न सकी। फिर क्रेन का बहुत बड़ा हिस्सा खोलने के बाद ही ट्राली बाहर निकाली जा सकी, इतने में असिस्टेंट भी आ गया, उसने बताया :

'नर्म गन्नों के दरमियान न जाने कहां से एक फौलादी सरिया आ गया था और उसने पूरा निजाम दरहम बरहम कर दिया। चेन टूट गई है।'

'ओह गाड! फिर तो पूरी फैक्ट्री बंद हो गई होगी? अब क्या होगा?

'सर! उस सरिये को निकलवा दिया गया है, और चेन जोड़ी जा रही है, फैक्ट्री जल्द ही फिर शुरू हो जाएगी, सर! आप उसकी फिक्र बिलकुल न करिए, वह सब मैं देख लूंगा, आप बस इस पर गौर कीजिए कि किसी तरह यह ट्राली चलने लगे बस।'

'आज हो क्या रहा है? कुछ समझ में नहीं आ रहा है, सब काम बिगड़ते जा रहे हैं, जाओ, इसे स्टोर में डाल दो, आज रात मैं कोई दूसरी तरकीब सोचूंगा'

रात में चीफ काफी परेशान रहे, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए? अगर इस ट्राली ने काम न किया तो बड़ी बदनामी होगी। यूनियन ने पहले से ही नाक में दम कर रखा है, अगर एक भी सुबूत उनके हाथ लग गया तो वह लोग मेरा जीना दुश्वार कर देंगे, पता नहीं कौन है जो सारी डीलिंग्स की खबरें उन तक पहुंचा देता है, और इस नए लड़के के तेवर भी ठीक नहीं लग रहे हैं, चीफ इन्हीं सोचों में गुम थे कि उनकी बीवी ने चीफ को परेशान देखकर पूछा- 'क्या बात है? आज आप बहुत परेशान दिख रहे हैं?

'एक नया पुर्जा मंगवाया था, वह किसी तरह काम ही नहीं कर रहा है, अगर वह न चला तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

'आप इन छोटी-मोटी बातों को लेकर इतना परेशान मत हुआ करिए, वैसे भी आपने आफिस में कितनी परेशानियां उठाई हैं, जरा वह जमाना याद करिए, जब आपका तबादले पर तबादला हो रहा था, एक एक सीजन में कई कई बार। पूरा महकमा आपके पीछे पड़ा हुआ था, वे दिन मैंने कितनी मुश्किलों से काटे हैं मैं ही जानती हूं। वह तो मेरी बेटियों की किस्मत अच्छी थी कि जब से वह पैदा हुई थीं तभी से तबादले भी रुक गए थे, अब जरा इतमिनान मिला है तो आप फिर परेशानी लेकर बैठ गए।'

'अब उन दोनों की याद दिलाकर मेरी परेशानी और न बढ़ाओ। अब मैं उनको याद भी करना नहीं चाहता। बस एक जुनून था उन दिनों'

असिस्टेंट की अभी शादी नहीं हुई थी, वह घर में अकेला था, रात में वह सोच रहा था कि एक अच्छा मौका है अगर वह इस मामले में दब गया तो चीफ हमेशा दबाए रखेगा, और मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा, वह हम से सीनियर हैं तो क्या हुआ? डिग्री तो हम दोनों की एक ही है, बल्कि मेरी डिग्री तो उससे अच्छे कालेज की है, कल को मैं भी उसकी तरह सीनियर बनूंगा, इसलिए खामोश रहने की कोई वजह नहीं है। कुछ भी हो इस नए पुर्जे को हर हाल में बचाना है।

अगले दिन असिस्टेंट इंजीनियर ने चीफ के फैक्ट्री पहुंचने से पहले ही उस नई ट्राली को चलाने की कोशिश शुरू कर दी, वह पूरी महवियत से उसमें लगा हुआ था, और हर तरह से चलाने के कोशिश कर रहा था। इसी दौरान चीफ आ गए लेकिन वह चुप चाप उसे काम करते देखते रहे।

असिस्टेंट को उनके आने का एहसास न हो सका, काफी देर बाद उसने मुड़कर देखा तो चीफ को खड़ा देखकर- 'सर! लगता है पूरी क्रेन बदलनी पड़ेगी, नहीं तो यह पटरी तो बदलनी ही पड़ेगी।'

'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? इस ट्राली के लिए पूरी क्रेन बदलवा दोगे? मालूम है कि पूरी क्रेन कितने में आती है? दस लाख में। पूरे दस लाख में और यह पटरी दो लाख की है। फिर इस बात की भी क्या गारंटी है कि क्रेन बदलने से फैक्ट्री बिलकुल सही चलने लगेगी? इस तरह फैक्ट्री तो पुरानी ही रहेगी, कल किसी दूसरे हिस्से में गड़बड़ी होगी तो तुम कहोगे कि पूरी फैक्ट्री बदल दो। आखिर क्या क्या बदला जाएगा? नहीं, कुछ नहीं बदला जाएगा, नए पुर्जे को ही पुरानी मशीन के मुताबिक ढलना होगा, सीधी उंगली से घी नहीं निकलता है तो उसे टेढ़ा करना मुझे आता है। इस ट्राली को यहां से निकलवाकर वर्कशाप पहुंचवा दो। फिर मैं देख लूंगा कि यह ट्राली कैसे नहीं चलेगी?'

वर्कशाप पहुंचकर उन्होंने हुक्म देना शुरू किया।

'पहले स्टील कटर पर लगाओ.......अब खरादी पर चढ़ाओ.....अब रेती से बराबर करो, फिर से स्टील कटर.......खरादी.......रेती......'

असिस्टेंट से यह सब न देखा गया और वह वर्कशाप के बाहर आकर खड़ा हो गया। चीफ दूसरे टेक्नीशियनों की मदद से यह सब काम करवाता रहा, कुछ देर बाद एक टेक्नीशियन ने कहा- 'बहुत हो गया सर! अब बंद कीजिए। नहीं तो ट्राली बिलकुल बरबाद हो जाएगी।'

'होने दो, देखता हूं कि कौन ज्यादा जिद्दी है? अब या तो यह मेरी मर्जी के मुताबिक चलेगी या बरबाद हो जाएगी। इसका अड़ियलपन अब मैं और बर्दाश्त नहीं कर सकता.......चलाओ ... ...और चलाओ।'

'अब खरादी पर चढ़ाओ.......अब रेती से बराबर करो, फिर से स्टील कटर......खरादी ....खरादी......रेती.......'

आखिरकार असिस्टेंट से बर्दाश्त न हुआ और वह तेजी से अंदर दाखिल हुआ और उसने जल्दी से ट्राली को चीफ से छीन कर अलग कर दी।

'बहुत हो गया सर.......यह आप की जाती जायदाद नहीं है, जो आप इस तरह मनमानी कर रहे हैं, यह सरकारी फैक्ट्री है'

'और तुम भी भूल गए कि मैं इस फैक्ट्री का चीफ इंजीनियर और तुम्हारा अफसर हूं मैं, तुमने ऐसी गुस्ताखी करने की हिमाकत कैसे की? निकल जाओ यहां से। बाहर चलो......गेट आउट।'

असिस्टेंट यह सुनकर पैर पटकते हुए बाहर निकल गया।

उसके जाने के बाद चीफ ने टेक्नीशियन की मदद से फिर से ट्राली को वहीं लगवाकर उसी तरह हुक्म देना शुरू किया :

'अब खरादी पर चढ़ाओ... अब रेती से बराबर करो, फिर से स्टील कटर... खरादी... रेती...'

थोड़ी देर बाद टेक्नीशियन ने डरते डरते कहा- 'सर! अब लगता है बिलकुल ठीक हो गयी है, अब जरूर चलेगी, अब निकाल लूं सर?'

चीफ ने ट्राली को गौर से देखा और कहा-

'ठीक है, ले चलो।'

असिस्टेंट वहां से निकलने के बाद जनरल मैनेजर के पास पहुंच गया और उनके सामने पहुंचते ही बोला- 'सर! यह बहुत गलत हो रहा है, इसे किसी तरह बचाइये।'

'क्या गलत हो रहा है? किसे बचाऊं?'

'सर! वह ट्राली जो अभी नई खरीदी गई थी.....चीफ साहिब उसे तबाह किए दे रहे हैं, सर! यह गलत है। उस ट्राली को इस तरह बरबाद करने का उन्हें कोई हक नहीं है, ट्राली बिलकुल ठीक है। गलती क्रेन की और दूसरी पुरानी चीजों की है, नई ट्राली बिलकुल सही है फिर उसके साथ क्यों ऐसा किया जा रहा है?'

जनरल मैनेजर ने असिस्टेंट को समझाते हुए कहा :

इंजीनियर साहिब आप इतने बेचैन क्यों हो रहे हैं? चीफ साहिब बहुत तजुर्बेकार आदमी हैं, वह जो मुनासिब समझते हैं वही कर रहे होंगे, मुझे खुशी है कि तुम फैक्ट्री के कामों में इतनी दिलचस्पी ले रहे हो जैसे तुम्हारा कोई जाती काम हो, लेकिन तुम्हें जरा सब्र से काम लेना चाहिए, तुम परेशान मत हो, यह नए पुर्जे अकसर ऐसे आ जाते हैं जो शुरू-शुरू में काफी परेशानी पैदा करते हैं। लेकिन चीफ साहिब बहुत तजुर्बेकार आदमी हैं, वह सब को सही कर देते हैं, देखना यह भी सही हो जाएगा।

लेकिन सर! वह नया पुर्जा बहुत अच्छा है, चीफ साहब उसे सही नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसे खराब कर रहे हैं। इस घिसी पिटी फैक्ट्री में अगर कोई नई और अच्छी चीज आती है तो वह उसे भी इसी तरह बना देते हैं, सर! मैं चाहता हूं कि नई और अच्छी वैसी ही रहें बल्कि जो फर्सूदा चीजें हैं उन्हें खत्म किया जाए।

यह कैसे मुमकिन है?

सर! इन पुराने पुर्जों को बदलिए जिनकी वजह से नए पुर्जे काम नहीं करते।

यह मुमकिन नहीं है। इस तरह तो सब कुछ बदलना पड़ेगा। पूरा निजाम ही दरहम-बरहम हो जाएगा, एक पुर्जे के लिए पूरी फैक्ट्री नहीं बदली जा सकती, जैसा सब कुछ चल रहा है चलने दो, जाओ तुम अपना काम देखो और बाकी चीजों को हम लोगों पर छोड़ दो।

यह सुनकर असिस्टेंट, जनरल मैनेजर के दफ्तर से मायूस होकर चला आया और क्रेन की तरफ चल पड़ा। वहां पहुंचकर वह चुपचाप एक किनारे बैठ गया, और चीफ को काम करवाते हुए चुपचाप देखता रहा।

चीफ ने टेक्नीशियन को फिर से ट्राली को क्रेन में फिट करा कर उसके पेंच कसवाए और स्विच आन करवाया.......ट्राली चल पड़ी लेकिन थोड़ी दूर जाकर झटके के साथ फिर रुक गई, यह देखकर चीफ बहुत गुस्से में आ गए। उन्होंने उसे निकलवाकर बहुत तेज नीचे पटक दिया।

'चटाक........'

कुछ टूटने की आवाज आई। जब उसे उठाकर देखा गया तो कोई टूटी हुई चीज नजर न आई, शायद कुछ अंदर ही अंदर टूट गया था। एक बार फिर उसे लगाया गया। इस बार ट्राली चलने लगी बगैर रूके। सभी लोग गौर से देखने लगे। सबको अंदेशा था कि ट्राली अभी फिर रुक जाएगी लेकिन वह नहीं रुकी।

एक टेक्नीशियन ने कहा : 'सर! अब ठीक चल रही है......लेकिन सर! अभी कुछ आवाज

आ रही है और रफ्तार भी कुछ कम है।'

अब इसमें तेल डाल दो।

इस बार तेल पड़ते ही नया पुर्जा पुरानी मशीन में बिलकुल मामूल के मुताबिक चलने लगा।

यह मंजर देखकर असिस्टेंट को एक तेज झुरझुरी सी महसूस हुई। और पूरे बदन में खारिश सी होने लगी। थोड़ी देर वह पूरे बदन में खुजलाता रहा। जब कुछ देर बाद खुजलाहट कम हुई और उसने अपने बदन की तरफ देखा तो यह उसका बदन नहीं था बल्कि किसी अनजान बूढ़े का था। यह देखकर वह वहीं जमीन पर तड़पने और लोटने लगा। लोटते-लोटते कुछ देर बाद उसे नींद आ गई और जब वह सोकर उठा तो किसी से कुछ कहे बगैर चुपचाप काम करने लगा।

●

बहुवचन : मराठी साहित्य विशेषांक

संभावित रचनाकार

विरासत : कुसुमाग्रह, विंदा करंदीकर, नारायण सुर्वे, दिलीप चित्रे आदि

विशेष : डॉ. भालचंद्र नेमाड़े

साक्षात्कार : वसंत आबाजी डहाके, डॉ. नागनाथ कोतापल्ले

लेख : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, डॉ. निशिकांत ठकार, डॉ. रणधीर शिंदे, आशुतोष पोद्दार, डॉ. रामचंद्र कालुंखे, संजय आर्वीकर- हृषीकेश आर्वीकर, डॉ. रवींद्र किबदुने, भानु काले, नीलिमा गुंडी, संदीप सपकाले आदि।

कहानियां : भारत सासणे, सनदानंद देशमुख, आसाराम लोमटे, मेघना पेठे, मोनिका गजेंद्रगड़कर, मधुकर धर्मापुरीकर, प्रतिभा जोशी आदि।

नाटक : महेश एलकुंचवार

कविताएं : ना.धों. महानोर, यशवंत मनोहर, वसंत आबाजी उहाके, प्रभा गाणेरकर, चंद्रकांत पाटील, नारायण कुलकर्णी, सतीश कालसेकर, श्रीकांत देशमुख, मल्लिका अमरशेख, मनोहर जाधव, शरण कुमार लिंबाले, अशोक कोतवाल, अरुण काले, अनुराधा पाटील, गणेश विसपुते, दासू वैद्य, सायमन मार्टिन, प्रफुल्ल शिलेदार, आसावरी काकड़े, नागनाथ मंजुले, विजय चोरमारे, मंगेश नारायाण काले, मनोज बोरगावकर, बाजाजी महदन इंगले, अनिल साबले, बालाजी सुतार, सारिका उबाले, लोकनाथ यशवंत, शशिकांत हिंगोनेकर, अरुण शंवते, संजीवनी तलेगांवकर आदि। साथ ही, अन्य विविध सामग्री।

अतिथि संपादक : डॉ. दामोदर खड़से

बैराग के खाते में

संतोष श्रीवास्तव

वक्त जैसे घर की दीवारों के दरमियान रुका हुआ था बरसों से.... जो वर्तमान था वह गुजर कर अतीत बन चुका था। आज वर्तमान ने अतीत को कुरेदने की कोशिश की है। स्वामी जगदंबानाथ गांव आए हैं। जो अब गांव नहीं रहा बल्कि मेट्रोसिटी से जुड़कर एक उपनगर बन गया है लेकिन मालती के लिए वो अब भी गांव है और स्वामी जगदंबानाथ केवल जगदंबा।

स्वामी जगदंबानाथ गांव आए हैं। मालती की सखी द्वारा दी इस खबर ने मालती के घर के कोने-कोने को यह बात जतला दी है..... लंबी बीमारी झेलती खाट पर लेटी माई ने भी गरदन उठाकर पूछा- 'क्या? जगदंबा आया है?'

मालती आटा मांड चुकी थी और नल के नीचे हाथ धो रही थी। चूड़ियां पानी की धार संग मद्धम लय में बज रही थी। माई की बात का जवाब न दे उसने आंच पर उबलते काढ़े को कप में छाना, एक चम्मच शहद घोला और अपने कमरे में बुखार से कंपकंपाते बद्री के हाथ में कप थमाया। वहां से भी वही सवाल- 'भौजी, क्या बड़े भैया आए हैं?'

उसने उचटती सी नजर बद्री पर डाली- 'आए हैं तो क्या करें? अब उनका आना हमारे लिए क्या मतलब रखता है?' बद्री ने मालती की भरी-भरी सी मगर उलाहना भरी आवाज सुनी, चुपचाप काढ़ा पीकर कंबल सिर पर तान लिया। बद्री के कमरे के दरवाजे को बंद कर मालती चौके में आ गई। इस वक्त वह अंतर्द्वंद्व की मुश्किल हालत से गुजर रही थी। एक तरफ उसका मन जगदंबा की ओर खिंच रहा था..... कि दौड़ी हुई जाए और गले से लग फूट-फूटकर रो पड़े, तपन भरे बरसों का एक-एक लम्हा बयान करे जो उसके बगैर उसने गुजारा है। तमाम उठते सवालों को उड़ेल दे उसके सामने और पूछे कि क्यों किया ऐसा? वह कौन-सी वजह थी जो गृहस्थी से बैराग की ओर खींच ले गई? क्या मैं तुम्हारी कसौटी में खरी नहीं उतरी? क्या दोनों बच्चों के मोह ने तुम्हें नहीं रोका? क्या माई की ममता तुम्हें नहीं बांध पाई?

फिर ब्याह? क्या मायने ब्याह के?? जगदंबा कहते थे कि 'अतीत खुद को दोहराता है..... सिद्धार्थ ने भी तो राजमहल का, पत्नी का, बच्चे का मोह, लोभ त्यागा था.....' कुछ पाने के लिए कुछ खोना तो पड़ता है न..... 'क्या पाया तुमने जगदंबा? मैं सुनना चाहती हूं.....' मालती का मन सवाल जवाब के कठघरे में अभियोगी सा छटपटा रहा था। उसके हाथ मशीन की तरह चल रहे थे। बद्री और माई का पथ्य का भोजन थालियों में परोस वह उनके कमरे में रख आई थी। बद्री का बुखार

भी थर्मामीटर से नाप लिया था और दवा भी दे दी थी। देवरानी अपने तीनों बच्चों सहित अपनी बहन की शादी में मायके गई थी। एक दो दिन में लौट आएगी। शायद कल ही आ जाए। जगदंबा के गांव आने की खबर उसे लग ही गई होगी।

दो निवाले जैसे-तैसे गले से नीचे उतार वह अनमनी सी पलंग पर आकर लेट गई। यह पलंग उसकी शादी का है। शीशम का नक्काशीदार सुंदर पलंग। उन दिनों इस पर रेशमी चादर का बिछावन होता था। मालती भी गहनों से लकदक पायल छनकाती पूरे घर में डोलती रहती। एक जिम्मेदार बहू बन उसने संसार अपने नजदीक समेट लिया था। वे दिन थे जब हर सांस रूमानियत के सदके थी. .... जब हर लम्हा प्यार की खुशबू से लबरेज था। पतझड़ के दिनों में हवा में उड़ते पीले पत्ते की तरह हलकी हो वह भी अपने मन के आकाश में तैर रही थी..... सुनहले सपनों ने उसकी इच्छाओं के दरवाजों पर दस्तक देनी शुरू कर दी थी लेकिन जगदंबा इस सबमें लिप्त नहीं हो पाया..... उसके शब्दों में, कामों में, एहसासों में कहीं मालती न थी, कहीं घर के प्रति कोई फर्ज न था..... बापू के क्रॉकरी के व्यापार में हाथ बंटाने की उसे परवाह न थी। बद्री और इंदर जगदंबा से छोटे होने के बावजूद अपने फर्ज बखूबी निभा रहे थे। फिर एक दिन इंदर को जाने क्या सूझी, ऐलान कर दिया कि वह फौज में जाएगा। घर में बवाल मच गया। बापू ने अन्न त्याग की धमकी दी थी। माई भी समझा-समझाकर हार गई थी पर इंदर पर तो जैसे जूनून ही चढ़ गया था। जिस दिन उसका फौज में चुनाव हुआ और वह ट्रेनिंग के लिए जाने लगा बापू ने हथियार डाल दिए 'ठीक है बेटा.... जाओ, सदा देश का नाम रोशन करो। मैंने अपना एक बेटा देश को दिया, देश के प्रति फर्ज निभाया।'

माई मंदिर से लौटी थी। इंदर को प्रसाद खिलाते, माथे पर तिलक करते उसके आँसू उमड़ आए थे। वह इंदर के चौड़े सीने पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो पड़ी थी।

उस रात घर में ऐसा सन्नाटा पसरा था कि जुगनुओं के पंखों की किर-किर आवाज भी साफ सुनाई दे रही थी। मालती गर्भवती थी और जगदंबा गंगोत्री, गोमुख की गुफाओं में साधुओं की संगत के सपनों में डूबा था..... मालती का मन तड़प रहा था कि काश जगदंबा उसे बांहों में भरकर बाप बनने की खुशी प्रगट करे। उसके पेट पर कान लगाकर अपने होने वाले बच्चे की धड़कनें सुने, उसे उपहारों से लाद दे..... पर ऐसा कुछ नहीं हुआ और गुरुवार की मध्यरात्रि उसने बेटी को जन्म दिया। घर भर में खुशी का जन्म हुआ था। माई, बापू की मुस्कुान दाबे नहीं दब रही थी। जश्न मना, शहनाई बजी और भोज ऐसा कि सब देखते ही रह गए। इंदर को बापू ने जैसे-तैसे खबर तो भिजवाई थी पर उसे छुट्टी नहीं मिल पाई थी। फोन करने में भी पाबंदी थी सो उसका लिखा पोस्टकार्ड दस दिन बाद आया- 'बधाई भैया भौजी..... मेरी मुनिया का क्या नाम रखा? नहीं, नाम तो उसका इंदर चाचा रखेगा..... पीहू..... पीहू नाम में गजब का आकर्षण है..... है न भौजी।'

लेकिन पीहू का आकर्षण जगदंबा के मन को क्यों नहीं बांध पा रहा है? क्यों उसका मन गृहस्थी से उचाट है?

माई ने नहला-धुलाकर पीहू को उसकी गोद में दूध पिलाने को लेटाया तो वह माई से पूछ बैठी- 'आपने अपने बेटे के लिए मुझे क्यों पसंद किया? क्यों उन्हें गृहस्थी में घसीटा जबकि उनका मन कहीं और है?

माई बेचैन हो उठीं- 'क्या कह रही हो बहू..... क्या मेरा जगदंबा आवारा है? क्या उसकी जिंदगी

में कोई और औरत है?'

काश, ऐसा होता, मालती ने मन-ही-मन सोचा- 'ऐसा होता तो वह जगदंबा पर बेवफाई का इल्जाम लगा सब्र कर लेती, पर..... किसे दोष दे? अपनी नियति को या माई की कोख को? सच सच बताना माई..... जगदंबा को कोख में पालते कहां चूक हो गई क्योंकि बद्री भैया और इंदर भैया तो ऐसे नहीं। कितने चंचल हैं दोनों, बद्री भैया तो शादी के बाद देवरानी को कश्मीर हनीमून के लिए ले गए थे। उसने तो घर की दहलीज तक नहीं लांघी। बस मायके और ससुराल का ही फेरा लगता रहा। मायके से भी अकसर बद्री भैया ही लिवा लाते। मालती के भाई बहनों के जीजा को छेड़ने के मंसूबे धरे के धरे रह जाते। उसके हाथों में मेंहदी लगाती मंझली बहन पूछती भी- 'जिज्जी, तं खुश तो हो न।'

वह बनावटी मुस्कुराहट चेहरे पर ले आती..... हां में सिर हिलाती। जानती थी कि अगर होठों पे मन की पीड़ा लाएगी तो बात अम्मा बाबूजी तक पहुंचेगी और वह उन्हें दुःख देना नहीं चाहती। औरत की यही तो त्रासदी है..... जब्त की इंतिहा है वो..... जरा सा कुरेदो तो उसके मन की पीड़ा के परनाले फूट पड़ेंगे। मालती अपने भीतर उन सारे सवालों को टटोलकर एक तरफ रखती जाती है जिनके जवाब सिर्फ जगदंबा दे सकता है पर जगदंबा औरत की देह तो चाहता है बाकी सब बैराग के खाते में? बस इसी एक सवाल का जवाब उसे चाहिए..... ताकि देह से मन का सफर कांटों भरा न हो पर जगदंबा के मन के बंद दरवाजों की बारीक झिर्रियों से वह झांके भी तो कैसे? दरवाजे भीतर से बंद, सख्त और मुश्किल थे और उन्हें बाहर से अंदर की ओर खोलना था..... जगदंबा के व्यक्तित्व को समझना बहुत उलझाव भरा, रहस्यमय और पेचीदा काम था। वह अपनी झील सी गहरी आँखों, खूबसूरत मुखड़े..... बहुत ही मुलायम मीठी आवाज के बावजूद जगह क्यों नहीं बना पा रही थी उसके मन में? दस्तक दे-देकर थक चुकी थी वह उन बंद दरवाजों पे..... न जाने मेनका ने विश्वामित्र का तप कैसे भंग किया होगा?

जिस दिन संजय का जन्म हुआ जगदंबा घर पर नहीं था बल्कि वह तो सारी रात बाहर ही रहा। माई बापू परेशान..... घर के नौकर रजुआ को ढूंढ़ने भेजा..... अनिष्ट की आशंका से मालती का चेहरा पीला नजर आ रहा था। वैसे भी संजय का जन्म बहुत पीड़ा के बाद हुआ था। बापू ने दो-दो डॉक्टर बुला लिए थे। दाई अलग..... जब-जब दर्द की हिलोर उठती मालती की आँखों के सामने फूटती चिनगारियों के बीच जगदंबा का चेहरा मुस्कुराता..... मानो अपनी निगाहों से उसके दर्द पर ठंडा फाहा रख रहा हो।

रजुआ के साथ जिस समय जगदंबा लौटा बापू भारी तनाव में बरामदे में तेजी से चहलकदमी कर रहे थे। उसे देखते ही ठहरे- 'अब आ रहे हैं बरखुरदार! पत्नी प्रसव पीड़ा झेल रही है और आपको यार दोस्तों से फुरसत नहीं।'

फिर उसका केशरिया बाना और ललाट पर भभूति देख चौंके- 'ये बहरूपिया बन कर कहां से आ रहे हो? कहीं नौटंकी की थी क्या?'

जगदंबा बिना जवाब दिए अंदर चला गया। थोड़ी देर बाद ही माई अंदर से चीखी- 'अरे, जगदंबा के बापू..... तुम्हारा बेटा जोग धारण कर रहा है। कहता है आज ही साधुओं के संग हिमालय चला जाएगा।'

बापू तेजी से अंदर गए और कोने से डंडा उठा जगदंबा पर तान दिया- 'खूब नाच नचा रहा है तू..... यही सब करना था तो शादी क्यों की? बच्चे क्यों पैदा किए?'

माई ने बीच में ही उन्हें रोका- 'शांत हो जाओ, जवान बेटे पर हाथ नहीं उठाते।'

'तुम्हारे इसी बचाव ने इसे बढ़ावा दिया है।' बापू हांफ रहे थे। माथे पर पसीना झलक आया था। रजुआ पानी ले आया, वे कुर्सी पर बैठ गए।

'देख रहा है बाप की हालत? पूरा घर उजाड़ने पर तुला है।' माई ने जगदंबा को कंधे से पकड़कर झंझोड़ डाला।

'हम कौन होते हैं कुछ करने वाले। हम तो परमात्मा के हाथ की कठपुतली हैं। वह नाच नचाता है हम नाचते हैं।'

कहते हुए जगदंबा मालती के पास गया। संजय के और पीहू के सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया- 'खुश रहो।' मालती ने अपनी कमजोर बांह फैलाई, जगदंबा ने कड़ाई से अनदेखा किया।

सारा दिन जगदंबा को मनाते थपाते गुजरा। बापू, माई और बद्री के तर्कों का जगदंबा के पास एक ही जवाब था- 'इनसान परमात्मा के हाथ का खिलौना है।' मालती की शक्ति चुक गई थी। वह निढाल हो फटी-फटी आँखों से जगदंबा को ताके जा रही थी। अँधेरा होते ही साधुओं की टोली दरवाजे के बाहर आ गई। आसमान में टिमटिमाते तारों के बीच हँसुली सा दूज का चाँद पीला, कमजोर नजर आ रहा था। जगदंबा ने एक नजर सब पर डाली और मुंह फेरकर बाहर निकल गया। मालती आंगन तक दौड़ी आई.....। प्रसूता मालती का सिर चकरा गया..... आंगन की ड्योढ़ी पर वह चक्कर खाकर गिर पड़ी..... रक्तस्राव अधिक होने लगा, कपड़े रक्त से लथपथ हो गए..... देवरानी और माई के अपनी ओर बढ़ते हाथ मालती ने देखे..... वह बिसूरने लगी- 'मेरा कसूर तो बता दो, मैंने किया क्या है?'

साधुओं की टोली उससे जुदा होती गई..... उसका जगदंबा उससे जुदा होता गया। हवा कानों में फुसफुसा रही थी- 'वो चला गया मालती, वो चला गया, कभी वापस न लौटने के लिए।'

देवरानी बद्री के पास गई- 'आप एफआईआर दर्ज करवा दीजिए। साधुओं की टोली बिना परिवार की रजामंदी के किसी को भी साधु नहीं बना सकती। हर चीज के अपने नियम होते हैं।'

उस वक्त सब ठगे से खड़े थे। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था। देवरानी की बात भी हवा में उड़ गई। मालती की जिंदगी के भूचाल से बापू कटे पेड़ की तरह जो गिरे तो हफ्ते भर बाद उनकी अर्थी ही उठी।

दस साल गुजर गए। देह और मन का वनवास बिना किसी कुसूर के झेलते-झेलते मालती असमय बूढ़ी हो गई है। भाग्य में कांटे लिखे थे तो चुभेंगे ही.... मानकर उसके सब्र का आंचल फैलता ही गया और सपने एक-एक कर ढहते गए। हर रात तनहाई उसे घाव देती रही और दिन का उजाला उसे सहलाता रहा, धूप मरहम लगाती रही और उसे फिर से घाव सहने के लिए तैयार करती रही। कई बार उसके मन में आया कि यह तो तय है कि कोई किसी के लिए नहीं मरता फिर वह ही क्यों मरे एक निर्मोही, बेवफा इनसान के लिए। जब जगदंबा को उसकी परवाह नहीं तो वह क्यों परवाह करे? देवरानी ने एक दिन कहा भी था- 'जीजी, आप दूसरे ब्याह का क्यों नहीं सोचती?'

वह चौंक पड़ी थी..... कहीं देवरानी इस मंशा से तो नहीं कह रही कि बद्री उसका और उसके

बच्चों का खर्च उठा रहा है?

'ब्याह का तो कभी सोचा नहीं..... हां, कहीं नौकरी मिल जाती तो कर लेती..... मुझे भी तो घर के खर्च में हाथ बंटाना चाहिए।'

'जीजी, नौकरी नहीं, ब्याह का सोचिए..... कोई ऐसा हो जिससे आप दिल की बातें शेयर कर सके। हर एक को ये कमी खलती है जीजी। अगर इसमें बच्चे बाधा हैं तो उन्हें मैं पाल लूंगी। आपका अकेलापन देखा नहीं जाता।

उसकी आँखें छलक आईं। कितना गलत समझ लिया था उसने देवरानी को। वक्त इतना बुरा गुजरा है कि भले-बुरे की पहचान करना भी भूल गई वह?

'नहीं..... अब ये नहीं होगा मुझसे। मेरे भाग्य में पति का सुख होता तो ये बैरागी क्यों होते?'

देवरानी ने उसके मन के सोए तूफान जगा दिए थे। ठीक ही तो कह रही थी देवरानी..... कोई तो ऐसा हो जिसके सीने में मुंह छुपा अकेलेपन के भयभीत कर देने वाले अँधेरों से छुटकारा पा सके। इस 'कोई' ने उसे तड़पाया भी बहुत पर वह जब्त करती रही। सोच की अथाह खाईयों में खुद को ढकेलती रही..... जहां केवल शून्य के.... सिवा पल-पल कम होती आस के कुछ न मिला। अब जब जगदंबा यहां स्वामी के रूप में पधारे हैं..... इस घर का हुलिया ही बदल गया है। अकेले व्यापार को सम्हालते और खुद की गृहस्थी के संग जगदंबा की गृहस्थी और बीमार माई को संभालते बद्री भैया असमय बूढ़े हो गए हैं। पीहू और संजय के पिता संबंधी सवालों का जवाब देते-देते मालती चिड़चिड़ी हो गई है। उसका हँसता खिलखिलाता चेहरा उदासी की राख में सूखा ठूंठ बनकर रह गया है।

पीहू और संजय स्कूल से लौटते ही उससे लिपट गए- 'मां..... आज सब हमें साधुबाबा के बच्चे कहकर चिढ़ा रहे थे। क्या हम साधु बाबा के बच्चे हैं? बताओ न मां.....'

तभी माई कराही थी। आज उनकी तबियत ज्यादा ही खराब है। वह बच्चों का खाना परोस झुंझलाई थी- 'देखो, तंग मत करो। चुपचाप खाना खाओ..... पता है न घर में सब बीमार हैं।'

बच्चे सहम कर खाना खाने लगे थे। उनकी आँखों में नमी तैर में नमी तैर आई थी। मालती को बच्चों का ऐसा चेहरा हमेशा पिघला देता है। बच्चों का मुंह देख-देख कर ही तो वह अपनी तनहाई से लड़ती रही, देवरानी के प्रस्ताव को नकारती रही..... उसे पता था अब उसकी जिंदगी में बहारें नहीं लौटेंगी..... उसे पता था सारी उम्र वह सुहागिन होकर भी वैधव्य की पीड़ा झेलेगी।

शाम घिर आई थी..... माई की सांस उखड़ने लगी थी। रजुआ डॉक्टर को लिवा लाया। दवा इंजेक्शन के बावजूद तबियत में सुधार नहीं हुआ। उसका मन जगदंबा की एक झलक पाने को छटपटा रहा था। घर में सब ठीक होता तो वह प्रवचन के पंडाल तक चली भी जाती। शायद बच्चों को भी ले जाती..... नहीं..... नहीं..... बच्चों को ले जाना ठीक नहीं। वहां जुटी भीड़ उन्हें तंग कर सकती है कि 'देखो अपने साधु पिता को।' जब इतने सालों से पिता के कर्तव्य भी उसी ने निभाए तो आगे भी निभा लेगी..... आखिर क्या फायदा है बताने का?

सुबह चार बजे माई ने आखिरी सांस ली। मानो वे जगदंबा के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही थी। क्या पता दिन भर तड़पी भी हो उसे देखने को? घर में मृत्यु का सन्नाटा पसर चुका था। मृत्यु का या बेटों के वियोग में तिल-तिल मरी माई के अंत का..... या मालती के सूने जीवन का.....

या पिता के रहते, बिना पिता के जीते बच्चों की लाचारी का?

सूरज निकलते ही अड़ोस-पड़ोस में भी खबर फैल गई कि माई नहीं रही। खबर जगदंबा तक भी पहुंची। दोपहर को जब माई को श्मशान ले गए तो जगदंबा भी श्मशान की ओर चल पड़ा। चिता को मुखाग्नि देने के लिए बद्री के हाथ में मशाल थमाई गई। जगदंबा थोड़ा नजदीक गया। बद्री ने देखा तो मशाल उसकी ओर बढ़ा दी- 'भैया..... लीजिए, ये हक आपका है।'

सहसा भीड़ को चीरते हुए पड़ोस के बुजुर्ग काका चीखे- 'खबरदार जो मशाल को हाथ लगाया। बद्री, मुखाग्नि तू ही देगा। तू सबसे बड़ा जोगी है..... इस कायर भगोड़े ने ये हक खो दिया। अपनी जिम्मेदारियों को निभाने से बढ़कर न कोई धर्म है, न तप।' जगदंबा सन्न रह गया। दस साल का तप, बैराग्य उसे मुट्ठी में दबी रेत सा फिसलता नजर आया। वह माई की चिता के पास घुटनों के बल बैठ फूट-फूटकर रो पड़ा।

●

<u>बहुवचन का एक और विशेषांक</u>

बहुवचन का अगला अंक प्रेमचंद साहित्य के समर्पित अध्येता-शोधकर्ता एवं प्रेमचंद विशेषज्ञ के रूप में विख्यात डॉ. कमल किशोर गोयनका के शोधपरक अवदान पर केंद्रित होगा। अंक के अतिथि संपादक सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक प्रो. नंद किशोर पाण्डेय होंगे।

विशेषांक के लिए लेखकों से डॉ. गोयनका के योगदान को रेखांकित करने वाले संस्मरण उनके द्वारा संपादित पुस्तकों पर आलोचनात्मक लेख, साक्षात्कार एवं अन्य सामग्री आमंत्रित है।
अंक से संबंधित सामग्री भेजने का पता-

प्रो. नंद किशोर पाण्डेय
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान
हिंदी संस्थान मार्ग
आगरा- 282005 (उ.प्र.)

अथवा-

संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554,
ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com

जल के लिए जालसाजी

सुषमा मुनीन्द्र

इस शहर को मौसम के साथ सामंजस्य बनाने की तमीज नहीं है या लोलुप लोगों की प्रकृति विरुद्ध कारतूतों को कारण मौसम ने वक्त पर आना-जाना छोड़ दिया है। बेवक्त आया क्रूर और तीक्ष्ण मौसम ऐसा आडंबर बिखेरता है कि ठंड की ठिठुरन, वर्षा की विभीषिका, गर्मी की गरमाहट से पता नहीं कितने लोग प्रतिवर्ष मरते हैं।

जल संकट ने इन दिनों शहर को बरगला रखा है। धरती का पानी खत्म होते-होते अंतिम रूप से यदि खत्म हो गया.....? जानकार कहते हैं यदि तीसरा युद्ध होगा, पानी को लेकर होगा।

विचलित है लेखपाल। उसके दिमाग में पानी ऐसा घुस गया है कि प्रत्येक स्थिति को पानी से जोड़कर देखने की उसकी वृत्ति होती जा रही है। नींद में कभी मुंह तक भरे, कभी पेंदी तक खाली जल पात्र दिखते हैं। उसका ही नहीं सभी का लक्ष्य पानी पर आकर अटक गया है। जलापूर्ति के लिए पानी का ट्रैक्टर टैंकर लेकर जैसे ही निर्देशित वार्ड में पहुंचता है तीक्ष्ण ताप और प्रहर का विक्षोभ न कर, सामर्थ्य भर बाल्टी, पीपे, कलसे समेटे हुए महिलाएं टैंकर को घेर लेती हैं। पाइप में सबसे पहले अपना जल पात्र दताने के लिए ऐसी उग्र हो जाती हैं मानो देवी चढ़ आई है। अभाव और आवश्यकता प्रबल हो तो लोग अपने व्यक्तित्व की ओर से लापरवाह हो जाते हैं। लेखपाल को ये उग्र महिलाएं असभ्य कम दीन अधिक लगती हैं। जानता है पानी के अभाव ने शहर का पानी उतार दिया है। इच्छा होती है नगर निगम के दफ्तर जाकर महापौर को दो टूक कहे- जिस दिन मालूम हुआ स्मार्ट सिटी बनाए जाने वाले नगरों की सूचि में इस शहर का नाम नहीं है, आपका और बहुतों का मुख कुम्हला गया था। आपने जलावर्धन और अमृत प्रोजेक्ट जैसी पानीदार जो योजनाएं बनायी हैं पहले उन्हें तो फाइल से बाहर निकालिए। लोगों को स्मार्ट सिटी जैसा झांसा नहीं, पानी चाहिए। मार्च ठीक से बीता नहीं है लेकिन लोग पानी के लिए दर-दर भटक रहे हैं......। इच्छा होती है लेकिन महापौर से सवाल करने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। वह मालिक के आदेश पर निर्देशित वार्ड में ट्रैक्टर टैंकर ले जाने वाला मामूली चालक है। सभी को पर्याप्त पानी न दे पाने के कारण व्यथित रहता है। जितने जल पात्र भरते हैं उससे अधिक खाली रह जाते हैं। खाली जल पात्रों वाली महिलाओं के चेहरे पर उतर आई दीनता लेखपाल को अपने घर की याद दिला देती है। पानी के अभाव में घर का माहौल इस तरह सामरिक हो गया है कि परिजन सीधे मुंह बात करना भूलते जा रहे हैं।

पानी की समस्या से लेखपाल का पुराना नाता है। खारे पानी के कारण उसके गांव बंदी की

तसवीर आज भी नहीं बदली। मीठा पानी पह ुचाने के लिए नल जल योजना के तहत दो हजार सात में पच्चीस लाख की लागत से बनवाया गया ओवर हेड टैंक आज भी उन्नत खड़ा है। इसमें पानी कभी नहीं आया। जो युवक नौकरी-चाकरी के लिए बूंदी से बाहर चले गए उनका विवाह हो गया। जो बूंदी में हैं उन्हें खारे पानी के कारण दुलहिनें नहीं मिल पा रही हैं। शहर में वाहन चालक नियुक्त होने के कारण लेखपाल के बाबू का विवाह हो गया जबकि बूंदी में वास कर रहे दो बूढ़े चाचा अविवाहित हैं। अम्मा सिलसिलेवार किस्सा बताती हैं -

(दो)

'... ठगे गए हम तो। हमारे बप्पा को बूंदी के खारा पानी की जानकारी रही पै सोचे लड़िका (दो बरस पूर्व नहीं रहे बाबू) सहर में रहता है, लड़िकी (अम्मा) को सुख रहेगा। हम नहीं जानत रहे डिराइवर साहब सहर में रहेंगे अउर हमको बूंदी पठा देंगे के घर-दुआर संभारो।... अरे बप्पा, इतना खारा पानी के न कपड़ा साफ होता रहा न जींगर (केश)। कहने को बूंदी में दस कुँआ रहे पै पानी खारा। बीहड़ के रास्ते से तीन किलोमीटर दूर दूसरे गांव से मूड़ में गगरी लादकर हम पानी लाते रहे। अब आठ हैंडपंप हैं पै पानी सिरिफ पुराणिक बाबा के घर के पास वाले हैंडपंप में आता है। पुराणिक बाबा हैंडपंप में अइसन कब्जा किए हैं कि एक गगरी पानी के लिए चिरौरी करनी पड़ती है... अरे बप्पा...।'

वृतांत सुन लेखपाल कृतार्थ हो जाता। ठीक हुआ बाबू जो तुम शहर में बस गए, दाई-बाबा के इह लोक छोड़ते ही अम्मा तुम बूंदी से उचटकर बाबू के पास आ गई वरना मैं और मेरे दोनों अग्रज घोड़ी न चढ़ते।

जल संकट के इस विषम दौर में बूंदी और शहर एक समान है। पानी कहीं नहीं है। कुछ दिन पहले वार्ड में पूरा टैंकर पानी वितरित होता था। अब बढ़ते अभाव पर नगर निगम का आदेश है एक टैंकर पानी दो वार्ड में वितरित किया जाए। लेखपाल नहीं समझ पाता दोनों वार्डों में समान रूप से आधा-आधा पानी वितरित करने जैसी उचित नाप-तौल कैसे करे।

सुबह साढ़े दस बजे टैंकर, वार्ड बाईस और पैंतीस में ले जाना है। रात ग्यारह का समय है लेकिन गर्मी के कारण नींद कोसों दूर है। नींद पूरी न हो तो काम में तल्लीनता और तत्परता नहीं बनती। लेखपाल के तीन वर्षीय बीमार बच्चे बेटू को ठंडा वातावरण चाहिए जबकि पंखा लुआर (गर्म हवा) फेंक रहा है। उसे कंधे से चिपकाकर टहलती हुई नीलकंठी सुलाने की नाकाम कोशिश कर पस्त है- 'गर्मी के कारण बेटू इतना रो रहा है। कूलर के लिए पानी का इंतजाम क्यों नहीं करते?'

लेखपाल ने तिर्यक होकर पत्नी को देखा 'नहाने, पीने के लिए पानी नहीं है। तुम्हें कूलर के लिए पानी चाहिए।'

'अपने लिए नहीं बेटू के लिए कह रही हूं। सोएगा नहीं तो और बीमार हो जाएगा।'

लेखपाल ने माना बेटू यदि इसी तरह रोता रहा, किसी को झपकी नहीं आएगी।

'अंग्रेज के पास हो सकता है बाल्टी दो बाल्टी पानी हो।'

लेखपाल के मोहल्ले का एकाकी अधेड़-अंग्रेज। भूरी चमड़ी, भूरे बाल के कारण लोग उसे अंग्रेज कहने लगे जो उसका नाम हो गया। लकड़ी की फर्दी से बनी छोटी कोठरी और बड़े आकार के आठ कनस्तर अंग्रेज की कुल जमा संपदा है। कांवर में लाद कर पता नहीं किस चांपाकल से दिन भर पानी लाता है। पंद्रह रुपये में एक कनस्तर पानी दूसरी, तीसरी मंजिल में रहने वालों को पहुंचाता

है। लेखपाल की आहट पर पसीने से तर अम्मा कुछ बुदबुदाने लगीं। अम्मा को बुदबुदाने-बड़बड़ाने का खूब अभ्यास है। उनकी बुदबुदाहट रहस्य की तरह, बड़बड़ाहट यातना की तरह होती है। लेखपाल ने पूछा - 'का अम्मा, जाग रही हो?'

'गर्मी बहुत है।'

(तीन)

'गर्मी के कारण बेटू सो नहीं रहा है। कूलर में डालने के लिए अंग्रेज से पानी लेने जा रहा हूं।'

अम्मा का मानना है पानी को व्यवसाय बना कर अंग्रेज लूट रहा है।

'सिया सुकुमारियों (नीलकंठी और दोनों बड़ी बहुओं) से कितना कहते हैं टैंकर तीसरे दिन आता है, पानी बहुत न अड़ाओ (फेंको) पै ये लोग शौक फरमाती हैं।'

लेखपाल समझता है, कितना ही सोचो पानी तीन दिन चलाना है पर भरे जल पात्र इतने मोहक लगते हैं कि पहले दिन अनुपात से अधिक पानी व्यय हो जाता है।

'अम्मा, एक लोटा पानी बेकार करने में भाभियां बच्चों को पीट देती हैं। तुम कहती हो शौक फरमाती हैं।'

लेखपाल तेजी से सीढ़ियां उतर गया। संयोगवश अंग्रेज के पास पानी उपलब्ध था। एक-एक कर दो डिब्बे पानी पहुंचाकर लेखपाल से बोला - 'भाई, तीस रुपिया।'

अम्मा ने अप्रसन्नता दिखाई 'अंग्रेज, लोग पौंसरे (निःशुल्क प्याऊ) लगाकर पुन्न कमाते हैं। तुम पानी को बिजनिस (कमाई) बना लिए हो।'

अंग्रेज निर्विकार स्वभाव का है 'माता, पूरा शहर घूम लो। पौंसरे न मिलेंगे। एक-दो हैं जहां छूंछे घड़े रखे हैं। इतनी दूर हैंडपंप से पानी लाता हूं, दूसरी, तीसरी मंजिल तक पहुंचाता हूं, तब लोग पैसा देते हैं।'

अम्मा के लेखे तीस रुपये में क्रय किया गया पानी अपव्यय था।

'लेखपाल, दुनिया भर को पानी बांटते हो। टैंकर पहले घर लाओ फिर वार्ड में ले जाया करो।'

'अम्मा, टैंकर देखते ही मोहल्ले की औरतें दौड़ आएंगी। उन्हें पानी न दूं तो मेरी शिकायत हो जाएगी। मालिक काम से निकाल देगा। समझा करो।'

'हम समझते हैं। इस घर की औरतें नहीं समझतीं। दुआर पर टैंकर आता है, इन लोगन से इतना नहीं होता कि जी भरकर पानी भर लें। सीढ़ियां चढ़ने में इन्हें हांफी (हांफना) आती है।'

बड़ी बहू मौके-मौके पर स्पष्टीकरण देने का बीड़ा उठाने लगी है।

'अम्मा, इतनी भीड़ रहती है। जितना हो सकता है हम तीनों पानी भरते हैं।'

'तुम लोगन में फुर्ती नहीं है। बाकी औरतें कैसे भरती हैं?'

'गदर मचाकर। हम लोग फूहड़ नहीं हो पाते।'

'गायत्री और गंगोत्री (बड़ी बहू की पुत्रियां) नहाने में इतना पानी अड़ाती हैं लेकिन चार-छः बाल्टी भरने में फैशन कम होता है।

'लड़कियों को आँख मारने के लिए चार-छः शोहदे डटे रहते हैं इसलिए ये दोनों नहीं जातीं। और अम्मा, आज तो कोई भी नहीं नहा सका। गायत्री और गंगोत्री भी।'

रोज यही बहस.... यही दृश्य...। न बहस स्थगित होगी, न दृश्य बदलेगा। लेखपाल कमरे में जाकर कूलर में पानी भरने लगा।

(चार)

कूलर की ध्वनि सुन भाभियों के बच्चे चादर, तकिया से लैस होकर आ गए।

'आहा कूलर... चाचा मुझे गर्मी लग रही है... चाचा मुझे भी... फर्श पर सो जाएंगे...।' रात कुर्बान हुई। सुबह नहाने को पानी नहीं लेकिन काम पर जाना है।

उबासी लेते हुए लेखपाल ने चाय के साथ दो पराठे खाए और चल दिया। उसे अपने काम में तुष्टि मिलती है। लगता है लोगों तक पानी पहुंचा कर नेक काम कर रहा है। अस्पताल, रेलवे स्टेशन, बस्ती .... कहां-कहां तो पानी पहुंचाता है। वार्ड पांच के पार्षद ने अपने घर में कुएँ जैसा बड़ा टैंक बनवाया है। कुछ बार रात में गुप्त रूप से पार्षद के घर और सिविल लाइन्स के बंगलों में टैंकर ले गया है। शहर में पानी को लेकर हाहाकार है लेकिन साहबों को बगिया सिंचवाने के लिए पानी चाहिए। लेखपाल को दूर किसी जल स्त्रोत से साइकिल, रिक्शों, ठेलियों में चिलचिलाते घाम में पानी ढोते लोग दीन लगते हैं। सार्वजनिक नल में तड़के उठ बाल्टी, कलसों, कनस्तरों की कतार लगाते लोग दीन लगते हैं। जिसका जल पात्र सबसे आगे रखा है वह पहले पानी भरेगा। दो-तीन दिन में अनिश्चित समय पर बीस-तीस मिनट के लिए नल में पानी आता है। सुजान लोगों ने प्रधान पाइप लाइन से सीधे कनेक्शन करा लिया है। ये लोग दूसरों के हिस्से का पानी अपने घरों में पंप की अनुकंपा से खींच लेते हैं। सर्वसाधारण के नल बूंद टपकाकर पराजित हो जाते हैं। टूटी-फूटी पाइप लाइन को अधिक तोड़कर पाइप लाइन से निकलती पानी की फुहार में नहाते-किलोल करते झुग्गी, झोपड़ी के नंग-धड़ंग बच्चे, कपड़ा फींचती साधनहीन स्त्रियां, प्यास बुझाते कुत्ते, सूअर, गाय दीन लगते हैं। लोगों द्वारा निजी स्तर पर बनाए जाते अवैध इंतजाम पर न नगर निगम का ध्यान जाता है न पार्षदों का। जल संकट है कि हर साल गहराता जा रहा है। उसे अपने काम से तुष्टि मिलती है। पर्याप्त नहीं फिर भी सामर्थ्य भर पानी लोगों तक पहुंचाता है।

आज वार्ड बाइस और पैंतीस में जाने का निर्देश है। पहले बाइस में पहुंचा। टैंकर की ध्वनि सुनते ही दर्जनों जल पात्रों से लैस महिलाओं ने टैंकर को घेर लिया। दो-चार पुरुष बहिष्कृत से एक ओर खड़े थे। महिलाओं के समूह में प्रविष्ट होकर ये लोग पानी प्राप्त करने का मानस नहीं बना पाते। कालांतर से पानी का प्रबंधन महिलाओं के जिम्मे रहा है। दूर पनघट से सिर पर गगरी रख कर पानी लाती थीं। अब टैंकर के पानी के लिए जंग लड़ती हैं। हमेशा की तरह सरगना टाइप की महिलाओं ने आक्रामक तरीके से टैंकर के मोटे पाइप पर कब्जा जमा लिया। पाइप के पास अडिग रहते हुए एक ओर खड़ी सहायक महिला से खाली पात्र लेकर भरे पात्र उसकी ओर खिसकाने लगीं। इन महिलाओं को पूरी छूट मिले तो मिट्टी के सकोरे और दीप में भी पानी भर लें। सहजता और धीरज से अपनी बारी की प्रतीक्षा करतीं सभ्य-सरल महिलाएं पाइप तक पहुंचने का प्रयास कर रही थीं लेकिन विफल हो जाती थीं। लेख पाल जानता है इन स्त्रियों के जल पात्र खाली रह जाएंगे। उसे ये स्त्रियां सताई हुई लग रही थीं। इच्छा हुई संवेदनशील मनुष्य की तरह इन सताई हुई स्त्रियों को सांत्वना देते हुए सरगनाओं को कतार में लगने का आदेश दे या आग्रह करे पर साहस न कर पाया। एक बार बड़ा उपद्रव हो गया था। उसने चेतावनी दी थी -

(पांच)

'लाइन बना कर शांति से पानी भरो। सबको भरने दो। सबको पानी चाहिए।

एक सरगना चीखी- 'टैंकर तीसरे दिन आता है। लाइन में लग कर पानी नहीं मिल पाता।

तुम पाइप बंद करने लगते हो कि पानी खत्म। तुम्हारे टैंकर में कितना कम पानी आता है।'

'दो वार्ड में सप्लाई देनी पड़ती है।'

'पानी बचाकर बेचते हो क्या?'

'इल्जाम लगाती हो। देखी हो बेचते? लाइन बनाओ वरना मैं टैंकर वापस ले जाऊंगा।'

'देखती हूं कैसे ले जाते हो।'

'पार्षद से शिकायत करता हूं। इस वार्ड में कबहूं नहीं आऊंगा।'

लेखपाल, जेब से मोबाइल निकालने लगा।

'पार्षद से तुम क्या शिकायत करोगे? मैं करूंगी। बड़ा मुंह फाड़ कर वोट मांगने आती थी। पानी का इंतजाम नहीं कर पाती। पार्षद किसी लायक नहीं है।'

'शिकायत करो। पार्षद खाली नहीं बैठी है जो तुम लोगन का फसाद सुनने आएंगी।'

'न आएंगी तो इस बार वोट न पाएगी। ....अरे आएंगी कैसे नहीं?' महिला ने मोबाइल से पार्षद को कॉल लगाया '.........मैडम .... आओ, देखो पानी के कारण आपके वार्ड में कैसा प्रपंच मचा है .... ड्राइवर टैंकर लौटा ले जाने की धमकी दे रहा है......।'

पहली बार पार्षद बनी युवा पार्षद जानती थी नगर निगम प्रशासन और जन प्रतिनिधियों में पानी के टैंकर को लेकर कैसा व्यवहार होता है। दोनों पक्ष जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं। कुछ अधि ाकारी छुट्टी लेकर बच्चों को ग्रीष्मकालीन यात्राएं करा रहे हैं। जो दफ्तर में हैं फोन कॉल रिसीव नहीं करते हैं। .... पार्षद में कर्तव्यनिष्ठा थी अथवा अनुभवहीनता में प्रपंच की गंभीरता न समझी। सुंदर सलवार-कुर्ता धारण कर, तेज गति से प्लेजर स्कूटी चलाते हुए अपनी प्रभावी स्थिति का बोध कराने स्थल पर पहुंच गई। सभ्य महिलाओं ने पार्षद को घेर लिया।

'मैडम ....सुनिए.........।'

शोर में पार्षद स्पष्ट कैसे सुनती? दोनों हाथ ऊपर उठाकर बुलंद आवाज में बोलीं 'लाइन बनाएं .... सबको पानी मिलेगा...... लाइन........... शांत रहें.......।'

सरगना टाइप महिला ने हुरपेटा 'कैसे शांत रहें? मैडम आपके घर की हौदी भरी होगी इसलिए आप साफ, सुथरी, शांत रह लेती हैं। हम लोग ठीक से नहा तक नहीं पाते। देख लो, मेरे चेहरे की रौनक चली गई।'

अभद्रता पर हैरान होकर पार्षद बोली- 'क्या नाम है आपका? तमीज से बात करें।'

'पानी ने तमीज खत्म कर दी है। पानी का संकट दूर न हुआ तो आपके वार्ड की कई महिलाएं मानसिक रोगी हो जाएंगी। आपको वोट देने के लायक नहीं रहेंगी।'

(छह)

'लाइन बनाएं....... सुनिए....... वरना मैं चली जाऊंगी। लेखपाल पाइप बंद करो....... ये लोग लाइन नहीं बनाती हैं तो टैंकर ले जाओ।'

आज क्या हर कोई लौट जाने की धमकी देगा? उत्प्रेरण कहां से आई मालूम नहीं लेकिन लेख पाल ने देखा सरगना टाइप महिलाएं पार्षद को घेरकर मार रही हैं। चोटिल चेहरे और फटे वस्त्र वाली पार्षद को लेखपाल ने ऐन-केन-प्रकारेण हिंस्र महिलाओं की जद से निकालकर उसके कंधों पर अपना अगौंछा डाल दिया। रोती पार्षद स्कूटी स्टार्ट कर चली गई। लेखपाल का चेहरा जड़ था। जल संकट को लेकर महिलाओं में आक्रामकता और असंतोष बढ़ता गया तो किसी दिन वह भी पिट जाएगा।

किसी एक पर आरोप तय नहीं हो सकेगा क्योंकि भीड़ का नाम, चेहरा, पहचान नहीं होती। आइंदा वह चुपचाप पाइप खोल देगा। किसे पानी मिला, किसे नहीं इस प्रपंच में नहीं पड़ेगा।

भविष्य कोई नहीं बांच पाता।

शहर के इतिहास में वह हुआ जो नहीं हुआ था। वार्ड बाइस में आधा पानी वितरित कर लेखपाल बाईपास से वार्ड पैंतीस की जानिब रवाना हुआ। दोपहर का सूर्य चमड़ी झुलसाए दे रहा था। क्रॉस हो रहे दो-चार बड़े वाहनों के अतिरिक्त पथ सुनसान था। बाइक पर सवार तीन लड़कों ने लेखपाल को रोक लिया।

'टैंकर वाले कहां जा रहे हो?'

'वार्ड पैंतीस।'

'हमारे वार्ड में चलो।'

'पैंतीस में जाने का आदेश है।'

'मेरा आदेश मानो। चलो हमारे पीछे-पीछे।'

'कइसी बात करते हैं?'

'ऐसी।'

दो लड़कों ने लेखपाल को खींच कर ट्रैक्टर से उतारा और दोनों बाहों को जकड़ लिया। तीसरा लड़का विद्युत की त्वरा से चालक सीट पर आरूढ़ होकर टैंकर ले उड़ा। लेखपाल पहली बार जान रहा था हादसा क्षणों में घट जाता है। दिनदहाड़े इतने साधारण तरीके से पानी लूट लिए जाने जैसी असंभव वारदात पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। तत्काल प्रभाव से जड़ हुई बुद्धि जब कुछ सक्रिय हुई, मालिक को कॉल करने के लिए जेब से मोबाइल निकालने का प्रयास करने लगा। एक लड़के ने उसकी जेब से मोबाइल निकालकर अपनी जेब में डाल लिया।

'होशियारी दिखाई तो खून खराबा हो जाएगा। मैं पानी चाहता हूं, खून खराबा नहीं। घर में एक बूंद पानी नहीं है।'

उन्मादी लग रहे लड़कों से बहस या विरोध करने का मतलब न था। लेखपाल निष्क्रिय हो गया। आधे घंटे बाद लड़के बाइक पर सवार हुए।

'मोबाइल लो.... होशियारी नहीं।'

(सात)

ऊष्णता बरसाता आसमान।

भभके छोड़ती धरती।

बरसों पुराने वृक्ष बाई पास की भेंट चढ़ गए वरना छाया में बैठकर अपनी मनःस्थिति को संभाल लेता। उसकी मनःस्थिति विचित्र थी। लड़के उसे असामाजिक लेकिन विवश और सभ्य लग रहे थे। पानी के अभाव में विवश हुए युवक सभ्य थे इसलिए मोबाइल नहीं हड़पा। लेखपाल का फोन कॉल सुन मालिक चीखने लगा। तौहीन करने, तोहमत लगाने की आकाओं की वृत्ति होती है।

'.......टैंकर न मिला तो चेहरा न दिखाना..... लेखपाल वहीं रुको..... आता हूं.......।'

यहां आकर मालिक युवकों के फुट प्रिंट लेगा? विषाद में डूबा लेखपाल ऊष्ण घाम में तप रहा था। तेज गति से जीप चलाता मालिक यथाशीघ्र आ गया।

'.....कैसे ले गए?...... तुमने टैंकर क्यों ले जाने दिया?..... नशा तो नहीं किए हो?.... लड़के कैसे

थे?' लेखपाल की विचित्र मनःस्थिति। हर स्थिति को पानी से जोड़कर देखने का आदी होता जा रहा है।

'तीनों बहुत दुबले थे। बहुत थके लग रहे थे, जैसे कब से नहाये न हों।'

'लेखपाल पानी तुम्हारे दिमाक में घुस गया है। ये नहीं पूछ रहा हूं लड़के कब से नहीं नहाए हैं। उनका हुलिया पूछ रहा हूं।'

'हुलिया बता रहा हूं।'

'बेवकूफ हो।'

मुंह बनाए हुए मालिक ने कई लोगों को मोबाइल से कॉल कर ट्रैक्टर टैंकर का नंबर नोट कराया। दिखे तो सूचित करें। वार्ड पैंतीस के पार्षद को अवगत कराया। पार्षद ने सुझाव दिया- 'निगम आयुक्त को जानकारी दो। थाने में रिपोर्ट लिखाओ।'

मालिक और लेखपाल नगर निगम कार्यालय पश्चात निकटवर्ती थाने गए। सब इंस्पेक्टर की मुद्रा ऐसी हो गई जैसे प्रहसन सुन रहा है- 'मार-पीट, लूट-पाट, चोरी-डकैती, हत्या-आत्महत्या, गुमशुदा-बलात्कार की इतनी रिपोर्ट लिखनी पड़ती है, अब पानी लुटने की रिपोर्ट लिखूं?'

हादसे से जड़ हुई बुद्धि के कारण लेखपाल ने माना मतिभ्रष्ट सब इंस्पेक्टर बात को स्पष्टतः नहीं समझ रहा है- 'साहेब, सिरिफ पानी नहीं, लड़के ट्रैक्टर टैंकर ले गए। 'लेखपाल की अनभिज्ञता को सब इंस्पेक्टर ने वक्रोक्ति माना- 'जानता हूं। लड़के पानी खीसे (जेब) में भरकर नहीं ले गए हैं। पानी को बिना कंटेनर के नहीं लूटा जा सकता। लड़कों से तुम्हारी मिलीभगत तो नहीं है? कुछ रुपयों के लालच में तुमने लड़कों को टैंकर ले जाने दिया।'

(आठ)

'साहेब, पानी बांटने को मैं पुन्न का काम मानता हूं। कुछ पैसों के लिए ईमान नहीं छोड़ सकता। पानी को लेकर जो सिर फुटौव्वल हो रही है, देखकर डर लगता है। अभी एक दिन पार्षद मैडम को औरतों ने पीटा। आज लड़कों ने मुझे पीटा। किसी दिन कोई हत्या कर देगा। रात-बिरात टैंकर लेकर दूर-दूर तक जाता हूं।'

'लड़के टैंकर ले गए, यह तुम्हारी बेवकूफी है। हो सकता है इसी तरीके से और लोग टैंकर लूटने लगें। इसके जिम्मेदार तुम होगे।'

लेखपाल का चेहरा जर्द हो गया।

'साहेब, कैसी बात करते हैं?'

'सीधी बात करते हैं।'

'जल के लिए ऐसी जालसाजी पहले नहीं सुनी।'

'सर रिपोर्ट ....।' मालिक को लेखपाल की मनःस्थिति की नहीं टैंकर की फिक्र थी।

'अभी चौबीस घंटे नहीं हुए हैं लेकिन रिपोर्ट ....।' सब इंस्पेक्टर ने जिस बेरुखी से कच्ची रिपोर्ट बनाई, जाहिर था पतासाजी के लिए प्रयास नहीं करेगा।

मालिक और लेखपाल देर रात तक वार्डों, बस्तियों, एकांत, खेत-बागान में टैंकर ढूंढ़ते रहे। नहीं मिला। तीसरे दिन किसी ने निगम में खबर की- डिलौरा के पास जंगल में एक ट्रैक्टर टैंकर लावारिस खड़ा है। निगम ने मालिक को सूचित किया। मालिक, लेखपाल के साथ निर्धारित स्थल पर पहुंचा। ट्रैक्टर में तोड़फोड़ नहीं की गई थी। ईंधन नहीं चुराया गया था। अलबत्ता पानी एक बूंद नहीं बचा था।

●

घर का चिराग

संजय कुंदन

अब इसके बाद बचता ही क्या है! उनकी जिंदगी एक दिन इस मोड़ पर आ खड़ी होगी, यह तो पारसनाथ ने सपने में नहीं सोचा था। उन्होंने बुरे से बुरे दिनों की कल्पना की थी, पर यह क्या है। यह तो...।

क्या करें वह? निकल लें कहीं भी ऐसे ही। साधु बन जाएं, लेकिन मन की टीस तो तब भी रहेगी। उनके भीतर जो हाहाकार मचा हुआ है, वह तो पीछा छोड़ेगा नहीं। फिर क्या पर्दा गिरा दें? पटाक्षेप हो इस जीवन का? सारा खेल ही खत्म हो जाए!

इस महानगर में ऊंची इमारतों से, फ्लाईओवरों से कूदकर या मेट्रो लाइन पर छलांग लगाकर कोई न कोई अपनी जान देता रहता है। दो तरह के लोग मरते हैं। या तो नौजवान जो आमतौर पर प्रेम में चोट खाए रहते हैं या फिर 40-50 के अधेड़ जो कारोबार में असफल होने या भारी-भरकम कर्ज न चुका पाने के कारण मौत को गले लगा लेते हैं। पारसनाथ की गिनती इन दोनों में नहीं होती। जब उनकी खुदकुशी की वजह सामने आएगी, तो लोग आश्चर्य करेंगे।

हालांकि आत्महत्या के खिलाफ थे वह। इसे वह कायरता मानते थे लेकिन ऐसे जीने का भी क्या मतलब, जब जीवन का सूत्र ही हाथ से छूट जाए।

इसी ऊहापोह में पारसनाथ तेजी से चले जा रहे थे। कोई देखता तो यही सोचता कि इन्हें कहीं पहुंचने की जल्दी है। पर पहुंचना कहां है, यही तो उन्हें नहीं पता। कोई परिचित मिलता तो आश्चर्य कर सकता था कि इस वक्त रात में घर के कपड़े और हवाई चप्पल में वह कहां जा रहे हैं। तमाम लोग घरों की ओर लौट रहे थे और पारसनाथ घर से दूर चले जा रहे थे।

कौन यकीन करेगा कि अपने बेटे सत्यम की हरकतों से दुःखी होकर पारसनाथ इस तरह से घर से निकल पड़े हैं। कोई सोच भी नहीं सकता कि सत्यम एक दिन ऐसी हरकत करेगा। मां-बाप से झगड़ना कोई बड़ी बात नहीं लेकिन सत्यम ने तो हदें पार कर दीं। शहर के नामी पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाले और पढ़ाई में हमेशा अूव्वल रहने वाले लड़के की भाषा ऐसी कैसे हो गई। जोर-जोर से चिल्लाना और गाली-गलौज पर उतर आना, यह सब कैसे हो गया।

पारसनाथ अब तक झोपड़पट्टी के लोगों पर हँसते थे। कुछ साल पहले तक सत्यम कभी-कभार ऊंची आवाज में बोलता तो वह उसे कहते, 'क्या झोपड़पट्टी वालों की तरह कर रहे हो। तुम भी बन जाओ उन्हीं की तरह। वहां शाम में दारू पीकर बाप-बेटे गाली-गलौज और मारपीट करते रहते हैं।

क्या अपने घर को वैसा ही बनाना चाहते हो?' अब उनका घर वैसा ही बनता जा रहा था। पड़ोसी उन्हें लेकर खुसुर-फुसुर करने लगे थे। पिछले ही रविवार शास्त्रीजी ने बात को घुमाकर कहा, 'शर्मा जी आप लोगों के बारे में क्या अनाप-शनाप बक रहे थे। कह रहे थे कि आपके घर से देर रात लड़ने-झगड़ने की आवाज आती रहती है। मैंने उनसे साफ कह दिया कि आपको कोई गलतफहमी हो गई है। पारस बाबू का घर इस सोसाइटी में सबसे सभ्य और शांत घर है। फिर झगड़ा करेगा कौन? सत्यम जैसे शांत और सुशील लड़के तो कम ही होते हैं।'

पारसनाथ को काटो तो खून नहीं। अगर पारसनाथ बता दें कि सत्यम उन लोगों से क्या व्यवहार करता है, तो शायद सबको झटका लगेगा। या फिर हो सकता है, सबको सचाई का पता हो। मन ही मन हँसते होंगे वे। यहां तो हर किसी की नजर एक दूसरे की पराजय पर लगी रहती है। कोई नहीं चाहता अगला खुश और संतुष्ट हो या तरक्की करे।

सत्यम को लेकर पारसनाथ से जलने वाले कम नहीं रहे। आखिर किसी के बच्चे पढ़ाई और अन्य मामलों में सत्यम के आगे ठहरते नहीं थे। सत्यम स्कूल के दिनों में हमेशा अव्वल आता रहा। अन्य गतिविधियों में भी वह हमेशा आगे रहता। सोसाइटी के लोग पारसनाथ से कहते, 'आपको क्या समस्या है। आपको तो लायक बेटा मिला हुआ है।'

'लायक बेटा!'... उस लायक बेटे ने आजकल उनका जीना हराम कर रखा था। वह समझ नहीं पा रहे थे कि इससे कैसे निपटें। जीवन की बड़ी से बड़ी उलझनें वह सुलझा लिया करते थे। अपने दायरे में उन्हें एक बड़ा रणनीतिकार माना जाता था। उनके दोस्त अपनी निजी समस्याओं में उनसे सलाह लेते थे। उनके बॉस भी खुरपेंच करने वाले कर्मचारियों को रास्ते पर लाने की रणनीति उनसे पूछकर बनाया करते थे। लेकिन अब एक शैतान लड़का, जो उन्हीं का अंश था, उनके लिए चुनौती बन गया था। सत्यम के व्यवहार से पारसनाथ की पत्नी सरिता कहीं ज्यादा परेशान थी पर वह चुपचाप सब कुछ सह रही थी।

करीब एक महीना से उन्हें सत्यम के व्यवहार में बदलाव दिखने लगा था। वह छोटी-छोटी बात पर बहुत ज्यादा नाराज हो जाता था। घर में कुछ भी उसके मन के विपरीत होता, तो वह बौखला जाता और अपने मां-बाप को कोसने लगता। कॉलेज जाते समय अगर उसे शर्ट या जूता जगह पर नहीं मिलता तो वह चिल्ला पड़ता। इसी तरह खाने-पीने में नखरे करता। कई बार खाना परोसे जाने के बाद कहता कि ये चीजें उसे पसंद नहीं। फिर बेचारी सरिता उसके लिए कुछ और बनाती या फिर पास के रेस्टोरेंट से कुछ मंगवाया जाता।

एक दिन उसने कहा, 'ओह। हम कितने गरीब हैं। कुछ नहीं है हमारे पास।'

पारसनाथ को यह बात चुभ गई। उन्होंने कहा, 'कैसे होगा। हमने औकात से ज्यादा तुम पर खर्च किया। तुम्हें महंगे स्कूल में पढ़ाया। महंगी कोचिंग दिलाई। तुम्हारी हर डिमांड पूरी की? इन सबसे कुछ बचता तब तो कुछ सामान जोड़ते।'

सत्यम ने कहा, 'क्यों पढ़ाया। नहीं पढ़ाते। कम से कम हम ढंग की सोसाइटी में तो रहते।' पारसनाथ आश्चर्य से उसका मुंह देखते रह गए। उन्हें यकीन नहीं हो रहा हो रहा था कि इस लड़के में इतना बदलाव कैसे आ गया। पहले तो वह इस तरह की बातें नहीं किया करता था। वह जो भी खरीद देते, उसे पहन लेता और खुश होता।

एक दिन देर से आने पर उन्होंने टोका तो वह चिल्ला पड़ा 'मैं जब चाहूं तब आऊं, तुम्हारा गुलाम हूं क्या।'

'गुलाम की बात नहीं है।' पारसनाथ ने उसे समझाते हुए कहा, 'तुम्हारी चिंता लगी रहती है। एक फोन तो कर देते।'

'मैं नहीं करूंगा फोन।' यह कहकर वह बड़बड़ाता हुआ अपने कमरे में चला गया। सरिता उसके पीछे-पीछे कमरे में गई तो वह भड़क उठा, 'तुम ऐसे ही चली आई मेरे कमरे में। मेरी कोई प्राइवेसी है कि नहीं।'

फिर उसने एक फरमान सुनाया, 'मेरे कमरे में कोई ऐसे ही मुंह उठाए नहीं चला आएगा। जिसे आना होगा, वह दरवाजे पर नॉक करेगा।' अगले दिन से उसने सबके साथ खाना भी छोड़ दिया। उसने सरिता से कहा कि उसे अपने पापा से नफरत है। उनके साथ बैठकर खाना उसे मंजूर नहीं।

उस दिन बड़े व्यथित हुए थे पारसनाथ। सत्यम उनसे नफरत करे, लेकिन वह ढंग से तो रहे। वह न जाने किस रास्ते पर चला जा रहा था। अब वह अपने बारे में ज्यादा बताता भी नहीं था। हालांकि कभी-कभार खुद ही अपने बारे में बात करने लगता लेकिन कुछ ज्यादा पूछने पर नाराज हो जाता। यह समझना मुश्किल था कि कब उसका मूड कैसा हो जाएगा।

उसे लेकर क्या-क्या सपने देखे थे उन्होंने। वह और सरिता, दोनों अपने को भूल गए थे। अपनी हर इच्छा को ताक पर रख दिया। घूमाना-फिरना छो़ड़ दिया, दोस्तों-रिश्तेदारों से मिलना लगभग छोड़ दिया। सिर्फ इसलिए कि सत्यम को उनका साथ मिले, अच्छा माहौल मिले। उसे किसी बात की तकलीफ न हो। वह खूब पढ़े और अच्छे नंबर से पास हो। फिर देश के नामी विश्वविद्यालय में पढ़े। अच्छा करिअर बनाए। जो कुछ पारसनाथ खुद हासिल नहीं कर पाए, उनका बेटा हासिल करे।

कई बार तो उन्हें महसूस होता था कि वह अपने शरीर में नहीं हैं। वह बस आत्मा हैं। सत्यम का शरीर ही उनका शरीर है। उसे खाते देखते तो लगता कि खाना उनके पेट में पहुंच रहा है। जब कभी उसे दर्द होता तो वह बेचैन हो जाते। जब तक सत्यम सामान्य नहीं होता, उन्हें राहत नहीं मिलती।

जब सत्यम को बारहवीं में अपेक्षा से कम अंक मिले, तब पारसनाथ को महसूस हुआ कि जीवन कोई रासायनिक प्रक्रिया नहीं है कि निर्धारित मात्रा में विभिन्न चीजों को मिलाने से अपेक्षित वस्तु बना ली जाए। यह जरूरी नहीं कि एक बच्चे को अच्छी शिक्षा और अनुकूल माहौल देने से वह परीक्षा में बहुत ज्यादा अंक ले ही आए। इसके लिए बहुत सी बातें मायने रखती हैं। फिर संयोग या प्रारब्ध भी कोई चीज है। उन्होंने वादा किया था कि 95 प्रतिशत लाने पर वह सत्यम को बाइक खरीदकर देंगे। इससे काफी कम नंबर लाने के बावजूद उन्होंने उसे बाइक खरीद कर दी। हालांकि इसके लिए घर का बजट गड़बड़ा गया। उन्हें भरपाई के लिए दफ्तर के अलावा प्राइवेट काम करने पड़े।

सरिता का कहना था कि सारी गड़बड़ी तब शुरू हुई जब से सत्यम एक लड़की के चक्कर में पड़ा। कुछ समय पहले बहुत खुश होकर उसने अपनी मां को बताया था कि उसकी एक लड़की से दोस्ती हो गई है। फिर यह भी स्पष्ट किया था कि यह सामान्य दोस्ती नहीं है। जब सरिता ने यह बात पारसनाथ को बताई तो उन्होंने इसे सहजता से लिया। अब इस उम्र में यह सब तो होना ही है, लेकिन वह जल्दी ही इस बात से चिंतित हो गए कि कहीं उसकी पढ़ाई न गड़बड़ा जाए।

वह घुमा-फिराकर उसे सुनाते रहते कि इस उम्र में यह सब करके कोई फायदा नहीं है। पहले आदमी अपने को सेटल कर ले, फिर तो इन सब के लिए पूरी उम्र पड़ी हुई है। इस तरह की बातों पर सत्यम कुछ नहीं बोलता। अब वह अपने-आप मे रहता। कभी भी घर से निकल जाता और बहुत देर से आता। समझ में नहीं आता था कि कब उसका मूड क्या हो जाएगा। कभी वह बेहद खुश रहता तो कभी बेहद उदास। एक बार उसके कॉलेज से उसके विभागाध्यक्ष का फोन आया कि सत्यम अकसर अपने टीचरों के साथ बेवजह बहस करता है। पारसनाथ फोन पर ही गिड़गिड़ाए। उन्होंने सत्यम की ओर से माफी मांगी।

अब कई बार ऐसा होता कि सत्यम की दोस्त स्कूटी से सोसाइटी के गेट पर चली आती। सत्यम गेट पर उससे घंटों बातें करता रहता। इस पर सरिता बहुत परेशान हो जाती थी क्योंकि जब तक दोनों गेट के आसपास रहते, सोसाइटी के कई लोगों की नजर उधर ही टंगी रहती। यह मध्यवर्गीय लोगों की सोसाइटी थी, यहां इस तरह के मामलों में बात का बतंगड़ बन जाता था। पारसनाथ के परिवार की और खुद सत्यम की यहां बड़ी अछि छवि थी। पारसनाथ और सरिता नहीं चाहते थे कि सत्यम के बारे में ऐसी-वैसी बातें फैलें। पारसनाथ और सरिता ने उसे समझाया कि वह उस लड़की के साथ गेट पर इस तरह बात न करे। उसे मिलना है तो दूर कहीं चला जाए। या फिर उसे घर बुला ले।

ऐसा कहने के दो ही दिन बाद ही उसने सूचना दी कि उसकी गर्लफ्रेंड घर आने वाली है। उस दिन सत्यम बड़े तनाव में था। कभी कहता सोफा इधर से हटाकर उधर रख दो, तो कभी कहता घर के पर्दे बदल दो। सरिता ने एकाध बार आपत्ति की तो वो भड़क गया। उसने कहा कि उसकी किस्मत खराब है। वह गंवार, देहातियों के बीच पैदा हो गया है। पारसनाथ सब कुछ सुन रहे थे लेकिन उन्होंने कुछ नही नहीं कहा। वह नहीं चाहते थे कि घर मे तनाव हो। हालांकि वह समझ नहीं पा रहे थे कि सत्यम आखिर इतना परेशान क्यों है। घर का माहौल कुछ ऐसा बन गया था जैसे बारात आ रही हो या कोई वीआईपी आ रहा हो। हालांकि यह छुट्टी का दिन था फिर भी पारसनाथ ने सोचा कि वह चुपचाप निकल लें। कौन फंसे इन चक्करों में। वह यह सोच ही रहे थे कि सत्यम ने आकर एक तरह से आदेश सुनाया, 'तुम भी रहोगे। मै उसके घर जाता हूं तो उसकी मम्मी और पापा दोनों मुझसे बाते करते हैं। और हां, तुम फिलॉसफी मत झाड़ने लगना उसके सामने या अजीब गब्दू जैसा मुंह मत बना लेना।'

पारसनाथ को लगा, वे बुरे फंसे। अब एक कठिन परीक्षा से उन्हें गुजरना होगा।

खैर, वह लड़की जिसका नाम 'रूचि' था, आई और गई। पारसनाथ और सरिता ने अपनी ओर से पूरी कोशिश की कि उसके स्वागत-सत्कार में कोई कमी न रह जाए। सरिता शुरू से अंत तक उनकी खिदमत में लगी रही। कभी पानी लाती तो कभी नमकीन तो कभी कोल्ड ड्रिंक।

पारसनाथ को जिस बात की आशंका थी, वही हुआ। वे लोग पास नहीं हो पाए। दूसरे दिन सत्यम का मुंह लटका हुआ था। बार-बार वह भुनभना रहा था, 'मेरी तो किस्मत खराब है।'

पारसनाथ ने पूछा, 'ऐसा क्या हो गया कि तुम किस्मत को कोस रहे हो।'

सत्यम ने खीझकर कहा, 'तुम लोगों ने तो बरबाद करके रख दिया मुझे।'

'क्या किया हम लोगों ने?'

‘तुम लोगों को मैंने कहा था कि ‘रूचि’ से, ढंग से पेश आओ, लेकिन नहीं.... तुम लोगों को तो लगता है कि जैसे संसार में सबसे बुद्धिमान आदमी तुम्हीं लोग हो।’

‘ऐसा क्या कर दिया हमने?’ पारसनाथ ने अपना स्वर नरम बनाते हुए सवाल दोहराया।

सत्यम फट पड़ा, ‘लगे उसको उपदेश झाड़ने।’

‘कहां उपदेश झाड़ा... यही तो कहा कि पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान दो।’

‘इसका तो यही मतलब हुआ न कि तुम्हें उसका घर आना पसंद नहीं आया।’

‘इसका यह मतलब कैसे हुआ?’

‘तुम्हारे कहने का अंदाज कुछ ऐसा था कि हम लोग पढ़ाई-लिखाई छोड़कर केवल घूमते-फिरते रहते हैं।’

‘अरे भाई मैं और क्या कहता। मैं तो यही कह रहा था कि कंपटीशन बहुत है आजकल। अच्छा करिअर बनाने के लिए बहुत पढ़ाई की जरूरत है।’

‘पढ़ाई के अलावा तुम कोई और बात नहीं कर सकते थे।’

‘मैं और क्या बात करता।

‘यही तो तुम्हारी प्रॉब्लम है।’ यह कहकर सत्यम ने टेबल पर रखा एक ग्लास ऊपर उछाल दिया जो सीधा ट्यूबलाइट में जा लगा। ट्यबलाइट फूट गई और अँधेरा हो गया। फिर सत्यम ने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया और जोर-जोर से रोने लगा।

पारसनाथ और सरिता सकते में आ गए। उन्हें कोई उपाय ही नहीं सूझ रहा था। उन्हें कई तरह की आशंका सताने लगी थी। ऐसी ही हालात में बच्चे कोई खतरनाक कदम उठा लेते हैं। उन्होंने देर तक दरवाजा पीटा, पर सत्यम ने दरवाजा नहीं खोला। पारसनाथ रात भर उसके दरवाजे के आसपास टहलते रहे। न खाया-पिया, न सोये। बड़ी मुश्किल से रात बीती।

रात की घटना की छाप पारसनाथ के चेहरे पर दूसरे दिन साफ नजर आ रही थी, जिसे उनके मित्र मेहताजी ने पढ़ लिया। पारसनाथ के दफ्तर में एक मेहताजी ही थे, जिनसे पारसनाथ कभी-कभार अपने मन की बात कर लिया करते थे हालांकि सत्यम को लेकर आज तक कोई बात नहीं हुई थी।

मेहताजी ने जब टोका तो पारसनाथ ने पहले टालने की कोशिश की। मेहताजी ने मुस्कुराकर कहा, ‘अब मुझसे मत छुपाओ। बता दो, मन हल्का हो जाएगा।’

दोनों ऑफिस से बाहर निकलकर चाय की दुकान पर आए। पारसनाथ ने चाय पीते हुए रात की सारी बात बता दी। मेहताजी बोले, ‘अरे, आजकल हर घर में यही हो रहा है। इस जेनरेशन का यार कुछ समझ में नहीं आता। मुझे लगता है कि तुम्हें किसी सायकियाट्रिस्ट से मिलना चाहिए।’

पारसनाथ चौंके, ‘क्या तुम्हें लगता है कि सत्यम पागल हो चुका है?’

‘यार, सायकियाट्रिस्ट की बात सामने आते ही हमें लगता है कि मामला पागलपन का है। ऐसा नहीं है। आज के बच्चों पर मेंटल प्रेशर बहुत ज्यादा हैं। ये सब डिप्रेशन के लक्षण हैं। मनोचिकित्सक कोई रास्ता बता सकते हैं।’

‘लेकिन सत्यम को किसी मनोचिकित्सक के पास ले जाना आसान नहीं है। वह तो हमारी कोई बात मानता नहीं है। वह तो स्वीकार ही नहीं करेगा कि उसके साथ कोई समस्या है।’

मेहताजी कुछ सोचकर बोले, 'कोई बात नहीं। तुम तो मनोचिकित्सक से मिल सकते हो। तुम उन्हें सत्यम के डिटेल्स उन्हें बता सकते हो।'

'लेकिन किस डॉक्टर के पास जाऊं?'

'हैं मेरे एक परिचित, डॉ. डिडवानिया। दरअसल वे मेरे फूफाजी के बैचमेट हैं। कई बड़े सरकारी अस्पतालों में रहकर रिटायर हुए हैं। काफी बुजुर्ग हैं। अब अपने घर पर ही प्रैक्टिस करते हैं। मैं उन्हें फोन कर दूंगा। तुम कल ही चले जाओ।'

दिल्ली के एक पॉश इलाके में डॉ. डिडवानिया का घर था। पारसनाथ ने उनसे मिलने के लिए आधे दिन की छुट्टी ली थी। उन्होंने सरिता को भी साथ ले लिया था क्योंकि सत्यम के बारे में ज्यादा जानकारी वही दे सकती थी।

रास्ते भर पारसनाथ काफी तनाव में रहे। करीब एक घंटे के सफर में ऑटो में बैठे हुए कई डरावने ख्याल उन्हें परेशान करते रहे। आखिर जिनका कोई बच्चा पागल हो जाता होगा, उनके ऊपर क्या गुजरती होगी। कोई सपना देखना तो दूर, वे बस यही सोचते होंगे कि बच्चा किसी तरह जीवित रहे। पारसनाथ के एक टीचर का बेटा पागल था। कई बार वह मोहल्ले में यूं ही भटकता दिखाई देता। गली के कुछ बदमाश उस पर पत्थर फेंकते थे। वह घायल हो जाता था। उसके घुटनों से खून टपकता रहता था। ऐसी हालत में जब वह घर लौटता होगा, तब उसके मां-बाप पर क्या बीतती होगी, यह सोचते ही पारसनाथ को लगा कि उनके भीतर से विस्फोट की तरह रूलाई बाहर आएगी, लेकिन उन्होंने उसे विकट खांसी में तब्दील कर दिया। सरिता ने तुरंत उन्हें पानी की बोतल निकालकर दी। एक बुरे ख्याल से पीछा छूटा तो दूसरी भयावह आशंका सामने आ खड़ी हुई कि कहीं सत्यम ने ड्रग्स की तरफ कदम बढ़ा दिए तो। ड्रग्स का मतलब है तिल- तिल कर मरना। फिर पारसनाथ की जिंदगी का यही मतलब रह जाएगा- बेटे की मौत का इंतजार। एक आदमी को अपने जवान बेटे की लाश देखकर कैसा लगता होगा? यह सोचते ही पारसनाथ को लगा कि उनका सिर फट जाएगा। वह तो गनीमत रही कि डॉक्टर की कोठी सामने दिख गई। मकान का नंबर दूर से ही झलक रहा था।

जब पारसनाथ और सरिता डॉ. डिडवानिया की कोठी के सामने पहुंचे तो उन्हें समझ में ही नहीं आ रहा था कि इस बंगले में घुसना कहां से है। उसमें लोहे के बड़े-बड़े तीन गेट दिख रहे थे। पारसनाथ अंदाजा लगाने लगे कि दिल्ली के इस महंगे इलाके में इतनी बड़ी कोठी की कीमत क्या होगी। क्या एक मनोचिकित्सक की आमदनी इतनी ज्यादा होती है। हो सकता है डॉ. डिडवानिया खानदानी रईस हों।

पारसनाथ इन्हीं सब में उलझे हुए थे कि सरिता ने विशाल दीवारों में एक छोटा सा कॉलबेल ढूंढ निकाला। उसे दबाने के कुछ ही सेकंड बाद एक फाटक धीरे-धीरे खुला। एक छोटे कद के गोरे-चिट्टे बूढ़े ने गेट खोला था। उसकी झक सफेद दाढ़ी संतों जैसी थी। उसने पायजामा और बनियान पहन रखी थी। पारसनाथ ने सोचा, क्या डॉक्टर साहब ने इतना बूढ़ा चौकीदार रखा हुआ है। या फिर शायद यह उनका कंपाउंडर हो।

बूढ़े ने उन्हें अंदर आने का इशारा किया। कंपाउंड में शानदार बागवानी का नजारा दिख रहा था। बीचोंबीच मखमली घास लगाई गई थी और चारों तरफ फूल खिले थे। गंदगी का नामोनिशान तक न था। पारसनाथ को यकीन नहीं हो रहा था कि दिल्ली में इतनी सुंदर जगह भी हो सकती

थी। यहां परम शांति थी।

बूढ़ा आगे-आगे चल रहा था और पारसनाथ व सरिता पीछे-पीछे। वे एक सीढ़ी चढ़कर एक बड़े से कमरे में आए। उस विशाल कमरे में नक्काशी वाले शानदार फर्नीचर रखे थे। एक सोफे की तरफ इशारा कर बूढ़े ने कहा- 'बैठिए।'

पारसनाथ ने थोड़ा सकुचाते हुए कहा, 'जी डॉक्टर साहब से कहिए, मैं पारसनाथ... आज सुबह मेहताजी ने उन्हें फोन किया होगा।'

'मैं ही डॉ. डिडवानिया हूं।' यह कहकर बूढ़ा सामने की कुर्सी पर बैठ गया। पारसनाथ जैसे आसमान से गिरे। वह कुछ और कहते उससे पहले ही डॉ. डिडवानिया ने पूछा- 'आपका बेटा नहीं आया?'

'नहीं, वो कॉलेज गया है। फिर वो आने के लिए...।'

'मैं समझ गया। क्या वह ड्रग्स लेता है?'

डॉ. डिडवानिया के अचानक इस तरह मुद्दे पर आने से पारसनाथ को झटका लगा। उन्होंने हड़बड़ा कर कहा, 'नहीं, नहीं।'

'आर यू श्योर?' डॉ. डिडवानिया के चेहरे पर कोई भाव न था। वह निर्विकार लग रहे थे। वह बहुत-बहुत धीमे-धीमे बोल रहे थे, जैसे किसी फिल्म में कोई शातिर खलनायक बोलता है।

'क्या वह गाली-गलौज भी करता है?'

'हां, थोड़ा-बहुत इधर करने लगा है। पहले जरा भी नहीं करता था।'

तभी सरिता ने मोर्चा संभाला। उसने कुछ इस अंदाज में सब कुछ बताना शुरू किया जैसे सब कुछ रट कर आई हो। यह सुनने के बाद डॉ. डिडवानिया कुछ देर खामोश रहे। फिर गला खखारकर बोले, 'बच्चों पर बहुत प्रेशर है।'

'लेकिन मैंने तो आज तक कोई प्रेशर सत्यम पर नहीं डाला।' पारसनाथ ने कहा।

डॉ. डिडवानिया ने दाढ़ी खुजाते हुए कहा, 'आप डालिए चाहे मत डालिए। प्रेशर तो उन पर आ ही जाता है। अपने दोस्तों से, समाज से।'

यह बात पारसनाथ को बहुत जंची नहीं क्योंकि इस तरह की भाषणबाजी तो वह सुनते ही रहे थे या लेख में पढ़ते ही रहे थे। उन्होंने आपत्ति की- 'लेकिन डॉक्टर साहब, इसी समाज में और लड़के भी रहते हैं। उन पर भी दबाव होता होगा। मगर वे सब तो हमारे बेटे की तरह हरकत नहीं करते।'

डॉ. डिडवानिया चुप होकर पारसनाथ का मुंह ताकने लगे। पारसनाथ ने अपनी बात जारी रखी, 'इसी माहौल में रहने वाले लड़के पढ़ाई में अच्छा करते हैं। मां-बाप की बात सुनते हैं। अच्छे से रहते हैं। आखिर हमारी परवरिश में क्या गड़बड़ी हो गई कि....।'

डॉ. डिडवनिया पर इसका कोई खास असर नहीं पड़ा। वह अपनी रौ में कहने लगे- 'आपने उसकी हर इच्छा पूरी की। उसे लगने लगा सब कुछ उसी के अनुसार चलेगा। अब जब वह घर से बाहर निकला है, कुछ भी उसके अनुसार नहीं हो रहा। इससे वह चिढ़ जा रहा है।'

'अच्छा।' पारसनाथ ने फिर टोका- 'आप कह रहे हैं कि हमने उसे प्यार दिया, उसकी हर ख्वाहिश पूरी की, तो गलत किया। जबकि उसका कहना है कि मैंने उसके लिए अब तक कुछ किया ही नहीं।..... आखिर एक बाप क्या करे। अपने बच्चे से प्यार करना भी गुनाह हो गया। उसका

ख्याल रखो तो कहा जाता है कि आप हेलिकॉप्टर पैरंट हो। हर समय उसके पीछे लगे रहते हो। न रखो तो कहा जाता है कि आप बच्चों से डॉयलॉग नहीं रखते, इसलिए बच्चा अपने को अकेला महसूस कर रहा है। अरे भाई, क्या करे मां-बाप। कैसे पाले बच्चे को। क्या प्रेम और ममता को इंची टेप से नापा जा सकता है।' पारसनाथ की झुंझलाहट बढ़ गई थी। उनकी आवाज तेज हो गई थी। सरिता ने उनकी तरह हत्थी कसकर दबाई। वैसे डॉ. डिडवानिया पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हो रहा था। उन्होंने फुसफुसाते हुए कहा, '...अभी उसमें काफी एनर्जी है। वह निकल रही है। इसलिए वह थोड़ा वॉयलेंट हैं। एकाध-दो साल बाद आक्रामकता कम हो जाएगी। अठारह की उम्र होती ही ऐसी है। बहुत गुस्सा आता है। उसे बताइए कि जब गुस्सा आए तो यह एक्सरसाइज करे।'

यह कहकर वे खुद आँखें बंदकर बैठ गए और सांस लेने और छोड़ने का तरीका बताने लगे। पारसनाथ ने सोचा कि सत्यम भला उनकी बात मानकर व्यायाम क्यों करेगा।

थोड़ी देर बाद डॉ. डिडवानिया ने आँखें खोलीं और कहा- 'घर में पॉजिटिव माहौल रखिए। उसे नहीं लगना चाहिए कि आप लोग उससे नाराज हैं। उसके अनुसार बात करिए। ...उसका मनपसंद खाना बनवाइए। ऐसी कोई बात मत कीजिए, जो उसे पसंद न हो।'

'उसे कोई दवा वगैरह देने की जरूरत है?' सरिता ने सवाल किया। डॉ. डिडवानिया बोले, 'उसका मामला कोई ऐसा नहीं कि मेडिसिन दिया जाए। वो ऐसे ही ठीक हो जाएगा। थोड़ा सबर रखिए।'

पारसनाथ और सरिता उठ गए। डॉ. डिडवानिया उन्हें छोड़ने गेट तक आए। पारसनाथ संतुष्ट नहीं थे। वह कुछ ज्यादा उम्मीद लेकर आए थे। उन्हें लग रहा था कि डॉक्टर साहब कोई ठोस बात बताएंगे पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पारसनाथ को पता न हो। वह सत्यम के व्यवहार में आए बदलाव के बाद गूगल पर किशोर मनोविज्ञान को लेकर बहुत कुछ पढ़ चुके थे। लेकिन काफी कुछ पढ़ने और डॉ. डिडवानिया से मिलने के बाद भी उन्हें कोई रास्ता नहीं मिला था। उनके भीतर सवाल उठा कि सायकियाट्री में वाकई कोई दम है या यह एक बौद्धिक कवायद भर है? हां, डिडवानिया से मिलकर सरिता बेहद संतुष्ट थी। इस बात से पारसनाथ को राहत मिली।

बहरहाल डॉ. डिडवानिया के निर्देशों पर दूसरे ही दिन से अमल शुरू हो गया। सत्यम की हर इच्छा पूरी की जाने लगी। वह पहले की तरह चिढ़ से भरा रहता। छोटी-छोटी बातों पर चिल्ला उठता। जैसे पारसनाथ बाथरूम में देर लगाते तो वह चिल्लाकर कहता- 'अरे निकलो यार।' पारसनाथ कुछ नहीं कहते, चुपचाप निकल आते। ऐसा लग रहा था जैसे सत्यम मालिक हो और पारसनाथ व सरिता उसके कर्मचारी। लेकिन कई बार वह एकदम मासूम बन जाता जैसे अपने बचपन में हुआ करता था। वह पारसनाथ और सरिता के बीच आकर लेट जाता और भविष्य की बातें करना लगता। मां से कहता- 'जब मेरी नौकरी लग जाएगी तब में तुम्हारे लिए खूब सारे कपडे खरीदूंगा। मुझे पता है तुम बहुत कुछ खरीदना चाहती हो पर खरीदती नहीं। और हां यह मकान भी बदलना है। किसी अच्छे इलाके में चलकर रहना है।'

पहले इस तरह की बातों से पति-पत्नी खुश हुआ करते थे पर अब सतर्क हो जाया करते थे कि पता नहीं कब ज्वालामुखी फट पड़े। कई बार जब पारसनाथ ऑफिस से लौटकर आते सत्यम कहता चलो मॉल चलते हैं। थके मांदे होने के बावजूद पारसनाथ तैयार हो जाते। उन्हें डॉक्टर

डिडवानिया की बात याद आ जाती। इसी बीच उसके कॉलेज का रिजल्ट आया। सत्यम अच्छे नंबरों से पास हुआ था। उन्हें थोड़ी हैरानी भी हुई। वह तो उम्मीद छोड़ बैठे थे।

सत्यम कुछ-कुछ पहेली बन गया था। उन्हें पहले लगता था कि वह अपने बेटे को जानते हैं, लेकिन अब लग रहा था कि वह अपने बेटे को जरा भी नहीं जानते। यह बात उन्हें अजीब लगती थी कि जिसे उन्होंने पैदा किया और जिसे एक पौधे की तरह सींचा, जिसकी एक-एक गतिविधि पर नजर रखी, वह एकदम उनके लिए अजनबी और अनजान बन गया।

अब बाप-बेटे का रिश्ता बदल गया था। ऐसा लग रहा था जैसे सत्यम नामक किसी लड़के को, जो कि उनका बेटा नहीं है, कहीं से लाकर पारसनाथ को सौंप दिया गया है। पारसनाथ उसके केयर टेकर हैं। उन्हें उसकी हर हरकत बर्दाश्त करनी है क्योंकि यह उनकी ड्यूटी है।

लेकिन आज पारसनाथ का संयम जवाब दे गया था। आखिर वह भी एक मनुष्य हैं। ऐसा तो हो नहीं सकता कि एक शख्स हर समय बाप बना रहे। अरे सारी जवानी तो बेटे के नाम कर ही दी, अब क्या जान दे दें?

आज दफ्तर से लौटने पर पारसनाथ ने दरवाजे पर दस्तक दी ही थी कि सत्यम की जोर-जोर से बोलने की आवाज आई। पारसनाथ का दिल धड़का कि पता नहीं आज क्या होगा सरिता ने दरवाजा खोला और इशारे से बताया कि आज फिर उसका नाटक शुरू हो गया है। पारसनाथ तेजी से अपने कमरे में चले आए। पीछे-पीछे सरिता भी आई। कुछ देर बाद सत्यम के कमरे से कोई सामान पटकने की आवाज आई। पारसनाथ से रहा नहीं गया। उन्होंने सत्यम के कमरे में पहुंचकर पूछा, 'आखिर प्रॉब्लम क्या है।'

सत्यम ने मुंह बनाकर कहा, 'क्या करोगे जानकर। कोई सॉल्यूशन है तुम्हारे पास? सारा प्रॉब्लम ही तुम लोगों का पैदा किया हुआ है?'

'वो कैसे?' पारसनाथ ने पूछा।

सत्यम ने कहा, 'पूछो मम्मी से।'

सरिता ने बताया- 'इसकी दोस्त इससे अलग हो गई है।'

'और इसके लिए तुम लोग जिम्मेदार हो।' सत्यम चीखा।

'लेकिन हमने तो उसे कुछ नहीं कहा।' पारसनाथ बोले।

'अरे तुम लोग हो ही ऐसे गए-गुजरे। साला कहां पैदा हो गया मैं।' सत्यम भुनभुनाया।

'तो हम लोगों ने ऐसा किया क्या?' फट पड़े पारसनाथ।

मामले को संभालते हुए सरिता ने कहा, 'उसका कहना है कि उसका स्टैंडर्ड हम लोगों से अलग है इसलिए सत्यम से उसकी नहीं बनेगी।'

'यानी उसको तुमसे लगाव नहीं है, तुम्हारे स्टैंडर्ड से लगाव है। वह इनसान को उसके कैरेक्टर से नहीं रुपये-पैसे से पहचानती है।' पारसनाथ ने कहा।

'बड़े कैरेक्टर वाले बनते हो। चाटो कैरेक्टर को लेकर।' यह कहकर उसने दीवार पर टंगी फैमिली फोटो पर एक लात जमाई। फोटो नीचे गिर पड़ी और उसके कांच पर तीन-चार बेतरतीब रेखाएं खिंच गईं। पारसनाथ ने बड़ी मुश्किल से क्रोध पर काबू किया। तभी सरिता ने सत्यम से कहा, 'अच्छा ही हुआ, जो तुम्हारी दोस्ती टूट गई। तुम्हारा नेचर उससे मिलता भी नहीं है।'

यह सुनते ही सत्यम आक्रामक हो कर सरिता की तरफ बढ़ा और उसने सरिता की गर्दन पकड़ ली। पारसनाथ से रहा नहीं गया। उन्होंने उसके दोनों हाथ पकड़े और सरिता की गर्दन से हटाया। फिर सत्यम और पारसनाथ में कुछ देर जोर आजमाइश होती रही। पारसनाथ ने कहा, 'तुम क्या समझते हो, मैं बूढ़ा हो गया हूं। एक अनजान सी लड़की के लिए तुम उस औरत पर हाथ उठा रहे हो जिसने तुम्हारे लिए अपना सुख-चैन और करिअर तक दांव पर लगा दिया। उसे कुछ कहने से पहले हमसे निपटो।' यह कहकर पारसनाथ ने पूरा जोर लगाकर सत्यम का हाथ उमेठ दिया और बिछावन पर गिरा दिया। फिर वह सरिता का हाथ पकड़कर वहां से ले गए। तभी सत्यम के रोने की आवाज कानों में पड़ी। सरिता उधर बढ़ने लगी तो पारसनाथ ने रोक दिया- 'छोड़ दो उसको। उस पर बहुत ज्यादा ध्यान देने का ही नतीजा है यह सब। हम लोग भी और गार्जियन की तरह रहते न, तो दिमाग ठिकाने पर रहता इनका।'

पारसनाथ ने अपने भीतर बेचैनी महसूस की। वह कभी कमरे में चक्कर लगाते तो कभी बालकनी में टहलते। पर उनका मन शांत नहीं हो पा रहा था। उन्हें महसूस हुआ, अब वह यहां नहीं रह पाएंगे। वह दरवाजा खोलकर जाने लगे। तभी सरिता दौड़ती आई, 'अरे, कहां जा रहे हैं?'

'बस कहीं भी।' पारसनाथ से और कोई जवाब नहीं सूझा।

सरिता बोली- 'अब ऐसे में कहीं मत जाइए।'

पारसनाथ ने कहा- 'आते हैं थोड़ा टहल के।'

'जल्दी आ जाइएगा।' यह कहकर सरिता ने दरवाजा बंद कर लिया।

टहलने के नाम पर वह निकले थे पर बिना कुछ सोचे-समझे चलते रहे, चलते रहे। जहां सड़क मुड़ी, मुड़ते गए। इस तरह तीन-चार किलोमीटर दूर चले आए थे। रात के साढ़े दस बज गए थे। सड़क पर गाड़ियां कम होने लगी थीं। बीच-बीच में पुलिस की गाड़ी या कोई एंबुलेंस भांय-भांय करती हुई तेजी से गुजरती तो पारसनाथ ऊपर से नीचे तक कांप उठते थे। ऐसा पिछले कुछ समय से ही हो रहा था। जब भी वह पुलिस वैन या एंबुलेंस का सायरन सुनते तो डर जाते।

लेकिन नहीं... अब डर-डरकर जीने का कोई अर्थ नहीं है। अब वह जीवन की दिशा बदल लेंगे। अभी बहुत जीवन जीना है उन्हें। अपने को नष्ट नहीं करना है। अपनी इच्छाओं को उन्होंने अपने मन की किसी खोखल में छुपा दिया था। वे उन्हें निकाल बाहर करेंगे।

उन्हें समाधान मिल गया था। उन्होंने कुछ ही क्षणों में भविष्य की योजना बना डाली। और अब वह तेजी से अपने घर की ओर लौटने लगे। इस वक्त कोई रिक्शा या टैंपू का मिलना मुश्किल था। पैदल ही लौटना था। तेज चलने से पैरों में दर्द महसूस हो रहा था।

पारसनाथ जब घर पहुंचे तो देखा कि सरिता बदहवास सी सोसाइटी के गेट पर खड़ी थी। पारसनाथ ने सोचा कि कहीं इस बीच कोई और कांड तो नहीं हो गया हालांकि वह मजबूत होकर लौटे थे और यह सोचकर भी उन्हें कोई घबराहट नहीं हुई।

'कहां चले गए थे?' सरिता ने रुआंसे स्वर में पूछा।

'अरे यहीं पास में ही।' पारसनाथ ने उसे सामान्य बनाने की कोशिश की। दोनों साथ चले। पारसनाथ इधर-उधर देख रहे थे कि कहीं उनके पड़ोसी उन्हें देख तो नहीं रहे। घर के हंगामे का पता तो उन्हें चल ही गया होगा। तभी उनकी नजर अपने फ्लैट पर गई। सत्यम अपने कमरे की खिड़की

से नीचे झांक रहा था। ज्यों ही उसने पारसनाथ को आते देखा, झट खिड़की बंद कर ली।

उस रात भी घर के लोगों ने खाना नहीं खाया। पारसनाथ बिस्तर पर बड़ी देर तक करवटें बदलते रहे और भुनभुनाते रहे- 'इस घर को आग लग गई घर के चिराग से...।'

अगले दिन जब पारसनाथ दफ्तर के लिए निकले तो अजीब धुकधुकी सी हो रही थी उनके भीतर। सोच रहे थे, काल रात जो फैसला उन्होंने किया था क्या वह उस पर अमल कर पाएंगे? और क्या ऐसा करना ठीक रहेगा? फिर उनके भीतर से ही जवाब भी मिला, नहीं कभी तो ऐसा करना ही होगा। अब तक वह दूसरों के न्याय-अन्याय की परवाह करते रहे। लेकिन अपने साथ अन्याय करने का भी उन्हें कोई हक नहीं। अब बहुत हुआ। अब अपने साथ वह अन्याय नहीं करेंगे। दफ्तर पहुंचते ही वह अपने बॉस के कमरे की ओर भागे। अपने काम और अपने स्वभाव से उन्होंने अपने बॉस के दिल मे एक खास जगह बना ली थी। उन्हें उम्मीद थी कि बॉस उनकी मांग जरूर पूरी करेंगे। पारसनाथ को देख बॉस थोड़ा चौंके, 'क्या भाई, सब ठीक है ना।'

'सर कल आप कह रहे थे न कि कानपुर ब्रांच में, यहां से कुछ लोगों को भेजना है।'

'हां।'

'मेरा नाम भी जोड़ दीजिए।'

'अरे, आपको नहीं छोड़ सकता मैं'।

'सर प्लीज, कुछ पर्सनल जरूरत है। बॉस हैरत से उनकी ओर देखते हुए बोले, 'ठीक है।'

रात में पारसनाथ ने सत्यम के कमरे में पहुंचकर अपना फैसला सुनाया- 'मेरा ट्रांसफर कानपुर हो गया है। एक-दो दिन में जाना है। तुम्हारी मां भी जाएगी। तुम यहां आराम से रहना। घर के काम और खाना बनाने के लिए कामवाली रहेगी। पैसा तुम्हारे एकाउंट में ट्रांसफर होता रहेगा।' फिर थोड़ा ठहरकर पारसनाथ ने कहा, 'तुम यही चाहते थे न। हमलोग तुम्हारी जिंदगी में अब कोई दखल नहीं देंगे।'

पारसनाथ सत्यम की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए बगैर लौट आए। सरिता इससे खुश नहीं थी। उसने कहा- 'आपको जाना है जाइए, मैं नहीं जा सकती उसको छोड़कर।'

पारसनाथ फट पड़े, 'करती रहो उसकी चाकरी। कुछ नहीं मिलने वाला है इससे। सोओ उसके हिसाब से, खाओ उसकी मर्जी से। उसके कारण न कहीं आ- जा सकते हैं न अपने मन मुताबिक कुछ काम कर सकते हैं। और बदले में मिल क्या रहा है गाली, जूता लात।' अपना स्वर धीमा करते हुए उन्होंने सरिता को समझाया, 'जरूरत से ज्यादा ध्यान देने का ही नतीजा है यह सब। इसी में हम सब की भलाई है। वो भी खुश हम भी खुश।'

सरिता ने इस पर कुछ नहीं कहा। वह सहमत नहीं लग रही थी। पर पारसनाथ को विश्वास था कि वह उनके साथ जाएगी जरूर। अगले एक-दो दिन तक तैयारियां होती रहीं। पारसनाथ पर दफ्तर के कामकाज निपटाने का दबाव था। वह जल्दी निकलते और देर से आते। सत्यम बस एकाध बार ही सामने पड़ा। उसके रुख से लगा जैसे वह कुछ कहना चाहता हो पर कह नहीं पा रहा हो। आखिरकार प्रस्थान का समय आ गया। दोपहर को निकलना था। सरिता ने सत्यम से पूछा था कि क्या वह उन्हें विदा करने स्टेशन तक जाएगा या घर से ही विदा करेगा। उसने मुंह बनकर कहा कि उसके कॉलेज में फंक्शन है। वह घर पर नहीं रह पाएगा। घर की चाबी उसके पास है ही। सरिता

इस बात से दुःखी हुई पर पारसनाथ को अच्छा ही लगा। वह जाते समय उसका सामना करने से बचना चाहते थे।

निश्चित समय पर पति-पत्नी तैयार हो गए। अभी वे कुछ जरूरी चीजें ही लेकर जा रहे थे। फिर भी कई सामान हो गए थे। पारसनाथ ने एक-एक कर सारे समान ड्राइंग रूम के एक कोने में रख दिए ताकि निकलने में सुविधा हो। सरिता बार-बार सोच रही थी कि कुछ छूट तो नहीं गया। पारसनाथ बालकनी में जाकर देख रहे थे कि टैक्सी वाला आ रहा है कि नहीं। वह मोबाइल में उसका नंबर ढूंढने लगे। तभी कॉलबेल बजी। उन्हें लगा टैक्सी वाला आ गया। पारसनाथ और सरिता एक साथ दरवाजे की तरफ बढ़े। सरिता ने दरवाजा खोला। सामने सत्यम खड़ा था। उसका चेहरा लाल था। उसकी सांसें तेज थीं। लग रहा था जैसे वह दौड़कर आया हो।

पारसनाथ ने पूछा, 'फंक्शन खत्म हो गया क्या?'

लगा कि सत्यम ने उनकी बात नहीं सुनी। अचानक सत्यम ने हाथ जोड़े और कहा- 'पापा मत जाओ प्लीज। मैं अकेला नहीं रह पाऊंगा। मुझे अकेले डर लगता है। मेरा अब कोई फ्रेंड भी नहीं है। प्लीज मुझे अकेला मत छोड़ो।'

यह कहकर वह फफक-फफक कर रोने लगा। पारसनाथ को सत्यम का वह मासूम चेहरा याद आया, जब वह चार-पांच साल का था। तब उसकी एक मामूली सी आह से उनके भीतर बहुत कुछ दरकने लगता था। अभी तो उनके भीतर एक साथ कई बांध भहराकर गिर पड़े। उन्होंने उसे सीने से लगा लिया। बचपन में जब वह रोता था,तो पारसनाथ इसी तरह उसे चिपका लेते और सत्यम चुप हो जाता था।

अपने बेटे को सीने से लगाए खुद को मन ही मन धिक्कारने लगे पारसनाथ- 'यह क्या कर रहे हो तुम। जब तुम्हारे बेटे को तुम्हारी सबसे ज्यादा जरूरत है, तुम उसे अकेला छोड़ रहे हो। तुम्हारी अपनी जिंदगी तुम्हारे बेटे के बगैर संभव है क्या?..'

तभी कॉलबेल बजी। टैक्सी वाला खड़ा था। उसने कहा- 'लाइए, सामान दीजिए।'

पारसनाथ आगे बढ़े। उन्होंने अपनी जेब से कुछ नोट निकाले और टैक्सी वाले की ओर बढ़ाते हुए कहा- 'यह लो अपना भाड़ा। हमें कहीं नहीं जाना है।'

●

वह सुबह के लिबास में शब थी

संदीप मील

अब शहरों की ही नहीं गांवों की तासीर में भी हर रोज तब्दीलियां देखी जा सकती हैं। ये इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि इनसान उस बदलाव को अपने जीवन में ठीक से ढ़ाल ही नहीं पाता उससे पहले ही जो कल तक नया था वो पुराना हो जाता है। रातों-रात उत्पाद से लेकर फैशन तक बदल जाते हैं। हर कोई नए के पीछे भागने लगता है और पुराने को छोड़ देता है। कुछ ऐसे भी होते हैं जो पुराने को इतनी मजबूती से पकड़कर रखते हैं कि उन्हें कुछ भी नया कबूल नहीं होता। ऐसा ही एक लड़का था अंकुर जो हर नई चीज के पीछे लालायित रहता था। पहनने के कपड़ों से लेकर मोबाइल और बाइक तक सब उसकी नकल करते थे। बाजार में लॉन्च होने वाली किसी भी चीज की जानकारी भजनगढ़ गांव के लोगों को चाहिए होती तो वे बेझिझक अंकुर से संपर्क करते। वह बड़े इत्मीनान से, सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारियों के साथ आनंददायक अंदाज में गांव वालों को नई चीजों के बारे में बताया करता था।

अंकुर की बातों पर गांव वालों को पूरा विश्वास था क्योंकि बिना पूरी जानकारी के वह किसी वस्तु के बारे में डींग कभी नहीं हांकता था। न ही किसी को कोई प्रलोभन देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कोशिश करता। जितना मालूम है उसे रोचकता से प्रस्तुत करना तो मात्र उसकी अदा थी। अभी अपनी उम्र के मुताबिक वह कॉलेज में पढ़ाई किया करता था। जिस तरह से कॉलेज के अन्य लड़के नशे से लेकर अपराध तक की तमाम गैरकानूनी गतिविधियों में लगे रहते थे उसी समय अंकुर दुनिया भर में बन रही नई चीजों के बारे में जानकारियां जुटाता रहता। पहले तो अखबार और पत्रिकाओं के सहारे वह इस कार्य में लगा रहता लेकिन आजकल इंटरनेट के कारण उसका काम बहुत आसान हो गया।

पिछले दिनों एक सुबह वह अपनी आदत के मुताबिक नई चीजों को सर्च कर रहा है कि उसके सामने जो चीज आई उसी से दुनिया देखने का अंकुर का नजरिया बदल गया। अब उसे न पहले की तरह हरियाली दिखती है न दरख्त और यहां तक की इनसान भी उसे अपने पूरे अस्तित्व में नहीं दिखते हैं। सब कुछ टुकड़ों में दिखने लगा। पेड़ों की टहनियों से लेकर पत्तों तक बिखरे हुए दिखाई देते। वह उन्हें जोड़कर पेड़ बनाता कि फिर से कोई टहनी हवा में बिखर जाती। कोई पत्ता उड़कर दूर आसमान में उसे चिड़ाता रहता। उस पत्ते को पकड़कर यथास्थान लाता इतने में एक जड़ जमीन से निकलकर फूल पर लटक जाती। ठीक ऐसी ही बात इनसानों को देखते वक्त होती। कोई हड्डियों

का ढ़ांचा दिखता तो कोई अपने ही जिस्म के सहारे गोश्त का ढ़ेर बनाकर उसके पास बैठा होता। उस गोश्त से आती हुई बदबू इतनी भयानक होती कि वह भाग खड़ा होता।

उस सुबह उसने एक ऐसा वीडियो देखा था जो धरती पर इनसान को यंत्रों के माध्यम से रिप्लेश करने का था। बहुत से विचित्र रूप के यंत्रों का कहीं आविष्कार हुआ था और बड़ी संख्या में वे दुनिया भर में फैल रहे थे। एक यंत्र किसी इनसान के पास आता और उसे कुछ देर के लिए पूरा निगल जाता। उस यंत्र का मुंह बहुत विशाल था। इनसान हवा में लहराते हुए यंत्र के तरफ खींचता जाता और बहुत ही जल्दी पूरा उसी में समा जाता। देखने में ये यंत्र इतने सुंदर और आकर्षक थे कि इनसान उसमें समा जाने के प्रति विरोध करने की बजाय खुशी महसूस करता। लोगों में होड़ लगी हुई थी उस यंत्र में समा जाने के लिए।

अंकुर गर्मी की सुबह में दही रोटी का नाश्ता करके कोई नई चीज खोजने के लिए नेट के वीडियो देख ही रहा था कि यह वीडियो सामने आ गया। एक बार तो वह इसे नजरअंदाज करके आगे बढ़ने ही वाला था कि वीडियो अपने आप शुरू हो गया। उसने कई बार कोशिश की उसे बंद करने की लेकिन हुआ ही नहीं। अचानक उसे लगा कि इसके संचालन की शक्ति किसी ने छीन ली है। अब इसे पूरा देखने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं है। जिस मोबाइल के बटन ने उसे असीमित ताकत दे रखी थी, एक क्लिक पर दुनिया-जहां में विचरण कर पाता। उस बटन के छिनते ही वह एकदम गतिहीन हो गया। शरीर में खून थोड़ा ठंडा होकर धीरे-धीरे बहने लगा। अब वह महसूस करने लगा था खून के चलने की गति और रोम-रोम में होने वाली हरकतों को।

जब वीडियो में वे विचित्र यंत्र देख रहा था तो एकबारगी तो उसे यकीन नहीं हुआ कि ऐसा भी मुमकिन हो सकता है। उस यंत्र में जाने के बाद इनसान वापस भी लौटकर आता है लेकिन टुकड़ों में। कुछ देर इनसान उसके अंदर रहता है और फिर अचानक उसका कोई पैर बाहर आता है। अंकुर जब तक पैर को देख रहा होता उतनी देर में धड़-हाथ सहित एक-एक करके जिस्म के तमाम हिस्से बाहर आते जाते हैं और वापस जुड़ते हैं। अंत में इन टुकड़ों के जुड़ने से वे शक्ल तो इनसान की ले लेते हैं मगर हरकतें सारी यंत्रों वाली करने लगते हैं। ये यंत्र इतनी तेजी से और बड़ी संख्या में यह बदलाव कर रहे थे कि बहुत कम समय में सारे इनसानों में ऐसा बदलाव होना तय था।

इस वीडियो को देखकर अंकुर ऐसी मनोदशा में था कि ना तो उसे स्वीकार कर पा रहा था और ना ही अस्वीकार। स्वीकार तो इसलिए नहीं कर पा रहा था ऐसा भयावह नजारा न कभी देखा था और न कभी सुना। अस्वीकार करने का साहस ही नहीं था, जो सामने घट रहा था उसको मन नकारे कैसे?

तभी उसका मन भी ललचाया कि वह इस यंत्र में अपना बदलाव कर ले। वह अपने मन के घोड़े को उस मोहक यंत्र के विशाल मुंह की तरफ दौड़ाने वाला ही था कि विवेक ने लगाम खींच ली। घोड़े के पांव जमीन में धंस गए। धूल का एक छोटा-सा बवंडर भी उड़ा। ये यंत्र वैसे ही लोगों को बदलने में लगे थे।

उसे कुछ क्षणों में ऐसा लग रहा था कि जो इस विचित्र मोहक यंत्र में समा रहे हैं उन्हें शायद वह जानता है। कई बार पहचानने की कोशिश की। उन्हें आवाजें दीं लेकिन तभी ख्याल आता कि वह तो वीडियो देख रहा है कोई हकीकत नहीं। दिल में कुछ राहत होती लेकिन चंद ही पलों में

हकीकत और आभासी के भ्रम की दूरियां पट जाती। वह चल रहे घटनाक्रम का परिवेशीय हिस्सा हो जाता।

जब लोग इस यंत्र से बाहर आ रहे थे तो पहला बदलाव तो यह दिखता कि उनकी हँसी गायब थी। सबके चेहरों के भाव एक जैसे हो जाते। चेहरे पानी के छींटे मारकर प्रेस किए गए कपड़ों की तरह दिखते। बिना सलवटों और झुरियों के। सबकी चाल एक जैसी हो गई थी। एक ही गति थी। अगर इन लोगों में दौड़ करवाई जाए तो निश्चित रूप से सब बराबर दौड़ेंगे। कोई आगे पीछे नहीं रहेगा। इनकी आवाजें एक जैसी हो गई थीं। आप सोचिए कि एक जैसी आवाजों के हजार लोग एक साथ गाना गाएं तो कैसा लगेगा! सुर मिलाने की जरूरत ही नहीं होती। अपने आप मिले हुए थे।

यंत्रों से बदले हुए इन लोगों की पसंदें भी एक जैसी थीं। सबको आलू की सब्जी पसंद। कोई पालक, गोभी और नॉनवेज जैसा कुछ खाता ही नहीं। सब्जी में मसालों की मात्रा भी सबको एक जैसी चाहिए थी। ये लोग सारे काम दाएं हाथ से ही करते थे, कोई बाएं हाथ का इस्तेमाल करने वाला था ही नहीं जबकि अंकुर बाएं हाथ से ही पढ़ता-लिखता है।

इन बदले हुए लोगों की भाषा अगर आप सुनें तो एक ही संरचनाओं के वाक्य सुनेंगे। कोई भी टूटा-फूटा वाक्य नहीं बोलता ना कोई देसज शब्दों का प्रयोग कर रहा होता। नींद भी सबको एक ही साथ आती। समय के एक पड़ाव पर पहुंचते तो सब लोग पलक झपकते ही सो जाते। ऐसे ही सुबह सबकी आँखें भी एक साथ खुलती जैसे सबने एक ही मुर्गा पाल रखा है और उसकी बांग पर उठने का वादा कर रखा है। कभी कोई वादा तोड़ता ही नहीं। वादे तोड़ने पर संसार में बने हजारों गानों से अनजान हो गए थे ये लोग।

इस बार कुछ तो अंकुर के मन का घोड़ा उस विचित्र मोहक यंत्र की तरफ बढ़ा और कुछ उस यंत्र का विशाल दरवाजा अंकुर की तरफ बढ़ा। दोनों का मिलन होने वाला ही था कि विवेक ने फिर से रोक लिया।

अंकुर सोच रहा था कि इन लोगों को सपने भी शायद एक जैसी ही आते होंगे। कैसे होंगे इनके सपने? उसने अपनी कल्पना के सारे घोड़े दौड़ा लिए लेकिन बदले हुए इन लोगों के सपनों की सरहद तक ना जा पाया। यह भी हो सकता है कि शायद इन लोगों को सपने ना आते हों। इन्हें कभी सपनों की जरूरत ही ना पड़ी हो।

अंकुर ने साचा कि शायद इन लोगों की रंगों की पंसद भी एक जैसी होगी। वह कौन-सा रंग होगा जिसको ये पसंद करते होगें। उसने वीडियो की हर बात को गहराई से जानने की कोशिश की लेकिन वह रंग मिला ही नहीं। असल में इन्हें किसी रंग से कोई ताल्लुक था ही नहीं। फूल गुलाबी हों कि सफेद, इन्हें आकर्षित नहीं कर पाते। बगीचे में बैठे हों कि कूड़े के ढ़ेर पर, इनकी नाक कोई हलचल नहीं करती। वे बगीचे में भी वैसे ही बेपरवाह घूम रहे होते जैसे बाजार में घूमते हैं। फूल को ऐसे मसलते जैसे बस की किसी पुरानी टिकट की गोली बनाकर कचरापात्र में डाली जाती है। कूड़े के ढ़ेर पर भी ऐसे इत्मीनान से खाना खाते जैसे कि किसी दावत में आए हों।

विचित्र मोहक यंत्र अब भी अपने काम में लगे हुई थे। उन्हें किसी ईंधन की जरूरत ही नहीं थी। हां, बाजार ये बदले हुए लोग भी जाते थे। एकदम लाइन से एक ही दुकान पर जाते। आलू

वाले के सारे आलू खत्म हो गए थे। करेले और लौकी वालों का पावभर सामन ही नहीं बिका था। पैंट जितनी मौजूद थीं सब लोगों की कमर पर टंगी दिख रही थी और पाजामें वैसे ही दुकानों में भरे थे। अनार का जूस बेचने वाला दुकान समेटकर घर जाने की तैयारी कर रहा था और आम का जूस बेचने वाला एक अदद ग्राहक के इंतजार में बैचेन हो रहा था।

अंकुर को इस बार कोई नहीं बचा पाया। मन का घोड़ा विवेक को रौंदता हुआ विचित्र मोहक यंत्र की तरफ बढ़ने लगा। गर्द के गुबार ने आसमान के नीलेपन को छुपा दिया था। बदले हुए लोगों ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया लेकिन जो अभी बचे थे वे शायद चिल्लाकर उसे रोकने की कोशिश कर रहे थे लेकिन अब घोड़ा रुकने वाला नहीं था। उधर से वैसे ही विचित्र मोहक यंत्र भी तेजी से उसकी तरफ बढ़ रहा था और एक जगह वह बिंदु आया जहां पर अंकुर यंत्र में समा चुका था। उसके साथ अंदर क्या हुया इसे तो वह खुद भी नहीं जानता है। जब बाहर आया तो पुर्जों में आया। धीरे-धीरे वे टुकड़े मिले और एक संपूर्ण अंकुर बना।

वह वीडियो खत्म हो चुका था। अंकुर के भौतिक ढ़ांचे में कोई तब्दीली नहीं आई थी। वह बिलकुल पहले जैसा था लेकिन उसके जहन में कहीं कुछ बदल गया था। कुछ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुआ था। यही कारण था कि उसे चीजें टुकड़ों में दिखने लगीं।

अंकुर के सामने कुछ रास्ते थे जिनके जरिए वह जी सकता था। एक रास्ता तो यह था कि वह दुनिया को टुकड़ों में देखने की आदत डाल ले। जैसे लोग संपूर्णता में देखकर जीवन जीते हैं वह टुकड़ों के सहारे जी लेता। उसके अलावा किसी को इस हादसे की जानकरी भी तो नहीं। बताता भी कैसे। पागल करार देकर मजाक उड़ाते। दूसरा रास्ता यह था कि वह किसी मनोविश्लेषक से अपना इलाज करवाता। शायद उसे बीमारी समझ में आ जाए। लेकिन उसने जो रास्ता चुना वह इनसे अलहदा था। उसने दुनिया की सारी चीजों को देखना बंद कर दिया सिवाय अपनी पसंद की चीजों के। मायने यह है कि वह उसी चीज को देखता जिसे देखना चाहता हो। किताब पढ़ता रहता और आप सामने आकर खड़े हो गए तो उसे नहीं दिखेंगे। हो सकता है कि दिख रहा हो। नहीं दिखने का बहाना करता हो लेकिन ऐसा कई बार हुआ है कि वह किसी दुकान में गया तो दुकानदार के अलावा रास्ते के इनसान भी नहीं दिखे। उनसे टकराया भी है। कई बार तो एक्सीडेंट होते-होते बचा।

अब गांव के लोगों और अंकुर दोनों ने यह स्वीकार कर लिया के उसे दिखाई देने में कोई समस्या है। वह घर पर ही रहता है और महीने भर का राशन एक साथ दुकान से ले आता है। कविता लिखता है और उसकी कविता में भी आपको कुछ चुनिंदा चीजें ही मिलेंगी। हर बात का एक हिस्सा गायब कर देता है वह। मां-बाप कम उम्र में ही गुजर गए। शादी की नहीं। सुना है कोई एक प्रेमिका थी जिसका यह आजकल कभी जिक्र नहीं करता। दोस्तों के नाम पर कहता है कि अधिकांश मर गए और कुछ बचे हैं उनको इसने मरा हुआ समझ लिया।

जमीन है जिस पर कुछ पैदावार होती है। बटाई पर दे रखी है और उसी आमदनी पर बसर करता है। अब वह नई चीजें खोजने का शौक छोड़ चुका है। रहता अपनी ही धुन में है। कभी कोई मिल गया तो कहता है कि कुछ आविष्कार कर रहा है। पूरा होगा तो बताएगा जमाने को।

अंकुर ने कुछ पशु पाल रखे हैं जिनका दूध और ब्रेड ही उसका भोजन है। कपड़े कई सालों पहले एक जोड़ी सिलाए थे। जब घर से बाहर निकलता है तो पहन लेता है। घर में बनियान और

लुंगी ही काफी है। इस बाबत वह अपने बुजुर्गों का कोई किस्सा भी सुनाता है कि उनके पास भी एक जोड़ी कपड़े होते थे। किसी गांव शादी में जाते तो पहनते और बाकी के दिनों ये कपड़े खूंटी पर आराम फरमा रहे होते।

अंकुर ने अपना खेत सुशील को बटाई पर दे रखा है जो उसकी तरह अकेला है। सुशील उसके कुछ कामों में सहयोग कर देता है। गांव के लोग अंकुर को करीब-करीब भूल से चुके हैं। चर्चाओं में उसका जिक्र आना ही बंद हो गया क्योंकि लोगों को उसके बारे में कुछ नहीं मालूम है। वे बस इतना जानते हैं कि उसे दिखने में कुछ समस्या है तो घर में ही रहता है।

एक दिन अचानक यह हुआ कि सुशील ने गांव में आकर एक ऐलान कर दिया। उसने कहा कि अंकुर अपने घर का सारा सामान लोगों को बांटना चाहता है। वह गांव छोड़कर जा रहा है। उसका अविष्कार पूरा हो गया। यह ऐलान सुनते ही गांव की भीड़ उसके खेत की तरफ उमड़ पड़ी। भीड़ में बच्चे, जवान और बूढ़े सब शामिल थे। बच्चे भागे जा रहे थे, जवान लंबे डग भर रहे थे और बूढ़े हांफते हुए लाठी के सहारे बिना रुके रोजाना की गति से तेज चल रहे थे।

जब लोगों का कारवां अंकुर की खेत की सीमा में प्रवेश किया तो वह सामने अपने घर की दहलीज पर खड़ा दिखाई दिया। आज वह हँस रहा था और इतना खुश था कि बुजुर्गों को उसका बचपना याद आ गया।

चूंकि बच्चे दौड़कर आए थे तो सबसे पहले वे पहुंचे। अंकुर ने उन्हें कहा कि घर में से कोई एक चीज हर बच्चा ले सकता है। एक से ज्यादा कोई भी नहीं लेगा जो पसंद आए ले लीजिए। बच्चे घर के सामान पर टूट पड़े। एक कोई चीज उठाते और उससे बेहतर की तलाश में उसे वापस रख देते। कुछ ही देर में सारे बच्चे आपस में लड़ने लगे। बहुत हल्ला होने लगा। इस घर ने भी कई सालों बाद इतने जोर की आवाजें सुनी थीं। अमूमन तो यहां खामोशी का ही बसेरा है।

जवान लोग भी हैरत में थे हालांकि बच्चों की तरह अपनी पसंद की कोई एक चीज उठाने की छूट उन्हें भी थी। कोई सामान उठाने की पहल कर ही नहीं रहा था। सब एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि कोई इनसान कैसे अपना घर लूटा सकता है। लोग तो घर बनाने के लिए खून तक कर देते हैं। उनकी नजरों में अंकुर का कद बढ़ गया था।

बूढ़े लोगों ने आते ही उसे बैठाकर बातचीत शुरू की और गांव छोड़ने का कारण पूछा। अंकुर ने साफ बताया कि उसने एक ऐसी मशीन का आविष्कार कर लिया है जिसमें कुछ समय इनसान रह जाए तो उसकी मरी हुई इनसानियत वापस लौट आती है। वह यंत्र से मनुष्य बन सकता है। सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वह मशीन देखने की इच्छा जाहिर की। अंकुर ने इशारा किया शहतूत के पेड़ की बगल में पड़ी एक लकड़ी की बड़ी मशीन की तरफ। सब लोगों ने जाकर उसका निरक्षण किया।

उसमें मशीन जैसा कुछ था ही नहीं। लकड़ी का एक साधारण-सा घूमावदार खोखा था जिसमें इनसान एक तरफ से घुसकर दूसरी तरफ निकल सकता है। उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि यह कोई मशीन है। दो-पांच बुजुर्ग लोग एक तरफ किनारे जाकर कुछ सलाह करने लगे। थोड़ी देर बाद वे वापस आए और उनमें से एक ने कहा, ‘हमारे गांव में भी इनसानियत की कमी है तुम जानते ही हो। इस मशीन को यही आजमा लो। गांव का भी भला हो और तुम भी यहीं रह पाओ।

अपना गांव छोड़ कोई ऐसे थोड़े ही जाता है।'

उस बुजुर्ग की बात ने पहले तो अंकुर पर कोई असर नहीं किया फिर युवाओं के साथ बहुत से लोगों ने बुजुर्ग की बात का समर्थन करते हुए उससे रुकने का निवेदन किया। थोड़ी देर के बाद अंकुर ने निर्णय लिया कि वह गांव नहीं छोड़ेगा और मशीन का उपयोग यहीं करेगा।

वह काठ की मशीन गांव के चौक में लाकर पीपल के चारों तरफ बने चबूतरे पर रखी गई। यह वही चौक था जो एक जमाने में इनसानों के जीवन का केंद्र था। यहां पर दोपहर का खाना खाकर हर कोई आता था। बच्चे खेलते थे, बूढ़े बातों में मशगूल रहते थे हालांकि लोगों में बराबरी तब नहीं थी। मटकों से पानी पीने का हक दलितों और मुसलमानों को नहीं था। उन्हें कोई दूसरा अपने हाथ से पानी पिलाता। फिर हुआ यह कि खेती उजड़ती गई और रोजगार होते गए खत्म। बहुत से लोग बाहर चले गए जो गांव में बचे थे वे भी चौक में आना बंद कर दिए। आपस में हजार झगड़े हो गए। कोई किसी से बात नहीं करता। चौक बिलकुल सुना रहता था।

जब मशीन रखी गई और लोग उसमें कुछ समय रहकर बाहर निकल रहे थे तो कुछ नहीं बदल रहा था। वे वैसे के वैसे थे। इतना बदलाव जरूर हुआ था कि लोग बहुत समय बात इतनी बड़ी संख्या में चौक में उपस्थित थे। आपस में बातें कर रहे थे जो किसी लड़ाई और बंटवारे के झंझट से जुड़ी हुई नहीं थी। मटके तो अब नहीं रहे थे लेकिन चबूतरे के कोने पर एक नल था जहां पर हर जात-मजहब के लोग आराम से पानी पी रहे थे।

●

यात्रा

उर्मिला शिरीष

मां,

तुम बीमार नहीं हो। नहीं हो। मैंने कह दिया ना। अगर बीमार हो तो बताओ क्या बीमारी है...? इतनी जांचें करवायीं, कोई बीमारी निकली! तुम्हारे चौड़े चाँद जैसे माथे पर बीमारी की एक रेखा तक नहीं है। तुम्हारे नरम हाथ गरम हैं। तुम्हारी जादुई आँखों में अब भी चमक है। तुम्हारे सुनहरे बाल घुंघराली लटों के बीच अभी भी लहरा रहे हैं। तुम्हारा फिगर अब भी आकर्षक और चुस्त-दुरुस्त है। डॉक्टरी भाषा में कहूं तो तुम एकदम ठीक हो, एकदम निरोग!

क्या कहा... मानसिक बीमारी? डिप्रेशन की शिकार हो। ओह यह भी किसने कहा और क्यों! क्योंकि तुम्हें ऐसा लगता है! मुझे लगता है तुम्हारे भीतर से जीवन का स्वाद चला गया है। तुमने सारे संसार को रसहीन मान लिया है। तुमने प्रेम की जगह घृणा और अविश्वास को अपने भीतर पाल लिया है। तुमने सारे लोगों को अपनी जिंदगी से निकाल दिया है। तुम सिर्फ और सिर्फ अपनी नजरों से दुनिया को देखती हो। दुनिया तुम्हें किस नजर से देखती है, कभी सोचा? नहीं ना।

तुम स्वयं परेशानी में रहती हो और हमें भी रखती हो। यह समय हमारे करिअर बनाने का है, ना कि फालतू बातों को 'डिस्कस' करने का। प्लीज मां, समझने की कोशिश करो। तुम नादान बच्ची नहीं हो!

मुझे लगता है तुमने अपने चारों ओर एक घेरा बना रखा है। तुम अपनी कल्पनाओं को अपने विचारों में जन्म देती हो और तुम्हें लगता है कि वह वास्तव में हो रहा है। अच्छा रोना बंद करो। तुम्हारा रोना मुझसे बर्दाश्त नहीं होता है।

रोना तुम्हारी फितरत में नहीं था।

तुम तो हमेशा हँसती रहती थी। हर परिस्थिति में, हर मौसम में। तुम्हारी हँसी की सब दाद दिया करते थे। तुम्हारी हँसी ने एक संगीत का वाद्ययंत्र बना लिया था... जिसके तार छेड़ो और वह सनसना उठती थी... क्या कोई वाद्ययंत्र सनसनाता है... मैं अभी एप्रोप्रियेट शब्द नहीं तलाश पा रही हूं, पर मेरे कहने का आशय यही है। चिड़िया चहकना भूल सकती थीं, पर तुम हँसना नहीं भूलती थीं। नदी ठहर सकती थी पर तुम्हारी हँसी नहीं। फिर यह सब कैसे हो गया कि इधर पतझड़ आया और उधर तुम्हारी हँसी चली गयी। पतझड़ का तो पता चलता है... पत्ता-पत्ता... पीला होकर गिरने लगता है, वृक्षों की छाल सूखकर झरने लगती है। हवाओं में पत्तों की, सूखे पत्तों के चटकने की... उड़ने की आवाज आने लगती है, मगर... तुम्हारी हँसी की खनक कब डूब गयी हमें पता ही न

चला। हम सब कब इतने दूर हो गए। हमारी दुनिया, हमारे सपने, हमारे रास्ते कब और क्यों दूसरी दिशाओं में चले गए। क्या यह हमारे जीवन का रहस्य है या अँधकार या अजनबी होते जाने की शुरुआत!

अच्छा रोना बंद करो। प्लीज... मां!

आज मुझे तुम्हें समझाना और संभालना पड़ रहा है...। तुम तो मुझे संभाला करती थीं, सबसे अलग रखती थीं। मेरे रोने पर तुम सबसे ज्यादा चिढ़ा करती थीं क्योंकि तुम्हें रोने से सख्त नफरत थी। किसी के भी आँसू देखकर तुम हैरान होती थीं, लेकिन... आज... अब... क्यों बहते हैं तुम्हारे आँसू। कोई यकीन करेगा कि तुम लगातार रोती हो, भीतर-बाहर रोती हो। सुबह-शाम रोती हो। सोते-जागते रोती हो... सबके बीच और अकेले में रोती हो। इससे अच्छी तो तुम्हारी सास यानी मेरी दादी थीं, जो अपना सारा गुबार-गुस्सा, दर्द लड़-भिड़कर निकाल लेती थीं। अपनी बात मनवाने के लिए कितने स्वांग कर लिया करती थीं। उनके आगे-पीछे सारा कुनबा घूमता था और दादाजी उनके नाम की माला जपते-जपते थकते नहीं थे। तुमने उनसे कुछ भी नहीं सीखा कि एक मजबूत औरत आँसुओं से नहीं आग से बनती है। वो आग नहीं जो बाहर दिखती है... अंदर की आग! एनर्जी. .. ताकत। सेल्फ कान्फिडंस। या इससे भी परे कुछ और!

ओह... मैं ज्यादा बोल रही हूं। चुप हो जाती हूं!

चलो अब तुम्हारी बात सुनती हूं। बताओ क्या बात है? किसने क्या कह दिया? किसकी बात से तुम आहत हुई हो? कौन तुम्हारा अपमान करके चला गया...? क्या तुम जीवन भर मान-अपमान के बांस पर चलती रहोगी? कब उबरोगी इन क्षुद्र बातों के प्रभाव से?

अकेलापन। क्या बचकानी बात करती हो?

क्यों तुम्हें हमेशा किसी न किसी मर्द की जरूरत होती है? कभी पिता की, कभी भाई की और अब इस आदमी की, यह तथाकथित गुरु... जिसकी दो-दो बीवियां हैं... बच्चे हैं, वह तुम्हें आध्यात्मिक गुरु लगता है, जो अपने ढोंग को सच साबित करने में लगा रहता है, जो अपनी ही औकात नहीं जानता है, जिसे पुलिस और नेताओं की जरूरत पड़ती है, वह ईश्वर को देखने-दिखाने की बात करता है! वह जैसा चाहता है तुम्हें नचाता रहता है... उसने तुम्हारी सोच, तुम्हारी पर्सनेलिटी बदल दी है!... तुमने उसके पीछे पूरे खानदान को दुश्मन बना लिया था और मुझे, अपनी बेटी तक को घर से निकाल दिया था। अच्छा मां, बताओ जिनके पिता, भाई, बेटा या ऐसे गुरु नहीं होते, क्या वे जिंदा नहीं रहतीं? मानती हूं मां कि तुम्हें अपने जीवन में कंपलीट परफेक्ट पुरुष नहीं मिला है, जिसकी तलाश में तुम भटकती रही हो। यह तुम्हारे जीवन की यात्रा नहीं यातना है... यह सहारा नहीं, कमजोरी है। यह खोज नहीं, शून्य में दौडने की थकान है।

मैं सिखा रही हूं? तुम्हें ऐसा क्यों लगता है!

बस तुम्हारे मन को टटोल रही हूं... बदलो अपने मन को, अपने विचारों को... भरो अपने अधूरेपन को!

तुमने अपने आपको देखा ही कब? समझा ही कब? तुम तो दूसरों में अपने को ढूंढ़ती रहती हो! कोई तुममें खुद को ढूंढ़े, ऐसी स्थिति पैदा की? नहीं ना!

मानती हूं कि तुम सबसे अलग हो। सबसे बेहतर भी, पर तुम्हें एक बिंदु पर ठहरना आता

ही नहीं... कभी कुछ... तो कभी कुछ... तुम्हारे पास हजारों आइडिया हैं, पर उनको पूरा करने की इच्छाशक्ति नहीं है। तुम्हारे पास रहस्य और रोमांच से भरे किस्से हैं, लेकिन तर्कशैली नहीं। तुम्हारे पास अनेक सपने हैं, पर सपनों को साकार करने की दृष्टि नहीं। इसलिए कई बार तुम रहस्यमयी हो जाती हो, तो कई बार जिद्दी भी, तो कई बार अहंकारी भी और कभी-कभी दयालु भी। सबसे निरासक्त कैसे रह लेती हो? रहती भी हो या रहने का नाटक करती हो!

जिस बात या विचार या आइडिया पर हम काम करना शुरू कर देते, पता चला वह तुमने हवा में उड़ा दिया या जिसके बारे में हमने सोचा तक नहीं था, उस पर तुमने काम करना शुरू कर दिया! है न तुम्हारे अनिश्चय का खेल। तुम्हारे ऊपर तो कोई फर्क ही नहीं पड़ता है।

कभी भी कोई भी 'डिसीजन' कैसे ले लेती हो? सब सच ही कहते हैं, तुम इस दुनिया के सांचे में 'फिट' नहीं बैठती हो! यह दुनिया आपसे अलग नहीं हो सकती! समाज को बदलने में समय लगता है। समाज का भी मनोविज्ञान होता है! मैं जानती हूं। मैं मैच्योर हूं!

ठहरो मां, तुमसे बातें करके मैं असमंजस में पड़ जाती हूं। मैं तो तुम्हारी एक मुकम्मल तसवीर देखना चाहती हूं तो वह बिखरी-बिखरी सी लगती है। टूटी कांच की चूडियों में जैसे रंग दिखते हैं वैसे ही रंग मुझे तुम्हारे व्यक्तित्व में दिखाई देते हैं! तुम भी तो एक 'कंपलीट वुमन' नहीं हो। तुमसे भी तो सबको शिकायतें हैं। जब से मैंने आँख खोली है, तुमको कुछ अलग करते पाया है। तुमको साडियों, गहनों, बर्तनों, घर की साफ-सफाई से कोई वास्ता नहीं रहा... मिट्टी से, पत्थरों से, पेड़ों से, पत्तों से, रंगों से... प्यार करते देखा है। तुम्हारे लिए बादल, आसमान, पेड़, फूल-पत्ते मायने रखते हैं, हम इनसान नहीं! तुम कैसी औरत हो तुमने दादाजी का घर, अपनी प्रापर्टी का हिस्सा, सब कुछ छोड़ दिया। जानती हो, इससे क्या हुआ, हम लोग बेघर हो गए। आज हमारे हाथ में कुछ नहीं है। सबकी डांट के बावजूद तुमने स्वयं को कभी नहीं बदला। न तुम पूरी तरह से सांसारिक हो न सन्यासिनी, न तुम योगी न भोगी। तुम्हारी साधनाएं, तुम्हारे काम, तुम्हारी कोशिशें, तुम्हारी मेहनत, तुम्हारी भाग-दौड़, तुम्हारी आशा-निराशा सब अपनी दिशा की तलाश में आधे-अधूरे पड़े हैं। अगर तुम्हें कुत्ते-बिल्ली पालना थे तो पाल लिए... रात-रात भर जागकर उनकी सेवा करती हो। दादा-दादी को इसीलिए तुमसे शिकायत है कि तुम उनकी सेवा की बजाय जानवरों की सेवा कर रही हो।

...क्या... सबने आना बंद कर दिया...

सच तो है, तुम्हारे बदबू भरे, गोबर-मिट्टी से लिपे-पुते बीहड़, मिट्टी, पत्थर से घर में कौन आएगा...?

यह तो तुम्हें डिसाइड करना है कि तुम किसको अपने जीवन में आने देना चाहती हो?

तुमको और कितना समझाऊं? क्या करो, क्या नहीं? तुम्हें समझा-समझाकर मैं बूढ़ों की तरह बातें करने लगी हूं।

यह तो सदियों से चला आ रहा सिलसिला है, मां... समझने, समझाने का! यदि कोई आसानी से समझ लेता और आसानी से समझा देता तो हजारों-लाखों लोग... यूं साधु-सन्यासियों के सामने भीड़ न लगाते। नहीं, मजाक नहीं बना रही। सत्य को छूने की कोशिश कर रही हूं... तुम्हारी खातिर! तुम्हारी खातिर मैं क्या-क्या नहीं झेलती हूं! कितने झूठ, कितने बहाने, कितने किस्से गढ़ती हूं!

अब नयी बातें... नयी चिंताएं! मेरी शादी की! मेरे करिअर की! मेरे खुले संबंधों की! समाज

और परिवार को रोकने-टोकने, पता चलने की चिंता! मैं खुलकर जीती हूं, सच्चाई से जीती हूं। तुम्हारे परिवार में कितने किस्से सुनने को मिलते हैं। दादाजी तो बुढ़ापे तक में लड़कियों से संबंध रखते थे। उनको किसी ने कुछ नहीं कहा? क्यों! मेरे बारे में क्या सोचना... मैं आज की लड़की हूं, आज के हिसाब से रह ही रही हूं। यकीन करो, मैं अपना फ्यूचर बना लूंगी। मुझे पता है कि मुझे क्या करना है, क्या नहीं? मेरे संबंध समीर से... हां हैं। तो! छोड़ देगा! मैं भी कौन सा उसके साथ बंधकर रहना चाहती हूं... शादी! जब कोई मिल जाएगा, कर लूंगी। हां, हां, हां...!

घर के कमरे बंद हैं, अँधेरे में डूबे। थोड़ा-सा उजाला कर दूं। बाहर गाडियों का शोर है, भीतर तुम्हारी आवाजों का, जो कभी चिंता में डूबी होती हैं तो कभी रूलाई में, तो कभी शिकायतों में। बाहर पानी बह रहा है मेरे भीतर... तुम्हारे आँसू! तुमने बेवक्त... मेरे भीतर स्वयं को थोप दिया है... मैं यूं ही बूढ़ी हो जाऊंगी। यूँ अपनी कामनाओं को दबा दूंगी। तुम्हारी मनहूसियत ने मेरे खिलंदड़ेपन को, मेरे ठहाकों को, मेरी हँसी को, मेरी खूबसूरती को कुचल दिया है! तुम तय कर लो कि क्या देना चाहती हो विरासत में मुझे?

हां-हां, मैं कह दूंगी कि सब तुमको समझाना, सजेशन देना बंद कर दें। मामा, मौसी, बुआ-सबको कह दूंगी। दादी और नानी की पूरी उम्र अपनी बहूओं और बेटियों को समझाने में निकल गयी और तुम्हारी आधी उम्र समझने और झेलने में। मजे की बात यह है कि न वे तुम्हें समझा सकी हैं और न तुम समझ सकी हो... वे बूढ़ी औरतें सारी उम्र इसी खुशफहमी में रहती आयी हैं कि उन्होंने तुमको कंट्रोल कर लिया। क्या इन बातों का... समझाईशों का कोई अंत नहीं है...?...

हां... घर में उजाला हो गया है, दीये जल रहे हैं...। बाहर का अँधेरा मैंने दूर तक आकाश में धकेल दिया है। उजालों को मैंने भीतर बुला लिया है... हां... मैं इन अँधेरों, उजालों में भी नाचना चाहती हूं... गाना चाहती हूं... चीखना-चिल्लाना चाहती हूं... कविताएं तो तुम लिखती थीं, मैं तो डायरी लिखती हूं। तुमसे छुपाकर रखती हूं अपनी डायरी।

अच्छा सीरियस मैटर और बातें छोड़ो। बताओ मेरे बच्चे यानी बिल्लियां कैसी हैं! पेड़ों पर चढ़ी हैं। पूरे जंगल में घूमकर आ जाती हैं, मोरों से डर गयी थीं? मोर आने लगे हैं। बिल्ले तो नहीं आते? मेरी बिल्लियां इतनी खूबसूरत और सेक्सी हैं कि बिल्ले न आएं... ऐसा कैसे हो सकता है? हम लोग यहां एक कमरे के फ्लैट में रह रहे हैं, साफ हवा के लिए तरस जाते हैं। मेरी सांसें घुटने लगती हैं। सूरज की रोशनी देखने के लिए मेरी आँखें तरस जाती हैं। मैंने यहां आकर चाँद और तारे नहीं देखे हैं और तुम... तुम जहां रहती हो, कितने खूबसूरत पेड़ हैं... पक्षी हैं... तालाब हैं... जानवर हैं. .. क्या सीन होता होगा सुबह और शाम का? शानदार! पेंटिंग की तरह!

अच्छा, ये बताओ मां, तुमने पेंटिंग बनानी क्यों बंद कर दी है!

क्यों! क्यों! बताओ ना! कब बनाओगी? जब बूढ़ी हो जाओगी? उंगलियां कांपने लगेंगी! नजर कमजोर हो जाएगी! तुम्हारा कोई इलाज नहीं सिवा इसके कि तुम अपनी कला की दुनिया में लौट जाओ! क्या करोगी पैसा बचाकर! मकान बनाकर! तुम जिस जगत् में रह रही हो, वह कितनों को मिलता है। वे क्या जाने मां, तुम कितनी स्वतंत्र पर्सन हो... बाहर से बंधी दिखती जरूर हो, पर तुम्हारे मन के बंधन... वो तुम्हारे खुद के बनाए हुए हैं...

उपदेश नहीं! यही सच है! मैं तुम्हारी बेटी हूं तो इसका मतलब यह नहीं कि मुझे दुनियादारी

का अनुभव नहीं है। तुमसे ज़्यादा जानता-समझती हूं मैं लोगों को!

तो सुनो। बार-बार मत पूछा करो।

आखिरी बार बता रही हूं... बस...!

मेरा काम अच्छा चल रहा है। मैं अपना जीवन खुद गढ़ रही हूं। मुझे अपनी बुद्धि पर सोच पर भरोसा है। नहीं, यह तुम्हारी गलतफहमी है। मुझे अपनी सुंदरता पर घमंड नहीं है.. अभिमान है... मेरी सुंदरता साधारण सुंदरता नहीं है... जो पुरुषों को रिझाने के लिए हो... मैंने... सुंदरता नहीं, सौंदर्य को अपनी देह और दिमाग में तराशा है... मैंटेन किया है... सुंदरता बहुत सामान्य सी भी हो सकती है... पर सौंदर्य, उसको बनने... गढने... और तराशने में सालों-साल लग जाते हैं। वह बुद्धि, ज्ञान, आत्मविश्वास और भीतर की चमक से चमकता है। तुम भी तो सुंदर हो। हां तुमने अपनी सुंदरता को बेवक्त खो दिया है, मटमैला कर दिया है। क्या कहा, आत्मा की सुंदरता... मन की सुंदरता... हां-हां मां... मैंने बहुत कुछ पढ़ा है, मैं जानती हूं आत्मा के बारे में!...

ऑफकोर्स मां... वह तुम्हारी आँखों में दिपदिपाती थी तारों की तरह...। तुम्हारी आँखों के वे तारे, वे जुगनू... वे ओस के कण... और क्या-क्या कहूं... जिनके प्रकाश में मैं अपना रास्ता खोजना चाहती थी... पर मां... हम दोनों का जीवन कुछ अजीब तरह का है, जिसकी कहानियां सुनते-सुनाते युग बीत जाएंगे! अच्छा छोड़ो... भी!

मैं तुम्हारी बातें समझती हूं। गुनती हूं। मनन करती हूं। तुम मेरी देह से ही रची-बसी हो। आत्मा का, रक्त का संबंध है हमारा। जो मुझमें हैं, वह तुममें तो आएगा ही। अभी कोई चीज ऐसी नहीं बनी है, जो मनुष्य के खून और मांस-मज्जा से अलग... कुछ बना सके। टेस्ट ट्यूब बेबी हो या मटके में पलता भ्रूण, मां धरती और अग्नि से पैदा हुई जीवात्मा, उसमें मनुष्य और सृष्टि के पंचतत्त्वों का योग तो होगा ही! मेरे भावों की उजास तुम्हारे भीतर फैली है। मेरी कला का दूसरा रूप तुम्हारे भीतर पल्लवित हो रहा है। मैंने रंग और ब्रश पकड़ा था, तुमने कैमरा। तुम मुझसे भी ज्यादा गहरी और दूर की चीजें देख सकती हो। कैमरे में कैद कर सकती हो। तुम्हारी आँख कैमरे की आँख जो है।

जानती हो मेरा सच... मेरे जीवन का सौंदर्य... मेरी निजता... मेरी हँसी... किसने छीनी? आज इन सब बातों का रोना, रोना नहीं चाहती। मेरा बचपन मेरे भीतर दब गया था, मेरे भीतर क्षोभ था। अंतहीन पीड़ा थी। मेरे भीतर इतने समंदर और इतनी नदियां हैं कि मैं उसी में डूबती-उतराती रहती हूं। मेरी मन्नो! उस पीड़ा को, उस पराधीनता को, उस दबाव को मैंने पच्चीस साल तक झेला है, जिया है। पच्चीस साल! जो अपने पल-पल का हिसाब रखती हो... उसके पच्चीस साल का जाना... कितना वेदना से भरा होगा वह अनुभव! और पच्चीस साल... मेरे देखते-देखते चले गए। सच कहती हो, मैं शारीरिक रूप से बीमार नहीं हूं। मैं पिछले कई सालों से मानसिक रूप से... आत्मिक रूप से बीमार चल रही हूं। मैं इस देह के पिंजरे से बाहर निकल, समय के पंख लगाकर उडना चाहती थी, मैं अपने सपनों और कल्पनाओं का एक छोटा-सा संसार रचना चाहती थी... बस। कल्पना करो कि पूरे एक जीवन में किसी का एक सपना तक पूरा न हो सके, उसे कैसा लगेगा?

मैं बहती नदी एक तालाब में सिमट गयी, फिर तालाब एक सूखे पोखरे में। क्या यही मेरी नियति थी?

नहीं ना!

मन्नो, लोग क्यों नहीं समझते कि मेरा संसार इस अनंत आकाश में... इस हरी-भरी धरती में एक कोना मात्र चाहता था।

कहो... कहो कि मैं मिट्टी की बेटी हूं.. पत्थरों की सखी हूं, मैं हरी दूब की ओस हूं... मैं नदी में रहने वाली मछली हूं, मैं आसमान में उडने वाली चिडिया हूं... मैं एक छोटी सी गुडिया हूं... मैं एक लघु तारिका हूं इस ब्रह्मांड की। मेरे स्वप्नलोक का संसार बहुत छोटा है... बहुत नगण्य सा।

मैं शिकायत नहीं कर रही हूं। मैं किसी से कुछ मांग भी नहीं रही हूं, न प्यार, न संपत्ति, न घर-द्वार... न भरोसा... न वायदा... न बुढ़ापे का सहारा, न इहलोक और परलोक से मुक्ति, मोक्ष पाने की कामना! मैं तो सबकी चिंताओं से परेशान हूं... चिंतित हूं... मुझे थोड़ा-सा एकांत चाहिए!

थोड़ा और अपना सा लगने वाला एकांत!

एकांत! एकांत!! एकांत!!!

मन्नो, घबराना नहीं।

कल तबियत बिगड़ गयी थी!

हास्पिटल आना पड़ा था!

मैसेज पढ़ते ही मन्नो की रुलाई फूट पड़ी। मन-आत्मा की दीवारों को फाड़ती रुलाई... कमरे में गूंजने लगी थी। ट्रेन नहीं, बस नहीं, टैक्सी नहीं। हवाईजहाज। वो भी दूसरे दिन का! उड़कर पलों में मां के पास पहुंचा जाना चाहती है। क्या हो गया मां को! क्यों हो गया!... क्या मां कभी ठीक नहीं होगी। किसी के कहे शब्द तीर बनकर तो नहीं चुभ गए उनके मन में। आँखों में नींद नहीं। मन में चैन नहीं। हृदय में छपाछप कुछ गिर रहा है। स्मृतियों की घाटियों में चिड़िया की तरह चक्कर लगा रही है मन्नो।

सीधे हास्पिटल पहुंची। प्राइवेट रूम में सन्नाटा पसरा है। खिड़कियों पर हरे रंग के परदों के पीछे दिन का उजाला पसरा है। ड्रिप और दवाइयों के बीच मां का मुरझाया सांवला-सा थका चेहरा! चेहरे का नूर, चेहरे की मांसपेशियां, चेहरे की बनावट ही बदल गई।

मन्नो स्तब्ध!

मन्नो चुप।

मन्नो काष्ठ बन गयी?

मां जो एक नदी की तरह थी... मां जो एक कविता की तरह थी... मां जो एक पेंटिंग की तरह थी। मां... मूर्ति में धड़कन की तरह थी... मां... मां...

मन्नो...!

मन्नो हड़बड़ायी। चौंकी। फिर संभली। आँखों में सिमटा धुंधलापन उतर रहा है।

'चिंता मत करो। मैं आ गयी हूं।' मन्नो ने मां के गरम-नरम वक्ष पर सिर रख दिया। बिखरे बालों ने मां को चारों तरफ से ढांप लिया। मन्नो की बांहों ने बांध लिया मां की थकी देह को! मां के आँसू नहीं थम रहे हैं। सिसकियां! फिर मौन! फिर टूटे-फूटे संवाद! फिर मुस्कुराहट की रेखाएं।

एक हफ्ते बाद डिस्चार्ज करवाकर मन्नो मां को ले जा रही है। सीधे स्टूडियो! अब कोई सवाल नहीं। कोई चिंता नहीं। कोई आगे-पीछे, दाएं-बाएं नहीं। किसी का इंतजार करती आँखें नहीं।

शिकायत करती जबान नहीं। तुम्हें ठीक होना है। ठीक रहना है। तन-मन को बचाना है। मैं सिर्फ तुम्हारा खून मांस-मज्जा नहीं हूं, मनोविज्ञान की विद्यार्थी रही हूं। चेतन, अवचेतन और अर्धचेतन मन की सारी अवस्थाओं-स्तरों को... सबको पढ़ा है। तुमको पढने की आदत सी बन गयी है।

बंद हॉल के दरवाजे खोल दिए। दूर तक घने पेड़ों की कतार नजर आ रही है। परिंदे चहचहा रहे हैं। इतने तरह के परिंदे! इतनी तरह की आवाजें! इतनी तरह की हवाएं! हवाएं गुनगुना रही हैं।

'उठो। पानी पिओ। कपड़े बदलो।'

'उठो। खड़ी हो जाओ। लो खाना खाओ। दूध पिओ। फल खाओ।'

मन्नो ने भूमिका बदल दी। मन्नो कठोर अभिभावक बन गयी है!

'देख लिया कोई बीमारी नहीं है। तुम्हारा इलाज कोई डॉक्टर नहीं कर सकता।'

धूल खा रहे कैनवास को साफ किया। जंग खा रहे स्टैंड को ढूंढ़ लाई। डिब्बों में बंद पड़े रंग के ट्यूब निकाले। ट्रे में रंग, ब्रश, नाईफ सजा दिए हैं। सजा दिया है मां के जीवन का साज-शृंगार।

'पकड़ो। मां कहीं कुछ नहीं छूटा है। सब कुछ तुम्हारे भीतर है। जो दब गया था, उसे बाहर निकालो।' एक गुरु की हिदायत! आदेश!

मां ने ब्रश पकड़ा, हाथ कांप रहे हैं। उंगलियों की पकड़ ढीली है।

'होगा मां... होगा... हिम्मत करो। यह कोई जंग का मैदान नहीं है... यह तुम्हारे जीवन का मैदान है... समझी ना।' मन्नो स्थिर दृष्टि से देखते हुए कह रही है। उसकी आवाज में अजीब-सा सुरूर उतर आया है।

ब्रश ने हल्के से रंगों को छुआ... रंग कैनवास पर बिखरे। कुछ टेढ़ी-मेढ़ी सी आकृतियां उभरीं। छोटी आकृतियां बड़ी होने लगीं। रेखाओं के बीच रंग भरे जाने लगे। रंग फैलते गए। रंगों से कैनवास पर आकाश उतर रहा है, सूरज अपना रंग बदल रहा है, धरती का कोई छोर दिख रहा है... बाहर खड़े पेड़ अंदर आ गए हैं... कई स्त्रियां अपना वजूद तलाशने... स्वयं को गढने में लगी हैं... मां के हाथ अब तेजी के साथ चल रहे हैं... इतनी तेजी के साथ कि कहीं कुछ छूट न जाए... वर्षों का छूटा हुआ, ठहरा हुआ एक ही बार में पूरी रफ्तार से पकड़ लेना चाहती हैं...

मन्नो ने कैमरा निकाला... और चित्र बनाती मां की तसवीर खींचने लगी...

'मां, इधर देखो... इधर... मेरी तरफ... मुस्कुराओ और ... हँसो ... जोर से, और जोर से।'

और पेड़ों पर चहचहाती चिड़ियों ने, सरसराती हवाओं ने सुनी मां और मन्नो की वो हँसी जो हवाओं के साथ बहती हुई आसमान में गूँज रही थी।

●

कहां गया भुईयां?

तेजिन्दर

यह हादसा मेरे इस दफ्तर में आने से पहिले हो चुका था। मैंने उसे देखा नहीं। मैं उसके बारे में कुछ जानता भी नहीं था। वह सिर्फ फाईलों में था। अकसर ही उसकी फाईल मेरे पास आ जाया करती। एक बार उसकी सर्विस बुक भी साथ में थी, जिसके ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में काली स्याही से लिखा था- सेवा पंजिका- नंदीलाल भुईयां, तकनीशियन भूतपूर्व। मैंने उसे खोलकर देखा। पहले ही पन्ने पर उसकी फोटो थी, जिस पर उसके दस्तखत थे। फोटो शायद काफी पहिले की थी, जब उसने इलेक्ट्रानिक्स में डिप्लोमा किया था, तब की। सिर पर लंबे बाल जो कि आपस में गुच्छमगुच्छा थे। मुझे आश्चर्य हुआ था। उस उम्र में तो लड़के कम से कम अपने चेहरे-मोहरे के प्रति बहुत सतर्क रहा करते हैं। मैंने सोचा था। पर उसके चेहरे पर तो एक तरह की सादगी थी, उसके नाम जैसी भुईयां जो उसकी फोटो में अलग से नजर आ रही थी। फिर मैं नीचे देखने लगा था उसका विवरण। जन्म तिथि- इक्कीस मई उन्नीस सौ उन्नहत्तर। स्थान- बांसपाल, जिला-कंधमाल। अनुसूचित जनजाति, शिक्षा- हाई स्कूल, इलेक्ट्रानिक्स में डिप्लोमा, शासकीय सेवा में प्रवेश की तिथि- तेरह दिसम्बर उन्नीस सौ नब्बे। यानी कि जब वह इक्कीस साल का था तो सरकारी नौकरी में आ गया था।

'कहते हैं साहब कि वह बिजली का काम बिजली की तरह करता था'- पटेल ने बताया था। 'एक बार ट्रांसमीटर में एक बड़ा फाल्ट आ गया, बड़े-बड़े इंजीनियर घंटों लगे रहे, पर फाल्ट था कि किसी की पकड़ में नहीं आ रहा था। भुईयां बाहर धूप में बैठा हँस रहा था, वह था तो मामूली तकनीशियन, पर अपने आप को किसी इंजीनियर से कम नहीं समझता था। नायक उसके साथ था, उसकी नायक से बड़ी दोस्ती थी। इस बात पर सबको बहुत आश्चर्य होता था। नायक नया मकान बनवा रहा था और उसे बिजली की फिटिंग करवानी थी। यह बात सिर्फ नायक ही जानता था। उसके चाचा रमाकांत नायक सत्ताधारी दल के विधायक थे और यह बात वह अपने चाचा से ज्यादा याद रखता था। चाचा के विधायक बनने से पहिले ही वह सरकारी नौकरी में आ गया था, वह अभी भी माथे पर तिलक लगाता था बड़ा सा, उसके पुरखे यहां के राजपुरोहित थे। वह भी नाटा था भुईयां की तरह, दोनों को शहर की सड़कों पर एक ही मोटरसाइकिल में घूमते हुए देखा जा सकता था, कभी मोटरसाइकिल भुईयां चला रहा होता और कभी नायक, तो हुआ पर साहब कि भुईयां ने बाहर से ही चीखकर कहा- 'लगे हैं बड़े-बड़े इंजीनियर......'

सारे दफ्तर में सन्नाटा था। नायक हँसा, चिंपाजी की तरह। पटेल ट्रांसमीटर से बाहर निकला। वह गुस्से में था। वह असिस्टेंट इंजीनीयर था और उसी की ड्यूटी के दौरान ट्रांसमीटर में फाल्ट आया

था। यह दूसरी बार थी।

'बहुत हँसी आ रही है तो आ कर ढूंढ दो फाल्ट'- पटेल ने चिढ़कर कहा था। उसने भुवनेश्वर से बी.ई.इलेक्ट्रिकल्स किया था। वह दुबला-पतला था। उसे गुस्सा जल्दी आता था।

'हां-हां ढूंढ देंगे, आप बताइए, क्या देंगे? भुईयां ने कहा था।

'देना क्या है, ड्यूटी है तुम्हारी '

'ड्यूटी तो आपकी है साहब, हम तो छोटे-मोटे तकनीशियन हैं'- भुईयां ने जवाब दिया था। नायक एक बार फिर हँस पड़ा था। पटेल झेंप गया था। उसने अपना गुस्सा भुईयां पर ही निकाला था- 'चलो अंदर और मदद करो, बड़े साहब भी वहीं पर हैं।'

नायक ने भुईयां के कान में फुसफुसाकर कुछ कहा था।

'साहब फाल्ट तो मैं ठीक कर दूंगा, लेकिन मुफ्त में नहीं', भुईयां ने शर्त रखी थी।

'हां ठीक है वह भी हो जाएगा, पर बड़े साहब को पता नहीं चलना चाहिए'- पटेल ने करीब-करीब आत्मसर्मपण कर दिया था।

'ठीक है।' भुईयां अपनी जगह से उठा था। दोनों भीतर ट्रांसमीटर में चले गए थे। वहां तीन-चार लोग और थे। बड़े साहब भी। नायक भी पीछे-पीछे। नायक बाबू किसी से डरता नहीं था।

'सर मैंने भुईयां को समझा दिया है, आप प्लीज बैठें, अभी फाल्ट ठीक हो जाएगा।' पटेल ने बड़े साहब से कहा था। भुईयां ने पटेल की तरफ देखा था घूरकर, पटेल ने हाथ के इशारे से उसे चुप रहने के लिए कहा था। भुईयां चुपचाप ट्रांसमीटर के तार इधर से उधर करने लगा था।

बड़े साहब वहीं एक तरफ कुर्सी पर बैठे थे। वहां मौजूद बाकी के लोग भी अलग-थलग हो गए थे। पटेल वहीं खड़ा था, भुईयां के पीछे। वह वही बोल रहा था जो भुईयां कर रहा था जबकि दिखाई यह देता था कि वह जो बोल रहा है, वही भुईयां कर रहा है।

थोड़ी देर में ही भुईयां ने सारी तारें अपनी सही जगह पर जोड़ दी थीं। बड़े साहब खुश हो गए थे और उन्होंने पटेल की पीठ ठोंकी थी।

पटेल ने रात का इंतजाम कर दिया था नायक के लिए भी। हालांकि नायक की हँसी उसे लगातार चुभ रही थी। पर भुईयां की हर बात में नायक शामिल रहता था, नायक की हर बात में भुईयां शामिल रहता था या नहीं इस बात का किसी को पता नहीं था। दोनों फिल्मी दोस्तों की तरह का सा व्यवहार करते थे। एक गोरा था और एक काला। एक के सिर पर बाल कुछ लंबे थे तो दूसरे के सिर पर हमेशा छोटे बाल ही हुआ करते थे। एक शहरी उड़िया बोलता था तो दूसरा कंधमाल की उड़िया में बात करता था। पर दोनों नाटे थे और दोनों के ही शरीर बलिष्ठ थे। जब वे मोटरसाइकिल पर बैठकर शहर के वीर सुरेन्द्र साय मार्ग पर निकलते तो रास्ता जैसे उन दोनों के लिए अपने आप खाली हो जाया करता। मोटरसाइकिल पर उनके निकलने का कोई समय निर्धारित नहीं था। जितना वे अपने काम में मुस्तैद थे उतना ही खिलदंड़ापन भी उसके भीतर था।

उस दिन भुईयां की ड्यूटी तीसरी शिफ्ट में थी। रात साढ़े बारह बजे तक। नायक अकसर ही शिफ्ट ड्यूटी में भुईयां के साथ ठहर जाया करता था।

रात लगभग साढ़े दस बजे दफ्तर के बाहर बगीचे में दोनों ने देशी शराब पी थी। वे लगभग आधे घंटे तक पीते रहे थे।

एकाएक भुईयां को अपनी मंगेतर की याद आ गई थी। उसका विवाह बुर्ला में तय हुआ था। उसका श्वसुर वहां एक सरकारी स्कूल में पढ़ाया करता था।

'चलो उसकी गली तक घूमकर आ जाते हैं'- भुईयां ने कहा था।

'किसकी'

'मेरी होने वाली की, वहीं चलो'- नायक हँस पड़ा था।

दोनों ने मोटरसाइकिल उठाया था और रवाना हो गए थे। बुर्ला वहां से करीब पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर था। दिन भर तो इस सड़क पर काफी यातायात रहता था पर रात को सिर्फ ट्रक होते थे और बसें। उनकी जगमगाती रोशनियों के सामने कुछ भी दिखाई नहीं देता था, बस एक अंधियारा सा होता था। ऐसे ही एक अंधियारे में भुईयां मोटरसाइकिल चला रहा था और नायक उसके पीछे बैठा था। डैम के पास ब्रिज के ऊपर से गुजरते हुए सामने एक ट्रक की रोशनी आई और अंधियारा छा गया। इसी अंधियारे में भुईयां की मोटरसाइकिल ट्रक से जा टकराई। भुईयां ढेर हो गया और नायक दस फीट दूर जा गिरा, ब्रिज के नीचे रेत पर। ट्रक में ड्राईवर और कंडक्टर के अलावा कुछ मजदूर भी सवार थे। उन्होंने दौड़कर किसी तरह नायक को उठाया और ट्रक में लादकर बुर्ला अस्पताल पहुंचाया। तकरीबन एक महीने अस्पताल में रहने के बाद जब नायक लौटा तो अकेला था। उसके पास भुईयां की सर्विस बुक थी और उसकी तनख्वाह के कागजात वगैरह। उसने मन ही मन भुईयां के परिवार को मिलने वाले पैसे का हिसाब भी लगा लिया था, पर कागज तैयार नहीं किए थे।

इस दौरान भुईयां के पिता दो-तीन बार दफ्तर में आए थे और पटेल से मिलकर चले गए थे। पटेल ने नायक को बुलाकर जल्द से जल्द भुईयां के सभी ऐरियर्स, ग्रेच्युटी, जी.पी.एफ. और पे-इनकैशमेंट वगैरह तैयार करने को कहा था।

नायक चुपचाप सुनता रहा था। इस बीच आफिस के कुछ और लोगों ने भी उससे कहा था- 'तुम्हारा तो बहुत अच्छा दोस्त था भुईयां उसका बिल तो जल्दी तैयार कर दो।'

पर नायक चुप रहा था।

नायक हर तरह के बिल तैयार किया करता था। चाहे जी.पी.एफ. हो या पदोन्नति के बाद वेतन के एरियर्स वगैरह, इस तरह के काम में उसे महारत हासिल थी। जैसे भुईयां बिजली की तारों के उलझे हुए सूत्र आपस में जोड़ देता था ठीक वैसे ही नायक एकाउंटस के अंकों का माहिर था। उसका अपना कमीशन दस प्रतिशत था जो कि तय था। अभी तक जितने भी बड़े साहब आए, उनमें से कोई भी इसे तोड़ नहीं पाया था। उसी कमीशन के पैसे से नायक का खर्च चलता था। दफ्तर के एकाउंटस का काम नायक चलाता था और ट्रांसमीटर का काम भुईयां। बाकी लोग थे, वे भी दफ्तर आते, काम करते, पर उनसे आफिस नहीं चलता था। कुल मिलाकर यह नायक और भुईयां का दफ्तर था। दोनों में से एक भी गैर-हाजिर हो तो दफ्तर के काम में फर्क पड़ता था।

मैं दफ्तर में अपने कमरे में अकेला बैठा था। दोपहर बाद लगभग चार बज रहे थे। दिन भर की गहमा-गहमी बीत चुकी थी। बस इतने ही काम हो रहे थे जितने कि जरूरी थे, उसी दिन करने के लिए, जो सामने थे। मेरा कमरा दफ्तर में ऊपर दूसरे माले पर था। वहां तक चढ़कर कोई तब ही आता था जब उसकी विवशता हो। बहुत सारे लोग नीचे से ही अपना काम करा के चले जाते थे। जब उनका काम नीचे से नहीं होता था, तभी वे ऊपर आते थे।

'क्या मैं अंदर आ सकता हूं' अचानक बाहर से एक भर्राई हुई सी आवाज आई। मैंने सिर उठाकर देखा। सामान्य ऊंचाई का गठे हुए शरीर वाला एक काला सा आदमी मेरे सामने था।

'आईए'- मैंने कहा।

वह भीतर आ गया। उसका चेहरा म्लान था। वह कुर्सी पर बैठने ही वाला था कि मैंने अपना हाथ उसके आगे बढ़ा दिया। उसने मुझ से हाथ मिलाया। उसका हाथ गर्म था।

'जी बताईये, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं'- मैंने पूछा था। औपचारिकता मेरा पेशा था। मुझे बताया गया था कि मैं अपने पेशे में माहिर हूं।

'मैं नंदलाल भुईयां का पिता हूं तीरथराम भुईयां'-उसने कहा था।

पूरा कमरा जैसे मेरे सिर पर आ गिरा था। अभी कल ही तो मैंने भुईयां की फाइल यह लिखकर वापिस की थी कि इनके जो भी पैसे बनते हों वे तुरंत अदा किए जाएं। इनका ड्राफ्ट स्पीड-पोस्ट से उसके पिता के पास भिजवा दिया जाए।

'आपके साथ बहुत बुरा हुआ'- मैंने कहा था।

'साहब वो तो जो हुआ, गॉड का मर्जी था पर ..... तो उससे भी ज्यादा बुरा हो रहा है'- उसने जवाब दिया। उसकी आवाज सख्त थी।

'क्या हो गया भुईयांजी .... '

'वो पैसा मांगता है साहब... नायक दस परसेंट ......'- उसकी आवाज थरथरा आई थी।

'आप से भी....... मैं जैसे हकला गया था।'

'वैसे तो किसी सें भी नहीं लेना चाहिए साहब पर वह तो मुझसे भी ....' उसने कहा था। वह भीतर कहीं आहत था।

'आपसे किसने कहा- मैंने पूछा था। पटेल ने, उसने बताया था।

'आपको कोई जरूरत नहीं है किसी को भी एक पैसा देने की, मैं इस आफिस का हैड हूं और आपसे कह रहा हूं कि आपको हफ्ते भर के अंदर पेमेंट मिल जाएगी।' मैंने कहा था। मुझे खुद को लगा था कि मैं बहुत आत्मविश्वास के साथ यह बात कह रहा हूं। आखिरकार नायक मेरे ही दफ्तर का एक बाबू था और वह मेरे अधीन काम करता था। मैंने अपनी थूक को अपने अंदर ही निगल लिया था।

'ठीक है साहब, थैंक्यू वेरी मच, मैं आपकी पेमेन्ट का इंतजार करूंगा'- उन्होंने कहा था। फिर वे उठकर बाहर चले गए थे।

मैं उन्हें जाते हुए देख रहा था। मैंने इंटरकॉम पर नायक को बुलवाया था। थोड़ी ही देर में नायक मेरे सामने था। उसके मुंह में पान था। इसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। वह पैरों में चप्पल ही पहनता था, चाहे कितनी सर्दी क्यों न हो। मैंने उसे कभी जूते पहने हुए नहीं देखा था। उसके माथे पर बड़ा सा तिलक था। सिर के बाल बढ़े हुए थे। यह आदमी किसी शैतान धार्मिक की तरह दिखलाई देता है, मैंने सोचा था।

'जी साहब'- उसने कहा था।

'नायकजी वो भुईयां के एरियर्स की पेमेंट का क्या हुआ'- मैंने पूछा था।

'तैयार है साहब'- उस ने कहा था।

'तो फिर उसकी फाइल कहां है'- मैंने चिढ़कर पूछा था।

'पटेलजी के पास है फाइल, वे कह रहे थे कि इसे पे एंड एकाउंटस आफिस भुवनेश्वर भेजना

पड़ेगा'- उसने नपा-तुला जवाब दिया था।

'क्यों वहां क्यों भेजना पड़ेगा'- मैंने ज्यादा चिढ़कर पूछा था।

'वही तो मैं कह रहा हूं साहब, इस आफिस के हैड तो आप हैं, पर पटेलजी इस बात को मानते ही नहीं'-उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी में से भी उसकी मुस्कान को अलग से पहचाना जा सकता था। उसने अपना दांव फेंक दिया था।

'ठीक है आप पटेलजी से कह दीजिएगा कि वे जो भी चाहते हैं लिखकर दे दें'- मैंने कहा था।

'वे लिखकर थोड़ी न देंगे सर, वे तो भुईयां से वैसे भी बहुत चिढ़ते थे, ट्राईब था न, जिस दिन भुईयां का एक्सीडेंट हुआ उस दिन वह पटेल से ही लड़कर गया था और बहुत टेंशन में था साहब. ....'- उसने बताना शुरू किया था।

'अच्छा ठीक है पटेल से कह देना कि वे फाइल के साथ कल सुबह मुझ से मिलें, भुईयां की पेमेंट्स इसी हफ्ते हो जानी चाहिए।'

'ठीक है साहब मैं कह दूंगा और अगर पटेल बीच में न हों तो मैं पेमेंट भी देने के लिए तैयार हूं'- उसने कहा था। वह वापिस जाने के लिए मुड़ पड़ा था। मुझे उसकी बात से झटका सा लगा था।

'क्या मतलब तुम्हारी बात का'- मैंने कहा था।

वह जाते-जाते ठहर गया था।

'पटेल बात-बात में अड़ंगा लगाते हैं साहब। कभी नीचे आकर देखिए उनकी मेज पर फाइलें कितने-कितने दिन तक पड़ी रहती हैं, आप एक बार देखिये न साहब नीचे आकर उनके कमरे में'- वह जैसे जिद करने लगा था।

'अच्छा ठीक है, कल सुबह फाइल लेकर साथ में आप भी आ जाना'- मैंने कहा।

'ठीक है सर'-उसने कहा और वापिस चला गया था।

अगले दिन सुबह दफ्तर खुलते ही वे दोनों फाइल लेकर मेरे पास आए थे। पटेल का चेहरा तना हुआ था जबकि नायक सहज लग रहा था।

'सर नायक ने कल रात भुईयां के घर जाकर उसके पिता को पेमेंट का ड्राफ्ट दे दिया'- पटेल ने बताया।

मुझे अच्छा लगा। मैंने कहा-'वैल डन, नायक।'

'सर यह तो आपका हुक्म था'-नायक ने दांत निपोरते हुए कहा।

'ओ.के.ग्रेट'-मैंने बात को खत्म करने की गरज से कहा।

वे दोनों उठ गए और कमरे से बाहर चले गए। मैंने राहत की सांस ली। पर इससे पहले कि मैं पूरी सांस ले पाता पटेल वापिस कमरे में आ गया।

'क्या हो गया।'

'सर आप से एक बात कहनी है।'

'कहिये...'

'सर नायक ने भुईयां के पिता को दस परसेन्ट कमीशन लेकर उन की पेमेंट की है'- पटेल ने बताया। यह बताते हुए उनका चेहरा तमतमाकर लाल हो रहा था और उनकी देह कांप रही थी।

'आपको किसने बताया?'

‘भुईयां के पिताजी ने ही फोन पर।’

‘पर मैंने तो उन्हें मना किया था।’

‘सर न करते तो वह भुईयां के कागज भुवनेश्वर पी.ए.ओ. के पास भिजवा देता और फिर पेमेंट छः महीने के लिए लटक जाती’- पटेल कह जरूर रहा था पर उसकी आवाज में भुईयां के लिए कोई चिंता नहीं थी। संभवतः नायक ने पटेल को उसका हिस्सा नहीं दिया था।

मेरा मन एकाएक बुझ गया था। मैंने पटेल को यह कहकर वापिस भेज दिया कि मैं नायक से बात कर लूंगा।

‘नायकजी, यह आपने ठीक नहीं किया, भुईयां तो आपका दोस्त था, उससे भी परसेंटेज ले ली आपने’- मैंने अपने गुस्से को अपने अंदर ही कहीं दबाते हुए कहा। हांलाकि मैं उसे यह बात डांटकर कह सकता था, मैं उसके मुंह पर थूकना चाहता था पर मैं भी इस बात को नहीं भूल पाता था कि वह सत्ताधारी दल के एक विधायक का भतीजा है। मेरे पास इस बात का कोई सबूत नहीं था कि नायक ने भुईयां के पिता से पैसे लिए हैं। यह एक अलग तर्क शास्त्र था, जिसमें कोई तर्क नहीं था और इसी आधार पर पूरी सरकार चल रही थी।

नायक अपनी बिखरी हुई दाढ़ी के बीच मुस्कुराया था। उसकी मुस्कुराहट मेरी आँखों में गड़ रही थी।

‘सर मैं क्षमा के साथ आपसे एक बात जानना चाहता हूं’- उसने विनम्र बनने की भरसक कोशिश करते हुए कहा था। उसके चेहरे पर एक तरह की कठोरता साफ नजर आ रही थी।

‘हां कहो।’ -‘सर भुईयां कहां गया।’

‘मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।’

‘सर मेरा मतलब साफ है, मैं जानना चाहता हूं कि भुईयां कहां गया’- उसके चेहरे पर कीचड़ फैल रहा था। ‘कहां गया, ही इज नो मोर, ही डाईड इन द एक्सीडेंट’- मैंने कहा। मैं सीधे-सीधे यह नहीं कह पा रहा था कि भुईयां अब मर चुका है। ‘सर भुईयां अब नहीं है, यही सच है न?’

‘हां यही सच है।’

‘अगर यही सच है सर तो जो नहीं है उसके प्रति संवेदना कैसी? आप लोग गलत तर्क शास्त्र पर चलते हैं सर, मैंने पैसे उसके पिता से लिए हैं भुईयां से नहीं। वह तो मेरा मित्र था, जो मर गया, अब जिंदा रहते हुए तो वह अपने मरने का कंपनशेसन नहीं ले सकता था न, इसलिए मेरा उससे पैसे लेने का सवाल ही नहीं है’- उसने कहा। वह अभी भी मुस्कुरा रहा था।

‘आप मेरे कमरे से बाहर जा सकते हैं, प्लीज् गैट लास्ट’- मैंने कांपती आवाज में कहा था। मैं अपनी जगह पर खड़ा हो गया था।

‘आप जैसे लोग जब तर्क पर फेल हो जाते हैं तो ऐसे ही चीखते हैं सर’- उसने कहा था और उठ गया था।

मैं अपनी कुर्सी से गिरते-गिरते बचा था। मेरे जेहन में एक ही सवाल बार-बार गूंज रहा था- ‘कहां गया भुईयां’? और इस बात का कोई जवाब नहीं था।

नायक कमरे से बाहर जा चुका था।

●

झूलाघर

उषा शर्मा

तनु को झूलाघर छोड़कर मैंने जल्दी से कायनेटिक स्टार्ट की। हालांकि स्कूटर की घरघराहट तनु के रोने की आवाज को दबा तो नहीं पायी लेकिन उसे हल्का जरूर कर दिया। मैं महसूस तो कर रही थी लेकिन मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि पीछे देखूं। गालों पर लुढ़के आँसू और हिचकियां लगातार मेरा पीछा कर रहे थे। एक चित्र सा सामने आ जाता था तनु का।

'मां मुझे मत छोलो, मुझे ले तलो।' उसने साड़ी का पल्ला कसकर पकड़े हुए कहा।

'मां मैं झूलाघर में नहीं लहूंगी, तुम्हाले छात लहूंगी।'और तनु रो पड़ी।

'बेटी, मेरी प्यारी बेटी, देखो मैं नहीं जाऊंगी तो तुम्हारे लिए अच्छे कपड़े, खिलौने और टॉफी कौन लायेगा।'

'अले!' तनु ने गुस्से से मेरी ओर देखा जैसे मेरी इस बात को वह नहीं समझ पायी- 'मत लाओ, नहीं चाहिए। मुझे मां चाहिए। तुम, तुम, तुम!' कह कर वह जोरों से रो पड़ी।

'चुप रहो।' मैं चिल्लाई 'तुम्हारा रोज रोज का नाटक..........' मैं बड़बड़ करती तैयार होने लगी।

तनु सहम गयी और चुपचाप बाहर जाकर स्कूटर पर बैठ गई।

जल्दी-जल्दी तैयार होकर मैंने ताला लगाया। झूलाघर में अनु को छोड़ना पड़ता है। वहीं से वह स्कूल जाती है और वहीं से वापस आ जाती है। साढ़े पांच बजे मैं उसे लेते हुए घर आती हूं।

मेरी नौकरी लगे अभी महीना भर हुआ था। मेरे पति ने नियुक्ति पत्र मुझे देते हुए कहा- 'नीलू बधाई हो।'

'क्या है?' मैंने जिज्ञासा से लिफाफा खोला। 'देख लो।'

'अहा!' मैं खुशी से उछल पड़ी। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। मेरी नौकरी! ओह, ये ही तो सपना था मेरा। एम.ए, पी.एचडी. करने के बाद भी मैं घर में बैठी थी। यह बात मुझे हमेशा बहुत कचोटती। कक्षा में सदैव प्रथम आने वाली मैं जब विवाह बंधन में बांध दी गयी तो मुझे लगा अब मेरा करिअर खत्म हो गया। नया परिवेश, नए लोग और नयी जिम्मेदारियां। फिर एक साल बाद तनु भी आ गयी। दिन पर दिन जिम्मेदारियां बढ़ती जा रही थीं और मेरी निराशा भी। मेरा सपना था प्रोफेसर बनने का लेकिन अब?

एक दिन बैठे-बैठे मैं पेपर पलट रही थी कि एक रिक्त पद पर मेरी नजरें टिक गयीं। एक

फर्म में जरूरत थी। नौकरी अच्छी थी और वेतन भी। मैंने पति से कहा तो वे भी मान गए। बोले- 'हर्ज क्या है? भर कर भेज दो फार्म, देखा जाएगा।'

शुरू-शुरू में मैं रोज पोस्टमैन का रास्ता देखती लेकिन धीरे-धीरे मैं इस बारे में भूल गई और अब अचानक.....।

हम दोनों ने मिलकर ढेरों सपने देख लिए। अब जल्दी ही हम अपना मकान लेंगे, गाड़ी होगी और न जाने क्या, क्या।

'तनु का क्या होगा?' कहते हुए एकाएक मैंने पति की ओर देखा। पति अकसर टूर पर रहते हैं। पूरे समय मैं ही तनु की देखभाल करती हूं। थोड़ी देर वे सोच में डूबे रहे फिर बोले- 'किसी अच्छे झूलाघर में डाल देंगे।'

'हां।' इतनी जल्दी इतनी बड़ी समस्या का समाधान हो गया।

एक हफ्ते बाद मैं ऑफिस जाने लगी। सुबह दस बजे पहुंचना होता और साढ़े पांच बजे छुट्टी मिलती। तनु नर्सरी स्कूल जाने लगी थी जो ग्यारह बजे से दो बजे तक लगता था। उसे मेरे पति स्कूल छोड़ते और दो बजे उसका ऑटो उसे झूलाघर में छोड़ देता। दो हफ्ते तक तो सब कुछ बिलकुल ठीक चला। तनु को सिर्फ तीन घंटे रहना होता था झूलाघर में। उन तीन घंटों में वह सोई रहती।

फिर एक दिन मेरे पति को दूर पर जाना पड़ा। मैंने उसे सुबह ही झूलाघर छोड़ना शुरू कर दिया। पहले दिन तो उसकी समझ में नहीं आया पर दूसरे दिन से उसने सुबह से ही रोना शुरू कर दिया- 'इतनी प्यारी बेती को छोल कर क्यों जा लई हो? मां की नौकली गंदी।' मैं किसी तरह उसे झूलाघर में छोड़कर भागती।

ऑफिस में मुझे सभी पसंद करते। मेरा काम समय पर खत्म हो जाता। किसी को मेरे काम से शिकायत नहीं थी। लेकिन मेरे मन में निरंतर एक अंतर्द्वंद्व बना रहता। घर के काम छूटते जाते। एक शाम को जब मैं किचन में काम कर रही थी अनु मेरे पास ही खेल रही थी। मैंने उससे कटोरी मांगी- 'अरे! तुम्हारे हाथ में क्या हुआ?'

मैंने उसे गोद में उठा लिया। उसके हाथ में लाल-लाल चकत्ते से निकले थे।

'नेहा ने काता।' उसने रुआंसी होकर कहा।

'क्यों?'

वह रोने लगी।

'तुमने मुझे बताया क्यों नहीं?' मैंने उसका हाथ सहलाया।

'तुम सुनती कहां हो?' आँसू उसके गालों पर लुढ़क रहे थे। 'तुम तो काम में लगी लहती हो।'

मैं अवाक रह गयी। सच ही तो कह रही थी वह। पहले तो दिनभर मैं उसकी बातें सुना करती थी। उसके साथ खेलती थी, उसकी छोटी छोटी जिज्ञासाओं को, प्रश्नों को हल करती थी लेकिन उसके अब कुछ बोलने से पहले ही मैं उसे डपटकर चुप कर देती हूं। मेरे पास समय नहीं है। 'मुझे काम करने दो तनु, जाओ तुम खेलो' इस वाक्य के पूरा होने से पहले ही तनु अब चुपचाप बाहर निकल जाती है। उसने मुझे कुछ बताना, कुछ भी पूछना लगभग बंद कर दिया। मुझे याद आया, एक बार जब मैंने उसके गाल पर निशान देखे थे। मैंने पूछा- 'तनु ये कैसा हुआ?'

'आंटी ने मारा। मां....।'

मैंने उसके वाक्य को पूरा होने से पहले ही कहा।'क्यों? जरूर शैतानी की होगी तुमने?'

'नहीं मां वो शिखा.....।'

'मैं तुम्हें जानती नहीं क्या? जरूर दोनों ने शरारत की होगी। जाओ, बाहर खेलो, मुझे काम करने दो। तनु ने अजीब सी निगाहों से मुझे देखा और धीरे से बाहर चली गई।

ऐसे ही एक बार पहले जब मैंने उसे किसी बात पर एक चपत मारी तो वह 'काला-काला कर दिया जरा गाल देखो।' कहकर मुझसे चिपक गई थी और अपने से चिपटा कर उसे मैं भी रोने लगी थी।

क्या मैं उसका बचपन खत्म कर रही हूं। हे भगवाान, मैं क्या करूं।

अनु अब अपने में ही खोयी रहती है। यदि वह कुछ करती रहती है तो मुझे देखते ही चली जाती है या फिर सिर झुकाकर खड़ी हो जाती है और गोद में आने की जिद नहीं करती। नन्हीं सी बेटी मुझसे कितनी दूर होती जा रही है। वह चुपचाप कुर्सी पर बैठी रहती है और मैं अपने कामों में लगी रहती हूं।

मैं ऑफिस में प्रशंसा की पात्र बनती लेकिन उससे मुझे कभी भी गर्व महसूस नहीं नहीं होता। मैं अंदर ही अंदर घुटती जा रही थी। अकसर ऑफिस में बैठकर तनु के बारे में सोचा करती वह क्या कर रही होगी। मेरा द्वंद्व गहराता जा रहा था। साढ़े पांच बजते ही मैं बैग लेकर तेजी से उसको लेने के लिए पहुंचती, किसी अनिष्ट की आशंका से। अकसर ही भीगी पलकों से मेरा सामना होता। वह चुपचाप अपना सामान उठा कर, पानी की बोतल लटकाए, जूते हाथ में लेकर स्कूटर पर पीछे बैठ जाती। दौड़कर मेरे गले से लिपट जाने वाली तनु नहीं है ये। कुछ और ही हो गयी है मेरी बेटी। कैसी मां हूं मैं भी। मेरे लिए नौकरी इतनी बड़ी चीज हो गई और बेटी कुछ नहीं। नहीं, मैं कल ही रिजाइन कर दूंगी।

घर आकर में बड़े तनाव में थी। जल्दी से तनु को तैयार कर उसे खेलने भेज दिया। कमरे में आकर मैं कागज हाथ में लेकर सोचने लगी- क्या रिजाइन करना उचित है। क्या इतनी मेहनत से पढ़-लिखकर घर में बैठना अच्छा लगेगा। मैं अपने पुराने निराशा भरे दिन याद करने लगी। मेरा तनाव कम होने लगा। मैंने कागज को रद्दी की टोकरी में डाल दिया। रात भर मैं करवटें बदलती रही। सुबह उठकर मैंने फिर कागज लिया और जल्दी से इस्तीफा लिख डाला।

ऑफिस पहुंचकर सबने मुझसे पूछा तबियत ठीक नहीं है क्या? मैं हिम्मत जुटा रही थी बॉस के पास जाने की। पर्स में मेरा त्यागपत्र था और मैं पर्स को कसकर पकड़े थी। मिसेज कपूर मेरे पास आ गईं। उनकी अनुभवी आँखों ने मेरे अंदर तक झांक लिया था। 'मैं बहुत दिनों से नोट कर रही हूं कि तुम कुछ तनाव में हो। शायद बेटी को लेकर.....?'

कमाल है इन्हें कैसे पता चला? मैं मन में सोच रही थी। मैं ऑफिस में किसी से वास्ता नहीं रखती हूं। बस काम से काम। मिसेज कपूर बड़ी खुशदिल हैं। सबसे मिलकर इन सबका सहयोग करना इनका जैसे धर्म है। कभी-कभी इनकी खुशदिली से मुझे ईर्ष्या होने लगती थी। मैं स्वभाव से गंभीर हूं लेकिन मिसेज कपूर जैसा होना शायद सबकी इच्छा होगी।

'नहीं कोई खास बात नहीं'- मैंने उन्हें टालते हुए कहा।

'चलो एक-एक कप कॉफी हो जाए' मिसेज कपूर ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं लगभग घिसटती

हुई उनके साथ कैंटीन पहुंची।

'देखो नीलू, तुम जितना अपनी परेशानियों को छुपाओगी उतना ही वे तुम्हारे लिए जहर बन जाएंगी। मुझे मालूम है कि तुम तनु को लेकर परेशान रहती हो।'

'लेकिन आप को कैसे पता चला?' मैंने प्रश्न किया।

'तुम बहुत कम बातें करती हो पर जब भी बोलती हो तो तनु की बातें करती हो। इतना ही काफी है समझने के लिए।' उन्होंने प्यार से मेरे गाल पर थपकी दी। उनके अप्रत्याशित स्नेह ने मुझे पिघला दिया। मैं रो पड़ी।

'ठीक ऐसी ही स्थिति मेरी भी थी शुरू-शुरू में। लेकिन आज देखो मेरा एक बेटा डॉक्टर है और बेटी प्रोफेसर। दोनों मुझे बेहद चाहते हैं। तुम्हारी क्या परेशानी है, कुछ नहीं। तुम पर्स में इस्तीफा डालकर घूम सकती हो। मैं ऐसा नहीं कर सकती थी। मेरे दोनों बच्चे छोटे थे। मेरे पति नहीं रहे। नौकरी मेरी मजबूरी थी, करिअर नहीं लेकिन परेशानियों के बावजूद मैंने हिम्मत नहीं हारी। दोनों बच्चों की माता-पिता भी बनी और दोस्त भी। झूलाघर से बच्चों को घर लाते ही मैं सारी दुनिया भूलकर उन्हीं के साथ खेलती, बातें करती, कभी घोड़ा बनती, कभी जोकर। उनसे अपने काम भी करवाती जिसे वे खुशी-खुशी करते। उन्हें मैंने समझाया था खुलकर कि झूलाघर उनके लिए मेरे बाद सबसे सुरक्षित स्थान है। वहां उन्हें दूसरे बच्चों के साथ घुलना-मिलना सिखाया। शुरू में वे रोते थे, तो मेरा दिल दहल जाता था। मैं झूलाघर की संरक्षिका से मिली। उन्होंने मुझे बच्चों की गतिविधियां बतायीं। मैंने उनमे सुधार किए। एक महीने बाद मेरे बच्चे खुद ही झूलाघर खुशी-खुशी जाने लगे। तुम भी ऐसा ही करो। तनु को उपेक्षित मत करो। तुम चिंता तो करती हो मगर उसकी समस्याओं को नहीं सुलझाती। उससे बातें नहीं करती। तुम उसके झूलाघर के दोस्तों से मिलो, हो सकता है तनु भी तुम्हारी तरह किसी से मिलती-जुलती न हो।'

मिसेज कपूर मुझे समझाती चली गयीं और मेरे मन की गांठे खुलती चली गयीं। हां ठीक ही तो है। मैं तनु को देख-देखकर दुखी होती हूं लेकिन उससे घुलती-मिलती नहीं। गलती तो मेरी ही है। बच्ची को झूलाघर में डालकर मैंने वहां जाकर किसी से मिलना भी ठीक नहीं समझा। चिंता में घुलती रही लेकिन व्यवस्थित होने की कोशिश नहीं की। किसी को समझाने की कोशिश नहीं की।

नहीं, मैं स्वयं को बदलूंगी। मैंने इस निश्चय से आँखें उठाकर मिसेज कपूर की ओर देखा। उनकी आँखों में संतोष था, विश्वास था और थी शांति।

मैंने धीरे से पर्स खोला और वह कागज निकालकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

●

सायों के साए

उपासना

टेबल पर जहां कप रखा था वहां चाय का वृत्त बन गया था। सूखा... गाढ़ा. वृत्त की परिधि पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। वहीं पास में चमड़े का भूरा पर्स पड़ा था। पर्स महंगा लगता था। शैल की कनपटी से पसीने की एक बूंद लकीर बनाती फिसल पड़ी।

कप की तली में चाय सूख गई थी, उसने कप सिंक में डाल दिया। एक आदमी जिसके इर्द-गिर्द ही सुबह की सारी ताजगी, व्यस्तताएं, भागदौड़, सिमटी होती है... घर में उसकी अनुपस्थिति का वक्त कितना शांत, स्थिर और घना होता है। नहीं, यह घनापन कचोटता नहीं है। संशय और तर्क से परे यह समय नितांत निजी है। शैल ने चाय चढ़ा दी। यह चाय भी अजब शय है। सिर्फ और सिर्फ अपने लिए चाय बनाना शैल को बेहद पसंद है। ऐसा नहीं कि वह अपने मेहमानों, सुबोध या अपनी सहेलियों के लिए मन से चाय नहीं बनाती... पर जाने क्या बात है कि जब वह सिर्फ अपने लिए सुबह का दूसरा कप बनाती है तो चाय की तैयारी उसमें उबाल आने और रंग आने तक का वक्फा उसे दिन का सबसे सुकूनबक्श पल लगता है। कप थामे वह कमरे में आई। उसने परदे खींच दिए। परदे खींचते ही धूप कमरे में दूर तक फैल गयी। आँखों में चुभती हुई। शैल की नजर अनायास फिर पर्स पर टिक गयी। रोशनदान से होती हुई धूप की एक पतली तीखी किरण पर्स पर सीधी चलती टेबल के आखिरी सिरे तक छिटकी थी। पर्स पूर्ववत उपेक्षित पड़ा था। यह एक प्रचलित मान्यता है कि उपहार में पर्स देना विदा लेने का सूचक होता है... या शायद बीज। कहां से आती हैं ये मान्यताएं? घटनाओं दुर्घटनाओं, निराशा, अतृप्ति, बिछोह, दुःख इनके भीषण दलदल से!!! पता नहीं। मन शिथिल है। शैल ने दीवार से सिर टिकाकर पलभर को आँखें मूंद लीं। उसने परदे लगा दिए। कमरा सब्ज अँधेरे में डूब गया। जब मन बुझी हुई राख सा भुरभुरा, उपेक्षित, रंगहीन होता है... तब शरण सिर्फ अँधेरे में ही मिलती है।

कल शाम दृश्य-दर-दृश्य आँखों के सामने साकार होती गयी। ट्रैफिक के धुओं और शोर के बीच उलझी वह एक व्यस्त शाम थी। ढेर सारे शॉपर्स थामे वे दोनों एक बड़ी शॉप के सामने ठहरे थे। सुधोब ने प्रश्न पूछने के अंदाज में भंवें उचाकाई। शैल बिना कुछ कहे राजदाराना मुस्कुराहट के साथ दुकान में दाखिल हो गयी। कल सुबोध का जन्मदिन है। थोड़ा इधर-उधर से सी-पिरोकर शैल अपने घोंसले के छिद्र बहुत खूबसूरती से रफू कर लिया करती थी। यह उनका अपनी गृहस्थी से एक अनकहा करार है। किसी की भी सालगिरह पर उसे वही तोहफा देती जो जरूरी होता। बच्चों

के जूते फट गए हों तो जन्मदिन पर जूते दिलवा दिए जाते। कुकर पुराना हो चुका। तो शादी की वर्षगांठ पर नया कुकर खरीद लिया जाता। पिछले कई दिनों से वह देख रही थी सुबोध का पर्स फटकर बदहाल हो चुका। कोने में छोटे-बड़े कई पर्स सजे थे। शैल उन्हें गौर से देख रही थी। अब तक सुबोध भी शॉप में उसके आने का आशय समझ चुका था। पर्स वाकई जीर्ण-शीर्ण हो चुका। पर वह चाह कर भी इस पर्स का मोह नहीं छोड़ पा रहा। शैल एक सुंदर, भूरा पर्स थामे काउंटर पर पहुंची। सुबोध ने जल्दी से पेमेंट कर दिया। वह शिकायती लहजे में देखती रही

'मैं गिफ्ट देना चाहती थी।'

'जानता हूं!'

'फिर।..?'

'पुराना पर्स भी किसी ने तोहफे में ही दिया था।'

शैल चुप रह गयी, उसे अंदाजा है कि सुबोध के जीवन में कोई थीं। वह यह भी समझती है कि सुबोध के भीतर कहीं गहरे कोई खलिश कुछ डर पंजे गाड़कर धंस गए हैं। यह डर कि 'पर्स' कभी तोहफे में नहीं देना चाहिए'। उसी सिलसिले की एक कड़ी है।

सच कहो तो शैल और सुबोध का कुछ बंटा हुआ कहां है? जो है, उन दोनों का ही तो है। पर यह ख्याल ही सुबोध को राहतबख्श है कि पर्स का पेमेंट शैल ने नहीं, खुद उसने किया है।

घर आते ही उसने शॉपर्स एक और पटके और सुबोध की जेब से पर्स निकालकर खाली करने लगी।

'अरे... अभी इतनी जल्दी क्या है यार?'

शैल के हाथ सहसा थम गए थे। सुबोध की आवाज से छलक-छलक पड़ती अकुलाहट ने उसे चौंकाया था। संभवतः सुबोध को भी तुरंत ही अपने लहजे की तुर्शी का एहसास हो गया था। बात संभालने की गरज से उसने मुस्कुरा कर शैल की हथेली थाम ली...

'अगले महीने हरिद्वार चल रहे हैं न, तभी बदल लेंगे। अभी चलने दो जितना चल रहा है?'

डोरबेल की कर्कश ध्वनि ने शैल के ख्यालों की लम्बी कड़ी को तोड़ा। ठंडी हो चुकी चाय पर मलाई के परत जम गई थी। एक गहरी सांस लेकर शैल ने घड़ी देखी। कप-टेबल पर रख वह दरवाजे की तरफ बढ़ गई।

सुबोध ने उस पल की अकुलाहट और बेचौनी ने उसे सुस्त कर रखा है। उसे हर वक्त बुखार सा महसूस होता रहा। बुखार जो सिर्फ देह में नहीं, दिल और दिमाग तक चढ़ गया था। हालांकि वह जानती है कि एक जीवन है, एक विवाह... परिवार, सब ठीक ही तो चल रहा है। फिर क्या फर्क पड़ता है कि उसके हृदय में क्या है? अवचेतन में किस स्मृति को जबरन सुलाने की कोशिश की गई है लेकिन नहीं, फर्क पड़ता है। यह पर्स मानों एक प्रतीक है। वह जो शैल नहीं जानती, नहीं पहचानती, जो अनदेखा है... संभवतः शैल वहां तक कभी न पहुंच पाए। उसकी सारी चेतना अब सुबोध के इर्द-गिर्द सिमटने लगी थी। इस हद तक कि अब वह गाहे-बा-गाहे उसके फोन भी चेक करने लगी। हकीकतन वह जासूसी कर रही थी, पर जासूस कहलाना नहीं चाहती थी। सुबोध बाथरूम में है... वह जल्दी-जल्दी उसके मैसेज बॉक्स और कॉल डिटेल्स चेक कर रही थी। वह आधी रात की गहरी नींद में है और शैल बालकनी में बैठी उसका फेसबुक, मेल बॉक्स दनादन देखे जा

रही है। यूं ही एक बरसती गाढ़ी रात में उसके बहुत पुराने मेल देखते हुए अनायास ही एक नाम स्क्रीन पर चमका था... 'मसकली'। इस नाम के लिए भेजे गए सुबोध के असंख्य मेल थे।

माय डियर मसकली।

डू यू नो स्वान मेक्स ए पेयर इन लाइफ ओनली वंस। इफ देयर पार्टनर डाइस ऑर लेफ्ट दे कुड पास अवे फ्रॉम ब्रोकन हार्ट। आई फील मायसेल्फ लाइल दैट स्वान।

योर्स

एस.

प्रेम समर्पण से भरे वे तमाम मेल, शैल अटकती सांसों के साथ धीरे-धीरे पढ़ती चली गई। पता नहीं कैसा तो एक अनजाने भय का वलय उसके चारों और घिर आया था। बारिश की तेज बौछारें उसे भिंगो रही थीं, फर्श पर पानी इकठ्ठा होने लगा था... पर वह इन सबसे गाफिल पढ़ती रही।

'यहां क्या कर रही हो तुम?'

उनींदा-हैरान सुबोध अचानक उसके सामने था। वह हड़बड़ाहट में फोन गिर गया। उससे पहले सुबोध ने ही फोन उठा लिया। वे मेल अब भी स्क्रीन पर थे। उसने मेल देखे। कुछ पल को शैल को देखता रहा। फिर बिना कुछ कहे फोन वापस उसे थमा कमरे में चला गया। शैल लज्जा से जड़ हो गयी। रेलिंग थामे खड़ी रही।

अधूरी नींद कष्ट देती है। पिछली कुछ रातों से शैल कहां सो पायी है? बारिश की धीमी बौछारें उसके चेहरे को भिंगो रही थीं। जलती आँखों को मूँदे शैल उन ठंडी बूंदों का स्पर्श मानों पी रही थी। वे बूंदें चमड़ी, मज्जे से होती भीतर तक का सारा अवसाद धीमे-धीमे सोख रही थीं। कुछ देर की बारिश के पश्चात, हवा ने बादलों को तितर-बितर कर दिया। साफ आसमान में धुला-पुंछा चाँद चमकने लगा था। बीचों-बीच सप्तर्षि जगमगा रहे थे। उसे पिछले महीने की वह रात स्मरण हो आई। भूरी पत्तियों से भरी शाम बीत चुकी थी। फरवरी के वे आखिरी कुछ दिन अजब उचाट-नीरस थे। वह छत पर खड़ी यूं ही आसमान निहार रही थी, जब टेलीस्कोप में तारों की छान-फटक के शौकीन सुबोध ने सहसा उससे पूछा था....

'सप्तर्षि में कुछ खास नजर आता है तुम्हें?'

'खास मतलब?'

उसके सवाल के बदले शैल ने सवाल ही लौटाया था।

सुबोध ने टेलिस्कोप उसकी आँखों पर टिकाते हुए कहा था।..

'अब देखो!'

'अंतिम से पहले तारे के पास नन्हा सा कुछ चमक रहा है!'

'वे अरुंधति हैं!' सुबोध ने टेलिस्कोप वापस लेते हुए कहा था।

'ऋषि वशिष्ठ की पत्नी?'

'हुम्म! और जिस तारे के पास वे हैं वो वशिष्ठ हैं। मीजर युग्म... यानी एक-दूसरे की परिक्रमा करने वाले युग्म तारे।

शैल मुग्ध भाव से सुन रही थी।

'सोचो एक जोड़ा जीवन से मिथक तक और मिथक से अनंत तक साथ है। कितना अद्भुत

है न?'

फरवरी की तेज हवा में इठलाते हुए शैल के बालों को कान के पीछे टिकाते हुए सुबोध मुस्कुराया था।

और ठीक स्मृति के इसी क्षण में उसके जेहन में सुबोध का मेल कौंध गया...

'आई फील माय सेल्फ लाइक इ स्वान।'

बारिश ने मार्च के आखिरी हफ्ते में सिहरन भर दी थी। कुछ देर पहले तक मन के ताप पर ठंडी लेप सी झरती बूंदों ने हवा को बर्फीला बना दिया था। बर्फीली हवा के एक झोंके ने शैल को अपादमस्तक सिहरा दिया। शैल ने कमरे में झांका। वह आँखें बंद किए लेता था। पर वह जानती है, सुबोध ऐसा नहीं है। यही बात उसे कमरे में जाने से रोक रही है। राहत यह कि किचन का पिछला दरवाजा बालकनी में है। हल्के धक्के से ही दरवाजा खुल गया। किचन में घुसते ही उस रजाई की नर्म गर्माहट सा एहसास हुआ। किचन टॉवल से चेहरा पोंछकर उसें कॉफी के लिए पानी चढ़ा दिया। उबलते पानी की बुदबुदाहट में भी एक मद्धम संगीत था। खिड़की के पल्लों पर बरसात दुबारा दस्तकें दे रही थी। प्याला थामे शैल वहीं एक कोने में बैठ गयी।

कहां होता होगा इन भावनाओं का उत्स? रेशम के लच्छों सी कोमल ये हठात कब-कैसे किसके नाम से लिपट जाती हैं कोई नहीं बता सकता! सुख-दुःख, संघर्ष के साथी हैं... पर कितना कम जान पाते हैं एक दूसरे को? उतना ही जितना जो सामने होता है। एक सुबोध ऑफिस जाता है, दूसरा सुबोध बच्चों का होमवर्क करवाता है, तीसरा सुबोध रिश्तेदारों एवं मित्रों से हँसता-मिलता, व्यवहार कुशल सामाजिक आदमी है... एक सुबोध शैल का पति है। उसका भरसक ख्याल रखता है, और एक वह भी तो सुबोध है जो मसकली को प्रेम भरे संदेश भेजता था। हां, मसकली का भी सुबोध भी! कभी किसी ने तोता पाला हो, तो हमेशा उसकी स्मृति बनी रहती है... एक मिट्ठू था हमारा. ..' फिर यह मसकली तो जीता जागता साबुत मनुष्य थी। ऐसा कैसे हो सकता है कि कभी उसकी स्मृति सुबोध को सालती न होगी।

अचानक उसे यूं लगा जैसे वो खुद को बेहद दुखी और दरिद्र मान लेना चाहती है जिसके पास सच में कोई भावात्मक कोना तक नहीं है। इस क्षण यही उसका सुख है। स्वयं को दुखी, वंचित, भग्न हृदय समझना... पूरे मन से इसी को स्वीकार कर लेना। संभवतः इसमें एक नायिका सी छवि बनती है। ओह! कितना फिजूल का सोच रही है वो! क्यों आखिर? उसके जी में आया कि इन सारी भावुकता की गुडी-मुड़ी पोटली बनाए और घूरे पर पटक दे। गहरी सोच में डूबती-उतराती जाने कब वह गहरी नींद में डूब गयी।

अस्पष्ट धुंधले से लम्बे गलियारे में दस वर्ष की शैल भटक रही है। यह गलियारा कुछ जाना पहचाना सा है। ओह हां... यह तो उसके प्रायमरी स्कूल की बिल्डिंग है। गलियारे में दोनों और कक्षाएं दिख रही हैं। शैल धीरे-धीरे चलती हुई स्कूल ग्राउंड में आकर बैठ गई। असमंजस में घिरी वह चारों और देख रही है... जाने कब कैसे वह चली आई यहां। तभी दूर उसे एक लड़की दिखती है। धुंधले चेहरे वाली लड़की को शैल नहीं पहचानती। एक बदमाश उसे परेशान कर रहा है। शैल ने सुबोध की बांह हिलाकर कहा-

कुछ करो प्लीज!

सुबोध खुद भी लड़की के लिए परेशान दिख रहा है..शैल को उसका परेशान होना अच्छा नहीं लगता पर वह सुबोध के साथ लड़की के पास पहुंची.. डरी हुई लड़की बदमाश से पीछा छुड़ाने की कोशिश कर रही थी। अचानक सुबोध पर नजर पड़ते ही उसका चेहरा चमक उठा। इतने लोगों को देख बदमाश ने खिसक जाने में ही भलाई समझी।

अब विशाल प्लेग्राउंड में सीमेंट का चबूतरा है। चबूतरे की सीढ़ियों पर एक तरफ शैल और मसकली की कोई सहेली बैठी है। दूसरी सीढ़ी पर सुबोध और मसकली बैठे हैं। सब लोग बातों में लगे हैं तभी शैल की नजर सुबोध पर पड़ती है। वह बड़े प्रेम से मसकली का हाथ थामे बड़े प्रेम से उसे देखे जा रहा है।

यह देख शैल ईर्ष्या से झुंझला उठती है। अनायास उसने मसकली को धक्का दे दिया। मसकली संभलते न संभलते गिर पड़ी। सुबोध ने जलती हुई आँखों से शैल को देखा। शैल रोती हुई स्कूल में अंदर चली गई। पहली कक्षा की अपनी पुरानी बेंच पर जोर-जोर से रोती हुई।

वह सुबोध का इंतजार करती रही। कहीं हल्की सी उम्मीद अब भी है... कि शायद वह उसे मनाने आए। पर... मन के अंतरतम कोनों में वह जानती है। सुबोध नहीं आएगा। उसके रूठ जाने से वह निश्चिंत हो गया है। शैल रो रही है और उसके कंधे पर भारी बस्ता टंगा है।

●

संस्कृत

मुस्कान की लकीर

मूल : राधावल्लभ त्रिपाठी
अनुवाद : बलराम शुक्ल

-अरे रघुवीर...! तुम?

बहुत दिनों के बाद रघुवीर से मिलना हुआ था। बाजार जा रहा था। वहीं वह अचानक दिखा। मैंने ही रघुवीर को पहचाना था। रघुवीर ही था, मुझे इसमें बिलकुल संदेह नहीं हुआ। वही गंभीरता, वही मुरझाया हुआ चेहरा। वैसे खास चेहरे भला कैसे भुलाये जा सकते हैं!

लेकिन वह मुझे नहीं पहचान पाया। -मैं आप से कब मिला? उसने पूछा।

अरे हम दोनों कालेज में साथ पढ़ते थे। मैं हूं रहमान।

ओहो..अरे रहमान अली भाईजान-! मुझे तो लगा था कि मेरे सारे दोस्त मुझे भूल चुके। अरे तुमने मुझे कैसे पहचान लिया। तुम तो महान हो। तुम्हारे जैसा कौन होगा।

'यू आर ग्रेट, यार!' बार-बार कहते हुए वह मुझसे लिपट गया।

तब भी उसका स्वभाव ऐसा ही था। कई बार पुराने परिचितों को भी नहीं पहचान पाता था तो कभी अनचीन्हों से भी पुराना परिचय निकालकर उनसे देर तक कुछ भी बतियाता रहता था।

बीते 10 साल रघुवीर मेरे साथ पढ़ा था। उसके व्यवहार में हमेशा एक रहस्यमयता रहती थी इसलिए हम उसके क्रियाकलाप को कौतूहल से देखा करते थे। कई बार वह हम लोगों से ऐसे मिलता जैसे हम सब से उसकी पिछले जनम की दोस्ती हो।

अभी रघुवीर बहुत संजीदा लग रहा था। उसने कहा, 'मैं यहीं नजदीक ही रहता हूं, अगर टाइम हो तो आओ, कुछ बातें करेंगे।'

उसके आग्रह पर मैं उसके घर गया। घर छोटा था लेकिन बड़ी ही सुरुचिपूर्ण ढंग से और करीने से सजा हुआ था। घर के कोने-कोने से मानो रघुवीर की सुंदर छवि झलक रही थी। घर में वह अकेला था। नौकर उसके आदेश पर चाय बनाकर ले आया। चाय पीते हुए मैंने उससे पूछा 'और सब ठीक है? कहो तुम्हारा समय कैसा बीत रहा है?

- 'क्या कहूं दोस्त', इतना कहकर उसने साँस छोड़ी और रुआँसा होकर ऐसे कहने लगा जैसे कि उसका सब कुछ लुट गया हो, 'मेरा तो सब कुछ चला गया'।

- अरे क्या हुआ? अचरज से भर कर मैं उसके लिए सहानुभूति प्रकट करते हुए बोला।

मेरी आवाज में जो करुणा थी उससे वह और अधिक फूट पड़ा। 'वह मेरी जान से भी प्यारी, चली गयी' इतना कहते हुए उसका गला रुंध गया और आँखें आँसुओं से भर आयीं।

'ओह!'... सहानुभूति भरी आवाज में मैं बोल पड़ा। इसके बाद 'मुझे पता ही नहीं था कि तुम्हारी शादी कब हुई' यह बोलने वाला था लेकिन उसकी गंभीर मुखाकृति को देखकर मैं चुप रह गया।

रघुवीर ने बोलना शुरू किया कि तुम तो जानते ही हो कि मैं दुनिया से दिल लगाने वाला नहीं रहा। मैंने खुद कभी कुछ स्वीकार नहीं किया। वह स्वयं ही मेरे घर आई। मैं तो बगीचे में क्यारी की सफाई कर रहा था। उसने आकर मेरे पैरों पर अपना मुंह रख दिया।

बच्ची ही थी वह। निरीह आँखों से वह मुझे देख रही थी। अरे यह किसकी है, कहां से आई है, यह सब सोचते हुए चमत्कृत होकर मैं राह भटकी हुई उस दुखित जीव को पुचकार कर ढांढ़स बंधा रहा था। 'बच्ची ही है यह' मैंने सोचा, किसी पड़ोसी के घर से आई और फिर नहीं जा नहीं पाई। उछलती कूदती यह जैसे आई है वैसे चली भी जाएगी। वह मेरी हो गई। मैं उसका नाम भी नहीं जानता हूं। कौन बताए उसका नाम क्या है? मैंने ही उसका नाम रख दिया- निम्मी।

मैं मुस्कुराया। जब रघुवीर हमारे साथ पढ़ता था तब उसे हीरोइन निम्मी बहुत पसंद थी। मुझे लगा कि निम्मी के प्रति उसका लगाव अब तक उसके मन में बरकरार था।

रघुवीर ने अपनी कहानी आगे बढ़ाई 'मैंने बहुत कोशिश की कि उसका पालनहार कौन है जान सकूं। अखबारों में विज्ञापन दिए कि जिस किसी की यह हो आकर पहचान ले, और ले जाए। इसके बाद पुलिस स्टेशन जाकर सूचना भी दी, लेकिन उसके परिवार का कोई भी नहीं आया। वह बेचारी तो जैसे मेरी शरण में ही आ गयी थी...'

लेकिन वह तो जरूर जानती रही होगी कि उसका घर कहां था- वह कहां से आई- तुमने नहीं पूछा कि तुम्हारा घर कहां है?

- 'अरे निम्मी क्या बताती। बेचारी क्या बता सकती थी?'

मैंने सोचा कि ओह तो इसकी प्यारी निम्मी गूँगी थी। अगर वह लिखना जानती तो लिखकर अपने घर का पता दे देती, लेकिन यह तो कह रहा है कि- बच्ची ही थी वह। फिर तो पढ़ना लिखना क्या ही जानती होगी बेचारी?

रघुवीर ने फिर अपनी रामकहानी आगे बढ़ाई- 'मेरे घर में कोई नहीं है। तुम तो जानते ही हो कि मैंने शादी नहीं की...।'

'बिलकुल, बिलकुल'- मैंने मुस्कुराकर कहा।

हमारे कालेज में रघुवीर के कई लड़कियों के साथ प्रेम प्रसंग की बहुत सी कहानियां मशहूर थीं। कभी वह विमला से बातें करता था तो कभी कमला के साथ कैंटीन में चाय पीता हुआ दिखाई पड़ता था। किसी के भी साथ उसका रिश्ता देर तक नहीं रह पाता था। 'आज उसके होंठ चूम लिए थे, लेकिन इसके बाद उसने कुछ भी नहीं करने दिया और हमारा झगड़ा हो गया। दूसरे दिन आकर उसने खुद गले लगा लिया', इस तरह की अपनी गौरव गाथा हमारी मित्र मंडली में रहस्यपूर्ण तरीके से वह बताता रहता।

शीला के साथ उसका अफेयर बहुत लंबा चला। सब मान रहे थे कि अब ये दोनों शादी जरूर कर लेंगे। रघुवीर भी रात दिन शीला की बातों में और उसकी सोच में डूबा दिखाई देता था। लेकिन

उन दोनों का संबंध कब बिलकुल टूट गया यह बात कोई जान नहीं पाया। यह अफवाह जरूर चारों ओर कानों कान फैल गयी थी शीला ने- अपनी किसी सखी से बताया था कि- अरे वह तो नामर्द है। रघुवीर ने भी रमेश के कंधे पर अपने गाल रखकर कहीं रोते हुए कहा था, दोस्त! मुझे पता चला कि वह चुड़ैल है। जादू टोना करती है। अब मैं किसी भी लड़की के साथ रिश्ता नहीं जोड़ूंगा। कुंवारा ही रह जाऊंगा।

अपनी कहानी आगे बढ़ाते हुए रघुवीर ने कहा- 'हूं ही मैं कुंवारा। लेकिन जबसे वह मेरे घर में खुद आई तब से मैं गृहस्थ जैसा हो गया। जो भी चीज उसे अच्छी लगती, उसे मैं बाजार से ले आता हूं। मेरी गोद में बैठकर वह दूध बिस्कुट खाती है। उसे मुझ पर पूरी तरह से विश्वास है हो चला था। क्या कहूं किसी जन्म का संबंध है था मेरा उसके साथ, नहीं तो इतना प्रेम कहां संभव हो पाता है?'

आफिस से आने में अगर मुझे आधा घंटा भी देर हो जाए तो वह रूठकर अपने को कोपभवन में बंद कर लेती, न खाती न पीती, केवल शिकायती नजरों से मुझे देखती रहती। बहुत देर तक जब मैं उसे सहलाता, चुमकार कर गोद में लेता, ढांढ़स बंधाता तब जाकर कहीं वह मेरे हाथ से केवल एक या दो चार कौर खाती। क्या कहूं इतना गाढ़ा अनुराग कहीं भी और नहीं मिल सकता। मैं धीरे धीरे पूरी तरह उसके अधीन होता चला गया। वह भी सारे घर की रखवाली चौकन्ना होकर करती थी। जैसे वह मेरी घरवाली हो गई हो।

'धीरे धीरे उसके लुभावने तन में युवावस्था ने ऐसे ही प्रवेश किया जैसे मधुमास में वसंत आता है और वसंत में नए फूल खिलने शुरू होते हैं। उसकी कनखियां खूब तीखी हो गयीं। तुम तो जानते ही हो सुंदरियों को यौवन ही हाव-भाव सिखा देता है। उसको लेकर मुझे चिंता होने लगी। इस गली में उसे वासना की नजरों से निगलते हुए से गुंडे पहले ही घूम रहे थे। क्या करूं, इसकी कोई अच्छी जोड़ी कैसे लगे इसको लेकर मैं चिंतित हो गया....।'

अरे शृंगार रस के प्रसंग में अचानक वात्सल्य की बारिश कैसे होने लगी? रघुवीर अपनी प्रिया या अपनी मुंहबोली बेटी की याद में फिर गमगीन हो गया। मेरा कौतूहल बढ़ रहा था।

'फिर क्या हुआ? उसकी शादी तुमने करवाई?'- मैंने पूछा।

'अरे शादी की नौबत कहां आई उस बेचारी की....?' निराशा में डूबते हुए उसने साँस छोड़ते हुए टूटे हुए दिल से कहा। उसके मेल का जोड़ा मैंने चारों ओर ढूंढा। कहां कहां नहीं गया। मिला भी था एक नौजवान वर मुझे। वह भी मेरे पड़ोसी का पाला हुआ बेटा था लेकिन उसी समय जैसे कि वज्र पड़ गया। आज भी मैं विश्वास नहीं कर पाता।' यह कहता हुआ रघुवीर दुख के वेग से चुप रह गया।

मैंने कहा- 'धीरज रखो। दुनिया ऐसी ही है। क्या कहा जाए? क्या अनर्थ हो गया था ये बताओ।'

'अरे अनर्थ ही हो गया.....। उसे कैंसर हो गया था....।'

यह कहते हुए उसका गला फिर रुंध गया।

'अरे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया!' मैंने कहा।

'सही में अनर्थ हो गया। उसके सीने पर एक चने के बराबर गांठ थी। मैं ही मूर्ख था जिसने

ध्यान नहीं दिया..। वह तो भोली भाली थी। उसे क्या पता? धीरे धीरे वह गांठ बढ़ने लगी। एक बार उसे लाड़ करते हुए मेरी नजर उस गांठ पर पड़ी। निम्मी को मैं डॉक्टर के पास ले गया।'

उसके बाद निम्मी के सीने में पड़ी गांठ मेरे मन में भी पड़ गई। जैसे जैसे वह बढ़ रही थी, मेरी चिंता भी बढ़ती जाती। डॉक्टरों ने भी कहा- आपने देर कर दी। अब तो गांठ बढ़ गयी है। आपरेशन करेंगे, लेकिन कह नहीं सकते कि यह स्वस्थ हो पाएगी या नहीं।

डॉक्टरों की आपरेशन के बारे में बातें सुन-सुनकर मेरे दिल में जैसे शूल चुभ रहे थे। उनकी भी गलती थी। उन्होंने तुरंत तो आपरेशन किया नहीं। उन्होंने कहा हम दवाइयां दे देंगे, शायद उसी से यह गांठ छोटी होकर सूख जाए। लेकिन ये डॉक्टर! क्या जानते हैं ये? अगर मैं किसी यूरोप के देश में होता तो यह सब नहीं होता। वहां अगर कोई डॉक्टर इस तरह की लापरवाही करता तो मुकदमे में उसे करोड़ों डॉलर देने पड़ते....।

अंततः उन्होंने आपरेशन ही किया। आपरेशन होने के बाद उन्होंने कहा- 'बधाइयां, आपरेशन सफल हो गया'। लेकिन निम्मी के सीने में जो दर्द था वह तो खत्म नहीं हुआ। कितनी बड़ी लापरवाही हुई। वह कठिनाई से साँसें ले रही थी और करुणापूर्वक केवल मुझे देख रही थी। ईश्वर के पास जाती हुई वह बिना कुछ बोले परम शांति का अनुभव कर रही थी। उसे पता था कि मुझसे बिछड़ जाएगी और इसलिए उसकी आँखों से आँसू बहते थे। हाय रे वह दिन, मैं उसे ढांढ़स बंधा रहा था- घबराओ मत निम्मी, तुम जरूर ठीक हो जाओगी, लेकिन वह तो जानती थी... फिर से रघुवीर की आवाज आँसुओं से भर्रा गई। फिर भी वह कहानी कहता रहा 'उसके सीने में बड़ा दर्द था। वह केवल सह रही थी, कुछ भी बोल नहीं पा रही थी। उसकी आँखों में आँखें डाले यह मैं ही जान रहा था।'

धूर्त डॉक्टर केवल आश्वासन दे रहे थे। 'घाव बाकी है, घाव जैसे ही भरेगा वैसे ही यह ठीक हो जाएगी।' बार-बार वे ऐसा ही कुछ कुछ कह रहे थे। अरे मूर्खों, क्या इतना ही तुम लोगों का ज्ञान है, क्या यही तुम लोगों की स्पेशियलिटी है 'यह कहते हुए गुस्से से रघुवीर का मुंह लाल हो गया, उसके होंठ थर्राने लगे। एक पल के लिए किन्हीं अदृश्य शत्रुओं को मानो मारता लताड़ता हुआ ठिठका रहा।

उसके बाद क्या हुआ?- मैंने पूछा।

'उस दिन उसकी कठिनाई से चलती साँसों को देखकर मुझे किसी अनर्थ की आशंका हो गई थी और मैंने ऑफिस से छुट्टी ले ली थी। दो-तीन दिनों से उसने कुछ भी नहीं खाया था। मैं दूध देता था, बिस्किट देता था लेकिन उसका खाने का मन नहीं होता। मेरी गोद में ही मेरे सीने पर सर रखकर पड़ी रही। मैं उसे सहला रहा था। वह केवल धीरे-धीरे सिसकियां ले रही थी। उसकी सिसकियां धीरे-धीरे और ढीली पड़ने लगीं। अब उसकी साँसें भी नहीं सुनाई पड़ रही थीं। तब मैंने समझा बेचारी सो गयी। यह समझकर ज्यों ही मैंने बिस्तर पर सुलाने के लिए उसे उठाया त्यों ही देखता हूं कि सब खत्म हो गया, सब चला गया। उसका सिर नीचे लुढ़क गया। हाय मैं लुट गया, बर्बाद हो गया।'

मुझे ढांढ़स बंधाना नहीं आता है। और वह लगातार रो रहा था। किसी तरह मैंने उससे कहा- 'धीरज रखो, जो होना ही था उसमें क्या किया जा सकता है।'

उसने रूमाल से अपने आँसू पोंछता हुआ बोला- 'फिर भी मैं उसे गोदी में ही लिए कार निकाल

कर अस्पताल गया। डॉक्टर ने कहा- 'अब कुछ भी नहीं किया जा सकता।' श्मशान अस्पताल के नजदीक ही था। अस्पताल के कर्मचारियों ने कहा वहीं गड्ढा खोदकर हम उसकी कब्र बना देंगे, लेकिन मैंने उनकी बातें नहीं सुनीं। मैं उसे वैसे ही घर ले आया। अपने घर के बगीचे में ही मैंने खुद उसके लिए गड्ढा खोदा और स्वयं उसे वहां सुला दिया...।'

यह सुनकर मैं अचरज से भर गया और सोचा अरे पागल हो गया था क्या कि इसने उसकी की कब्र अपने बगीचे में ही बना दी। फिर भी रघुवीर के गमगीन चेहरे को देखते हुए मैं धीरे से बोला 'रघुवीर यह क्या किया तुमने, श्मशान ले जाकर उसका दाह संस्कार क्यों नहीं किया तुमने। यह जो कुछ तुमने किया वह तो तुम्हारे धर्म के खिलाफ था।

रघुवीर ने कहा- 'रहमान भाई, क्या बोलते हो आप? इसमें धर्म-अधर्म का क्या विचार करना? निम्मी का क्या धर्म हो सकता था। वह तो इस तरह के धर्म-अधर्म के विचार से ऊपर थी। महान आत्मा थी वह।'

'सही-सही' यह पूरा ही पागल हो गया है, यह सोचते हुए मैंने कहा।

'बगीचे में मैंने उसकी समाधि बना दी। वहां रोज सुबह-शाम फूल चढ़ाता हूं।... जहां कहीं भी वह हो ... आराम से रहे...उसकी यादें हैं मेरे पास'...यह कहते हुए उसने मेज पर रखा एलबम लेकर मुझे देते हुए कहा- 'तुम भी उसके फोटो देखो...'

मैंने एलबम खोला। चित्रों को देखते हुए जैसे मैं आसमान से जमीन पर गिर पड़ा।

'तो वह इनसान नहीं थी'- मेरे मुंह से निकल पड़ा।

'सही कहा तुमने, वह तो देवी थी। निम्मी इनसान नहीं थी।' रघुवीर बोला

एलबम में पामेरियन जाति की किसी कुतिया के चित्र थे। मैंने रघुवीर का चेहरा देखा। हल्की सी मुस्कान की लकीर कहीं पर थी वहां। कालेज के दिनों में भी जब वह इस तरह की कुछ करुण बात कहता तो बाद में ऐसी ही मुस्कान की लकीर उसके चेहरे पर साफ दिखाई पड़ने लगती।

●

उर्दू

कड़वा तेल

मूल : गजनफर
अनुवाद : फरहत कमाल

'इस घानी के बाद आपकी बारी आएगी, तब तक इंतजार करना पड़ेगा' शाहजी ने मेरे हाथ से तिलहन का थैला लेकर कोल्हू के पास रख दिया।

'ठीक है।' मैं दरवाजे के पास पड़े स्टूल पर बैठ गया। कोल्हू किसी मजबूत लकड़ी का बना था और कमरे को बीचों बीच कच्चे फर्श में बड़ी कारीगरी और मज़बूरी के साथ गड़ा था। कोल्हू की पकी हुई पायदार लकड़ी तेल पी पी कर और भी पक गई थी और किसी स्याही मिले हुए पत्थर की तरह दमक रही थी।

उसका मुँह ओखली की तरह खुला हुआ था। मुँह के अंदर से ऊपर की तरफ एक गोल मटोल डंडा निकला हुआ था। जिसके ऊपरी सिरे से जुढ का एक सिरा जुड़ा था। जुए का दूसरा सिरा बैल के कंधे से बंधा था, जिसे बैल खींचता हुआ गोल गोल घूम रहा था।

बैल जिस गोले में घूम रहा था उसे बोले का फर्श बैल की लगातार हरकत से दबा हुआ था। कमरे के बाकी फर्श के मुकाबले में इस हिस्से की जमीन नीची हो गई थी। ऐसा लगता था जैसे वहां कोई बड़ा पहिया रखकर दबा दिया गया हो।

कोल्हू के मुँह में ऊपर तक सरसों के दाने भरे थे। दानों के बीच मूसलनुमा डंडा लगातार घूम रहा था और इस काम में उसका दबाव चारों तरफ के दानों पर पड़ रहा था।

सरसों के दाने डंडे के दबाव से दबकर चपटे हुए जा रहे थे। दबे और कुचले हुए दानों का तेल अंदर ही अंदर नीचे जाकर कोल्हू के निचले सिरे में बने एक बारीक छेद से बूंद बूंद टपक कर एक मटमैले से बर्तन में जमा रहा था। बर्तन में जमा ताजा तेल ऐसा लगता था बैल की पिघली हुई चर्बी हो या जैसे सोना पिघलाकर डाल दिया गया हो।

तेल की चमक देख कर मेरी आँखों में चमकते हुए चेहरे, मालिश किया हुआ बदन और गठा हुआ शरीर कसे हुए पट्ठे, चिकनी त्वचा, दमकती हुई लाठियां और जंग से मुक्त मशीनों के पुर्जे चमचमाने लगे। मजबूत और चमकदार शरीरों के साथ स्वस्थ दिमाग और इन दिमागों के ताबनाक कारनामें भी इस तेल में तैरने लगे।

तेल के बर्तन से निगाहें हटीं तो कोल्हू में जुते हुए बैल की तरफ उठ गई। बैल ऊपर से नीचे

और आगे से पीछे तक पटका हुआ था। उसका पुट्ठा पिचक गया था। गर्दन से लेकर पूरा बदन चाबुक के निशान से अटा पड़ा था।

जगह-जगह से खाल उधड़ गई थी। बाल नुचे हुए थे। गर्दन की खाल जुए की रगड़ खा-खा कर छिल गई थी। उसके दोनों सींगों की नोकें टूटी हुई थीं। कानों के अंदर और बाहर चमड़ी खाने वाले कीटाणु चमड़ी से चिमटे पड़े थे। बैल के शरीर का पिछला भाग पैरों तक गोबर में सना हुआ था। दुम भी मैल में लिपटी हुई थी। पूंछ के बाल बैल के छेरे में लथपथ होकर लट बन गए थे। पिछली एक टांग से खून भी रिस रहा था।

बैल की आँखों पर पट्टियाँ बंधी हुई थीं। नाक में नकेल पड़ी थी। मुँह पर जाबा चढ़ा हुआ था। बैल एक ही गति से गोल-गोल घूम रहा था। पांव रखने में वह काफी ध्यान रख रहा था। घेरे की दबी हुई जमीन पर उसके पांव इस तरह पड़ रहे थे जैसे एक-एक कदम की जगह तय हो। बहुत ही नाप तोल और संभल-संभल कर पांव रखने के बावजूद कभी-कभार वह लड़खड़ा जाता और उसकी गति में कमी आ जाती तो शाह ही के हाथ का सोंटा लहराता हुआ उसकी पीठ पर पड़ता और वह अपनी तिलमिलाहट और लड़खड़ाहट दोनों पर तेजी से काबू पा कर फिर अपनी डगर पकड़ लेता।

उसकी कमर पर सोंटा इस जोर से पड़ता कि 'सड़ाक' की आवाज देर तक कमरे में गूंजती रहती। इस गूंज से कभी-कभी तो मेरी पीठ भी सहम जाती।

एक दिन बैल को एक चक्कर पर लगातार घूमते हुए देख कर मन में एक अजीब सा विचार आया और मेरी आँखें रिस्ट वाच पर जम गईं।

एक चक्कर में तीस सेकेंड।

मैंने घड़ी की सूईयों के अनुसार चक्करों को गिनना आरंभ किया। एक-दो-तीन-चार-पांच-छः-सात-आठ-नौ-दस...

दस चक्कर पांच मिनट चार सेकेंड।

'शाहजी यह बैल कितने घंटे कोल्हू खींचता होगा?'

'यही कोई बारह-तेरह घंटे। क्यों?'

'यूं ही पूछ रहा था' छोटा सा उत्तर देकर मैं बारह घंटों में पूरे किए गए चक्करों का हिसाब लगाने लगा।

पांच मिनट में दस चक्कर तो एक घंटे में? एक घंटे में एक सौ बीस चक्कर और बारह घंटे में?

एक सौ बीस गुणा बारह बराबर चौदह सौ चालीस चक्कर।

अचानक मेरी नजरें उस घेरे को घूरने लगीं जिसमें बैल घूम रहा था। दस, दस, बीस, दस, चालीस- मेरे आगे गोले की लंबाई खिंच गई। बैल एक चक्कर में लगभग चालीस फीट की दूरी तय करता है।

चालीस गुणा चौदह सौ चालीस बराबर सत्तावन हजार छः सौ फीट अर्थात सवा सत्रह किलो मीटर अर्थात एक दिन में सवा सत्रह किलोमीटर की दूरी, अगर बैल कमरे से बाहर निकले तो रोजाना। फिर कमरा फैल कर मैदान में बदल गया। दूर-दूर तक फैले हुए मैदान में खुली फजाएं जलवा दिखाने लगीं। सूरज की किरणें जगमगाने लगीं। आँखों के सामने सारी दिशाएं दिखाई देने

लगीं। ठंडी हवाएं चलने लगीं। चारों ओर हरियाली उग आई। खेत हरे हो गए, घास लहलहाने लगी। पौधे लहराने लगे। टहनियां हिलने लगीं। हरियाली के बीच पानी के सोते नदी, नाले, तालाब और झरने झिलमिलाने लगे।

अचानक बैल के कंधे से जुआ उतर गया। उसकी आँखों से पट्टियां खुल गईं। मुंह से जाब हट गया। मजबूत और स्वस्थ बैल खुले और रौशन माहौल में हरी भरी धरती के ऊपर बेफिक्री और आजादी के साथ घूमने फिरने लगा। हरियाली को देख कर उसकी आँखों में हरियाली भर गई। उसका चेहरा चमक उठा। वह हर दिशा में बेरोक टोक घूमता, मन पसंद हरे ताजे, नर्म मुलायम, पौधों, पत्तों और मखमली घास को चरता, चबाता, जुगाली करता, नदी नालों और झरनों से पानी पीता, सारी दिशाओं की तरफ देखता, मैदान के फैलाव को आँखों में भरता झूमता हुआ काफी दूर निकल गया।

'सड़ाक...'

अचानक सोटे की चोट पर दिमाग झनझना उठा। फैली हुई हरी भरी धरती मेरी आँखों से दूर निकल गई। बैल कोल्हू खींचने लगा। उसकी आँखों की पट्टियां लहराने लगीं। वह लहराती हुई पट्टियां मेरी आँखों पर बंध गईं।

बैल के कंधे पर बंध हुआ जुआ, उसकी नाक में पड़ी नकेल, घूमता हुआ कोल्हू, कुचलते हुए सरसों के दाने, दानों से बनी खल, बर्तन में जमा तेल के पास खड़ा हुआ शाहजी, सब कुछ मेरी आँखों से छिप गया। सब कुछ अँधेरे में, डूब गया। अँधेरा मेरे अंदर तक घुलता चला गया।

मुझे हौल उठने लगा। मेरा दम घुटने लगा। बेचैन होकर मैंने अपनी आँखों से पट्टियां झटक दीं।

'शाहजी! एक बात पूछूं?'

'बैल की आँखों की पट्टी क्यों बांधी हुई है?'

'इसलिए कि खुली आँखों से एक जगह पर लगातार घूमते रहने से उसे चक्कर आ सकता है, और...'

अचानक मैं अपने बचपन में पहुंच गया। जहां हम कभी खुली और कभी बंद आँखों से खलिहान के बीच में गड़े खंबे के चारों ओर चक्कर लगाने का खेल खेला करते थे, और खुली आँखों से घूमते समय अकसर चक्कर खा कर गिर पड़ते थे।

शाहजी वैसा भी नहीं है जैसा कि मेरे मन ने उसकी तसवीर बना ली है। शाहजी को कम से कम बैल की तकलीफ का अहसास जरूर है। तसवीर कुछ साफ हो गई।

'और उसे चक्कर आने का मतलब है मेरा घन चक्कर।'

'मतलब' दूसरा वाकया सुन कर मैं चौंक पड़ा।

'मतलब यह कि मैं घन चक्कर में पड़ जाऊंगा। यह बार-बार चक्कर खा कर गिरेगा तो काम कम होगा और काम कम होगा तो हमारा नुकसान होगा।'

'शाहजी की तसवीर से जो काली परत उतरी वह दोबारा चढ़ गई।

मुझे इसके घन चक्कर में कुछ और भी महसूस होने लगा। कई और बातें मेरे मन में चक्कर काटने लगीं। कोल्हू के मुंह में पड़े सरसों के दाने मेरे समीप आ गए।

आँखों पर पट्टी बांधने का कारण यह भी तो हो सकता है कि कहीं बैल सरसों के दानों में

मुँह न मार ले और शाहजी को अपने पास से हरजाना भरना पड़ जाए।

अब कोल्हू का गोला भी मेरे समीप सरक आया। यह भी तो हो सकता है कि कहीं बैल को यह एहसास न हो जाए कि वह वर्षों से एक ही जगह पर सुबह से शाम तक घूमता रहता है और उस एहसास के साथ ही वह बगावत पर उतर आए। जुआ तोड़ कर भाग निकले और यह भी कि उसे खल और तेल न दीख जाए।

सरसों के अधिकतर दाने कुचलकर खल में बदल गए थे। बर्तन में काफी सारी तेल जमा हो गया था। अचानक मेरे मुँह से निकला- 'शाहजी। यह खल तो इसे ही खिलाएंगे?'

'वाह! इसे क्यों खिलाएंगे? यह कोई गाड़ी थोड़ी खींचता है। खल तो उसे देते हैं जो गाड़ी खींचता है या हल जोतता है।'

मेरी आँखें एक बार फिर बैल पर जम गईं।

धंसी हुई कोख, पिचका हुआ पट्ठा, दबी हुई पीठ और उमरी हुई हड्डियों मेरी आँखों में चुभने लगीं।

'शाहजी! यह बैल तो काफी कमजोर और बूढ़ा दिखाई देता है। इसे रिटायर क्यों नहीं कर देते?'

'नहीं बाबू साहब। इसकी बूढ़ी हड्डियों में बहुत जान बाकी है। अभी तो यह बरसों कोल्हू खींच सकता है। फिर यह सधा हुआ है। अपने काम को अच्छी तरह जानता है। इसकी जगह जवान बैल जोतने में काफी परेशानी होगी। जवान बैल खींचेगा कम बिदकेगा ज्यादा इसलिए अभी यही ठीक है।'

मेरी आँखें बैल की गति की तरफ जम गईं। बूढ़ा बैल सच में ही सधा हुआ था। एक संतुलित गति से कोल्हू खींच रहा था। उसके पांव नपे तुले पड़ रहे थे। कदम घेरे से बाहर शायद ही कभी निकलते थे। लगता था जैसे उसकी बंद आँखें शाहजी के सोटे को देख रही थीं।

'वैसे मैं एक बछड़े को तैयार कर रहा हूं, कभी-कभी उसे जोतता हूं मगर पट्ठा अभी पुट्ठे पर हाथ रखने नहीं देता। कंधे पर जुआ रखते ही रस्सी तुड़ाने लगता है। जोर-जोर से सर झटकता है मगर धीरे-धीरे काबू में आ ही जाएगा।'

मेरी आँखों के सामने बछड़ा आकर खड़ा हो गया। लंबा चौड़ा डील डौल, भरा-भरा छरीरा बदन, उठा हुआ पुट्ठा, ऊंचा कद, तनी हुई चिकनी खाल, चमकते हुए साफ सुथरे रोएं, फुर्तीली टांगे। बछड़े का कसा हुआ बदन मुझे अपनी तरफ खींचेगा। मेरी आँखें उसके एक-एक अंग पर ठहरने लगीं।

अचानक बछड़े का डील डौल बिगड़ गया। कद दब गया, पेट धंस गया, पुट्ठा पिचक गया, पीठ बैठ गई हड्डियां निकल आईं। खाल दागदार हो गई। पैरों की चमड़ी छिल गई, बालों की चमक खो गई, बदन गोबर में सन गया।

मेरे जी में आया कि मैं कमरे से बाहर जाऊं और बछड़े की रस्सी खोलकर उसे आजाद कर दूं। यह भी जी में आया कि और नहीं तो आगे बढ़कर बैल की आँखों की बंधी हुई पट्टी ही नोंच डालूं।

मगर अपनी घानी का तेल निकलने के इंतजार में अपनी जगह चुपचाप बैठा कभी बैल और कभी कोल्हू के छेद से निकलते हुए तेल को देखता रहा। और बीच-बीच में सड़ाक... सड़ाक... की गूंज सुनता रहा।

●

मराठी

पंचनामा

मूल : दीपध्वज कासोदे
अनुवाद : भगवान वैद्य 'प्रखर'

'अ रे भाई...चंदू, सुना है, तलाठी(पटवारी) आप्पा खेत के पंचनामें कर रहे हैं?'

'हां कचरु भाई, तलाठी आप्पा आने वाले हैं आज। तुम अपने खेत का भी पंचनामा करवा लेना, हां...! सरकार पैसे दे रही है।'

कचरु पगारे को कहीं से पंचनामें की जानकारी मिली थी पर, पंचनामें सचमुच होने वाले हैं अथवा नहीं, यह वह चंदू वानखेडे से पूछकर सुनिश्चित कर लेना चाहता था। चंदू सब ओर घूमता-फिरता रहता था। लोगों के छोटे-मोटे काम भी कर दिया करता था, वह। इसी कारण वह उसके पास सुबह ही पूछताछ करने पहुंच गया था।

कचरु पगारे था, कृषक। दो बच्चों का बाप। एक दीप नगर के बिजली कारखाने में था तो दूसरा खेती-किसानी में उसका साथ दिया करता था। वृद्धावस्था में भी कचरु पगारे ने खेती का काम छोड़ा न था हालांकि उसके पास खेती कुछ अधिक न थी। कुल मिलाकर साढ़े-तीन एकड़। इतना ही कि तापी नदी के किनारे पर होने के कारण गहरी काली और उपजाऊ थी। सुपाड़ी फोड़ने के लिए भी पत्थर नहीं मिलेगा खेत में। अब तो हतनूर डैम के कारण लबालब पानी भरा रहता था, नदी में पर इतना पानी उपलब्ध होने के बावजूद वह उसे अपने खेत में न ला पाया था। उस पर, इस साल बारिश ने कहर बरपा दिया। अजगर जैसे बकरी को निगल लेता है वैसे नदी की भयंकर बाढ़ ने उसका खेत निगल लिया था।

'... हर साल बारिश होती है। आदमी सोचता कुछ है और होता कुछ और है! पिछले साल बारिश की राह देखते-देखते थक गया था जबकि इस साल इतनी बारिश हुई कि सब बर्बाद हो गया।'

मन ही मन सोचते हुए कचरु पगारे चंदू के घर से बाहर निकला। चलते-चलते बाड़ा पार करने पर लोहार गली में उसे सीताराम दिखायी दिया।

'क्या कचरु भाई, इतनी जल्दी-जल्दी कहां चले?'

'तलाठी आप्पा की ओर जा रहा हूं, लोहार भाई।'

'किसलिए।'

'अरे ...सुना है, खेतों के पंचनामें हो रहे हैं।'

'हां, भाई...सुना तो मैंने भी है!'

इन दोनों में चर्चा चल ही रही थी कि बैलों के लिए कड़बी की पुलियां लेकर जाता जयराम काले भी आकर रुक गया। बोला, 'क्या चल रहा है, भाइयों...!'

'कुछ नहीं बंधु ऽ...कचरु भाई बता रहा था कि खेतों के पंचनामें हो रहे हैं।'

'अच्छा, ऐसा है क्या? ...अपना तो कुछ नहीं गया भाई पर नदी किनारे वालों का भारी नुकसान हुआ है।'

'मेरा तो खेत ही सफाचट हो गया, जयराम भाई ऽ...।' कहते हुए कचरु पगारे का मुंह उतर गया था।

'मेरा तो कुछ अधिक नुकसान न हुआ; पर सोचता हूं, मिल लूं तलाठी आप्पा से।' सीताराम ने भी अपनी व्यथा व्यक्त की।

'हमें जो मिलना है, मिले ऽ...पर कचरु भाई को तो अवश्य मिलेंगे। उनके लोगों को काफी सहूलियतें हैं...!'

जयराम काले का इस तरह बोलना कचरु पगारे को कहीं आहत कर गया पर, उलझने के लिए यह उपयुक्त समय न था। इस वक्त, तलाठी आप्पा को मिलना जरूरी था। इस कारण कचरु पगारे वहां से चल दिया। भाग-दौड़ करते तलाठी के ऑफिस के सामने पहुंचा तो देखा, ऑफिस में ताला लगा है! ऑफिस के बाहर लोग ताश खेल रहे थे। उनमें से एक, गजमल माली एक ओर जाकर बीड़ी सुलगा रहा था। उसने कचरु पगारे को देखा।

'इधर किधर आए, कचरु भाई!''

'तलाठी आप्पा से काम था, बंधु ऽ...।'

'आज तो कहीं दिखायी नहीं पड़ा तलाठी...।'

गजमल माली ने कहा और वह फिर ताश के अपने खेल में मशगूल हो गया।

कचरु पगारे खड़ा सोचता रहा,'अब कहां खोजूं इस तलाठी को...?'

तभी उसे रामचंद्र कोतवाल याद आया। तलाठी का ठिकाना रामचंद्र कोतवाल के सिवा कोई नहीं बतला सकता, उसे पक्का विश्वास था। उसने तुरंत रामचंद्र कोतवाल के निवास का रास्ता पकड़ा। उसका मकान माली गली में था। सामने से सीताराम लोहार जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए आता हुआ दिखायी दिया। उसने दूर से ही कचरु पगारे से पूछा, 'क्या आप्पा आए हुए हैं?'

'नहीं भाई ऽ...यहां तो ऑफिस ही बंद है।'

'तुम तो कह रहे थे कि आप्पा आए हुए हैं!'

'मुझसे वो चंदू ने कहा था।'

'अब कहां मिलेगा, तलाठी...?'

'सोचता हूं...क्यों न हम उस रामचंद कोतवाल से मिल लें...?'

'अरे हां, ये ठीक रहेगा। वो सदा आप्पा के साथ ही रहता है।'

दोनों रामचंद्र कोतवाल के निवास की ओर चल पड़े। रामचंद्र कोतवाल के निवास के सामने लोग खड़े थे। दूर से ही भीड़ दिखायी दी। हर कोई कोतवाल से यही पूछ रहा था, 'तलाठी आप्पा कब आएंगे...?'

''आप्पा कल आएंगे, नहीं तो आएंगे परसों...। मैं क्या उसका साहब हूं क्या?' -कोतवाल

चीख-चीखकर जवाब दिए जा रहा था। उसका चीखना हर किसी को सुनायी पड़ रहा था तब भी भीड़ में हर कोई यहीं सवाल पूछे जा रहा था कि तलाठी आप्पा कब आएंगे?'

कोतवाल बुरी तरह बौखला गया था। उसके बौखलाने से धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी थी पर कचरु पगारे डटा हुआ था। सीताराम लोहार भीड़ में किसी के साथ लौट चुका था। सब जाने के बाद कचरु ने भी वही सवाल पूछा,

'तलाठी आप्पा कब आएंगे?'

'अब क्या तुम्हीं रह गए थे, पूछने के ऽ...? अब तक मैं क्या फिजूल ही चिल्ला रहा था? अजीब लोग हैं...! बे-मतलब सिर खराब करते हैं...।'

कोतवाल की इस प्रकार की बात सुनकर कचरु पगारे खिन्न हो गया। थका-हारा घर लौट गया। चंदू अपने अहाते में लेटा हुआ था।

'क्यों रेऽ... चंदू, तलाठी आप्पा तो आए नहीं गांव में। मुझे बेकार ही हलाकान कर दिया, तुमने?'

'अरे कचरु भाई ऽ ...वो आया था। सरपंच के घर में बैठा हुआ मैंने खुद देखा था, उसे। गांव के ये लोग...कमीने... गरीब को कोई लाभ नहीं मिलने देते। कोई भी अधिकारी आया कि अपने घर में घुसा कर रखते हैं। वो तलाठी भी न, एक नंबर का बदमाश है। हम लोगों के काम करना, उसके भी बड़े जान पर आता है।'

चंदू ने हमेशा की तरह बड़बड़ाना आरंभ कर दिया।

'ऐसा ही है, बंधु...पर हम लोग क्या कर सकते है?'

'यही तो है, कचरु भाई। अपनी ताकत हर जगह कम पड़ जाती है...।'

'अच्छा, यह सब छोड़ो, चंदू। अब जब भी तलाठी आप्पा आएं, मुझे जरूर बतलाना। नहीं तो मेरे ही खेत का पंचनामा छूट जाएगा। मैं तो इस साल बुरी तरह से बरबाद हो चुका हूं, भाई...।'

'तुम बरबाद होने से रहे, कचरु भाई। सरकार घरों की, खेतों की नुकसान भरपाई दे रही है। विदर्भ में तो सुना है, बारिश के कारण जिनके कुओं में मिट्टी भर गयी, उन्हें भी खूब पैसा मिला!'

चंदू की जानकारी से कचरु पगारे ने और अधिक राहत महसूस की। तलाठी की तलाश में की गयी भागदौड़ की थकान भी वह भूल गया और अपने घर की ओर लौट चला।

'तलाठी आप्पा आ गए हैं, पंचनामें करवा लोऽ...।'

दो तीन दिन बाद गांव में इस प्रकार की हवा उठी। हर किसी की जुबान पर एक ही बात। 'पंचनामा...!' 'पंचनामा होना चाहिए' इस कारण परिवार के आधे लोग खेत में, तो आधे घर में रहने लगे। तलाठी की चातक की तरह बाट जोहने लगे।

पंचनामा करवाने की खातिर कचरु पगारे ने भी घर नहीं छोड़ा था। उसका मुकाम घर में था तो उसका छोटा बेटा खेत में आसन जमाए बैठा था। कचरु गांव में एक चक्कर जरूर लगा आता। पंचनामा के बारेमें रोज नयी-नयी बातें सुनने को मिलतीं। तलाठी पिछले दो-तीन दिनों से गांव में आया ही न था। पर, आज की खबर से पूरा गांव तलाठी के ऑफिस के सामने इकट्ठा हो गया था। कचरु पगारे भी भाग-दौड़ करके ऑफिस के पास आकर रुका था।

तलाठी का ऑफिस खुला हुआ दिखायी दे रहा था पर, तलाठी का कहीं पता न था। चींटियां

जैसे शक्कर को घेर लेती हैं वैसे लोगों ने उसके ऑफिस का द्वार घेर रखा था। ऑफिस के सामने की खुली जगह में खड़ी मोटरसाइकिलों के जमघट से भीड़ दो हिस्सों में बंट चुकी थी। हर कोई तलाठी से, 'मेरे खेत का पंचनामा करने के लिए, मेरी गाड़ी पर चलिए', यही गुहार लगा रहा था।

कितनी ही देर तक यह शोर मचा रहा। कुछ देर बाद, तलाठी ऑफिस से बाहर निकलकर राजेंद्र भुसारे की मोटरसाइकिल पर बैठकर उसके खेत का पंचनामा करने चला गया। बाकी खड़ी मोटरसाइकिलें भीं भैंसों के झुंड की तरह उसके पीछे भागने लगीं। मोटरसाइकिलों की आवाज से सबके कान पथरा गए। कचरु पगारे जहां आकर रुका था, वहीं से यह सब मजा देखते खड़ा था। बोलना तो दूर, वह तलाठी का मुंह भी नहीं देख पाया। आखिर खाली हाथ घर लौट गया।

'क्या कचरु भाई, हो गया क्या काम?' कचरु पगारे का उतरा हुआ चेहरा देख चंदू उसे आते ही पूछ बैठा।

'काम क्या खाक होता है भैया...! ऑफिस में इतनी भीड़ थी कि मैं आप्पा का मुंह भी नहीं देख पाया। बीच में ही, वो वामन भुसारे का बच्चा आप्पा को अपनी फटफटी पर बिठा कर ले गया।'

'अच्छा...!'

'आखिर वो भी अकेला आदमी है। क्या-क्या करेगा... ? रामचंद्र कोतवाल तो बता रहा था, एकेक खेत का पंचनामा करने के लिए दो-दो, तीन-तीन घंटे लग रहे हैं।'

'ठीक ही तो कह रहा है। बारिश ने तबाही ही वैसी मचायी है। तब भी पंचनामा होना जरूरी है, कचरु भाई!'

चंदू ने पुनः पंचनामा की जरूरत प्रतिपादित करने से कचरु पगारे और भी उदास हो गया और धप्प-से नीचे बैठ गया। उसके मन में नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे।... पंचनामा नहीं हुआ तो अपना क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। खेत तो तबाह हो ही चुका है। सरकार की सहायता भी नहीं मिलेगी...। इस भय से उसे कुछ सूझ नहीं रहा था।

'कचरु भाई के साथ बहुत बुरा हुआ। बेचारे का खेत ही नहीं बचा।' चंदू के पास बैठा एक बोला।

'कुछ न कुछ तो मिल ही जाएंगे। सरकार किसानों को यूं ही भगवान भरोसे तो नहीं छोड़ेगी. ..!' दूसरा बोला। कचरु पगारे उनकी ओर यूं ही देखता रहा।

''अच्छा तो बंधुओं, अब मैं चलता हूं। जो होने का है, सो होगा।' कहते हुए वह उठा और चलने लगा कि चंदू ने उसे रोक कर एक आइडिया दिया।

'कचरु भाई, ऐसा क्यों न किया जाए...!'

'कैसा?'

'तलाठी आप्पा की 'फी' दे डालो। फिर देखो, आप्पा कैसे पंचनामा कर देता है...!'

'मतलब...!'

'मतलब यह कि पंचनामा करने के लिए भी लोग पैसे दे रहे हैं, जो पैसे दे रहे हैं, उनके पंचनामें फटाफट हो रहे हैं।'

''क्या अजीब काम है भाई ...! यहां देखो तो जहर खाने के लिए भी पैसे नहीं हैं। पूरा खेत तबाह हो गया और उसका पंचनामा करने के लिए फिर पैसे दो...!'

‘वैसा ही रहता है कचरु भाई, सब... । इसका कोई इलाज नहीं है। नहीं तो छोड़ो, मारो गोली पंचनामा को। तुम्हारा पूरा नुकसान हुआ है तब भी पंचनामा नहीं होगा और जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ उनके हो जाएंगे पंचनामें !’

‘कोई हर्ज नहीं कचरु भाई, अब जमाना ही वैसा है। पैसे दिए बिना काम ही नहीं होता।’

‘दे दो न कचरु भाई, दो चार- सौ! ... समझ लेना कि यह भी नुकसान ही है!’

उसके पास बैठे लोगों ने भी चंदू के साथ सम्मति दर्शायी। कचरु पगारे ने सब की सलाह धैर्यपूर्वक सुन ली। कुछ समय विचार किया। सब ओर यही सब चल रहा है, इस कारण उसके समक्ष भी कोई विकल्प न था। आखिर-

‘क्या जमाना आया है यह भी...! दे दूंगा मैं भी पैसे ; पर, देना कैसे?’ उसने सबसे प्रश्न किया।

‘रामचंद्र कोतवाल को दे दो न, दो-चार सौ... । तब वो बराबर लगा देगा अपना नंबर।’- चंदू ने सलाह दी।

‘एकदम दो चार-सौ! कहां से लाना बंधु इतने पैसे ?’

‘देखो कचरु भाई, करना चाहते हो तो करो पंचनामा। नहीं तो घर जाकर चुपचाप बैठे रहो।’ कह कर चंदू जैसे अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।

‘अरे नहीं बंधु ऽ..., चुप कैसे बैठा रहूं! कहीं से तो जुटाना ही होगा पैसे... ।’

कचरु पगारे ने परिस्थिति से समझौता करने का निश्चय किया और चंदू के पास से उठकर जाने लगा। उसके पास पैसे नहीं थे। उसका छोटा बेटा खेत से घर लौट आते ही उसने उसे शाम की गाड़ी से तुरंत बड़े बेटे की ओर दीप नगर भेज दिया। उसके बड़े बेटे ने भी सरकार से भरपूर सहायता की उम्मीद में, अपने छोटे भाई के हाथ चार पांच-सौ रुपये तत्काल भेज दिए।

कचरु पगारे का छोटा बेटा सुबह दस बजे पैसे लेकर हाजिर हो जाने से कचरु पगारे एकदम खुश हो गया। उसने झट पैसे जेब में रखे और कोतवाल के घर पहुंच गया।

‘कोतवालजी हैं क्या घर में...?’ कचरु पगारे ने बाहर से ही आवाज लगायी।

‘हां...हां, हैं... ।’ कोतवाल की पत्नी ने घर के भीतर से जवाब दिया।

‘कौन है...?’ कोतवाल द्वार की ओर बढ़ते हुए बोला।

‘मैं हूं कचरु पगारे... ।’

‘हां...हां, अभी आया... ।’ कहते हुए टोपी पहनकर कोतवाल बाहर आया। दोनों के बीच अभिवादन का आदान-प्रदान हुआ। दूसरा कोई पहुंचकर बाधा न पहुंचाए इस कारण कचरु पगारे ने इधर-उधर देखा और सौ- रुपये के चार गांधी-छाप नोट तुरंत रामचंद्र कोतवाल के हाथों पर रख दिए। पैसे हाथ में आते ही कोतवाल की भाषा बदल गयी।

‘पैसे से झट-पट काम हो जाता है, कचरु भाई। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे तो यह पटता भी नहीं है पर आप्पा को तो ‘पत्र-पुष्प’ चढ़ाना ही पड़ता है न! अब देखना, पैसे मिलते ही आप्पा कैसे तुरत-फुरत पंचनामा किये देता है... ।’

‘रामचंद्र भाई,मेरा इत्ता-सा काम कर दो । नहीं तो समझ लो, मैं खलास ही हो गया, इस साल!’

‘हो जाएगा...हो जाएगा।’

कोतवाल ने दिलासा दिया। कचरु पगारे को समाधान हुआ। लगा, जैसे आधा काम हो ही

गया। वह प्रसन्नचित्त होकर घर लौट आया।

तीन-चार दिन और बीत गए। कचरु पगारे खेत में तलाठी की बाट जोहता रहा। पंचनामा नहीं हुआ। न तलाठी आया, न ही, कोतवाल। कोई भी नहीं आया उसके खेत में।

एक दिन शाम के समय, किराना दुकान पर जाते-जाते चंदू ने खुद ही तहकीकात की।

'कचरु भाई, क्या खेत का पंचनामा हो गया?'

'नहीं भाई। कह रहे हैं कि होने वाला है। मैं तो रोज ही राह देखते रहता हूं, आप्पा की।'

'ऑ ऽ...!'

'मुझे तो पता चला कि हो चुके सभी लोगों के खेतों के पंचनामें!'

'क्या करें बंधु...मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'

'धत् तेरी की। अब क्या यह भी बताना पड़ेगा कि क्या करना है!'

'सच, अब तुम्हीं बताओ कि क्या किया जाए।'

'पंचनामा होना चाहिए न!'

'वो तो होगा ही। मैंने पैसे दिए है, कोतवाल को!'

'मुझे तो कुछ गड़बड़ लग रही है, कचरु भाई!'

'गड़बड़ सुनते ही कचरु पगारे एकदम उदास हो गया। उस पर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा।

'अब क्या करूं बंधु...! कोतवाल तो कह रहा था कि हो जाएगा तुम्हारे खेत का पंचनामा।'

'वो सब छोड़ो। अब, तलाठी आप्पा को डायरेक्ट उसके घर पर जाकर मिलो।'

'अब मैं कहां खोजूं भाई, तलाठी आप्पा का घर!'

'कुछ कठिन नहीं है। मैं देता हूं, पता लिखकर। तुम पूछते-पूछते चले जाना...।'

'क्या मुसीबत है यार...! कोतवाल तो कह रहा था, दे दिए हैं तुम्हारे पैसे आप्पा को...!'

'अब यह सब छोड़ो। और मिल आओ...। नहीं तो होने से रहा तुम्हारे खेत का पंचनामा।'

चंदू की इस बात से कचरु पगारे पूरी तरह हताश हो गया। पर बिना गए, कुछ होने से रहा, यह भी वह जान गया। रात भर सोया नहीं। खेत की तबाही उसे बेचैन किए थी। साढ़े-तीन एकड़ खेत में से केवल आधा एकड़ साबित बचा था। जिस साड़े-तीन एकड़ खेत के भरोसे वह अब तक जीवित था, वही न रहने से उसे अपना भविष्य भी अंधकारमय लग रहा था। बिस्तर पर पड़े-पड़े वही सब उसकी आँखों के सामने तैर रहा था। रात काटना मुश्किल हो रहा था। इस कारण बिस्तर त्याग कर उसने तलाठी के घर जाना तय किया और चार बजे से ही बस स्टैंड पर आकर बैठ गया।

छह बजे की बस थी। सात साड़े-सात के बीच वह तालुका(तहसील) पहुंच गया। तालुका बड़ी जगह! उसका बस स्टैंड भी बड़ा! चंदू वानखेडे ने पता लिखकर दिया था। वह कागज दिखा-दिखाकर उसने मराठे आप्पा का शिवाजी नगर स्थित घर खोज निकाला। अभिवादन के आदान-प्रदान के बाद वह बोला, 'आप्पा, मेरे खेत का पंचनामा करना था न! उसके लिए मैंने रामचंद कोतवाल को पैसे भी दे दिए हैं।' कचरु पगारे ने हिम्मत जुटाकर, बिना समय गंवाए, तलाठी को उसके द्वार पर ही यह सब बतला दिया। सुनकर तलाठी भौंचक! कचरु पगारे ने द्वार पर दस्तक दी थी! इस कारण तलाठी ने जेब में से एक लिस्ट निकाली और कोतवाल ने किस-किस के पैसे दिए हैं और किस-किस

के नहीं दिए, यह जांचने लगा।

'इससे पहले मिलने आना था न, कचरु भाई, मुझसे!'

'मिलने तो मैं कई बार आ चुका हूं पर आपके इर्द-गिर्द हर वक्त हुजूम जो लगा रहता था!'

'वो सब तो ठीक है पर,उस कारण तुम्हारे खेत का पंचनामा करने का रह गया न!'

'मतलब...!'

'पंचनामा तो करना ही पड़ेगा न आप्पा मेरे खेत का! मेरा तो पूरे गांव में सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है।'

'पर, अब क्या फायदा? मैंने तो रात को ही सारे कागजात पूरे कर लिए हैं, मामलेदार को देने के लिए!'

'ऐसा न करो, आप्पा! मैं गरीब आदमी हूं।...अच्छा, इसमें मेरा कोई दोष भी नहीं है। मेरा सचमुच बहुत अधिक नुकसान हुआ है...।'

कचरु पगारे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा। उसकी आयु और उसका अनुनय-विनय देख तलाठी को उस पर दया आ गयी। उसने 'ठीक है...ठीक है' कहा और पास पड़े दस्तावेजों के गट्ठर के कागजात उलटने पलटने लगा। काफी देर तक कागजात खोजते रहने के पश्चात बोल पड़ा- 'क्या कचरु भाई...! आखिर इनाम में ही तो मिली है जमीन, तुम्हें। सरकार तुम लोगों को इतना कुछ देती है, तब भी तुम्हारी हवस कुछ पूरी नहीं होती। जरा और लोगों को भी तो मिलने दिया करो कुछ...!'

तलाठी की इस व्यंग्यपूर्ण बात से कचरु पगारे दंग रह गया। उसे ऐसा लगा, जैसे किसी ने कसकर झापड़ रसीद कर दिया हो! अब आगे क्या कहे...! अपराधी दृष्टि से वह तलाठी के दस्तावेजों का गट्ठर निहारने लगा। गट्ठर में, दस्तावेजों के भार से उसके खेत के कागजातों का दम घुट रहा था। तलाठी की चुभती नजर उसे बे-बर्दाश्त हो गयी। वह उठा और भारी कदमों से अपने घर की ओर चल पड़ा।

●

मलयालम

वेबसाइट

मूल : चंद्रमति
अनुवाद : एस.तंकमणि अम्मा

आरंभ होता है एक विज्ञापन से। अंत होता है एक चौक में। वही यह कहानी है।

विज्ञापन यों है- 'सुंदर, अविवाहित, इंजीनियरी में स्नातकोत्तर उपाधिधारी, एकाकी युवक (आयु : 39 वर्ष; शौक : संगीत, वाचन, इंटरनेट)। समान अभिरुचियों वाली युवतियों से शुद्ध सौहार्द की कामना है। लिखें : बॉक्स 2525 के.जी.डी.।'

इस विज्ञापन ने स्मिता के मन के अंतस्थल में घुस पैठकर उसे छू लिया। स्मिता थी सुंदरी, अविवाहिता, मलयालम साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधिधारी तथा एकाकिनी। उसके शौक भी उपर्युक्त ही जो ठहरे। वह भी शुद्ध सौहार्द न मिलने का अवसाद झेल रही है। ऐसे हाल में वह लिखे बगैर कैसी रहेगी?

अनजान प्रिय मित्र :

विज्ञापन देखा। इसके दो शब्दों ने मुझे मोह लिया इसलिए यह चिट्ठी लिख रही हूं। वे शब्द कौन-कौन से हैं। इसके बारे में बाद में लिखूंगी।

पहले पहल मैं अपना परिचय दूंगी। नाम स्मिता। असली नाम सुस्मिता। उसी नामवाली युवती को 'विश्व सुंदरी' का खिताब मिला तो मैंने पहले अक्षर की उपेक्षा की। यों ही मैंने उपेक्षा नहीं की थी। राजपत्र में विज्ञापन देकर नाम बदल दिया था। मैंने ऐसा क्यों किया, यह बात तब आपकी समझ में आएगी जब हमारा शुद्ध सौहार्द आगे बढ़ेगा। मेरी उम्र 28 साल की है। मलयालम में एम.ए. हूं। अध्यापिका बनने की इच्छा नहीं थी। छात्रों को परोस देने के लिए अपने पास कुछ तो होना है न? नए जमाने में जीने के लिए मैंने कंप्यूटर का बेसिक पाठ्यक्रम सीख लिया। पूर्व लिखित परीक्षाओं में किसी एक के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय के कार्यालय में सेकेंड ग्रेड असिस्टेंट की नौकरी मिली। इस शहर में एक 'पेइंग गेस्ट' के रूप में रह रही हूं। इंटरनेट और ई-मेल यहां से सीख लिए। इस घर का आउट हाउस स्त्रियों के लिए स्त्रियों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाने वाला केंद्र है। ज्यादा सीखने की इच्छा न होने के कारण मैं उस ओर ताकती तक नहीं।

यह घर पूरा का पूरा स्त्री मय है। घर का मालिक दुबई में। नीचे की मंजिल में उसकी पत्नी और दो बेटियां हैं। बड़ी बेटी कंप्यूटर कक्षा चलाती है। ऊपरी मंजिल के दो कमरों में हम चार पेइंग गेस्ट हैं। शाम को सात बजे के पहले घर पहुंचने का नियम है। कार्यालय से निकलकर, पुस्तकालय तथा इंटरनेट कैफे में घूम फिरकर (इंटरनेट के प्रति मेरी मानों सनक ही है) मैं ठीक समय पर ही

नीड़ वापस आती। उसके बाद की समस्या सामने आती। फिर क्या, पुस्तकें पढ़ती। कैसेट सुनती। ऊपरी मंजिल पर एक ब्लैक एंड व्हाइट टीवी है जिसके सम्मुख चार अभिरुचियों वाली चार दर्शक भी। आवाज के बढ़ जाने पर निचली मंजिल के 29 इंच कलर टी.वी. के सामने बैठकर दुबई सुलतान को चेतावनी भेजती। सब कुछ सहकर इधर ठहरी हूं मैं। पांच फुट दो इंच कदवाली 50 किलो वजनवाली श्वेत रंग वाली, लंबे बालों वाली मैं।

अब आप के विज्ञापन की ओर आऊं। मेरे पसंद के दो शब्द जो उसमें हैं वे ये हैं-(1) एकाकी (2) शुद्ध सौहार्द। पहला, हम दोनों के लिए बराबर। दूसरा, सदैव ही मेरा सपना जो रहा है। कोई निर्मल और स्वच्छ सौहार्द हमारा अपना हो। शेष आपकी चिट्ठी के बाद।

सस्नेह

स्मिता

सोमवार को पोस्ट किए पत्र का उत्तर शुक्रवार को मिला। 'स्वयं अपने को 'सुंदर' पुकारने वाले विज्ञापन-युवक' के लिए सर्वथा असंगत लगती विकृत लिखावट'-- मन ही मन यों सोचकर स्मिता ने पत्र खोला।

डियर स्मिता,

मलयालम मुझे नहीं आती। एस.एस.एल.सी में किसी न किसी प्रकार उत्तीर्ण हुआ। लिखावट भी वश में नहीं। कंप्यूटर की बोर्ड में टंकण करने का आदी हूं। मेरे लिए दुनिया भर में मित्र हैं। वे कौन हैं, कौन कहां हैं, इसका कोई पता मुझे नहीं, वही तो नेट मित्रता की खासियत है।

मेरा नाम विनोद कृष्णा। कानपुर आई.आई.टी. से एम.टेक प्राप्त किया। अमेरिका में नौकरी कर धन कमाया। अब 39 वर्ष की आयु में आराम की जिंदगी। जरूरत से ज्यादा धन क्यों चाहिए? जिंदगी एक ही है न? उसका भरपूर मजा लेना चाहिए। इसलिए मैं 'जोशी' और 'मार्टिन' सुनता हूं। तकनीकी किताबें और 'पल्प फिक्शन' पढ़ता हूं। नेट में सर्च करके थक जाता हूं।

स्मिता की जिंदगी के समान एक जिंदगी मेरी रुचि की नहीं। किसी दफ्तर में क्लर्की का काम। पेइंग गेस्ट के रूप में कहीं ठहरना। एक ब्लैक एंड व्हाइट टी.वी. के लिए तीन लोगों के साथ शेयरिंग। फिर भी स्मिता का स्वयं का वर्णन बेहतरीन है। आम तौर पर भारतीय लडकियां पहले पत्र में ही यों अपना वर्णन नहीं करतीं। सवाल की प्रतीक्षा करती रहतीं हैं। कद, वजन, बाल आदि की घोषणा नहीं करती। लगता है स्मिता 'ईगो' वाली लड़की है। है न? पूरे पत्र में अहंकार भरा पड़ा है। गजट में विज्ञापन देकर नाम बदलना तथा उसका कारण न बताना वगैरह अहंकार ही लगता है।

स्मिता के तर्ज पर ही मैं अपना परिचय दूंगा। मेरा कद छः फुट का था। फिलहाल मापता नहीं। वजन 70 किलो। घुंघराले बाल। फ्रेंच दाढ़ी। गेहूं का रंग। काफी है न? अब क्या जानना है? पसंदीदा संगीतज्ञ, लेखक, सर्फ की जगहें, सबके बारे में लिखना। अब समाप्त करता हूं। अभी 'याहू' के चैटरूम में मेरा एक एप्वाइंटमेंट है। मेरे कई ई-मेल पतों में एक नीचे दिया जा रहा है। उसका इस्तेमाल करें तो समय बच जाएगा। ओ.के?

विथ लव, विनोद।

पत्र पढ़कर आगे बढ़ी तो स्मिता की आँखें कर्कश होती गयी। परिवार में उसके विरुद्ध ज्यादातर व्यवहार में लाया गया शब्द था घमंडी या 'अहंकारी'। परिवार के बाहर के किसी अपरिचित व्यक्ति ने

अकस्मात् ही वह शब्द अपनी ओर छेड़ा तो वह क्षुब्ध हो उठी। उसे लगा कि केवल नाम के लिए ही वह सुंदर है, वह तो कोई मानसिक रोगी है। नहीं तो अभी तक जिस लड़की को वह न तो जानता है और देखा है उसके लिए लिखे पहले पत्र में ऐसी बातें कैसे लिख पाते? ईंट का जवाब पत्थर से देने की उसने ठान ली। उसके ई-मेल पते को निर्मम ढंग से नजरअंदाज करते हुए एक कागज पर उसने लिखा-

श्री विनोद कृष्णाजी,

इस दरिद्रा की प्रणाम स्वीकारें। जिस प्रकार मलयालम आपके वश में नहीं उसी प्रकार अंग्रेजी मेरे वश में नहीं इसलिए आपको की बोर्ड प्रिय है तो मुझे हस्तलिपि ही प्रिय है। मेरे कई ई-मेल पते तो नहीं केवल एक ही है। वह इस पत्र में दिया गया है। आप चाहे तो उसमें पत्राचार कर सकते हैं किंतु हस्तलिखित पत्रोत्तर सादा डाक में ही आएगा। पता है न? अहंकारी लोग हठी हुआ करते हैं।

जब मैंने अपना एकमात्र ई-मेल आईडी लेने की कोशिश की तभी मैं समझ गयी कि ऐसे मामले में मैं कितनी पिछड़ी हूं। वहां मेरा नाम स्मिता 1038 है। 1037 स्मिताएं मुझसे पहले से हैं। अपने नाम के लिए भी 1037 व्यक्तियों के पीछे खड़ी होने को विवश। मुझे ईगो है- यह बता रहा है कोई व्यक्ति जिससे न तो मेरा परिचय है और जिसने न मुझे देखा है। यह भी क्या बात!

मुझे इसका पता नहीं था कि लडकियों को पहले पत्र में ही स्वयं अपना वर्णन नहीं देना चाहिए। 'दुनिया भर में मित्र नहीं है अतः उसको कानूनों की जानकारी नहीं। मेरे मित्र तो हैं किंतु उंगलियों में गिनने लायक। वे कौन-कौन हैं तथा कहां-कहां हैं इसकी भली भांति जानकारी मुझे है। हम दोनों के बीच यह फर्क तो है ही।

आपने कहा कि मेरे पत्र में अहंकार छलकता है। यह भी सूचित किया है कि खुद का वर्णन पसंद नहीं। किंतु आपके विज्ञापन के शब्द आपको याद है क्या? सुंदर, अविवाहित, स्नातकोत्तर उपाधि, एकाकी- क्या यह स्वयं का वर्णन नहीं है?

एक 'शुद्ध सौहार्द' के लिए अंतिम को छोड़कर शेष सारे विशेषण अनावश्यक हैं न? 'दुनिया भर में फ्रेंड्स', 'हाथ भर धन', '39 वर्ष की आयु में आराम की जिंदगी', फिर सुख-आराम से बिताने के लिए ही जिंदगी है- ऐसा दर्शन भी! क्या ये सब ईगो नहीं हैं? फिर भी आश्चर्य की बात है कि आपकी सोच में 'दरिद्र नारायणी' का प्रयोग आया है।

मित्र, यह मित्रता दीर्घकाल तक जारी रहेगी--इस पर मेरा कोई भरोसा नहीं। आपके जैसे हाथ भर पैसे रखकर जिंदगी ऐशो-आराम से जी लेनेवाले ही इस देश के शाप हैं। तुम कभी भी स्मिता जैसी एक लड़की को समझ नहीं पाओगे। क्लर्क का काम तथा घर से दूर पेइंग गेस्ट के रूप में रहना सब मेरी अस्मिता की घोषणा है। दहेज के पीछे बहकर किसी पुरुष के शयनकक्ष में उसके बच्चों को जन्म देना स्त्रीत्व नहीं है--यही मेरा विचार है। मुंह में चाँदी के चम्मच के बदले कंप्यूटर लेकर जन्म लेने वाले आपकी समझ में ये बातें नहीं आएंगी। एक ब्लैक एंड व्हाइट टीवी के लिए तीन लोगों के साथ मुठभेड करनेवाली मुझे उन गरीबों का पता अवश्य होगा जिन्हें इसका पता ही नहीं होगा कि टी.वी. किस चिड़िया का नाम है। 'चैट रूम' में शब्दहीन और शरीरहीन लोगों के साथ संवाद में लगे आप मज्जा और मांस वाले किसी को कैसे समझ पाओगे? ज्यादा लिखने का मन नहीं। क्षमा करें।

सस्नेह

स्मिता

पत्र पोस्ट करके पहले आयी बस में चढ़कर स्मिता घर की ओर गयी। शादी की बातें करने वाली मां से गुस्सा किया। पिताजी से राजनीतिक गतिविधियों की चर्चा की। पहले कभी 'रैग' की गई लड़की अब पीछे पड़ रही है- इस बात पर छोटे भाई की हँसी उड़ायी। सोमवार होने पर भी कार्यालय न जाने वाली उससे मां ने- 'क्या छुट्टी पर है?' पूछा तो फिर एक बार मां से क्रुद्ध हो उठी। नारियल के पेड़ों के अहाते से छः फुट लंबे 70 किलो वजन वाले एक जवान को मन में वहन करके, हर पल उसे शाप देती हुई वह चक्कर काटने लगी। प्रज्ज्वलित अग्नि का जैसा भाव था उसका। मंगलवार को वह घर से शहर के लिए निकली। सुबह-सुबह कैफे की ओर आते हुए उसे देख मैनेजर को आश्चर्य आया तो भी उसने कुछ नहीं पूछा।

उसके इनबॉक्स में एक संदेश था। एक अंग्रेजी पत्र।

डियर स्मिता,

घोंघा-डाक में आए पत्र को मिले आधा घंटा ही हुआ है। कैसी स्त्री हो तुम। पहले पत्र से मैं केवल तुम्हारे ईगो की ही पहचान कर पाया था। इस पत्र से ईर्ष्या रूपी हरी आँखों वाले भूत का भी पता चला। तुम भूताविष्टा हो। जिसने तुम्हारे प्रति कोई कसूर नहीं किया है ऐसा कोई दूर बैठकर इंटरनेट, किताब और संगीत का आस्वादन करके जीता है तो उसके प्रति गुस्सा करने की क्या बात है? साहित्य का अध्ययन करके फिर फाइलों में जिंदगी बिताने को लाचार होने की परेशानी है न? बस, मैं इतना सलाह तो दूं कि जिंदगी ने मेरे जैसे कतिपय व्यक्तियों के प्रति जो सद्भाव दिखाया है उनके प्रति ईर्ष्यालु होने से कोई फायदा नहीं है। एक बात समझ लो जो भी प्रदान करती है, उसका दाम जिंदगी अवश्य वसूल करेगी।

स्मिता 1038 नहीं 10038 बनने लायक है। इतना पीछे खड़े होने की योग्यता और बुद्धि ही तुम्हारी है। नहीं तो बताओ। यदि मैं नेट में सर्फ करना छोड़ दूं तो क्या यह देश बचेगा? तुमने लिखी 'अस्मिता की घोषणा' की बात। पहले समझ लो कि अस्मिता माने क्या है? उसके बाद ही घोषणा कर लेना। उस विज्ञापन के जवाब देने वाले सभी से, मैंने मैत्री स्थापित की है। केवल तुमने मुझे पीड़ा दी है। तुम एक क्रूर 'सैडिस्ट' हो। मांस और मज्जा अपने पास ही रख लो। एक बात में मैं तुम्हारा साथ देता हूं। ऐसा एक रिश्ता ज्यादा समय तक जारी नहीं रहेगा। तुम्हारी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

सस्नेह,
विनोद

(चाहो तो तुम मुझे विनु संबोधित कर सकती हो)

पत्र का प्रिंटआउट लेकर कैफे से बाहर आयी स्मिता बेहद परेशान थी। सुबह सुबह ही घर पहुंच गयी उसे देख घर की मालकिन को आश्चर्य हुआ। सिरदर्द, आकस्मिक अवकाश-- यों कहकर वह कमरे की ओर गयी। उसे एक पत्र लिखना है अथवा मन में लिखित एक पत्र की नकल करना है। उसने लिखा--

प्रिय मित्र :

बेशुमार विवशताओं और विह्वलताओं का बोझ ढोनेवाले एक मन की मालिक हूं मैं। 'एकाकी' शब्द मेरे लिए मात्र एक काल्पनिक पद नहीं इसलिए बेचैनी को मोल लेने की लाचारी मेरी नहीं है। स्वच्छ जल की भांति जिस मैत्री को पाने की मेरी आशा थी, वह शुरू-शुरू में ही नष्ट हो गयी। जिंदगी

हमेशा ही मेरे लिए ऐसी ही रही है। कोई सुविधा तो नहीं सही, कोई सहानुभूति या दया तक नहीं देती। किसी भी दृष्टि से सामंजस्य न रह जाने की वजह से अपनी मैत्री हम यहीं समाप्त करेंगे। तमाम दुनिया को 'चैट रूम' के रूप में देखनेवाले आप के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। दुनिया के अंत तक गुड बाई।

स्मिता

पत्र पोस्ट करके स्मिता ने अपने मन से उसे बाहर निकालने तथा चोट में मरहम लगाने का यज्ञ शुरू किया। इंटरनेट कैफे जाना उसने पूर्ण रूप से छोड़ दिया। कार्यालय के महिला क्लब की पाक कला कक्षा में भर्ती होकर उसने फ्राइड राइस और चिल्ली चिकन बनाना सीख लिया। टी.वी. में जो केवल समाचार और बौद्धिक कार्यक्रम मात्र देखा करती थी, वह फूहड़ परंपराएं देखकर कथापात्रों के भविष्य की चर्चा करने में लगी। फिर भी मन काबू में नहीं रहा तो उसने 'आर्ट ऑफ लिविंग बेसिक कोर्स' के लिए जाने का निर्णय लिया। वह निर्णय लेकर जिस दिन उसने अपना नाम दर्ज किया, उसी दिन रखरखाव हस्तलिपि में पता लिखा वह पत्र उसकी खोज में आया।

डियर स्मिता,

फिलहाल ईमेल चेक नहीं करती, क्या? मेरे पत्रों से तुम्हारा इन बॉक्स भर गया होगा। दुनिया के अंत तक की विदा मांग तो भी मैं लिखता रहा क्योंकि मैं तुम्हें भूल नहीं पाता। मुझे दुःखी बनाने वाली एकमात्र स्त्री तुम हो। मेरे हर पत्र के लिए तुम्हारे मौन की प्रतिक्रिया मिली तो जान गए कि मेरे शब्द मेरी ओर लौट आए हैं। बाद में मुझे लगा कि मेरे प्रति क्रोध के कारण तुम ई-मेल नहीं देखती होगी इसलिए मैं तुम्हारे घोंघा-डाक की ओर आ रहा हूं।

जिस मैत्री को जारी करने की इच्छा नहीं है उसके लिए मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूंगा किंतु तुम एक बार फिर कंप्यूटर के नजदीक आ जाओ। www.vinodkrishna.com वेबसाइट देख लेना। मेरे द्वारा डिजाइन किया गया मेरा वेबसाइट है। उसके बाद विदा लेकर चली जाना। आओगी नहीं, क्या?

सस्नेह,

विनोद

स्मिता ने निर्णय लिया कि वह उसके उससे संबंधित किसी भी वेबसाइट में नहीं जाएगी। कार्यालय से निकलने पर शाम को 'आर्ट ऑफ लिविंग' के लिए जाना है। सोचा कि यदि मन नियंत्रण में आएगा, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।

किंतु, दूसरे दिन शाम को 'आर्ट ऑफ लिविंग' कोर्स के लिए निकली स्मिता इंटरनेट कैफे में ही पहुंच गयी। अपने को चकित करते हुए स्मिता ने टाइप किया-- www.vinodkrishna.com

पंचवाद्य घोष के साथ वेबसाइट प्रकट हुई। इंद्रधनुष के सातों रंग विशिष्ट अनुपात में फैलकर धीरे-धीरे ओझल हो गए। बारिश के ताल लय के साथ स्क्रीन में विनोद का चेहरा प्रकट हुआ। गेहुंआ रंग के चेहरे पर दृढ़ता से युक्त पुरुष छवि का दर्शन स्मिता ने किया। पहले पहल उसका ध्यान आकृष्ट कर लिया विनोद के तृष्णा जगाने वाले होंठों ने। उसके जैसे विशिष्ट होंठ उसने और किसी के नहीं देखे था। विनोद की आँखों में असाधारण तीखापन भरा था। उसकी निगाह के सामने स्मिता एकदम परेशान हो उठी। उसने खुद से पूछा--हे भगवान! यह.... क्या हो रहा है? ए.सी. कमरे में उसे पसीना आ गया। घुंघराले बाल और फ्रेंच दाढ़ीवाली उसकी छवि में स्मिता ने काम पिपासु यवनदेव को देखा।

कर्सर को 'जीवनी' वाली खिड़की पर ले आकर उसने क्लिक किया। खिड़की खुली-

जन्म - 17.01.1961

शिक्षा :

1. एस.एस.एल.सी., पुल्लुविला स्कूल, फर्स्ट क्लास।

2. प्री.डिग्री - सरकारी साइन्स कॉलेज, फर्स्ट क्लास, चतुर्थ रैंक।

3. बी.टेक - इंजीनियरिंग कॉलेज, फर्स्ट क्लास, सेकेंड रैंक।

4. एम.टेक - आई.आई.टी, कानपुर, फर्स्ट क्लास, फर्स्ट रैंक।

5. शोध - क्याल टेक्स, कैलिफोर्निया। (प्रोफेसर के साथ के मतभेद के कारण पूरा नहीं किया)

नीचे की ओर गए बगैर, पहले पृष्ठ की ओर लौट आकर स्मिता फिर विनोद की आँखों में उलझ गयी। प्रोफेसर से भी मुठभेड़ करने वाला अहंकार, है न? उसने पूछा- मस्तिष्क है, मान लिया किंतु हृदय? वह भी चाहिए न? अपने स्वर को मृदुल कोमल होता हुआ पाकर स्मिता को आश्चर्य हुआ।

'जीवनी', 'शोध परिणाम', 'अब जो करता है', 'एलबम', 'संदर्शक डयरी', 'संपर्क करें' ये छह खिड़कियां स्मिता के सामने आयीं। उसने 'संदर्शक डायरी' खोला। दुनिया के कोने-कोने से अनगिनत व्यक्तियों ने वेबसाइट का संदर्शन कर अभिनंदन दर्ज किए हैं। घूम-घाम कर पुनः वह पहले पृष्ठ पर आई। अब किस खिड़की को खोलूं-यों सोचकर वह 'एलबम' की ओर मुड़ी।

एक लाल रंग के चेक शर्ट पहना हुआ सुंदर विनोद कृष्ण ने कंप्यूटर के सम्मुख एक आकर्षक 'पोज' में बैठकर उंगलियां की-बोर्ड पर रखकर गला मोड़कर उसकी ओर देखा। होंठों के बीच से उसके दांतों के कोर मुस्कान-मुद्रा में प्रकट हुए। उसकी आँखों की शिकारी निगाह ने उसे फिर से परेशान किया। उंगली से उसने उस निगाह को छिपा लिया तो भी उंगली संकोच के साथ पीछे हट गयी।

शनैः शनैः उसके सामने अगली तसवीर डाउनलोड़ होकर आई।

जलप्रपात की तसवीर लगायी दीवार के सामने बैठकर विनोद पुस्तक पढ़ रहा है।

बैठा है ....

बैठा है?

अपनी आँखों को विश्वास में न लेकर स्मिता ने एक बार और देखा--हां -- विनोद कृष्ण एक बड़े से 'व्हील चेयर' पर बैठे हुए हैं!

एकाएक चौंककर पीछे की ओर हटी स्मिता की दृष्टि 'जीवनी' वाली खिड़की की ओर पड़ गयी। चौंक अभी नहीं हटी कि उसने पढ़ा--

विशेष : 1997 में न्यूयॉर्क में जो मोटर दुर्घटना हुई उसमें दोनों पैर कमर के नीचे से नष्ट हो गए।

परिवार - नहीं

शौक - संगीत, वाचन.......।

नहीं, अब स्मिता के पास जानने के लिए और कुछ भी नहीं रहा। वेबसाइट के जाल की कड़ियां सब घेरकर अपने को पूरी तरह से दबाने के पहले, उसे बाहर कूदकर बच जाना है। उसकी कांपती उंगलियों के नीचे माउस यों ही क्लिक ध्वनि निकाल रहा है किंतु दृश्य मिटता नहीं है। बेहद परेशान हुई स्मिता की ओर अपनी तीखी निगाहें गड़ाकर विनोद कृष्ण 'व्हील चेयर' पर यों ही इंतजार में बैठे रहे।

●

उड़िया

जख्म

मूल : पारमिता सतपथी
अनुवाद : राजेंद्र प्रसाद मिश्र

विवाह-मंडप पर होम की आग के सामने, शुभ-कलश पर मेरे हाथ पर मेरी पत्नी लता का हाथ रखकर जब पुरोहित कुश की गांठ लगा रहे थे, तब न जाने क्यों मैंने सिर उठाकर देखा और ठीक मेरी नजरों के सामने मैंने उसे खड़ा पाया। चौंक उठा मैं। क्षण भर को मेरी आँखें मुंद गईं। फिर से आँखें खोलकर मैं उस ओर देखूं या न देखूं यह सोच ही रहा था कि दुबारा मेरी नजर उस पर पड़ गई। वह वहीं उसी तरह खड़ा था। ऐसा दिख रहा था जैसे कि अर्जुन की भूमिका के समय वेशभूषा पहनकर दिखता वह खूब सुंदर, ताजगी भरा!

सिर झुकाने को बाध्य हुआ मैं। रात को मेरी शादी चल रही थी। शायद रात के दो-ढाई बजे होंगे। मैं साहस नहीं कर सका कलाई-घड़ी की ओर देखने का। काफी थकान लग रही थी मुझे। लता के घर पर शादी हो रही थी। सभी सगे-संबंधी और मेहमान खा-पीकर जा चुके थे तब तक। रह गए थे मेरे बप्पा, चाचा, हमारे कुछ रिश्तेदार और मेरी पहचान के लता के कुछ सगे-संबंधी।

वह इसी वक्त कैसे और क्यों दिखा मुझे? सिर झुकाए होम की अग्नि को देखते हुए सोच रहा था मैं। शायद लता के किसी रिश्तेदार का बेटा होगा। हू-बहू वैसा ही लग रहा था वह, जैसा कि बीस साल पहले आखिरी बार हम सबको लगता था। शायद थकान और लगातार जागते रहने का कारण था यह। मैं खुद को समझा रहा था। इतने सालों में वह कभी दिखाई नहीं दिया। फिर आज क्यों?

सचमुच आज ही क्यों? क्या इसलिए कि आज का यह उत्सव, प्रथम उत्सव के रूप में काफी पहले संपन्न हुआ होता हमारे घर पर? शायद दस साल पहले। मेरा यह उत्सव दूसरा उत्सव होता। प्रथम होने का कोई अधिकार ही नहीं था मेरा!

कितनी बेकार की बातें सोच रहा था मैं? खुद ही खुद को कोस रहा था। आज मेरी शादी है। बड़े आनंद-खुशी का दिन है। जीवन में शायद एक ही बार आता है यह दिन। आज के दिन ऐसा विचलन! जो कभी नहीं हुआ। झुकी हुई पलकें मेरी फिर से उठ गईं, सामने वह खड़ा था, वेदी की ओर ध्यान से देखता। मैंने झट नजरें झुका लीं। उसके बाद से अनमनस्क हो गया मैं और मुझमें उदासी छा गई। फिर से नजरें उठाकर सामने देखने का साहस नहीं जुटा पाया।

जीजा जी, क्यों इतने उदास लग रहे हैं? होम की अग्नि चुभ रही है क्या? लता की बहन ने चुटकी

ली। शादी के बाद मेरे लिए निश्चित एक कमरे में जाकर बैठ चुका था मैं। उस रात मुझे लता के घर यानी अपने ससुराल में ही रहना था। अगले दिन सुबह दुल्हन को लेकर अपने घर जाना था।

'हमारी ताजे फूल-सी बहनिया से शादी हुई है। मुंह क्यों सूखेगा री? मन में लड्डू फूट रहे होंगे जीजा जी के। यह तो ऊपरी दिखावा है।' किसी दूसरी लड़की ने जवाब दिया। उन लोगों से कुछ बोलने या उनसे कुछ अधिक सुनने की इच्छा नहीं थी मेरी। एक तरह की थकान-थकान-सी लग रही थी। मानो कोई जबरदस्ती खींचकर पीछे बहुत पीछे ले जा रहा था मुझे। मैं उन स्मृतियों से पुनः जुड़ जाना चाहता था। चाहता था वर्तमान परिस्थिति में सभी बुत बन जाएं अपनी-अपनी जगह और मुझे अकेला छोड़ दें।

किंतु वैसा कुछ हुआ नहीं। मुझे घेरे रहे सभी जाने-अनजाने लोग, आत्मीय स्वजन, मेरे अपने परिवार के और मुझसे जुड़ने जा रहे लता के परिवार के। विवाह की कुछ और भी रस्में बाकी थीं, जिन्हें पूरा होते-होते सुबह के चार बज गए।

मेरे न चाहने पर भी मेरी आँखें घूम आती थीं, कुछ ढूंढ़ने-सी। नहीं, अपनी चंद्रबदना का मुख देखने के लिए नहीं मेरी जिद्दी नजर ढूंढ़ रही थीं उसे किंतु न जाने क्यों वह फिर कहीं नहीं दिखा।

ऐसा क्यो हुआ? इतने सालों बाद मैं तो पूरी तरह भूल चुका था उसे। मैंने तिरछी नजर से बप्पा को देखा। वे बेहद खुश लग रहे थे। आगे क्या कैसे करना है; उस बारे में चाचा और मामा से बातें कर रहे थे, खूब ध्यान लगाकर।

यह मेरा भ्रम भी तो हो सकता है। इतने सालों बाद वह वैसा ही कैसे लगेगा, जैसा पंद्रह साल की उम्र में लगता था? शायद उसके जैसा कोई लड़का यहां लता के परिवार में होगा जो उसके जैसा हो। उतनी ही उम्र का कोई होगा। पंद्रह सोलह साल के कई बच्चे शायद उसके परिवार में भी होंगे। पर उसकी तरह ही क्यों, दिखा? बल्कि मैंने खुद अपने सामने खड़े लड़के को वह क्यों समझ लिया? वह भी इतने सालों बाद! मैं खुद ही से सवाल कर रहा था। क्या मैं अंदर ही अंदर उसी के बारे में सोच रहा था? उसे याद कर रहा था? पर ऐसा होना तो नहीं चाहिए। तरह-तरह की चिंताएं घेरे हुए थीं मुझे उन दिनों।

कभी-कभी मां पर टिक जाती थीं आँखें मेरी। मां काम में जुटी थी। वैसे भी वह तेजी से काम करती थीं। उसे कहीं बेकार बैठे मैंने कभी नहीं देखा। एक बड़े घराने की बहू के तौर पर गांव में काफी नाम था उसका। काम-धाम में उससे मुकाबला करने वाली कोई नहीं थी उस वक्त गांव में। दो महीने में कोई न कोई शादी-विवाह, व्रत-त्योहार निपटा लेती थी वह अपने बलबूते। वह अपने घर-परिवार का हो या कुटुंब में टोला-पड़ोस का लेकिन यहां शहर में मेरे तीन कमरे वाले सरकारी क्वार्टर में मां को दिक्कत होती थी। लता के पिता, मेरे ससुर की इच्छा थी कि शहर में ही उनकी बेटी की सुहागरात वाले दिन की सारी रस्में हों। भले ही उसके बाद गांव जाएंगे। इसके लिए उन्होंने हर तरह की मदद का वायदा भी किया था। मेरे बप्पा ने उनका अनुरोध मान लिया था।

मां, लता के घर से आए नए पलंग, अलमारी, बक्से सजाने में जुटी थी। साथ आए लड्डू, नमकीन, खाजा इत्यादि बांटती जा रही थी, खिलाती जा रही थी। उसी में सुहागरात का भोज-भात बनाने वाला महाराज बीच-बीच में आकर उनसे पूछ जाता और मां उसे निर्देश दे देती थी। कहा जाए तो मां नाक तक काम में डूबी हुई थी। उसे भला कहां याद आ रही होगी उसकी? क्या वह लड़का

मां को दिखा होगा? वह तो शादी में गई नहीं थी। माताएं नहीं जाती इसीलिए। कैसे देखती उसे? और बप्पा? क्या बप्पा ने देखा होगा? लग तो नहीं रहा! बप्पा भी काम में जुटे हैं। घर पर मेहमान नाते-रिश्तेदार भरे हैं।

'तुम काफी खोए-खोए से लग रहे हो दो-तीन दिनों से। विवाह के दिन भी बहुत रूखे-रूखे दिख रहे थे। क्या बात है? क्या तबीयत ठीक नहीं?' सुहागरात को थोड़ी-बहुत बातचीत के बाद लता ने पूछा। मैं चौंक उठा अंदर ही अंदर। कैसे जान गई लता? और इतनी जल्द पत्नी सुलभ अधिकार से पूछ रही है! पहले हमारी सिर्फ दो-तीन बार ही मुलाकात हुई है। मुझे उसका इस तरह सीधे-सीधे बात करना अच्छा लगा। भले ही मैंने उसके प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया था।

'तुम्हारे घर में, यानी परिवार में पंद्रह-सोलह साल का कोई लड़का है क्या?' मैंने पलटकर प्रश्न किया। मेरे प्रश्न से कुछ चकित होने-सी लगी वह। क्षण भर चुप रही और फिर बोली, 'हां, कोई न कोई तो जरूर होगा! क्यों? क्या बात है?'

'तुम मुझे उसका परिचय दे सकती हो, पता दे सकती हो?' मेरा अधीर प्रश्न था। मैं उसका प्रश्न टाल गया था। वह पुनः कुछ सोचने-सी लगी और मेरी ओर सीधे देखा।

'ला तो सकती हूं घर जाकर। पर अभी? इतना जरूरी क्यों है? बात क्या है? उसकी निगाह में आश्चर्य और संशय दोनों थे। उसकी निगाह कह रही थी कि आज सुहागरात के दिन आधी रात में यह कैसा अद्भुत है! मैं थोड़ी देर चुप रहा। सिर झुका लिया।

'अपने बड़े भाई, अपने मरे हुए बड़े भाई की तरह किसी को देखा था तुम्हारे घर पर शादी के समय। विश्वास करो।' मैंने अनुनय करने की तरह उससे कहा।

ऐसी अद्भुत बात सुनने के लिए तैयार नहीं थी लता। उसकी खूबसूरत भौंहें सिमट गईं और अगले ही पल खूब सपाट हो गया उसका ललाट। चेहरा कोमल होने लगा। मुझे लगा उसकी आँखों की कनखी में स्नेह और शरारत झलक रही है!

'ऐसा कैसे हो सकता है? तुम्हें लगा होगा वैसा। शुभ घड़ी में प्रियजन याद आते हैं। मैंने सुना था कि तुम्हारे बड़े भाई नहीं रहे। किंतु....' वह चुप हो गई।

'भाई मुझसे छह साल बड़े थे। जब वे मरे थे उन्हें पंद्रहवां साल चल रहा था, मुझे नवां। यह बीस साल पहले की बात है। मैं चुप हो गया।

लता पलंग पर मेरे कुछ करीब खिसक आई और मेरे दाहिने हाथ की हथेली को अपनी दोनों हथेलियों से हल्के से पकड़ा।

'जीवित होते तो आज पैंतीस साल के होते ना!' उसने धीरे से कहा।

मैं अपनी सिसकियां रोक नहीं सका और छोटे बच्चों-सा रोने लगा। लता ने अपने दोनों हाथों से मेरा चेहरा थाम लिया और बेहद नर्म भाव से अपनी छाती पर टिका लिया मेरा सिर। वह मेरे बाल सहला रही थी और मुझे दिलासा देती जा रही थी।

'भला कोई इतना परेशान होता है? इनसान अपनी उम्र लेकर ही तो जन्म लेता है ना। उन्हें जितना जीना था, वे जिए।'

सप्तमंगला पूजा के अगले दिन हम गांव गए थे। उसके अगले दिन रात को गांव में भोज-भात था। उसी दिन शाम को मैं लता को लेकर गांव के बाहर अमराई में गया। वहां, वह जगह दिखाई

जहां भैया पेड़ से गिरे थे, उनका मृत शरीर पड़ा था। भाई जिस आम के पेड़ से गिरे थे, पिताजी ने उसे उसी साल कटवा दिया था।

उसके बाद बातचीत के प्रसंग में एक बार लता मेरे मुंह बोले भाई-बहनों के प्रश्नों का उत्तर दे रही थी।

'और तुम्हारे भाई साहब! सुहागरात में लोग कितनी अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। कोई-कोई अपनी पिछली प्रेमिका के बारे में बताता है। कोई पुरानी प्रेमिका के बारे में। तुम्हारे भाई तो...' इतना कहकर वह चुप हो गई थी, क्योंकि मेरे चेहरे पर उसकी नजर पड़ गई थी।

(दो)

न जाने क्यों नरेंद्र के; नीरू के हमउम्र दोस्त नहीं थे। जो थे भी, नीरू उनकी परवाह नहीं करता था। उसका मन और ध्यान बड़े भाई पर ही रहता। वह भाई के दोस्तों में ही घुला-मिला रहता और घूमता, उनकी बातें सुनता। भले ही भाई के दोस्त यह पसंद नहीं करते थे, फिर भी नीरू अनजान बना भाई के पीछे-पीछे रहता। भाई के दोस्त उसे किसी न किसी काम से हमेशा कहीं भेज दिया करते अरे नीरू, चल जा तो, दो हरी मिर्च और थोड़ा-सा नमक ले आ घर से। या कहते पतंग और नटई आले में रखी है, बुला भाई के घर, जाकर जरा ले न आओ डोर में मांझा लगाकर सुखाया गया था। देख लेना सूखा या नहीं। नीरू मुड़कर जाते समय पीछे से उसके बड़े भाई की आवाज सुनाई देती 'संभालकर नीरू, मांझा में अंगुली मत लगाना कांच से अंगुली कट जाएगी' भाई हमेशा ध्यान रखते ताकि नीरू को कोई परेशानी न हो। और उसके दोस्त अकसर बहाना ढूंढ़ते कि कैसे नीरू को अपने बीच से टरकाया जाए। खासकर जब वे लोग इकट्ठे होकर कुछ गुप्त बातें करते या लड़कियों के बारे में बातचीत करते।

नीरू को मौखिक गणित में सौ में सौ अंक मिलते। भाई गणित में कमजोर थे। इतना जोड़-घटाव, गुणा-भाग मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता; अकेले में नीरू को कभी-कभी कहते भाई। 'दो नलों से पानी भरता है कुंड में, एक नल से निकल जाता है। कितनी देर में कुंड भरेगा? अरे भाई, एक नल से, वह भी कुंड के नीचे से पानी तो हमेशा निकलता रहता है, कुंड पूरी तरह भरेगा कैसे? तुम भले ही दो जगह पर छह नल लगाकर पानी भरो या जो मन में आए सो करो। ऐसे फिजूल के सवाल हल करने को क्यों कहते हैं हमारे मास्टर साब? क्या मिलेगा इससे, बता तो नीरू? क्या वह पानी का कुंड कभी भर पाएगा?'

साहित्य और अंग्रेजी में खूब दक्ष थे भाई। जो नीरू को अच्छे नहीं लगते। उबाऊ लगते हैं। सबसे अजीब तो इतिहास है। बप्पा भाई को कहते निकम्मा, बद्धि-वृत्तिहीन, खेलकूद और नाच-तमाशा में मस्त रहनेवाला! अंत में मिट्टी खोदकर गुजारा करेगा। बप्पा की बड़ी इच्छा थी, भैया इंजीनियर बने। चाहे जितना खर्च हो जाए, जरूरत पड़ी तो जमीन भी बेच देंगे, बप्पा एक बार मां से कह रहे थे, नीरू ने सुना था। भाई सुनकर मुस्कुरा देता। अकेला होने पर दूर ताकता रहता खूब दूर बप्पा नहीं जानते। जानते हो नीरू मैं नाटक लिखूंगा, नाटककार बनूंगा। दुनिया भर में घूमूंगा-घूम-घूमकर नाटक करूंगा। देखना, सारी दुनिया मुझे जानेगी।

भाई ऐसा कहते समय नीरू की ओर जरा भी नहीं देखते। नीरू भाई का चेहरा एक बार देखने के बाद भाई की दृष्टि का अनुसरण करके मुंह घुमाकर पीछे की ओर देखता। कुछ नहीं दिखता- दूर

के बांस वन और उसके पीछे के आसमान के सिवाय। फिर से मुंह घुमाकर भाई को देखता। भाई की आँखों से उसके दूर देखते किसी चीज के बीच मानो कोई अदृश्य डोर खिंची हो! उस ओर हैं खूब बड़े-बड़े विशाल-विशाल नाट्य-गृह शहरों के! भाई के मुंह से निकल रहे शब्द अति वायवीय गति से उस डोर पर उल्लास से गति कर रहे हैं उस ओर नीरू को न दिखनेवाले और भाई की आँखों के आगे हर वक्त नाचनेवाले हो-हल्ला भरे नाट्य-गृहों की ओर!

बप्पा उससे काफी नाराज रहते। गुस्से में कभी-कभी नटका तक कह डालते हैं उसे। भाई का चेहरा लाल पड़ जाता उसके मूंछ उग रहे सुंदर मुलायम सांवले चेहरे पर बूंद-बूंद पसीना जम जाता, टनक उठती उसकी दोनों बांहें कंधे के पास से। भाई बप्पा के सामने से चला जाता, बाड़ी की ओर। नीरू कुछ दूरी से, बाड़ी के दरवाजे के पीछे से छुपकर देखता भाई को। कहीं रो तो नहीं रहा वह?

तब भी भाई के पीछे-पीछे लगा रहता नीरू। भाई उसकी नजर में दुनिया का सबसे वीर, बलवान, बुद्धिमान और सुंदर इनसान है। भाई के आगे खुद को खूब छोटा समझता था। ओछा समझता था। वैसे भी अपनी हम उम्र के सभी लड़कों से, कक्षा के सभी बच्चों में वह ठिगना था। न जाने क्यों नीरू को बहुत गुस्सा आता अपने पर। क्या भाई की तरह कभी दिख पाएगा वह? छरहरा, बांस की तरह लंबा, मजबूत हाथ-पैर, घने बाल सिर पर और पतली-पतली उगती मूंछें।

बड़े-छोटे सभी लड़के भाई के चेले हैं, नीरू जानता है। किसी में साहस नहीं है नीरू को हाथ लगाने तक का यदि नीरू गुस्से में कभी-कभार किसी को दो घूंसे लगा भी देता तो वह दांत निपोरकर या मुंह फेरकर चुपचाप वहां से चला जाता। नीरू के सिवाय और किसी के छोटे भाई को नहीं बुलाया जाता, खाने को नहीं दिया जाता, जब भाई के दोस्त भोज-भात बनाकर खाते हैं। उनके नाटक-घर के पिछवाड़े, बरामदे के नीचे एक स्थायी चूल्हा बना है। वहीं बनती हैं अद्‌भुत चीजें। कभी तालाब से पकड़े गए बड़े कछुए की तरकारी तो कभी बरसाती ब्राह्मणी मेढ़क के मसालेदार पैर। वे सारी चीजें खूब छिपाकर, गोपनीयता के साथ बनाई जाती हैं। पर बनाते हैं वे लोग खुद ही। नीरू के हिस्से में जो कुछ थोड़ा-बहुत आता है, वह उसे अच्छा लगता हो, ऐसा नहीं है पर उसके अंदर के रहस्य, रोमांच और गोपनीयता उसे मुग्ध करते हैं, विह्‌वल करते हैं। उसे खबरदार किया जाता है किसी को न बताने के लिए ये सब जाति चली जानेवाली तरकारी हैं। घर पर पता चल गया तो मार-मारकर अधमरा कर देंगे। नीरू इसकी गंभीरता समझता है और पूरी गोपनीयता, सतर्कता बनाए रखता है। ऐसा नहीं है कि नीरू उनके किसी काम में नहीं आता। घर से छिपाकर खटाई, इमली, छौंक लगाने की चीजें इत्यादि लाना, कभी-कभी स्कूल के बस्ते में घर से चावल चुराकर लाने का काम नीरू ही तो करता है।

फिर भी नीरू जानता है कि वह भाई जैसा कभी नहीं बन सकता। भोज के दिन कभी-कभी भाई उपासा रह जाता। सभी के खा लेने के बाद वह खाता था। कभी-कभी कछुए की तरकारी खत्म हो जाती कढ़ाई पोंछ-पोंछकर खा जाते हैं सभी, परोसता है भाई। सीधे खड़ा हो जाता है वह और मुस्कुरा देता है।

उस दिन दोपहर को नीरू घर पर था। था का मतलब सुबह के पहर भाई का रिहर्सल देखकर आने के बाद घर पर पखाल भात और मछली की भुंजड़ी खा चुका था। गरमी की छुट्टियों में स्कूल बंद। चिलचिलाती धूप में उस अखाड़ेघर में मत जाना, नीरू की मां ने खबरदार कर दिया था। चल मेरे पास लेट जा, कहकर चटाई से जरा खिसकते हुए नीरू के लिए जगह छोड़ दी मां ने। नीरू, मां का पल्लू पकड़कर आँखें मूंदकर सोने की चेष्टा कर रहा था। बप्पा बाहर बरामदे पर गीला अंगौछा

बिछाकर लेटे हुए थे।

पर नीरू की आँखों में नींद कहां? उसके मन तो भाई के रिहर्सल में था। द्रोपदी स्वयंवर खेला जाएगा। अब से आठ दिन बाद मेला है। दो रात नाटक होंगे। भाई और उनके दोस्त- भाई बने हैं अर्जुन। नीरू धीरे-धीरे उठा। मां सो गई है नींद में। उसका पल्लू धीरे से अपने बदन से हटाकर निकल आया। रसोई के सामने बिल्ली लसर-पसर कर रही थी। बात क्या है? माटी की हांड़ी में पखाल भात है। पास ही कांसे की एक बड़ी थाली में पानी और उसमें एक कांसे का कटोरा। उसे पीढ़े से ढका गया है। नीरू ने पीढ़ा उठाकर देखा मछली की भुंजड़ी थी दो बड़े-बड़े टुकड़े। पानी से जुगाड़ लगाया गया है ताकि चींटियां न लग जाएं, पीढ़ा ढका गया है जिससे कि बिल्ली न खा जाए। दो टुकड़े हैं मछली के, भाई के लिए। मां ने उसे तो एक ही टुकड़ा दिया था पखाल भात के साथ और भाई के लिए दो! पीढ़े से फिर से अच्छी तरह ढंककर, रसोई की जंजीर लगाकर दबे पांवों से बाड़ी के दरवाजे से बाहर निकल गया नीरू। उसके बाद आधा चलकर, आधा फुदकते हुए अखाड़े की ओर चल पड़ा।

बांस से बना तीर-धनुष लिए खड़े हैं भाई। पाठ पकड़े हुए हैं स्कूल के खेल-मास्टर। वे बोलते जा रहे हैं भाई दोहराते जा रहे हैं। पास सानिया भाई खड़े हैं वे बने हैं द्रोपदी। बड़े भैया की तरह वे भी हाफपैंट पहने हुए हैं और फूल के माले की तरह एक रस्सी हाथ में उठाए हुए हैं। बाकी के पार्ट करनेवाले उन्हें घेरे हुए हैं चारों ओर से। भाई संवाद दोहराते जा रहे हैं बांस का तीर-धनुष उठाते हैं सिर से ऊपर तक मुंह नीचे की ओर करके नीरू ने भीड़ में घुसकर और थोड़ा अच्छी तरह से देखने की चेष्टा की।

'ठीक नहीं हुआ। दुबारा करो।' कहते हुए खेल-मास्टर उठ आए और भाई के तीर-धनुष पकड़े हाथ को थोड़ा सीधा कर दिया और जरा ठीक से देखने की कोशिश की नीरू ने। भाई ने तीर छोड़ा ऊपर की ओर सानिया भाई ने रस्सीवाली माला डाल दी भाई के गले में। सबने ताली बजाई भाई का पार्ट खत्म हो गया। वे हाफपैंट के ऊपर कमर में लपेटे अंगौछे से मुंह पोंछते हुए कुछ झुके हुए से इस ओर आए। नीरू ने भाई की दृष्टि आकर्षित करने की चेष्टा की।

'क्या है रे?' भाई ने पूछा।

'बप्पा बुला रहे हैं खाने के लिए।'

'रुक, चलते हैं।' अनमनस्क हो उत्तर दिया भाई ने और दूसरों का अभिनय देखने लगे।

'सुनो, बप्पा छड़ी लिए बैठे हैं चबूतरे पर, आज आपकी खबर अच्छी तरह लेंगे कह रहे थे। खाया नहीं है अभी तक, जल्दी चलो।' नीरू ने जोर देकर कहा।

एक लंबी सांस छोड़ी भाई ने। वैसे भी उसका पार्ट खत्म हो गया था। 'चल' कहकर नीरू को धीरे से धकेलते हुए भीड़ से बाहर निकल आया भाई और उसके पीछे-पीछे नीरू।

रास्ते में भाई बोल-बोलकर अपना पार्ट दोहराते जा रहे थे। 'जानता है नीरू, वैष्णव पाणि के नाटक से भी अच्छे नाटक लिखूंगा मैं। ऐसे नाटक कि सभी देखते रह जाएं...' भाई अनमनस्क हो कहते जा रहे थे।

'भाई, देखो-देखो'...नीरू रूक गया। 'क्या है?' भाई ने रुककर पीछे की ओर देखा। 'वो देखो, देखो कितने बड़े-बड़े हो गए। कोई नहीं है। चलो, दो-चार तोड़ लेते हैं।' नीरू ने पेड़ में लगे आम की ओर इशारा किया। सानिया भाई की आम की बगिया से होकर गुजर रहे थे वे दोनों। भाई ने

रुककर पर की ओर देखा।

'सचमुच। ये तो काफी बड़े हो गए हैं। अभी तोड़ें? चल ठीक है, तू निगाह रख। कोई आए तो बताना। मैं थोड़े-से तोड़कर तुरंत उतर जाऊंगा।' भाई तपाक से चढ़ गया पेड़ पर। वह आसानी से चढ़ जाता है पेड़ पर, नीरू को मालूम है। बेहद विशाल था आम का पेड़। पकने लगे थे आम। महक आ रही थी। इतना ऊंचा कि सिर पूरा उठाकर देखने पर भी आँखें नहीं पहुंचती थीं। भाई झट से चढ़ गया। कितने तोड़े, नीरू जान नहीं पाया। बहुत ऊपर थे।

अभी उसी दिन की तो बात है। तालाब किनारे ताड़ के पेड़ पर चढ़ा था भाई। पके ताड़ तोड़े थे, काफी स्वादिष्ट थे। नीचे गिरकर फूट जाते थे, गंदे हो जाते थे। ढूह पर खड़ा था नीरू; भाई के कुछ दोस्त भी। पानी में मत धंसना, सांप होते हैं कहकर डराता है भाई उसे। अचानक किसी ने देखा, एक मटमैला सांप चढ़ रहा था ताड़ के पेड़ पर। वह चिल्लाया। भाई ने एक बार नीचे देखा और पानी में कूद गया। फिर तैरते हुए बाहर निकल आया। 'हंह! अरे वह तो धामण सांप है' कहते हुए बाहर निकल आया वह... भाई कितना ऊपर पर चढ़ गया है। नजर नहीं पहुंच रही। कितनी पतली डाल पर पैर रखे हुए है। हिल रही है डाल। कमर में बंधा पतला अंगौछा फूल गया है। काफी आम तोड़ चुका है। सांप से बहुत डरता है भाई। मुस्कुरा उठा नीरू।

'भाई, वो देखो, देखो, सांप चढ़ रहा है पेड़ पर नाग है रे' जोर से चिल्लाया नीरू। 'डाल तक पहुंच गया है।' कहकर फिर से मुस्कुरा दिया।

'अरे, कहां है रे!...' खूब चौंक उठने-सी आवाज सुनाई दी भाई की और अगले ही क्षण धड़ाम की आवाज आई। नीरू ने डर से आँखें मूंद लीं, कोई बम फूटा शायद! अगले ही क्षण आँखें खोलीं नीरू ने। भाई जमीन पर चित पड़ा था। उसका दाहिना पैर मुड़ गया था विपरीत दिशा में। कुछ निकट गया भाई के। भाई ऊपर की ओर मुंह किए है--मुंह खुला था--दांत दिख रहे थे और वह खुली आँखों से ताक रहा था- ऊपर आम के पेड़ को। कुछ दूरी पर पड़ा था लाल अंगोछा --कुछ आम इधर-उधर।

'भाई' बुलाया नीरू ने। कोई जवाब नहीं मिला। न जाने कैसा अद्भुत लग रहा था भाई। ध्यान से उसकी ओर देखता रहा नीरू। उसे और आश्चर्य में डालते हुए काले रंग का कुछ निकलने लगा था भाई की गर्दन के नीचे से उसके सिर के नीचे पत्थर की जोड़ से और फैलने लगा जमीन पर।

नीरू जरा भी न हिल पाकर वहीं उसी तरह खड़ा देखता रहा भाई को, मंत्रमोहित सा।

न जाने कौन-कौन कैसे वहां पहुंच गए दो-चार लोगों ने भाई को उठाया। उसके खाकी हाफपैंट का पिछला हिस्सा लाल रंग से गीला हो गया था। खून! कोई चिल्लाया। भाई का सिर नीचे की ओर लटक गया था। माथे पर पसीने में चिपके हुए थे कुछ केश।

'सिर का पिछला हिस्सा पूरा पिचक गया था। ठीक पत्थर पर गिरा है। कैसे हुआ?' कोई पूछ रहा था।

'आम तोड़ रहा था, फिसल गया।' किसी ने उत्तर दिया।

'अहा! कितना नेक लड़का था...'

जुट गए लोग वहां मानो कोई मेला लगा हो।

'राम-लक्ष्मण की तरह थे दोनों भाई रे- अहा! यह बच्चा बिना भाई के रह गया' किसी ने पीछे से नीरू का सिर सहलाते हुए कहा।

बप्पा दौड़ते हुए आ रहे थे आम के बगीचे के उस ओर से, नीरू ने सिर उठाकर देखा। एक

अद्‌भुत खौफ थी उनकी आँखों में। आस-पास पहुंचने पर वे पैर घसीटते हुए आ रहे थे, मानो दो पत्थर बंधे हों उनके पैरों में।

बप्पा की इच्छा के अनुसार मैं इंजीनियर बन गया। मैंने देखा कि मेरी नौकरी का नियुक्ति-पत्र पाने की खबर से बहुत खुश हुए थे। तुम लोग खुश हो तो मैं भी खुश हूं, मां ने मुस्कुराते हुए कहा था। नौकरी करने के लगभग तीन साल बाद मैंने छोटी बहन की शादी की। मां और बप्पा अकसर मेरे साथ ही रहते थे। कभी-कभार जरूरत पड़ने या मेरा तबादला कहीं दूर-दराज के इलाके में हो जाने पर वे गांव चले जाते थे। जब से मैं भुवनेश्वर में रह रहा हूं, मां-बप्पा मेरे ही पास हैं, अब गांव नहीं जाते। गांव में उनका ध्यान रखने वाला भी कोई नहीं था। अकेले में परेशानी ही थी। ऐसे में हमारा पूरा परिवार एक ही जगह रहने लगा। छोटी बहन के पति भी तबादले पर भुवनेश्वर आ गए। वह लगभग सात-आठ दिन में आते और मां-बप्पा से मिलकर आधे दिन रहकर चले जाते।

मेरे दोनों बेटे अपने दादा-दादी के लाड़ले थे। मुझे इस बात का दुख रह गया कि बप्पा कुछ जल्दी चले गए हर्ट अटैक से अचानक। मेरा छोटा बेटा उस समय पांच साल का था। उनके चले जाने के बाद से मेरे दोनों बेटे पोते नहीं, मेरी मां के बेटे बन गए थे। मानो मैं बड़ा और वे छोटे। गृहस्थी मेरी नहीं, मानो मेरी मां की हो। मैं और मेरी पत्नी लता भी खुश थे कि दोनों बच्चे बड़े लाड़-प्यार से पल रहे हैं। बड़े होंगे, कहीं जाएंगे अमेरिका या इंग्लैंड। दादी की बात छोड़ो, मां-बाप से ही कितनी-कितनी दूर रहते हैं आज कल के बच्चे। दादी का इतना प्यार-दुलार कहां मिलेगा? नजरों से ओझल नहीं होने देती थी दादी उन दोनों को।

रविवार की अलसायी दुपहरी को खाना खाने के बाद हम सभी ड्राइंग-रूम में बैठे थे। लता बस उठ ही रही थी चाय बनाने मेरी छोटी बहन, बहनोई, हम सबके लिए।

मां हड़बड़ाकर अंदर घुस आई ड्राइंग-रूम में। आम तौर पर दोपहर को खाने के बाद थोड़ा सो जाती है वह। लगा, किसी का हाथ पकड़कर खींचते हुए ला रही है। उसकी सफेद साड़ी का पल्लू नीचे घिसट रहा था। मैंने उचककर देखा परदे के पीछे मेरा बड़ा बेटा था वह कुछ शर्मीला है।

'अरे सुनती है कुनी, हमारे देबू को तैरने में सोने का मेडल मिला है। लाकर दिखा तो रे देबू, दिखा बुआ को, फूफा जी को। गया या नहीं।' मां ने सिर घुमाया हमारी ओर मेरी पत्नी लता की ओर 'बहू, इस लड़के को अब धूप में अकेले मत छोड़ना। नदी में तैरना आसान नहीं। कहीं किसी की नजर न लग जाए। कोई अनर्थ न हो जाए! कौन जानता है। देबू, अब से तू कहकर जाना जब चाहे तब मन की इच्छा से नहीं।' मेरा बड़ा बेटा अभी तक परदे के पीछे से निकला नहीं था।

हम सबने मुंह उठाकर मां की ओर देखा हम चारों ने। मां खूब सहज और शांत लग रही थी। ताजगीभरी भी। एक अद्‌भुत नीरवता, असहजता थी हमारे अंदर। कुछ क्षण ऐसा लगा मानो सूई गिरने से भी आवाज सुनाई देगी। हम सबके होंठ दबे हुए थे।

मेरे पंद्रह साल के बड़े बेटे, तैरने में गोल्ड मेडल पानेवाले मेरे बड़े बेटे के घर का नाम था पुपुन।

मेरा नाम इसीलिए था नीरू, नरेंद्र; क्योंकि मेरे मर चुके बड़े भाई का नाम था देवेंद्र। बप्पा, मां और दूसरे लोग उसे 'देबू' कहकर बुलाते थे।

●

गुजराती

वे लोग

मूल : हिमांशी शेलत
अनुवाद : मालिनी गौतम

शुभ प्रसंग का जैसे ही समाचार मिला 'वे लोग' सीधे वहीं पहुंच गए और महल जैसे बंगले की कंपाउंड वॉल पर टेढ़े-मेढ़े, गड़बड़-सडबड़ अक्षरों में अपने नाम लिख दिए। धनगौरी के नाम के ठीक नीचे तिरछा भानुमती लिखा, फिर प्रेमा का नाम लिखा, वह भी परेमा, उसके नजदीक में कलावती और गुलाब का नाम और सबसे आखिर में नूरी का नाम लिखा। दरवाजे पर खड़े हुए रौबदार खाकी कपड़ेवाले ने उन लोगों को थोड़ा-सा धमकाया।

कितनी मेहनत से साफ किया था सब। चार दिन से सफाई चल रही है, अभी-अभी रंग लगाया था, और तुम लोगों ने खराब कर डाला......

धनगौरी ने खी-खी करते हुए हाथ लंबा करके ताली बजाई और पलभर में चौकीदार की मूंछें नीची कर दीं। तेरा क्या जाता है भैया.....अपना धंधा चलता है तो चलने दे न! जैसा तेरा ये काम, वैसा अपना ये काम, समझा?

उनकी मजाक और कर्कश आवाज की कचड़-पचड़ में चौकीदार को फंस जाने का डर लगा। वह ज्यादा पंचायत किए बिना खुद को बचाते हुए वहां से दूर भागा और दूर से ही मजा लेने लगा।

तारीख याद रख लो... पंद्रह या सत्रह, किस दिन आना है नीचे लिख लो।

सत्रह, सत्रह, ...चलो, चलो ...रिक्शा खड़ी हुई है।

जाने से पहले झकाझक बंगले पर एक नजर डालने का उनका मन हुआ। बड़े-बड़े वृक्षों पर छोटे-छोटे रंगीन बल्बों की बेल बिछी हुई थी। संगमरमर के आकर्षक गमले सजाए जा रहे थे। नूरी ने गुलाब को कोहनी मारकर कोने में तैयार हो रहा स्टेज दिखाया। राजा-रानी के बैठने लायक कुर्सियां पड़ी हुई थीं। पीछे नृत्य करते हुए मोर का चित्र बना हुआ था, उसके पंखों में रंगीन चमकते पत्थर लगे हुए थे। मोरपींछ रंग की मखमल की बैठक थी और पैर रखने के लिए लाल रंग की चौकी।

चलो, चलो, जल्दी करो अंबानगर जाना है। वहां चौथे नंबर वाले बंगले में लडके का जन्म हुआ है.....वहां से निकलते समय ही प्रेमा ने नक्की कर लिया था कि जब यहां शादी के अवसर पर आना होगा तो तुड़ी-मुड़ी साड़ी नहीं पहननी है, पिछले साल ही नवरात्री के अवसर पर ली हुई लाल रेशमी जरी के बार्डर वाली साड़ी ही पहननी है। साथ में बूटी, चूड़ियां, नेकलेस, कंदोरा सब पहनेगी। ऐसे

बंगले पर आने का अवसर कोई बार-बार तो मिलता नहीं है। ये तो अच्छा हुआ कि धनगौरी ने देख लिया। अगर किसी दूसरी टोली की नजर पड़ जाती तो यह प्रसंग हाथ से निकल जाता।

सुनहरी कढ़ाई वाली जामुनी साड़ी में जैसे-तैसे समाई हुई एक वजनदार, गोरी- चटाक औरत ने हाथ से उन्हें रोका, फिर दो-चार जनों को एक कोने में बुलाकर सलाह करने लगी।

इस जमात को एक दिन पहले बुला लो भाईसाहब, शादी के दिन ये सब धमाल नहीं होनी चाहिए ....इन लोगों को तो बख्शीश से मतलब है, इसलिए तारीख से चिपके रहने की जरूरत नहीं है। बापा इनका काम निपटा देना शांति से नहीं तो बहुत हड़बड़ी होगी........

रेशमी कुरते की आस्तीन चढ़ाते-चढ़ाते, खुशबुदार, मस्त मूंछोंवाला एक पुरुष धनगौरी के पास आकर खडा हो गया। गुलाब ने लंबी साँस खींचकर खुशबू को अंदर भर लिया। बहुत कीमती इत्र होगा शायद।

- 'देखो तुम लोग सोलह तारीख को आ जाना। बख्शीश लेने के बाद खटपट मत करना। पहले से नक्की कर लो क्या लेना है।'

धनगौरी ने कान पकड़ते हुए जीभ बाहर निकाली।

- 'ऐसा हम नहीं करते हैं। माताजी नाराज होती हैं। बख्शीश लेंगे, वर-वधू को हमारी दुआएं मिलेंगी।'

- 'ठीक है, ठीक है, निश्चित कर लो। शादी वाले घर में कचकच नहीं होनी चाहिए।'

- 'हम तो बड़ा घर देखकर खूब आशा से आए हैं, उसी हिसाब से देना इससे ज्यादा क्या कहें।'

सोलह तारीख को पूरी मंडली सुबह-सुबह समय से पहले उपस्थित हो गयी। कंपाउंड में काम करने वाले सब लोग अचकचा गए। उन लोगों ने बहुत भभकेदार कपड़े पहने थे इसलिए या फिर मुंह पर ढ़ेर सारा पाउडर थोपा हुआ था इसलिए, कारण कुछ भी हो सकता था। नूरी और गुलाब ने नकली बालों की लंबी चोटी में रंगीन परांदा गूंथा था और काले होंठों को खूब अच्छे से लाल करने की कोशिश की थी शायद यह भी एक कारण हो सकता था अचकचाने का।

- ये लोग तो पीछे ही पड़ जाते हैं, जाने टैक्स न ले रहे हों इस तरह। शादी हो, सगाई हो, जन्म हो, देना ही पड़ता है। पता नहीं कहां से खबर पहुंच जाती है इन तक कि आ ही जाते हैं।

- अरे हमारी सोसाइटी में तो एक बार गजब हुआ। एक आदमी की मातमपुरसी में, दोपहर में धूप होने के कारण घरवालों ने कंपाउंड में कपड़ा बंधवा दिया था तो उसमे भी आ चढ़े थे ये लोग पूछते-पूछते। फिर पता नहीं शायद कपडे का रंग देखकर वापस चले गए।

-ठीक है, ठीक है। अब ये सब तो ऐसे ही चलना है। ये लोग और क्या करेंगे? चलो ठीक है तुम ही बताओ, ये लोग काम करना भी चाहें तो क्या कोई काम करने देगा इन्हें। तुम अपने ही ऑफिस में चपरासी के काम के लिए भी क्या इन लोगों को रखोगे। अरे इन लोगों को तो देना ही पड़ता है। अरे शांता बहन, 'वो चाँदी के बरतन आ गए कि नहीं ....जरा देख लो.....'

-पर भुभाई जरा काका को कहकर किसी को बाहर भेजो। ये लोग आ गए हैं। क्या नक्की हुआ है मुझे नहीं पता।

बंगले के सामने धनगौरी और मंडली जम गयी। बरसों पहले ऐसे ही किसी प्रसंग में उन लोगों ने बख्शीश के साथ क्या-क्या खाया था उसका वर्णन धनगौरी के मुंह से कितनी ही बार सुना था,

आज फिर वह अवसर आया था। अंदर की दौड़भाग में बंगले के बाहर बैठे इन लोगों पर अगर किसी की नजर जाती भी तो आँख में कचरा पड़ गया हो इस तरह।

- चलो गायेंगे। कला, चलो शुरू हो जाओ....

आँचल खोंसकर, झुमके वाली लट को पीछे फेंककर मामला कुछ जम पाता उसके पहले तो बंगले में से कुछ कोलाहल बाहर सुनाई दिया। धीरे-धीरे आवाजें तेज और तेज होती गईं। बाहर काम करने वाले आदमियों की तीखी और गहरी, फुसफुस और तेज आवाजों को भेदकर, बड़े घर की मजबूत विशालकाय दीवारों को फांदकर कुछ शब्द बाहर कंपाउंड में आ गए। फटाफट काम करते हुए हाथ इस गरमा-गरम शब्द प्रवाह में रुक गए, अब तक काम पूरा करने के लिए जल्दी-जल्दी दौड़ते पैर ठहरने लगे, सबके कान अब एक ही दिशा में लगे हुए थे।

जो कुछ भी घट रहा था उसे जैसे-तैसे समेटने के इरादे से एक बुजुर्ग बार-बार सबको सूचना दे रहे थे। हालांकि उनकी इन फीकी सूचनाओं पर किसी का ध्यान नहीं था।

- चलो, चलो, काम पूरा करो, तुम लोग अपना काम करो। शंकर कोने में खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है। ले यह उस तरफ रखा आ। अभी तो कितना काम करना बाकी है और तुम लोग....

धनगौरी, भानुमती और मंडली भी झिझककर दरवाजे पर खड़ी हो गयी थी। अच्छे काम में सौ विघ्न आते हैं, ये तो वैसा ही हुआ, उनमें से कोई बड़बड़ाया।

- ये लोग भी आज ही झगड़ने बैठे। इनको दूसरा कोई दिन नहीं मिला। अब कोई इस तरफ ध्यान नहीं देगा।

-अरे चलता रहता है यह सब तो। शादी वाले घर में छोटी-मोटी खटपट तो चलती ही रहती है। लेन-देन के मामले में मतभेद होता रहता है। अपने को उससे कोई मतलब नहीं। बख्शीश मिलते ही निकल जाएंगे।

- अरे पर कोई इस तरफ आएगा तब न....गाने लगो न, वैसे भी शुभ अवसर पर गाते नहीं हैं अपन लोग?

अंदर की गर्मी धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी। उग्र बातचीत में एक स्त्री का क्रोधित स्वर और उतना ही प्रचंड पुरुष स्वर सुनाई दे रहा था। मामला ज्वलंत था इसके अलावा कुछ भी पता नहीं चल रहा था। आवाजें तेज होती जा रहीं थीं और अब बाहर की तरफ आ रही थीं।

'तुम लोग इस तरह माथे पर क्यों खड़े हुए हो, जरा एक तरफ हटो, कुछ समझते ही नहीं न।'

एक नौकर जैसा दिखाई देता कोई आदमी धमका गया इसलिए धनगौरी ने नाक पर उंगली रखकर इशारे से सबको जरा पीछे खदेड़ा। इतने में तो सुंदर गमलों से सुशोभित संगमरमर के ओटले पर जैसे सुलगते अंगारे गिरे।

- मैंने तुझे ऐसा नहीं समझा था। पंद्रह दिन से यहां पड़े हुए हो वह भी उसके लिए, यह मुझे नहीं पता था। तुम्हारे नाटक अब नहीं चलने लूंगी। तुम्हें तो जैसे छूट ही मिल गयी है। क्या समझते हो तुम मुझे हूं?

- 'जा-जा तुझे कौन पढ़ा-लिखा कहेगा। बिलकुल गंवार है। शक करते-करते ही मर जाएगी। किसी से बात कर लूं, इतना भर तो सहन नहीं कर सकती। अपना पालतू कुत्ता बना देना है मुझे?'

- 'कुत्ता तो फिर भी अच्छा होता है। मुंह मत खुलवाओ मेरा।'

- 'अरे भाई तुम दोनों के हाथ जोड़ता हूं। इस तरह भीड़ इकट्ठी कर रहे हो क्या यह अच्छी बात है। अब भी नादान हो क्या तुम लोग? आराम से बात करो न, इस तरह काटने को दौड़ रहे हो क्या अच्छा लगता है? आज अगर बापजी होते तो उन्हें कैसा लगता, यह भी कभी सोचा है?'

-'अरे यार अब छोडो भी। चलो बहुत काम बाकी है। अभी तो आइसक्रीम वाले के यहां भी जाना है। ये क्या कचकच करने बैठ गए हो तुम दोनों। चलो भाभी आप भी जाने दो अब।'

प्रेमा ने भानुमती के कंधे पर हाथ दबाया। उसकी उंगलियां कांप रहीं थीं। कलावती को मजा आ रहा था। वह कमर पर हाथ रखकर और पाली पर पैर टिकाकर बड़ी दिलचस्पी से सामने जो कुछ भी चल रहा था उस बात के सिरे ढूंढ़ने के लिए तुक्के लगाने लगी।

- 'आज नहीं छोडूंगी इसको। आज सब सगे-संबंधियों के बीच में फैसला हो जाने दो। इस पार या उस पार। अब पता चला कि बात-बात पर शादी की तैयारी के बहाने दौड़-दौड़कर यहां क्यों चला आता था ....'

-'भाभी प्लीज जरा धीरे बोलो...सब सुन रहे हैं....'

- 'सुनने दो। मैंने कोई चोरी नहीं की है। चोर तो इसके पेट में है। मुझे धीरे बोलने को कह रहे हो ...इसे कहो न आवाज नीची रखने के लिए मेरा ही दोष दिखाई देता है तुम लोगों को।'

- 'बहन बहुत हुआ, अब अंदर चलो....'

- 'भाभी....देखो तो आपकी नयी साड़ी आ गयी है .....जरा अंदर तो आओ....'

कमर में पल्ला खोंसकर, माथे पर गिरे हुए बालों को पीठ पर फैलाकर वहीं बैठ गयी उस औरत को देखकर धनगौरी ने जोर से साँस छोड़ी। अब तो हो गया...ये अंदर नहीं जाएगी और मामला खत्म नहीं होगा। अब बख्शीश मिलने में भी देर होगी। अभी तो दूसरी दो जगहों पर जाना भी बाकी है।

वह आदमी अंदर जा ही रहा था कि उस औरत ने झपट्टे से उसके कुरते की किनारी पकड़ा ली।

- 'डरपोक अंदर कहां जा रहा है...ताकत हो तो जवाब दे...'

'अरे-अरे यह क्या कर रही है? कुछ तो होश रख...'

'होश-वोश रहने दे...एक तो सबको फंसाता है...तेरी पोल-पट्टी कोई दूसरा थोड़े न जानता है? मुझे सब पता है ...कह दूं?'

-'प्लीज...जया....ये फजीहत ठीक नहीं ...इतने आदमियों के सामने...'

- 'अच्छा-खराब तू मुझे सिखाएगा हूं? मुझसे शादी करते समय यह सब सोचना था और इन सब सहेलियों को ले कर घूमता रहता है उस समय क्यों नहीं सोचता....उन सबको थोड़े पता है कि तुम....तुम तो...।

पुरुष ने फट से उस स्त्री के होठों पर अपना हाथ दबा दिया, यह धनगौरी को जरा-जरा-सा दिखाई दिया। औरत भयानक जुनून से उसका हाथ पकड़कर लगभग चिल्लाने ही लगी। आदमी ने गुस्से में, बेचैनी से, लाचारी से औरत के बाल इतनी जोर से खींचे कि वह झुक गयी और उसके मुंह से चीख निकल गयी।

- 'अरे-अरे, काकी........देखो तो।'

पुरुष को खींचकर ले जाने के लिए कुछ हाथ प्रयास कर रहे थे। औरत तो अब खुल्ले गले से चीखे ही जा रही थी।

पति होने का रौब दिखा रहे हो तुम मुझे... तुम? साला नामर्द... तू कैसा मर्द है यह पता है मुझे ... आया बड़ा मरद... मुझ पर रौब जमाने आया है, मुझ पर? बता दूं इन सबको कि कैसे मरद हो...

जाने चक्कर आ गए हों इस तरह पुरुष देखते ही देखते अंदर चला गया। औरत थोड़ी देर तक आँखों पर साड़ी ढंककर बाहर ही बैठी रही। फिर दो-चार लोग समझा- बुझा कर उसे भी अंदर ले गए। पूरा दृश्य गोल-गोल गति से घूमकर अब स्थिर हो रहा था।

प्रेमा की साँस अब सामान्य होने लगी। भानुमती ने माथे पर साड़ी फेरी। कंपाउंड में बंद पडा काम फिर से शुरू हो गया। बुजुर्ग अंदर जाने लगे, इसलिए भानुमती ने भी चौकीदार को इशारा करके याद दिलवाया। कब से खड़े हुए थे वे लोग और समय भी कितना हो चुका था।

चौकीदार ने पास ही में खड़े किसी को अंदर भेजा। उसने अंदर जाकर किससे क्या कहा यह तो पता नहीं पर धनगौरी ने देखा कि वही... हां वही आदमी जिसे अभी-अभी अंदर ले गए थे- झटके से माथे के बाल ठीक करते हुए, कुरते को व्यवस्थित करते हुए उनकी तरफ आ रहा था। शायद आगे वाले कमरे में ही बैठा होगा। शायद यह पैसे देने का काम उसे ही सौंपा गया होगा। कौन जाने, पर वही आदमी बाहर आया यह पक्का था। थोड़ा पास आकर, नए-निकोर दिखते दरवाजे के उस तरफ से ही उसने जोर से कहा-

- 'आज कुछ नहीं मिलेगा। तुम लोग तो टाइम-वाइम देखे बिना बस आ ही जाते हो। बस मांगना यानी मांगना, और कुछ देखते ही नहीं हो। आज कुछ नहीं मिलेगा, शादी के दिन आना।'

- 'पर हमें तो सेठ ने एक दिन पहले आने को कहा था।'

- 'किस सेठ ने, कब कहा था? मुझे नहीं पता किस सेठ ने कहा था.... मैं कह रहा हूं कि आज नहीं मिलेगा तो नहीं मिलेगा। चलो भागो यहां से -...अत्याचार करते हो ...हमारे पैसों पर जी कर जैसे उपकार करते हो...चलो-चलो...निकलो यहां से....आ गए निठल्ले...।'

गुलाब अपने असली रंग में कुछ बोलने और ताली बजाने की तैयारी में दिखी, पर धनगौरी ने उसका हाथ खींच लिया।

चल यहां से। दूसरी जगह जाना है।

दूर खड़ी रिक्शा में वे लोग चुपचाप समा गए।

-आज तो रिक्शा भी साली माथे पड़ी

प्रेमा सच में चिढ़ गयी

अपने को तो लगा था कि जाने क्या खजाना दे देंगे ये बड़े लोग...बंगला देखकर ही अपन लोग खुश हो गए...

चलो कुछ नहीं मुफ्त में तमाशा तो देखा न। धनगौरी ने ब्लाउज की जेब में पडी हुई एक बीड़ी ढूंढ ली। कब से तलब लगी थी।

रिक्शा में से तिरछी गर्दन करके प्रेमा ने पीछे देखा। बंगला सच में बहुत सुंदर था और वहीं दरवाजे के पीछे हाथ बांधकर खड़ा हुआ वह पुरुष दिखा, तना हुआ मर्दाने अंदाज में।

●

पंजाबी

तुम नहीं समझ सकते

मूल : जिन्दर

अनुवाद : सुभाष नीरव

'तौबा! इतनी गरमी!' बस से उतरते ही साथ वाली सवारी ने कहा। मैं चारों तरफ दृष्टि घुमाता हूं। सड़क सुनसान लगती है। मैं शेड के नीचे आ खड़ा होता हूं। कुछ लोग बस की प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक तरफ पैरों के बल बैठा बुजुर्ग अपने साथी से कह रहा है, 'इस बार तो बारिश में बहुत देर हो गई। सारा सावन निकल चला। बारिश की एक बूंद नहीं पड़ी। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। अगर और दो हफ्तों में पानी न बरसा तो बोरों में बचा-खुचा पानी भी खत्म हो जाएगा। ऊपर से बिजली का कट चल रहा है। तेल की दो केनियों के लिए आधा-आधा दिन पेट्रोल पंप पर खड़ा होना पड़ता है। रब भी हमारे सब्र का इम्तिहान लेता है। बूढ़ी औरतों और बच्चियों ने सौ सौ उपाय किए, पर आसमान में रत्ती भर भी काले बादल नहीं छाए...।'

नलके पर से पानी पीते हुए एक विचार मन में आता है कि रिक्शा कर लूं। एक हाथ में रोटी वाला डिब्बा है, दूसरे हाथ में सामान से मुंह तक भरा हुआ थैला। भार अधिक है। डेरा काफी दूर पड़ता है। अड्डे से दो मील तो अवश्य होगा। वापसी पर तो निभ जाता है। कभी जोगिंदर ट्रैक्टर पर छोड़ जाता है, कभी गोरखा साइकिल पर। मोड़ मुड़ते हुए, मैं फिर रुक जाता हूं। आगे ढलान शुरू होकर धूल भरा कच्चा राह है। असमंजस में फंस जाता हूं कि रिक्शा लूं या नहीं। रिक्शावाला पांच-सात से कम में नहीं मानेगा। पहले भी तो मैं पैदल चलकर जाता रहा हूं। आज गरमी कुछ ज्यादा ही लग रही है। चित्त घबरा रहा है। फिर मन बदल जाता है, यह सोचकर कि बाबू कहेंगे, 'तुझे हम बेटों की तरह समझते हैं। तू भी बेटों की तरह रहा कर। बता, कभी तेरे साथ फर्क किया है?' मुझे बाबुओं का कहा हमेशा ही सच लगा है। वह मेरी लिखी डे-बुक चैक नहीं करते। न ही किसी किस्म की कोई निशानी लगाते हैं। मैं जितना चाहे खर्चा डाल दूं, उन्होंने कभी चूं नहीं की। मैंने दो-तीन बार कहा था तो बड़े बाबू का जवाब था, 'बता, तू कोई गैर आदमी है? मुझे तेरे पर एतबार है। मैं जानता हूं, तू जगीरराम का लड़का है। मैं कभी अपने नौकर को नौकर नहीं समझता। न ही चाहता हूं कि वो भी अपने आपको नौकर समझे। फिर तू तो मेरे बेटों जैसा है।'

सड़क पार करते हुए याद आता है। कल शाम वापसी पर जोगिंदर ने कहा था, 'गोरखे को दूध और बीड़ी के दो बंडल दे देना।'

मैंने उसकी बात अनसुनी कर दी थी। प्रत्युत्तर में कोई हुंकारा नहीं भरा था। सामान्य से कुछ

ऊंची आवाज में उसने फिर कहा था, 'याद है न? भूल न जाना। कल वाली बात न हो। उजाड़ में बीड़ियों से वक्त अच्छा गुजर जाता है। तुम भी एक रात यहां बिताकर देखो। पता चल जाएगा, किस भाव बिकती है। यह बेईं (नदी) की तरफ से अजीब-अजीब सी आवाजें आती हैं।' दूध के दो पैकेट मैंने ले दिए थे, पर बीड़ी के बंडल नहीं भेजे थे। यह जानते हुए भी कि वह सारी रात मुझे गालियां बकेगा। अकसर वह कुछ न कुछ मांगता ही रहता है। उसकी कौन-कौन सी जरूरत पूरी करूं? एक पूरी होती है तो झट दूसरी की फरमाइश कर देता है। अब यह उसकी आदत बन गई है। अभाव मन में बेसब्रापन ही पैदा करते हैं।

वापस लौटकर मैं बीड़ी के दो बंडल लेता हूं। शीशम की छांव तले खड़े होकर डेरे की तरफ जाती राह की ओर देखता हूं। देखता नहीं, घूरता हूं। शायद कोई ट्रैक्टर ही मिल जाए या साइकिल, गड्डा या कुछ और ही जाने वाला साधन। कभी कभी बच्चों की टोली मिल जाती है। इनमें से कुछ नीचे पड़ने वाली कालोनी में से होते हैं। कुछ आगे पड़ने वाले डेरों में से। कच्चा राह आगे पड़ने वाले डेरों तक जाता है। कालोनी के पास से होता हुआ यह राह आबे की चढ़ाई चढ़कर तीन हिस्सों में बंट जाता है। इससे आगे टीले शुरू हो जाते हैं।

पूरब की तेज बहती हवा ने शरीर को झुलसा कर रख दिया है। बंदा तो क्या कोई परिंदा भी नहीं दिखाई देता। मेरे सामने उठ रहे बवंडरों में रेत उड़ रही है। छोटे बाबू आकाशदीप की नसीहतें और हिदायतें याद आती हैं 'भाजी, ध्यान से देखना कितनी जगह समतल हुई। दूसरी तरफ के टीले को अभी हाथ लगाया कि नहीं। गोरखे को समझाओ कि मेड़ें पक्की मिट्‌टी की बनाए। एक दिन ट्राली पर पक्की मिट्‌टी ढो लें। जोगिंदर से कहना, जल्दी-जल्दी काम निबटाए। मोटरें तो लग गईं, पर अभी तक कुओं पर टीप नहीं हुई। लौटते वक्त सारे सामान पर नजर जरूर मार आया करो।. .. समझ लो, हम नहीं गए, बस हमारे परिवार का कोई सदस्य गया। बड़े बाबूजी तो तुम्हें अपना चौथा बेटा मानते हैं।'

'बाबू जी, ठंडा पानी पिलाऊं?' गोरखा पूछता है। मैं आड़ू के वृक्षों के नीचे बिछी चारपाई पर सिरहाने की तरफ बैठ जाता हूं। पैताने की ओर जोगिंदर मुंह फुलाए पड़ा है। वह काफी गुस्से में लगता है। मैं डर जाता हूं कि पता नहीं वह क्या कह देगा। अधिक देर वह किसी बात को हजम नहीं कर सकता। वह मेरी तरफ देखता है। उठकर बैठ जाता है। गर्दन झुकाकर पूछता है, 'बाबू जी, कितने बज गए?'

'ढाई बज गए हैं।' घड़ी देखकर बताता हूं। पानी पीने से कुछ राहत मिली है। आँखों पर पानी के छींटे मारते ही आँखों में उभरी चिपचिपाहट कुछ कम हुई है।

दाढ़ी में उंगलियों से खाज करता हुआ वह शुरू हो जाता है, 'मुझे बताओ, यह वक्त रोटी का होता है? चाय से कहीं पेट भरता है? सूखी चाय। न यहां कुछ खाने को मिलता है, न पीने को। रेता फांकने से तो रहे। भूखे पेट काम होता है?' फिर पेट पर से कमीज उठाता है, 'देखो, पेट तो सिकुड़ गया इनका काम संवारते-संवारते। न कोई काम का वक्त, न खाने का। न पीने का, न.. .। बेवक्त रोटी खाकर बंदा बीमार न होगा तो और क्या होगा।'

चुप रहता हूं। जानता हूं। अब शुरू हो गया है तो बोलता ही जाएगा- 'लाला लोग... आदमी को आदमी समझते ही नहीं। हम तो मशीन से भी गए गुजरे हैं। इन्हें तो काम प्यारा है। सिर्फ काम।

आदमी चाहे मर जाए, इनका काम होना चाहिए। वह भी समय से। स्कीमें तो ये अमरीका की तरह बनाए जाएंगे, पर तनख्वाह देते समय मिरासियों की तरह पोटली और ज्यादा कस लेते हैं। पिछली बार जब दिल्ली गया था तो खुद कोठी में एक बार घुसे तो फिर सवेर को मत्थे लगे। मुझे घुसा दिया ढारे-से में। न खाट, न बिस्तरा। ऐसी ठंड लगी कि देह दुबारा ठीक नहीं हुई। जब टाइम से दवाई नहीं मिलेगी, शरीर भी क्या करेगा। खुद को तो जुकाम भी होने वाला हो तो झट डॉक्टर को फोन करते थे। पिछले दिनों आकाशदीप की लड़की को चींटी काट गई थी। एक छोटा-सा धप्पड़ पड़ गया था। सारे टब्बर में हायतौबा मच गई थी। टायर बदलते वक्त मेरे हाथ में कितना बड़ा चीरा आ गया था। बड़े बाबू ने इतना कहकर बात खत्म कर दी 'ले, यह भी कोई बात है। डिरैवरों को कोई फर्क नहीं पड़ा करता। लीर से कसकर बांध ले। ऊपर ब्रेक आयल की दो बूंदें डाल ले...।'

थैले में से बीड़ी के बंडल निकाल कर मैं उसके आगे रख देता हूं।

वह बंडलों को झपट्टा मारकर उठाता है। एक बंडल को जेब में डालने की करता है। दूसरा खोलकर साफे के छोर से माचिस की डिब्बी निकालता है। जल्दी-जल्दी कश खींचता है मानो उसके अंदर कोई आग सुलग रही हो और बीड़ी के धुएं से इस आग को लपटों का रूप देना चाहता हो।

मैं पूछता हूं 'रात को बेलों को पानी लग गया था कि नहीं?'

आगे जाकर देखने की हिम्मत नहीं हो रही है। मोटर से चारेक खेत हटकर नीचे जोते हुए खेत में बेलें बो रखी थीं। मैं कपड़े उतारकर चारपाई के सिरहाने की ओर टांग देता हूं। पसीने से भीगी हुई बनियान पानी में से निकालता हूं। उफ गरमी! लगता था मानो शरीर में बचे हुए पानी को जल्दी ही चूस लेगी।

माथे पर त्यौरियों का जाला सघन करता हुआ वह बताता है, 'अगर उन्हें एतबार नहीं आता तो आप आकर देख लिया करें। बातें करनी आसान होती हैं। काम करना कठिन। उनसे कोई पूछने वाला हो कि रेतीली जमीन को पानी लगाना कोई आसान होता है? वह भी पहली बार। पानी लगाते हैं तो कहीं से आड़ टूट जाती है, कहीं से रोक। एक बार टूट जाए तो दौड़कर मोटर बंद करो। तब तक पानी दूर तक फैला होता है। निकास मर जाता है। फिर चलाओ। ज्यादा रंडी रोना तो यही रहता है। उन्हें बताना, अभी पहला साल है। जमीन भी समतल होते होते होगी और पानी भी लगते-लगते लगेगा। ऊपर से अँधेरी रातें। कितनी बार दुहाई दे चुका हूं कि बैटरी में सैल ही डलवा दो। थोड़ा-सा आसरा हो जाएगा। पर उन्हें क्या? यह तो मैं जानता हूं या ये गोरखा। दो बार सांप के काटने से कुदरती बचा हूं। फनिअर सांप। किस्मत अच्छी थी मेरी और मेरे बच्चों की। शायद पिछले करमों का कोई लेन-देन काम आया था। नहीं तो अब तक हम तो चले थे। एक तो आज मारा है। बड़ी लाठी जितना। ससुरा ट्रैक्टर के टायरों पर चढ़ने को फिरता था। दस मिनट अगले टायर के नीचे दिए रखा। मुश्किल से मारा। कहो तो दिखाऊं। अभी भी झाड़ी के पास पड़ा होगा।'

'नहीं।'

'अपने बाबुओं के लिए ले जाओ। उन्हें पता चलेगा कि यहां कैसे रहा जाता है।'

'छोड़ इन बातों को। तू यह बता कि कितने क्यारे भरे। मोटर...।'

'कौन कंजर कहता है मोटर नहीं चलाई। दस बजे जाकर बिजली आई। बीच में दो बार चली गई। गोरखा तो हिम्मत छोड़ बैठा था। झूठ है तो पूछ लो वो सामने बैठा है। कहता था- हम तो

दिन में काम कर सकता है। मैं ही रह गया इनकी बेगारी करने को। हम खाली तो नहीं बैठे रहते। तुम भी मेरे पर शक करते रहते हो। करे जाओ। अपने घर में बैठा हर कोई शेर होता है। मैं बेगाने इलाके में से आया हूं। न कोई जानता है, न पहचानता है। न आसपास कोई रिश्तेदार। मेरी कौन सुनने वाला?' प्रायः उसके पास अंतिम हथियार यही होता है।

'भाऊ, यह बात तो नहीं।'

मैं उसका नाम नहीं लेता। वह मेरे से उम्र में काफी बड़ा है इसलिए 'भाऊ' कहता हूं।

'और क्या बात है?'

'बता, मैंने कभी तेरे साथ फर्क किया?'

इतनी सी बात से वह कुछ ठंडा पड़ जाता है। उसका पारा ठीक जगह पर आ टिकता है। वह कहता है- 'मैंने भी तुम्हें कभी बाबूजी के बग़ैर नहीं बुलाया।'

मैं जानता हूं कि वह मजबूर है। जब बोलता है तो आपे से बाहर हो जाता है। मेरे आगे भी। बाबुओं के आगे भी। गोरखे के साथ तो बिना गाली के बात नहीं करता। जैसे सारा नजला गोरखे पर झाड़ना हो। बाकी लोगों के आगे तो उसे झुकना पड़ता है। गोरखे को हांक मारता है- 'अपनी मां के खसम, कहां मर गया। तुझे कभी अक्ल नहीं आएगी। साले मेरे, बच्चे पैदा करने की करते हैं। फिर चल मेरे भाई पंजाब को। इनके लिए तो यही दुबई, यही विलैत...।'

'बाबूजी- मेरी दवाई।' उसे एकदम याद आता है। खांसते-खांसते उसका सिर घुटनों से लग जाता है। उसका ऊपर का सांस ऊपर और नीचे का नीचे रह जाता है। मैं गोरखे को पानी का गिलास लाने के लिए इशारा करता हूं। उसे लिटा देता हूं। लगता है कि उसकी सफेद-सफेद पुतलियां अभी बाहर आ जाएंगी। उसके दोनों हाथ वैसे के वैसे बेजान हुए पड़े हैं। मैं आवाज देता हूं, 'भाऊ...भाऊ...!' खांसी के साथ ही उसका सांस लौटता है। पानी पीकर वह पहले वाली स्थिति में आ जाता है। खाट पर से उतरकर वह पाए से पीठ टिकाकर नीचे बैठ जाता है।

जब वह यहां आया था तो उसकी सेहत अच्छी-भली थी। बस, कुछ ही दिनों में ही दाढ़ी आधी से ज्यादा सफेद हो गई थी। मुंह पर कालिमा उभर आई थी। आँखें अंदर धंसनी शुरू हो गई थीं।

'बाबूजी, इनकी दवाई नहीं लाए?' अब गोरखा पूछता है।

एक बार फिर फंस जाता हूं। बताऊं कि न बताऊं।

'याद नहीं रहा।' मौके की नजाकत को देखते हुए झूठ ही बोलता हूं।

'सच...।' वह अचंभे से पूछता है। मानो मेरी बात पर उसे विश्वास न हुआ हो।

'आज बात करूंगा बाबू आकाशदीप से।' हाल फिलहाल मैं टाल जाता हूं।

'तुम पैसे दे दो, खुद ले आऊंगा।'

उसके कहे का जवाब मेरे पास नहीं है। दवाई ले दूं तो आकाशदीप कहेगा- 'इस तरह तो वह सिर चढ़ जाएगा। इसे पहले ही कितनी सहूलियतें दी हुई हैं। दो वक्त रोटी। चाय-पानी का खर्चा। अब दवाई भी हम लेकर दें। कल कुछ और मांग लेगा। तुम चुप रहा करो। खुद एक-दो बार मांगकर हट जाएगा। बहुत ही पीछे पड़ जाए तो कह देना- मेरे से बात करे।'

'बाबू जी, रात में फिर जोगिंदर...।' जोगिंदर ट्रैक्टर पर बैठकर निचले खेत की ओर चला गया है। गोरखा आसपास देखते हुए अपनी गुप्त रिपोर्ट देता है।

'क्या?'

'उसने बोला था।'

'क्या बोला था? रात को?'

'रात को जोगिंदर ने साथ वाले सरदार के खेतों में तीन-चार घंटे ट्रैक्टर चलाया था।'

'अच्छा! और?'

'मुझे बोला था, किसी को मत बताना। नहीं तो मारकर जमीन में गाड़ दूंगा।'

'और उसने क्या किया?'

'रात को देर तक ट्रैक्टर चलाता रहा। मेरे साथ पानी भी देखता रहा। सुबह कुएं में भी काम किया। बाबू जी, वैसे वह बहुत काम करता है। और वो भी मन लगाकर।'

जोगिंदर से पहले मैं इस फर्म में आया था। बाबुओं ने उसे कार ड्राइवर रखा था। इससे पहले वह जालंधर में एक दवाइयां बनाने वाली फैक्ट्री में लगा हुआ था। उसने स्वयं ही बताया था, 'बंबई बांद्रा फैक्ट्री में कंपनी ड्राइवर था। लिमिटिड फर्म। टाइम से साहब को ले जाना, टाइम से ले आना। वहां बड़ी मौजें थीं। फर्म का क्वार्टर था। फर्म की कैंटीन। उन्हीं दिनों बापू का स्वर्गवास हो गया तो मुझे गांव आना पड़ा। बाकी सभी भाई घर से बाहर ही नौकरियों पर लगे हुए थे। मुझे कहने लगे, तू यहीं डिरैवरी कर ले। पीछे किसी न किसी को रहना पड़ेगा। फिर क्या था, एक बार अगर पैर उखड़ जाएं, फिर आदमी कहां संभल पाता है।'

उसके काम से मालिक खुश थे। वह तड़के ही उठ जाता था। मारूति कार को धोता था। एंबैसडर पर कपड़ा मारता था। राजदूत मोटरसाइकिल, बजाज स्कूटरों को चमकाकर रखता था।

कोई टोकता तो वह जवाब दिया करता था- 'मुझसे खाली नहीं रहा जाता। गाड़ियों पर धूल जमीं हो, फिर कहीं अच्छी लगती हैं। किसी और से न सही, पर मुझसे नहीं देखा जाता। देखो, साफ-सुथरी कितनी अच्छी लगती हैं। पहले तो कबूतरों की बीठों से भरी पड़ी होती थीं।'

खाली तो उससे बैठा ही नहीं जाता था। जिस दिन कोई कार कहीं न जाती तो वह कोठी के साथ लगने वाली हवेली में घुसा रहता था। भैंसों को नहलाता। चारा डालता था। मशीन के पास सफाई करता था। बाबा जी के पास आ बैठता था। उनकी टांगों की मालिश करता था। माताजी किसी काम के लिए हांक मारते तो वह झट हाजिर हो जाता था। फिर चाहे मंदिर जाना होता या रोटरी क्लब की मीटिंग के कार्ड बांटने होते या किसी अफसर के घर मिठाई का डिब्बा पहुंचाना होता या कोई संदेश, आगे से वह 'न' नहीं करता था। 'न' शब्द उसके मुंह से कभी निकला नहीं था।

शाम के वक्त वह मेरे पास आ बैठता था। चाय पीने को उसका मन करता तो झिझकते-झिझकते पूछता था- 'बाबूजी, चाय के लिए कह आऊं?'

'मुझे क्यों पूछता है?'

'तुम मालिक हो?'

'मालिक तो अंदर बैठे हैं।'

'पर हमारे मालिक तो तुम ही हो। हमारे लिए तो तुम बड़े हो।'

'मैं कैसे बड़ा हुआ? उम्र भी तेरे से कम है, तनख्वाह भी कम।'

'पर रुतबा बड़ा है।'

घड़ी की तरफ देखता हूं। छह बजने वाले हैं। उफ! इतनी गरमी! गरमी तो कम होने का नाम ही लेती नजर नहीं आ रही। गोरखे से जोगिंदर को बुलाने के लिए कहता हूं।

जोगिंदर निचले खेत को जोत रहा है। सिर पर लपेटे साफे के एक सिरे से उसका नाक ढका हुआ है। वह लिट नीचे गिराता है। रेत का एक गुबार उठता है। पूरब की हवा के संग चारों तरफ बिखर जाता है। वह बांह से माथे पर आया पसीना पोंछता है। किसी फिल्म का घटिया-सा गीत गा रहा है। अपनी जिंदगी से मेल खाता हुआ। कार ड्राइवर था, अब उसके हाथ में ट्रैक्टर की लिट आ गई है। कभी लिट नीचे गिरा दी और कभी ऊपर उठा ली। सात सौ रुपया महीना तनख्वाह मिलती है। सात सौ वह घर दे आता है। महीने बाद घर जाता है। बढ़ती जा रही जरूरतों की गांठ सिर पर उठा इधर चल पड़ता है। एक जरूरत पूरी होती है तो दूसरी सिर उठा लेती है। यह सिलसिला खत्म होने पर नहीं आ रहा है। कई बार यहां से हटने की स्कीमें बनाता है, पर अभी तक वह फैसला टालता आ रहा है।

पिछले हफ्ते दो दिनों का कहकर गया, वह पांच दिनों के बाद लौटा था। उसका चेहरा उतरा हुआ था। अधरंग हुए कुत्ते की तरह अपना आपको घसीटते हुए वह बैंच पर गिर ही पड़ा था। इस बार उसने कपड़े पहले वाले ही पहन रखे थे। यहां से भी ज्यादा मैले। पहले जब वह घर जाता था तो वह दाढ़ी रंगता था। फिक्सो लगाता था।

टंकी में से पानी का गिलास पीकर उसने स्वयं को ढीला छोड़ दिया था। आँखें मूंदकर दीवार से पीठ लगा ली थी।

'भाऊ क्या बात हो गई?' मैंने पूछा था। खोखे वाले को दो उंगलियां खड़ी करके चाय के लिए इशारा किया था।

'कुछ नहीं जी।'

'कुछ तो है।'

'चित्त ठीक नहीं।'

'घर में कुशल था?'

'छोटा ठीक नहीं।'

'क्या हो गया?'

'पीलिया।' मरी-सी आवाज में उसने बताया था।

'यह तो खतरनाक बीमारी...।'

'डॉक्टर भी...।'

गेट की तरफ से आकाशदीप को आता देख उसने बात बीच में ही छोड़ दी थी। उठकर उसने 'नमस्ते' की थी। नमस्ते को बीच में ही काटकर आकाशदीप गुस्से में बोला था- 'जोगिंदर, तेरी यह आदत मुझे पसंद नहीं।'

'मुझे पता है।'

'कुछ हमारा भी सोच लिया कर।'

'मेरा बेटा ठीक नहीं था जी।'

'अच्छा-अच्छा। चल फिर मलसियों को चला जा। बहुत काम करने वाले पड़े हैं। बस, अभी

चला जा। तुझे शाहकोट वाली बस मिल जाएगी। मैं भी आऊंगा मलसियों वाले भट्ठों की तरफ चक्कर मारकर।'

जोगिंदर पैरों में कैंची की चप्पलें ठूंसने लग पड़ा था।

नए ट्रैक्टर का उद्घाटन उसने ही किया था। कारें कितने ही दिन कहीं गई ही नहीं थीं। बड़े बाऊजी बीमार हो गए थे।

आकाशदीप ने चाबी उसकी तरफ उछालकर कहा था- 'चल भई जोगिंदर, अब से जमीन जोत।' आगे उसने क्या जवाब देना था। ट्रैक्टर स्टार्ट किया था। मालिकों की नई खरीदी जमीन की ओर चला गया था।

अब कार ड्राइवर से वह ट्रैक्टर ड्राइवर बन गया था। जब मालिकों को जरूरत पड़ती थी तो वे उसे कार पर लगा देते थे नहीं तो ट्रैक्टर होता।

अब तो वह डेरे पर ही रहने लग पड़ा था।

पता नहीं एक दिन उसने कहां से शराब पी ली थी। पैसे उसके पास नहीं थे। बीड़ियां मैंने लेकर दी थीं। आकाशदीप ने बताया था- 'जोगिंदर ने आज तेल निकालकर बेचा होगा। शराब पी थी। ट्रैक्टर कहीं मार कर सामने वाली लाइट तोड़ दी। मालूम है, आगे से क्या कहता था- यह तो लाइट ही टूटी, आदमी भी मर सकता था।'

सारे परिवार ने उसे चीलों की भांति घेर रखा था।

बड़े बाऊजी कह रहे थे- 'इसने जानबूझकर तोड़ी है।'

आकाशदीप कह रहा था- 'ऐसे कैसे टूट सकती है?'

'यह तो धूप में तिड़ककर टूटी।' जोगिंदर बार बार यही सफाई देता रहा था।

मेरे समझाने पर जोगिंदर ने माफी मांग ली थी।

रात में जब मैं अपने घर जा रहा था तो उसने मुझे रोककर पूछा था- 'एक बात बताओ। सच बोलना पाप होता है?'

'नहीं।'

'फिर जब मैं सच बात बता रहा था कि शीशा गरम होकर तिड़क गया तो इन्होंने एतबार नहीं किया। एक दिन मेरे साथ ट्रैक्टर पर बैठकर देखें कि जमीन कैसे गरम भभका छोड़ती है।'

'पर शराब।'

'महितपुरी वालों ने नया बोर उठाया था- उन्होंने पिलाई थी।'

अब जाने से पहले आकाशदीप मुझे ताकीद करता था- 'देखना, जोगिंदर कहीं हेराफेरी न किए जाए।'

मैं कह बैठता था- 'अगर उस पर एतबार नहीं रहा तो हटा क्यों नहीं देते?'

'हटाना नहीं इसे। बहुत कारीगर बंदा है। जिस पर मर्जी हो उस काम पर लगा दो। मिस्त्री है। राज मिस्त्री आजकल सौ से कम दिहाड़ी नहीं लेते और काम भी अपनी मर्जी से करते हैं। इसके रोज के पच्चीस-तीस बनते हैं। पांच-दस की रोटी खा जाता होगा। दो-चार और ऊपर के खर्चे के लगा लो। कोई बुरा नहीं। इसने कमरों मे टीप की। अब कुंओं की करेगा। ट्रैक्टर चलाएगा, पानी लगाएगा। इतने पैसों में सौदा बुरा नहीं।'

कपड़े उतारकर मैं घड़े में से पानी का गिलास पीता हूं। गोरखा आड़ के दोनों तरफ मिट्टी लगा रहा है। थैले में खाली बर्तन डालकर मैं जोगिंदर की तरफ देखता हूं। उसने पहले ही मेरी तरफ देख लिया है। खेत जोतना रोककर वह ट्रैक्टर इधर मोड़ लेता है। पास आकर पूछता है- 'फिर तैयारियां जी।'

'हां, अब चलें।'

'चलो, मैं छोड़ आता हूं। कहां धूप में जाओगे।' सिर पर से साफा उतार कर वह पैरों पर पड़ी रेता को झाड़ता है। मेरे हाथ से थैला पकड़कर पैरों के पास रखता हुआ पूछता है- 'देख लो, कोई चीज तो नहीं रह गई।'

उसकी तरफ देखकर मैं हँस पड़ता हूं।

वह पूछता है- 'चलें फिर जी...।'

मुझे कुछ याद आता है। ट्रैक्टर पर से नीचे उतर कर मैं तेल वाला ड्रम देखता हूं।

रास्ते में वह मेरे संग कोई बात नहीं करता। उसके अंदर कुछ सुलग रहा है। मानो वह कुछ कहना चाहता है लेकिन मुझे मालिकों का खास आदमी समझकर बता नहीं रहा। बीच-बीच में वह मेरी ओर रहस्यपूर्ण मुस्कुराहट फेंकता है। मेरे अंदर तल्खी-सी पैदा करता है। मुझसे उसकी चुप्पी सहन नहीं हो रही। मैं जानता हूं कि वह कुछ न कुछ जरूर बोलेगा। वह कालोनियों के मोड़ तक वैसे ही गुमसुम बना रहता है।

'क्या बात हो गई, भाऊ, बड़ा चुप है?' बस-स्टैंड पर पहुंचकर मैं पूछता हूं।

'कुछ नहीं।'

'मेरे से नाराज है?'

'नहीं बाबूजी। एक बात बताओ। तुम्हें भी मेरे काम पर शक होता है?'

'बिलकुल नहीं।'

'फिर तुम बाबुओं की तरह गोरखे से क्यों पूछते रहते हो? मैं किसी से कम काम नहीं करता। काम में उन्नीस-इक्कीस हो जाता है। अपने बाबू तो अंग्रेज हैं। काले अंग्रेज। मेरे से तुम्हारे बारे में पूछते रहते हैं। बताऊं... चलो, छोड़ो। उन्हें तुम नहीं समझ सकते।'

एक पल मुझे चक्कर-सा आ जाता है। इस बात के बारे में तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। कहना तो मैं यह चाहता था कि मैं तो अपना फर्ज पूरा कर रहा हूं परंतु, मुझसे कुछ नहीं कहा जाता। उससे इतना ही पूछता हूं, 'चाय पिलाऊं?'

'बस जी, तुम्हारी ही पीते रहे हैं...' कहते हुए उसने फुर्ती से ट्रैक्टर को पीछे की तरफ मोड़ लिया था।

●

रूसी

बिन खिले

मूल : चेखव
अनुवाद : हरिवंश

जार्जस रूस के एक उच्च अधिकारी का बेटा था। बाप मर चुका था जिसकी पेंशन पर जार्जस, उसकी मां और उसकी नवयुवती अविवाहित बहन का गुजारा होता था। पेंशन माकूल थी। किंतु जार्जस विषयी था। बाप की पेंशन शराब में बहा रहा था। एक रात वह शराब के नशे में वास्तविकताओं को भुला कर लेटा हुआ था। उसकी मां और बहिन मारूसी उसे उपदेश दे रही थीं। मां उससे यह रही थीं, 'जरा ख्याल करो कि डॉक्टर टोपोकोव हमारे एक पुरान नौकर का भतीजा है। निर्धनता में उसने शिक्षा प्राप्त की। भूखा रहकर डॉक्टरी पास की और आज बड़े-बड़े धनवान और मंत्री उसके द्वार के चक्कर लगाते हैं। रायल सोसाइटी में उसका मान है। और तुम जो बाप के नाम पर सरकारी तोर पर शहजादे कहलाते हो, किसी गणना में नहीं। जिसने कल हमारे बर्तन मांजे थे, वह आज हमारे सामने से घोड़ा-घाड़ी में गुजरता है। हमारा कल का दास आज का राजकुमार है और तुम...' मारूसी ने भी उससे बहुत कुछ कहा किंतु वह भाई से नाराज होना नहीं चाहती थी क्योंकि भाई-बहिन में बहुत स्नेह था।

जार्जस ने मां और बहिन के उपदेशों से छुटकारा पाने के लिए शपथ ग्रहण कर ली कि वह फिर शराब नहीं पिएगा और कोई सम्मानित काम-धंधा करके बाप का नाम उज्जवल करेगा। मां और बहिन सुख की नींद सो गयीं और जार्जस के विवाह के स्वप्न देखती रहीं। दूसरा दिन भी उन्होंने जागते में स्वप्न देखते गुजारा। वह प्रसन्न थीं कि जार्जस ने शराब छोड़ दी है और अब उनके दिन फिर जाएंगे।

दूसरी रात्रि वह गहरी नींद सोयीं। सुबह उनका नौकर भागता हुआ आया और मां बेटी को हांफते-कांपते घबराए हुए स्वर में यह समाचार सुनाया कि शहजादा जार्जस अपने कमरे में बेहोश पड़ा है। रात तीन बजे कुछ मित्र उसे घर फेंक गए थे जब कि वह शराब के नशे में चूर था। 'वह कराह रहा है', नौकर ने कहा। 'जल्दी चलिए और मुझे बताइए कि कौन से डॉक्टर को बुलाऊं।'

मां-बेटी ने सर पीट लिए। जा के देखा तो जार्जस को बेहोश पाया। आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण वह किसी डॉक्टर को न बुला सकती थीं। मामूली से एक डॉक्टर को बुलाया गया जिसने चिंता न करो का उपदेश देते हुए दवा दे दी किंतु जार्जस की तकलीफ बढ़ती गई। मारूसी ने डॉक्टर टोपोकोव को बुलाने का परामर्श दिया परंतु मां यह न मानती थी। वह कैसे सहन कर

सकती थी कि उनके दासों का बेटा (वह आज कितना ही बड़ा आदमी क्यों न बन गया हो) उसके सोफों पर आ बैठे और उन्हें आदेश दे। कुछ इसलिए भी कि टोपोकोव बहुत मंहगा डॉक्टर था और यह बात भी थी कि वह घमंडी और खुश्क स्वभाव वाला पुरुष था। हो सकता है कि वह आने से इनकार कर दे। धन की उसके पास कमी न थी। वह किसी के अधीन न था।

परंतु जार्जस की बिगड़ी हुई दशा को देखते हुए डॉक्टर टोपोकोव को बुला ही लिया गया। टोपोकोव नवयुवक था। पहनावे और चाल-ढाल से अमीरी बल्कि शहनशाहियत टपकती थी। वह सुंदर था। नैन-नक्श में आकर्षण था। व्यक्तित्व रोबदार! पुरुष तो उसे सुंदर कहा ही करते थे किंतु स्त्रियां उसे अति सुंदर कहा करती थीं किंतु वह था बड़ा अभिमानी- बेपरवाह और कम बोलनेवाला। जब उसने जार्जस के महल जैसे मकान में प्रवेश किया तो मारूसी डॉक्टर के सामने गिड़गिड़ाने लगी। 'ईश्वर के लिए डॉक्टर साहब, मेरे भाई की जान बचाओ।' यह नवयुवती और आकर्षक शहजादी आज प्रथम बार भीख मांगने के अंदाज से गिड़गिड़ा रही थी। वह रोने लगी किंतु डॉक्टर टोपोकोव का दिल भावों से खाली था। उसने मारूसी के यौवन, सौंदर्य और मिन्नत को नजरअंदाज करते हुए कटु स्वर में कहा, 'रोशनदान खोल दो। रोग स्वस्थ सांस कैसे लेगा।' उसने कमरे को देखा और एक और आदेश दिया, 'रोगी को ड्राइंग-रूम में ले चलो। यह कमरा उचित नहीं।'

जार्जस बेहोश पड़ा था और पलंग बहुत भारी था। मां, मारूसी और उनके नौकर ने पलंग को बड़ी कठिनाई से उठाया। डॉक्टर टोपोकोव की घृणा की यह दशा कि पलंग उठवाने में स्त्रियों की सहायता करने की अपेक्षा खड़ा देखता रहा और कटु स्वर में बोला, 'मेरा समय नष्ट न करो। और रोगी भी हैं जो मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उसने कुछ ही मिनट में रोगी को देखा। नुस्खा लिखा, पैसे लिए और बिना कोई बात किए चला गया। दूसरे दिन जार्जस की दशा तो अच्छी हो गयी किंतु मारूसी उसकी तीमारदारी और रात भर जागने के प्रभाव से न बच सकी। उसकी छाती में ऐसा दर्द उठा कि वह बेहाल हो गयी। डॉक्टर टोपोकोव के लिए अब दो रोगी हो गए। मां देखभाल कर रही थी। नौकर अलग परेशान था। मां ने डॉक्टर से पूछा, 'मेरे बच्चे कब स्वस्थ होंगे?' डॉक्टर ने लापरवाही से कहा, 'मैं डॉक्टर हूं, ज्योतिषी नहीं।'

डॉक्टर टोपोकोव सात दिन तक आता रहा और दोनों बहिन-भाई स्वस्थ हो गए। आठवें दिन डॉक्टर अंतिम बार आया था। वह आया। रोगियों को देखा और जाने लगा तो जार्जस की मां ने उसे कॉफी का एक कप पीने के लिए रोक लिया। डॉक्टर ने कहा कि वह चाय पिएगा। चाय की प्रतीक्षा में जब वह बैठा तो मां और मारूसी ने बहुत चाहा कि उससे बातें करें किंतु उन पर एक रोब-सा छाया था। टोपोकोव निःसंदेह अभिमानी और कटु स्वभाव का पुरुष था किंतु उसके घमंड, खुश्क कलामी और कम बोलने में भी सलीका और शान थी। मारूसी की माता इतना ही कह सकी, 'मैं आपकी कृतज्ञ हूं कि आपने मेरे बच्चे स्वस्थ कर दिए हैं।' किंतु वह सुनी-अनसुनी करके चाय की प्रतीक्षा करता रहा। उसे वहां दस मिनट बैठना पड़ा। इस बीच वह अपने आस-पास से बेखबर रहा। उसे यह भी अनुभव न हुआ कि उसके सामने 18-19 वर्ष की नव खिली अक्षता बैठी हुई है जो उसके साथ बातें करने को व्याकुल है। उसे यह भी खयाल न आया कि वह स्वयं अविवाहित है। वह सामने दीवार के साथ लटकते हुए क्लाक के पेंडुलम को देखता रहा। बाहर उसकी गाड़ी के घोड़े हिनहिना

रहे थे। चाय आई तो वह पीकर बिना बात किए बाहर निकल गया।

उसके जाने के पश्चात कमरे में सन्नाटा छा गया। नौकर ने इस सन्नाटे को तोड़ा, 'कितना रोबदार और सम्मानित पुरुष है।' मारूसी ने भी उसकी प्रशंसा की किंतु मां, मारूसी का समर्थन करने से हिचकिचा रही थी। अंत में वह इस प्रकार बोली जैसे बोलना नहीं चाहती थी, हां! आदमी उच्च सोसाइटी का है परंतु असल नसल से तो घटिया जात का है। लड़कपन में हमारे बर्तन मांजता रहा है।' जार्जस से भी इसी प्रकार की राय प्रकट की। किंतु मारूसी उसके व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित मालूम होती थी। वह उसकी बहुत प्रशंसा करना चाहती किंतु मां और भाई की राय सुनकर मौन रही। कुछ इसलिए भी चुप रही कि वह उसकी कल्पना से शरमाने लगी थी। वह मन ही मन में टोपोकोव के सम्मानित पेशे की प्रशंसा करती रही और सोचती रही कि सैनिक अधिकारी से डॉक्टर अधिक अच्छा और सम्मानित होता है। मरते हुए को जीवित कर लेना कितना महान कमाल है। डॉक्टरी कितनी पवित्र कला है और टोपोकोव कितना सम्मानित और रूपवान मनुष्य- किंतु वह बोलता क्यों नहीं?

बहिन-भाई तो अच्छे हो गए। दवाइयों की शीशियां कमरे से बाहर निकल गयीं किंतु टोपोकोव, मारूसी के दिल से न निकल सका। जार्जस स्वस्थ होकर पहले से अधिक आवारा हो गया। निर्धनता तेजी से घर में प्रवेश करने लगी। वह अपने प्रत्येक मित्र और जानकार का ऋणी हो गया। मित्र उससे अलग हो गए। वह अब हर किसी से उधार मांगता फिरता था। घर की अधिकतर वस्तुएं कबाड़ियों की दुकानों में पहुंच गयीं। मां और मारूसी ने बहुत प्रयत्न किए कि वह घर के व्यय पर काबू रखें और जार्जस को विलासिता से रोकें किंतु वह उनसे पैसे वसूल कर ही लेता था। पैसे न मिलें तो घर की कोई न कोई चीज नीलाम हो जाती थी। धीरे-धीरे यह घराना अपने नौकर का भी ऋणी हो गया। रहते तो वह महल जैसे मकान में थे किंतु इस महल में जो खाना पकता था वह प्रायः नौकर के उधार पर पकता था।

मां को निर्धनता और बेटे की यह दशा तेजी से बूढ़ा कर रही थी। बेटा और बेटी दोनों अविवाहित थे। यह उत्तरदायित्व अपने स्थान पर था। एक वह दिन थे कि इस घराने की गणना रूस के शाही खानदान में होती थी और आज यह समय था कि रिश्ता-नाता तो दूर की बात है, यह लोग रोटी के लिए परेशान हो रहे थे। घर का सामान और आमदनी बेटा शराब में बहा रहा था। बेटा अपने विलास तथा भोगों में मस्त था। मां अपने दुःखों से बेहाल और मारूसी तो जैसे अपने आप में खो चुकी थी। युवावस्था की नित नई उमंगें सीने में उभरती आ रही थीं। कुछ आंधियां बाहर चीख रही थीं। कुछ बगूले अंदर ही अंदर उठ रहे थे। परिस्थितियों और विचारों के तूफानों ने मारूसी के मन और दिमाग में अजनबी-सा परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था। वह प्रायः खिड़की के सामने खड़ी हो जाती और दूर-दूर तक फैली हुई हिम की घनी चादरों को देखती रहती या अंतरिक्ष में घूरती रहती। प्रतिदिन डॉक्टर टोपोकोव के उच्च नसल के घोड़े शाही गाड़ी खींचते हुए उसके सामने से गुजरते थे। टोपोकोव गाड़ी में आस-पास और अपने आप से बेखबर बैठा होता था। मारूसी उसे देखती और उसकी कल्पनाओं और भावनाओं में जलजले बरपा होने लगते। वह हजार प्रयत्न करती कि उसे न देखे किंतु उसकी हरकतें अब उसके विवेक के काबू से बाहर होती जा रही थीं। जैसे ही डॉक्टर के आने का समय होता वह खिड़की के सामने खड़ी हो जाती। उसने उसे सैकड़ों बार देखा किंतु

टोपोकोव ने कभी भूलकर भी मारूसी की ओर न देखा।

एक सुबह एक बुढ़िया मारूसी के घर आई। उसका पेशा रिश्ते-नाते कराना था। उसने आते ही मारूसी के सौंदर्य और उसके खानदान की इतनी प्रशंसा की कि उन्हें आकाश पर पहुंचा दिया। फिर उसने मारूसी के उम्मीदवार की प्रशंसाएं जो आरंभ की तो ऐसा लगता था जैसे वह किसी कल्पना के देश के राजकुमार का जिक्र कर रही है। उसने हाथ में उठायी हुई पोटली खोलकर उम्मीदवार की फोटो निकाली। मारूसी ने झपटकर चित्र ले लिया। उसे स्वप्न का धोखा हो रहा था। उसने बुढ़िया को देखा और फिर चित्र को आँखें फाड़-फाड़ कर देखा और प्रसन्नता से बेकाबू होकर लगभग चीख कर बोली, 'यह तो डॉक्टर टोपोकोव की फोटो है।' जिसे मारूसी आकाशों में ढूंढ़ रही थी, वह उसे धरती पर मिल गया। जार्जस और उसकी मां बहुत प्रसन्न हुए कि इतना धनवान डॉक्टर रिश्ता मांग रहा है। इनकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था किंतु डॉक्टर टोपोकोव ने दहेज की ऐसी शर्त रख दी थी जो मारूसी के खानदान के लिए स्वप्न की बात थी। उसने संदेश दिया था कि दहेज में साठ हजार रूबल नकद होने चाहिए नहीं तो रिश्ता स्वीकार नहीं होगा। मारूसी की कल्पनाओं के महल भयंकर गड़गड़ाहट से गिर कर बर्फ में दब गए। मां ने जार्जस की ओर देखा और जार्जस की नजरें कमरे में भटकने लगीं, जहां का फर्नीचर और चित्र भी नीलाम हो चुके थे।

इसके अलावा कोई चारा न था। जार्जस और मां ने नाक-भौं चढ़ा कर बुढ़िया से कहा, 'डॉक्टर कमीनी जात का आदमी है, हम ऊंची जात के लोग हैं। हम रिश्ता नहीं दे सकते।' बुढ़िया को दो-एक और कटु-सी बातें सुना कर उन्होंने अपने बड़प्पन की लाज रखी और निरादर दूर कर लिया। मारूसी के स्वप्न उसे फिर भी धोखा देते रहे। उसे विश्वास हो चला था कि डॉक्टर उसे चाहता है। वह अवश्य उस शर्त को वापिस ले लेगा। किंतु डॉक्टर की गाड़ी यथापूर्व उसकी खिड़की के सामने से शाहाना चाल से गुजरती रही। वह आसपास से इस प्रकार बेखबर होकर गाड़ी में बैठा हुआ गुजरता जैसे उसने विवाह का संदेश भेजा ही नहीं था और न वह उस मकान से परिचित है, न उसमें रहनेवालों से।

मारूसी के स्वप्न उसे फिर भी संतोष देते रहे और उसकी आशाएं बढ़ाते रहे। वह डॉक्टर टोपोकोव की बाट देखती रही किंतु उन राहों में एक अमीर व्यापारी की लड़की आ खड़ी हुई। डॉक्टर ने केवल मारूसी के घर ही नहीं, कई और स्थानों पर अपने रिश्ते और साठ हजार नकद के दहेज के संदेश भेजे थे। कुछ ही दिन गुजरे कि मारूसी को सूचना मिली की डॉक्टर ने एक लखपति व्यापारी की लड़की के साथ विवाह कर लिया है और यह पता भी चला कि डॉक्टर को किसी से प्रेम नहीं, उसे उस लड़की से भी प्रेम नहीं जो उसकी पत्नी बन चुकी है। उसे वास्तव में एक विशाल मकान बनाने के लिए साठ हजार रूबल की आवश्यकता थी। और मारूसी को यह भी महसूस हुआ कि डॉक्टर दवाओं और रोगियों में ही मग्न रहता है जबकि उसकी दुल्हन घर में एकांत का जीवन व्यतीत कर रही है।

मारूसी के स्वप्न कटु विचारों में घुल-मिल गए। यह आघात उसके लिए मामूली न था। इस घटना में केवल उसके प्रेम की ही पराजय न हुई थी बल्कि उसके खानदान का अनादर भी किया गया था। वह कलेजा थाम कर रह गयी। कुछ दिन व्यतीत हुए तो उसकी मां इन कटुताओं से उकता कर मर गयी। मां के मरने की देर थी कि जार्जस बिलकुल ही आवारा हो गया। घर के नौकर ने यह बात जगह-जगह गर्व से कहनी आरंभ कर दी कि उसके स्वामी उसके उधार पर जी रहे हैं। किसी

सभा में जार्जस के लिए स्थान न रहा। वह प्रत्येक स्थान पर अपमानित हो चुका था। उसने इसी पर बस न की। एक दिन वह एक जवान और अत्यंत आवारा किस्म की लड़की अपनी जवान बहिन की उपस्थिति में घर ले आया। जार्जस ने उस लड़की को घर की मालकिन का पद दे दिया। इसे मारूसी सहन न कर सकी। मारूसी ने भाई से रोकर कहा कि बहिन-भाई के स्नेह का अपना स्थान है किंतु इस लड़की से मुझे तीव्र घृणा है। यह वेश्या है। किंतु जार्जस पर कोई प्रभाव न पड़ा। उस स्त्री ने धीरे-धीरे घर पर अधिकार जमा लिया और मारूसी की दशा नौकरानी की-सी हो गयी। मारूसी अल्पव्यय करना चाहती थी किंतु यह लड़की मंहगे खाने पकवाकर घर की रही-सही कसर भी पूरी कर रही थी। इसका प्रभाव यह हुआ कि मारूसी अपने आप में कुढ़ने लगी और उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। खानदान का सम्मान न रहा। मां का साया न रहा। भाई इस प्रकार हाथ से निकल गया। उस स्त्री ने घर पर अधिकार जमा लिया। मारूसी के लिए यह दुःख क्या कम था कि उसने एक ही प्रेम किया था और वह भी चकनाचूर हो गया। इन मुसीबतों और कठिनाइयों को सोच-सोच कर उसके सीने में दर्द रहने लगा।

एक दिन उसने अपने नौकर से तीन रूबल उधार लिए और डॉक्टर टोपोकोव से मिलने चली गयी। तकलीफ अधिक हो रही थी। वह इसी बहाने से डॉक्टर के साथ दो-चार बातें करना चाहती थी। उसने डॉक्टर का दरवाजा खटखटाया। एक बूढ़ी नौकरानी ने दरवाजा खोला और कटुता से बोली, 'आज डॉक्टर साहब किसी रोगी को नहीं देखेंगे।' मारूसी के संसार में दो भयंकर धमाके गूंजे। एक धमाका डॉक्टर का दरवाजा बंद होने का और दूसरा स्वप्नों के फटने और टुकड़े-टुकड़े होने का। वह लड़खड़ाती हुई घर लौटी। दूसरे दिन वह फिर डॉक्टर के दरवाजे पर खड़ी थी। नौकरानी ने दरवाजा खोला और मारूसी की उजड़ी हुई रंगत और साधारण लिबास को देखकर कहने लगी, 'तुम्हें मालूम है कि डॉक्टर साहब पांच रूबल से कम फीस नहीं लेते हैं?' मारूसी को इस पर भी आघात पहुंचा कि वह इतनी निर्धन हो गयी है कि उसे इस प्रकार के व्यंग्यपूर्ण वाक्य सुनने पड़ते हैं। उसके पास तीन रूबल थे। वह जरा-सा रूकी, कुछ सोचा और डॉक्टर के वेटिंग-रूम में चली गयी। वहां असंख्य रोगी बैठे हुए थे। वह भी अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगी। दो घंटे बाद उसकी बारी आयी। उसने दिल में कितनी बातें सोच डाली थीं कि वह डॉक्टर से कहेगी और यूं कहेगी। किंतु डॉक्टर ने उसे सिवाय तीन-चार कारोबारी प्रश्नों के उत्तर के और कोई बात करने का अवसर न दिया। 'खांसी किस समय अधिक होती है? दर्द की कमी किसी समय होती है कि नहीं? यह लीजिए नुस्खा! खुराक अच्छी खाइए। आप जा सकती हैं।'

मारूसी के दिल की दिल में ही रही। उसने तीन रूबल डॉक्टर की मेज पर रखकर उसकी ओर विनती भरी नजरों से देखा। डॉक्टर ने तीन रूबल दराज में रख लिए और एक बार फिर बोला, 'आप जा सकती हैं।' मारूसी इस तरह उठी मानों उठना नहीं चाहती थी। सोने का गुबार उसे व्याकुल किए दे रहा था। किंतु डॉक्टर अपने काम में इस प्रकार मग्न हो चुका था मानों वह इस संसार से इसी प्रकार बेखबर रहने के लिए ही उत्पन्न हुआ था। मारूसी को आशा थी कि डॉक्टर उसे देखते ही पहचान लेगा। उससे पहली बीमारी के संबंध में पूछेगा और उसका रिश्ता न मिल सकने पर भी देख प्रकट करेगा किंतु....

वह घायल पक्षी की तरह दिल ही दिल में तड़प उठी और धीरे-धीरे दरवाजे की ओर चल पड़ी।

दरवाजे में रुकी और डॉक्टर की ओर हसरत भरी और हारी हुई निगाहों से देखा। वह आज उसे बहुत सुंदर दिखाई दे रहा था। मारूसी वहां से चल पड़ी। घर तक वह भिन्न-भिन्न प्रकार के कटु और दुःखद विचारों से बेचैन रही। उसे डॉक्टर पर क्रोध भी आया कि उसने उसे पहचाना ही नहीं और यह भेंट आशा के विरुद्ध सिद्ध हुई। अधिक उसे अपने ऊपर गुस्सा आया कि उसने यह अवसर हाथ से गंवा दिया और डॉक्टर के साथ खुलकर बातें न कर सकी।

दूसरे दिन उसके भाई की प्रेमिका भाग गयी। घर में जो जरा-सी शांति भी वह भी न रही। जार्जस अपनी आवारा प्रेमिका की खोज और शोक में पागल हुआ जा रहा था। मारूसी की अपनी यह दशा कि सीने के दर्द और खांसी में वृद्धि हो रही थी। उसने डॉक्टर की दवा कुछ दिन पी किंतु आराम न हुआ। एक दिन वह फिर डॉक्टर के पास गयी। तीन घंटे के पश्चात् अंदर बुलायी गयी। डॉक्टर ने आदत के अनुसार दो-चार प्रश्न किए और उससे कहा, 'फ्राक के बटन खोल दो। सीना देखूंगा।' मारूसी को शर्म अनुभूत हुई। कुंवारी लड़की थी। वह जरा-सा हिचकिचायी और उसने एक बटन खोला। डॉक्टर ने कटुता से कहा, 'बटन खोलने में इतना समय नहीं लगता। मैं व्यस्त आदमी हूं।'

किंतु मारूसी को मालूम न था कि टोपोकोव उस समय पुरुष नहीं, डॉक्टर था। वह मनुष्य भी नहीं था। वह जाने कितने सीने प्रतिदिन देखा करता था। उसे रोगी से कम और रोग से अधिक दिलचस्पी थी। मनुष्य उसके लिए कोई महत्व नहीं रखते थे। उसके निकट महत्व केवल रोग का निदान प्राप्त करना था। उसने निरीक्षण करके कहा, 'तुम समारा के पहाड़ों में चली जाओ। स्वस्थ स्थान पर जाने की आवश्यकता है। एक फेफड़ा खराब होना आरंभ हो गया है। दवा जारी रखो.. .. तुम जा सकती हो।'

मारूसी रुक-रुक कर चली और चल-चल कर रुकी। डॉक्टर अपने काम में मग्न हो चुका था। मारूसी ने दरवाजे में रुक कर उसे देखा और बाहर निकल गयी। उसकी भावी दशा बिगड़ने लगी। उसने सोचा, उसे मुझे आध घंटा अपने पास रखा और मैं उसके साथ दिल की बात न कर सकी। काश वह मुझसे दूर रहा। शायद मैं उसे भूल जाती। उस दिन वह डॉक्टर को क्षण के लिए भी भूल न सकी। सीने का दर्द बढ़ रहा था और कमजोरी बढ़ती जा रही थी।

एक रात उसे इतनी तकलीफ हुई कि उसे नींद न आयी। बिस्तर कांटों का बिछौना बना हुआ था। उसने बूढ़े नौकर को बुलाया ओर उसके साथ सुख-दुःख की बातें करती रही और रोती रही। उसने नौकर से बिनती की, 'निकोफर, अंतिम बार पांच रूबल ऋण दे दो। कल डॉक्टर के पास जाऊंगी। निकोफर, दुनिया में मेरा कोई नहीं रहा। मेरे लिए पांच रूबल उधार दे दो। फिर कभी न मांगूगी।' नौकर ने आंसू पोंछकर उसे पांच रूबल दे दिए। दूसरे दिन दस बजे डॉक्टर के वेटिंग-रूम में बैठी थी। बारी की प्रतीक्षा में दो बज गए। जब उसकी बारी आयी, डॉक्टर लंच पर चला गया।

मारूसी की दशा बिगड़ती जा रही थी। वह अब इतना बैठने और प्रतीक्षा करने के योग्य न रही थी। उसका नवखिला यौवन जाड़े की चाँदनी की भांति दबे पांव गुजरता जा रहा था या उस सूर्य की भांति जो घटाओं की अँधेरी ओट में छिपता हुआ क्षितिज में डूब जाए। मारूसी ने डॉक्टर की नौकरानी से कहा भी कि उसे बहुत तकलीफ है, डॉक्टर से कहो कि उसे देखकर खाने के लिए जाए किंतु वह डॉक्टर टोपोकोव था। वह किसी मनुष्य का बंदी नहीं था। वह खाने के लिए चला गया और चार बजे वापस आया। मारूसी की दशा बहुत बिगड़ चुकी थी।

डॉक्टर ने उसे बुलाया तो वह कराहती हुई उठी और निर्बल शरीर को कांपती हुई टांगों पर घसीटती हुई डॉक्टर के कमरे में पहुंची और आराम-कुर्सी पर गिर पड़ी। उसने पांच रूबल डॉक्टर की मेज पर फेंक दिए। डॉक्टर ने बीमारी के संबंध में उससे दो-तीन संक्षिप्त प्रश्न पूछे और कहा, 'मैंने तुमसे समारा जाने को कहा था। अब न जाना।'

'मैं जा ही कैसे सकती हूं।' मारूसी ने बहुत धीरे से कहा। 'मैं नहीं जाऊंगी।' और उसने यह वाक्य दिल में ही रहने दिया कि मैं इतनी अमीर नहीं।

'हल्की खुराक खाओ। हवादार कमरे में लेटी रहा करो। शोक न किया करो। फेफड़ा बहुत खराब हो गया है। दवा जारी रखो। जाओ!'

मारूसी डॉक्टर का मतलब समझ गयी थी। वह जानती थी कि डॉक्टर उससे कहना चाहता है कि अब घर में ही मृत्यु की प्रतीक्षा करो। समारा जा के न मरना।

'तुम जा सकती हो, मैडम!' डॉक्टर ने बेरुखी से कहा। 'मैंने निरीक्षण समाप्त कर लिया है।'

मारूसी ने उसकी ओर ऐसे देखा मानों बिनती कर रही हो कि जरा देर और अपने पास बैठने दो। यूं न निकालो। थोड़ी देर और.... किंतु वह कुछ भी न कह सकी। दो मोटे-मोटे आँसू उसकी आँखों से निकले और कमजोर गालों पर बह गए। उसने निढ़ाल होकर सर कुर्सी की पीठ पर फेंक दिया। एक कमजोर सी सरगोशी डॉक्टर के कानों से टकरायी, 'मुझे तुमसे प्रेम है, डॉक्टर!'

डॉक्टर ने यह शब्द सारी उम्र में आज प्रथम बार सुने थे। उसने भ्रम समझा और जैसे बेख्यालों में मारूसी की ओर देखा। वह एक बार फिर कहने लगा था.... मैडम तुम जा सकती हो.... कि मारूसी के होंठ एक बार फिर कांपे और उसके सीने का सारा दर्द और सारे दुःख एक वाक्य में सिमट आए। 'मुझे तुमसे प्रेम है डॉक्टर!'

डॉक्टर को धक्का-सा लगा। वह जहां था, वहीं सुन्न हो गया। उसकी आयु तीस वर्ष थी। इन तीस वर्षों में उसने प्रथम बार प्रेम का शब्द सुना था यद्यपि वह विवाहित था। उसने किसी स्त्री की आवाज में यह प्यार, यह बेबसी और यह सोज न देखा था। आज प्रथम बार कोई उससे प्रेम प्रकट कर रहा था। वह इस मनोहर आघात के लिए तैयार न था। घबरा-सा गया। उसने जाने क्यों आवाज दी, 'मीकोश!'

मारूसी ने देखा कि कमरे का दूसरा दरवाजा खुला और एक सुंदर और रूपवान लड़की आयी। यह डॉक्टर की पत्नी थी। डॉक्टर उठकर उस कमरे से चला गया। मारूसी समझ न सकी कि उसने पत्नी को क्यों बुलाया है? वह उस कमरे में क्यों चला गया है? क्या वह मेरे पास से भाग गया है? उसमें अब शक्ति नहीं थी कि इन भूल-भुलइयों में भटक सके। उसका सर चकरा रहा था।

डॉक्टर आठ-दस मिनट के पश्चात लौटा। देखा तो मारूसी बड़े सोफे पर औंधे मुंह बेहोश पड़ी थी। डॉक्टर ने उसके सैंडल उतारे। उसे सोफे पर सीधा किया और उसके फ्राक की पेटी ढीली करने लगा। जब पेटी ढीली हुई तो उसमें से डॉक्टर के दो चित्र और उसके पुराने नुस्खे गिरकर फर्श पर बिखर गए। डॉक्टर ने उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे। जब मारूसी ने आँखें खोलीं तो उसने निर्बल आवाज में पूछा, 'मैं कहां हूं?' डॉक्टर उस पर झुका। मारूसी के आँसू जारी हो गए और उसने धीरे से कहा, 'मुझे तुमसे प्रेम है डॉक्टर!' और वह रोने लगी।

डॉक्टर सोफे के एक कोने पर बैठा ख्यालों में खो गया और मारूसी उसके नैन-नक्श और

व्यक्तित्व में खो गयी। प्रेम का यह दर्द से भरा प्रकटन डॉक्टर के लिए अजनबी और अनूठा था। वह सोच रहा था कि उसका जीवन कितने विचित्र शब्द और भाव से वंचित रहा है। मां-बाप जाने कब मर गए थे। होश संभाला तो वह अपने चाचा के टुकड़ों पर पल रहा था। चाचा, मारूसी के घर में नौकर था। डॉक्टर टोपोकोव को पढ़ने का शौक था किंतु उसने मारूसी के मां-बाप के घर में झाड़ू दी और जूठे बर्तन मांजे। चाचा से बेदर्दी से मार खायी। हर किसी की झिड़कियां सहन कीं। किसी ने उससे प्यार न किया। उस समय उसकी आयु आठ वर्ष थी जब मारूसी ने जन्म लिया। मारूसी के जन्म का दिन उसे भली प्रकार याद था। घर में काम अधिक हो गया था। उसकी आयु आठ वर्ष की ही थी, वह कितना काम कर सकता था? थककर उसे नींद आयी तो जाने किस-किस ने उसे पीटा और गालियां दी थीं। फिर वह खैराती स्कूल में दाखिल हुआ और वहां जाने कितने वर्ष अध्यापकों की मार खाता रहा। वहां से वह कालेज में दाखिल होने के लिए घर से भाग गया था। कोई आसरा न था। इस लड़कपन की आयु में उसने मजदूरी की और शिक्षा प्राप्त की। उसकी आयु का कीमती भाग अनाहार, मजदूरी और पुस्तकों में व्यतीत हुआ। किसी मनुष्य ने उस पर दया न की, किसी ने उससे यह न कहा, 'मुझे तुमसे प्रेम है।' न अच्छा पहना, न अच्छा खाया। जवानी झमेलों में गुजरती चली गयी। वह अपने परिश्रम और अपने सहारे जीवन को संवारता रहा। पुस्तकें उसकी मित्र थीं और वह मनुष्यों से दूर हटता गया। उसने दौलत कमायी। उच्च सोसाइटी में उच्च स्थान बनाया। कल का अनाथ और बे-आसरा बच्चा आज का माना हुआ डॉक्टर था। वह दवाइयों की गंध में मस्त रहता था और प्रेम की सुगंध से अनजान! उसे किसी रोगी, किसी भी मनुष्य से सहानुभूति और दिलचस्पी नहीं थी। उसे रोग के विरुद्ध युद्ध लड़ने में आनंद आता था। उसने विवाह कर लिया था, फिर भी वह प्रेम शब्द से अपरिचित रहा। इसका कारण यह था कि उसने विवाह साठ हजार रूबल प्राप्त करने के लिए किया था। यदि उसने पत्नी की जबान से कभी प्रेम का शब्द सुना भी तो वह भावों से खाली केवल शब्द था। उसमें वह सोज, वह दर्द, वह मिठास और वह अपनापन न था जो मारूसी के इन शब्दों में, 'मुझे तुमसे प्रेम है डॉक्टर!'

टोपोकोव डॉक्टरी के जामे से बाहर मनुष्य के रूप में आ गया। उसने अनुभव किया कि वह सारी आयु घातक रोगों के विरुद्ध जो युद्ध लड़ता रहा है, वह केवल एक प्यास बुझाने की निरंतर कोशिश थी। वह प्रेम के एक शब्द के लिए तरसता रहा है। उसने आज प्रथम बार महसूस किया कि वह एक मनोभाव को कितनी बेदर्दी से दबाता रहा है। वह बेबस-सा होकर मारूसी के निकट फर्श पर घुटनों के बल बैठ गया और निःसंकोच हो उसके हाथ थामकर बोला, 'मारूसी! मैं तुम्हें समारा के प्राणवर्धक पहाड़ों में ले जाऊंगा। मैं जानता हूं, तुम निर्धन हो। स्वयं न जा सकोगी। तुम्हें हर हालत में जीवित रहना है। अपने लिए नहीं मारूसी! मेरे लिए... केवल मेरे लिए!'

और दूसरे दिन वे फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे समारा जा रहे थे। कली ने जरा-सा मुंह खोला और मुर्झा गयी। समारा आए हुए तीसरा दिन था कि मारूसी मर गयी। दिक दोनों फेफड़ों को चट कर चुका था। डॉक्टर ने पूरा प्रयत्न कर लिया था कि उसके सारे धन के बदले मारूसी के फेफड़े स्वस्थ हो सकें किंतु विज्ञान बेबस था और टोपोकोव को विज्ञान से घृणा हो गयी। दिल पर मनों बोझ उठाए वह वापस आ गया। कुछ समय के लिए किसी रोगी को न देखा। उसे अपने पेशे से चिढ़ होने लगी थी।

डॉक्टर टोपोकोव ने काफी समय के पश्चात डॉक्टरी फिर आरंभ कर दी है। किंतु अब वह बदला हुआ मनुष्य है। वह अब भी मौन रहता है किंतु अब उसकी खामोशी में घृणा के स्थान पर सहानुभूति और स्नेह उत्पन्न हो गया है। वह स्त्रियों के इलाज में खून-पसीना एक कर देता है किंतु किसी स्त्री की ओर नजर भर कर नहीं देखता। उसने मारूसी के भाई जार्जस को अपने घर में रख लिया है और उसे पांच रूबल रोजाना देता है। उसने जार्जस को विलासिता और आवारगी की खुली छुट्टी दे रखी है। वह केवल इसलिए उसे घर में रखे हुए है कि जार्जस की ठोढ़ी और होठों में उसे मारूसी की झलक दिखायी देती है। वह जार्जस से जुदा होना नहीं चाहता।

जार्जस उसके घर में संतुष्ट है।

(कहानी- संपादक श्रीपतराय, अप्रैल 1963 से साभार)
(महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय के सौजन्य से)

●

जापानी

सातवां आदमी

मूल : हारुकी मुराकामी
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

'एक ऊंची लहर मुझे लगभग बहा कर ले गई,' 'सातवें आदमी ने तकरीबन फुसफुसाते हुए कहा। यह घटना मेरे साथ सितंबर की एक दोपहर में घटी जब मैं दस साल का था।'

वह उस रात वहां कहानी सुनाने वाला अंतिम आदमी था। घड़ी की सुइयां दस से ऊपर बजा रही थीं। एक छोटे घेरे में सिकुड़ कर बैठे लोग बाहर अँधेरे में पश्चिम दिशा की ओर बहने वाली तेज हवा का चलना सुन सकते थे। वह तेज हवा पेड़ों को झकझोर रही थी, खिड़कियों को बजा रही थी और एक अंतिम सीटी की आवाज में घर को चीरती हुई गुजर रही थी।

'मैंने अपने जीवन में उससे बड़ी समुद्री लहर नहीं देखी थी,' उसने कहा। 'वह एक अजीब लहर थी। एक दैत्याकार लहर।'

इतना कह कर वह रुका।

'मैं उस लहर की चपेट में आने से बाल-बाल बचा। मेरे लिए जो कुछ भी बेहद महत्त्वपूर्ण था, मेरे बदले वह लहर उस सब को समेट कर किसी और ही दुनिया में ले गई। अपने जीवन में संतुलन पाने और इस अनुभव से उबरने में मुझे बरसों लग गए-- वे मेरे जीवन के बेशकीमती बरस थे जिसकी भरपाई कतई सम्भव नहीं।'

उस सातवें आदमी की उम्र पचपन साल के आस-पास रही होगी। वह एक दुबला-पतला और लम्बा व्यक्ति था। उसकी मूँछें थीं और उसकी दाईं आँख की बगल में एक छोटा किंतु गहरा लगने वाला निशान था। संभवतः वह निशान किसी चाकू के लगने से बना था। उसके छोटे बाल कड़े थे और चुभने वाले सफेद गुच्छों में मौजूद थे। उसके चेहरे पर ऐसा भाव था जैसा आप उन लोगों के चेहरों पर देखते हैं जिन्हें अपने विचार व्यक्त करने के लिए सही शब्द नहीं मिल रहे होते। हालांकि उसके मामले में यह भाव बहुत पहले से उसके चेहरे पर मौजूद था, जैसे वह उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग हो। उस आदमी ने धूसर ऊनी कोट के नीचे नीले रंग की एक साधारण कमीज पहन रखी थी, और हर थोड़ी देर के बाद वह अपने हाथ को अपने कॉलर तक ले जाता था। वहां एकत्र लोगों में से कोई भी उसका नाम नहीं जानता था, न ही कोई यह जानता था कि उसकी आजीविका क्या थी।

उसने अपना गला साफ किया और पल-दो-पल के लिए उसके शब्द जैसे गहन शांति में खो गए। सभी उसके बोलने की प्रतीक्षा करने लगे।

'मेरे मामले में वह एक दैत्याकार लहर थी,' उसने कहा। 'हालांकि आप सबके मामले में वह चीज क्या होगी, यह मैं बिलकुल नहीं बता पाऊंगा लेकिन मेरे मामले में उसने एक विशाल लहर का रूप ले लिया था। बिना किसी चेतावनी के वह एक भीमकाय लहर के रूप में एक दिन अचानक ही मेरे सामने आ गई। और वह लहर विध्वंसक थी।

'मैं समुद्र के किनारे बसे शहर 'स' में पला-बढ़ा। वह इतना छोटा शहर था कि यदि मैं आपको उसका नाम बता भी दूं तो भी आपने वह नाम कभी नहीं सुना होगा। मेरे पिता वहां के स्थानीय चिकित्सक थे, इसलिए मेरा बचपन आरामदेह रहा। जबसे मुझे याद है, मेरा एक अभिन्न मित्र था जिसे मैं 'क' का नाम दूंगा। उसका मकान हमारे मकान के पास ही था, और वह विद्यालय में मुझसे एक जमात पीछे था। हम लगभग भाइयों जैसे थे जो इकट्ठे घर से विद्यालय आते-जाते थे, और हमेशा एक साथ खेलते-कूदते थे। अपनी लंबी मित्रता के दौरान हममें कभी एक बार भी झगड़ा नहीं हुआ। हालांकि मुझसे छह साल बड़ा मेरा एक सगा भाई भी था, लेकिन उम्र में अंतर के अलावा हमारे व्यक्तित्व भी अलग किस्म के थे। इसलिए हममें आपस में कभी भी घनिष्ठता नहीं रही। भाई जैसा मेरा वास्तविक अनुराग अपने मित्र 'क' के प्रति ही रहा।

'क' छोटी कद-काठी वाला कमजोर-सा लड़का था। उसकी त्वचा पीले रंग की थी, हालांकि उसका चेहरा लगभग किसी लड़की के चेहरे जैसा सुंदर था। बोलते समय वह थोड़ा हकलाता भी था। इसलिए जो लोग उसे नहीं जानते थे, उन्हें यह संदेह हो सकता था कि वह मंद-बुद्धि था और क्योंकि वह बेहद कमजोर-सा था, इसलिए मैं हमेशा स्कूल में या मोहल्ले में उसके रक्षक की भूमिका निभाता था। मैं तो बड़े डील-डौल वाला, बलिष्ठ लड़का था और सारे बच्चे मेरा आदर करते थे। लेकिन 'क' के साथ अधिक समय बिताने का मेरा मुख्य कारण यह था कि वह बेहद प्यारे और साफ दिल का लड़का था। मंद-बुद्धि तो वह बिलकुल नहीं था, लेकिन हकलाने की वजह से स्कूल में वह ज्यादा अच्छा विद्यार्थी नहीं माना जाता था। अधिकांश विषयों मे वह मुश्किल से ही उत्तीर्ण होता था। किंतु चित्रकला की कक्षा में उसका कोई सानी नहीं था। पेंसिल या रंग मिलते ही वह इतने बढ़िया चित्र बनाता था कि स्वयं शिक्षक भी चकित रह जाते थे। कई चित्र-कला प्रतियोगिताओं में उसने एक-के-बाद-एक कई पुरस्कार जीते थे। मुझे पक्का यकीन है कि यदि उसने वयस्क होने तक अपनी चित्रकला की यात्रा जारी रखी होती तो वह जरूर एक प्रसिद्ध चित्रकार बन गया होता।

'क' को समुद्र के चित्र बनाना अच्छा लगता था। वह घंटों तक समुद्र-तट पर बैठकर समुद्र के चित्र बनाया करता था। अकसर मैं भी उसके साथ बैठ जाता और उसकी कूची की तेज और सटीक क्रिया को देखता। मैं हैरान होकर सोचता कि कुछ ही पलों में वह कैसे बिलकुल खाली सफेद कागज पर चटख रंगों से इतनी जीवंत आकृतियां बना लेता था। अब मुझे यह अहसास होता है कि उस लड़के में चित्रकला के लिए खालिस योग्यता मौजूद थी।

'एक साल सितंबर के महीने में हमारे इलाके में एक भयानक समुद्री-तूफान आया। रेडियो पर बताया गया कि यह तूफान पिछले दस वर्षों की तुलना में सर्वाधिक भयावह था। सारे विद्यालयों की छुट्टियां हो गईं और शहर की सारी दुकानें इस समुद्री-तूफान की आशंका की वजह से बंद कर दी

गईं। सुबह तड़के उठ कर मेरे पिता और बड़े भाई ने सभी खिड़कियां, दरवाजों आदि को अतिरिक्त कीलें लगाकर अच्छी तरह बंद कर दिया। उधर मेरी मां रसोई में आपातकाल के लिए अतिरिक्त भोजन तैयार करती रही। हमने घर में मौजूद सभी बोतलों में पीने का पानी भर कर रख लिया। अपनी सबसे बेशकीमती चीजों को भी हमने बोरियों में भर कर रख लिया, ताकि जरूरत पड़ने पर हम उन्हें भी अपने साथ ले कर कहीं और जा सकें।

'वयस्कों के लिए समुद्री-तूफ़ान मुसीबत और भय का कारण था जो उन्हें लगभग हर वर्ष झेलना पड़ता था। लेकिन हम बच्चे व्यावहारिक चिंताओं से दूर थे, इसलिए हमारे लिए समुद्री-तूफ़ान महज एक सर्कस जैसा था, उत्तेजना के एक अद्‌भुत स्रोत जैसा था।

'दोपहर के बाद आकाश का रंग अचानक बदलने लगा। उसे देखकर कुछ अजीब और अवास्तविक-सा लग रहा था। मैं बाहर ड्योढ़ी में खड़ा होकर आकाश को देखता रहा। थोड़ी ही देर में तूफानी हवा शोर मचाने लगी और तेज बारिश एक अजीब सूखी आवाज के साथ हमारे मकान से टकराने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे रेत की बारिश हो रही हो। तब हम भाग कर घर के अंदर चले गए और हमने मकान के सभी खिड़की-दरवाजे कसकर बंद कर लिए। हम सब रेडियो सुनते हुए एक अँधेरे कमरे में सहम कर बैठे रहे। रेडियो पर बताया जा रहा था कि इस समुद्री-तूफ़ान के साथ ज्यादा तेज बारिश नहीं आई थी लेकिन तूफानी हवा कहर ढा रही थी। कई घरों की छतें उड़ गई थीं और इस तूफान में फँसकर कई जहाज समुद्र में डूब गए थे। उड़ते हुए मलबे की वजह से कई लोग हताहत हुए थे। रेडियो पर बार-बार लोगों से अपने घरों के भीतर ही रहने की अपील की जा रही थी।

'बीच-बीच में मकान चर्र-मर्र की आवाज के साथ हिल उठता जैसे कोई विशाल हाथ उसे पकड़ कर हिला रहा हो। कभी-कभी किसी भारी चीज के किसी बंद खिड़की-दरवाजे से टकराने की भयंकर आवाज आती। मेरे पिता को लगता था कि ये आवाजें पड़ोसियों के घरों की छतों से उड़ कर आई खपड़ैलों की थीं। दोपहर के भोजन में हम सब ने मां का बनाया हुआ चावल और ऑमलेट खाया। अपने मकान के एक कमरे में दुबके हम सब रेडियो पर खबरें सुनते रहे और समुद्री-तूफ़ान के गुजर जाने की प्रतीक्षा करते रहे।

'समुद्री-तूफ़ान का कहर जारी रहा, हालांकि रेडियो बता रहा था कि हमारे इलाके से गुजरते हुए इस तूफान की गति धीमी हो गई थी, और अब यह किसी धीमी गति के धावक-सा उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बढ़ रहा था। किंतु तूफानी हवा का हिंसक शोर थमने का नाम नहीं ले रहा था। तीव्र वेग वाली यह हवा जमीन पर मौजूद हर चीज को जड़ से उखाड़कर धरती के सुदूर कोनों की ओर ले जाने का प्रयास कर रही थी।

'तूफानी हवा को अपने सर्वाधिक वेग पर बहते हुए शायद घंटा-भर बीता होगा जब अचानक चारों ओर निस्तब्धता छा गई। चारों ओर इतना सन्नाटा छा गया कि दूर कहीं से आ रही किसी चिड़िया के बोलने की आवाज भी साफ सुनाई दी। मेरे पिता ने एक दरवाजा थोड़ा-सा खोला और बाहर झांका। हवा का चलना बिलकुल बंद हो गया था और अब बारिश भी नहीं हो रही थी। घने, धूसर बादल आकाश में धीरे-धीरे खिसक रहे थे, और यहां-वहां नीले आसमान के टुकड़े दिखाई पड़ रहे थे। अहाते में खड़े पेड़ों से अब भी बारिश का पानी चू रहा था।

'अभी हम समुद्री-तूफान के केंद्र में स्थित शांत इलाके में हैं,' मेरे पिता ने मुझे बताया। 'यहां कुछ देर तक सब कुछ इसी तरह शांत बना रहेगा। शायद पंद्रह या बीस मिनटों का अंतराल रहेगा। उसके बाद तूफानी हवा पहले की तरह ही तीव्र वेग के साथ वापस लौट आएगी।'

'मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं बाहर जा सकता था। उन्होंने कहा कि मैं घर के आस-पास टहल सकता था पर घर से ज्यादा दूर न जाऊं।' लेकिन जैसे ही पता चले कि तूफानी हवा दोबारा शुरू हो रही है, तुम फटाफट लौट आना।'

'मैं बाहर जाकर छान-बीन करने लगा। चारों ओर मौजूद शांति देखकर सहसा यह विश्वास करना मुश्किल था अभी कुछ देर पहले यहां प्रचंड वेग से तूफानी हवा चल रही थी। मैंने आकाश की ओर देखा। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे इस समुद्री तूफान का केंद्र वहां ऊपर आकाश में मौजूद था, और इस इलाके में यहां नीचे रहने वाले सभी प्राणियों पर वह अपनी कोप-दृष्टि डाल रहा था। हालांकि वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं था। हम सब केवल कुछ देर के लिए समुद्री-तूफान के केंद्र में स्थित शांत इलाके में थे।

'जब बड़े लोग मकान को हुए नुकसान का जायजा ले रहे थे, मैं समुद्र-तट की ओर चल पड़ा। पूरी सड़क पेड़ों की टूटी हुई टहनियों और शाखाओं से भरी हुई थी। उनमें से कुछ तो देवदार की इतनी मोटी शाखाएं थीं जिन्हें कोई वयस्क आदमी भी अकेले नहीं उठा सकता था। चारों ओर छतों की टूटी हुई खपड़ैलें पड़ी थीं। वहां खड़ी कारों के शीशे टूट चुके थे। कुत्तों के रहने का एक घर भी दूर कहीं से उड़कर वहां बीच सड़क पर आ गिरा था। ऐसा लगता था जैसे आकाश में मौजूद किसी सर्वशक्तिमान हाथ ने अपने रास्ते में आई हर चीज को तहस-नहस कर दिया था।

'क' ने मुझे सड़क पर जाते हुए देखा और मेरे पास आ गया।

'तुम कहां जा रहे हो?' उसने पूछा।

'बस, समुद्र-तट पर निगाह डालने जा रहा हूं,' मैंने कहा।

बिना एक और शब्द कहे वह मेरे साथ हो लिया। उसका छोटा-सा सफेद कुत्ता भी हमारे पीछे-पीछे चलने लगा।

'जैसे ही हमें तूफानी हवा के लौटने की आशंका होगी, हम वापस अपने घर चले जाएंगे,' मैंने कहा और 'क' ने स्वीकृति में अपना सिर हिलाया।

'मेरे घर से समुद्र-तट की दूरी लगभग दो सौ गज की थी। समुद्र-तट पर पत्थरों से बनी एक ठोस दीवार-सी मौजूद थी-- दरअसल यह एक बांध जैसा था जिसकी ऊंचाई लगभग मेरे जितनी थी। पानी के किनारे पहुंचने के लिए हमें कुछ सीढ़ियां चढ़नी पड़ती थीं। यही वह जगह थी जहां हम प्रतिदिन खेलने के लिए आया करते थे इसलिए हम दोनों उस जगह के चप्पे-चप्पे से भली-भांति परिचित थे। उस समय उस तूफान के बीचोंबीच के शांत इलाके में पड़ने की वजह से वहां सब कुछ बिलकुल अलग ही किस्म का लग रहा था-- चाहे वह आकाश था, समुद्र का रंग था, लहरों का शोर था, ज्वार-भाटे की गंध थी या समुद्र-तट का पूरा परिदृश्य था।

'कुछ देर तक हम बिना एक-दूसरे से कोई बातचीत किए पत्थरों की उस दीवार पर बैठकर उस पूरे दृश्य को अपनी आँखों से सोखते रहे। हम एक तथाकथित भयावह समुद्री-तूफान के मध्य में थे, किंतु शांत लहरों में जैसे कुछ अजीब-सा छिपा हुआ था। और उस दिन लहरें समुद्र-तट को

बहुत पीछे स्पर्श कर रही थीं, उस बिंदु से भी पीछे जहां वे उथले ज्वार-भाटे के समय समुद्र-तट को छूती थीं। इसलिए समुद्र-तट पर बहुत दूर तक केवल सफेद रेत नजर आ रही थी। यदि हम ध्वस्त जहाजों के किनारे पर आ लगे टुकड़ों को छोड़ दें तो वह पूरी जगह बिना मेज-कुर्सियों वाले किसी बड़े कमरे जैसी लग रही थी।

हम उस पत्थरों की दीवार के दूसरी ओर नीचे उतर गए और लहरों द्वारा वहां ला फेंकी गई चीजों को देखते हुए उस चौड़े समुद्र-तट की रेत पर चलने लगे। वहां रेत पर प्लास्टिक के खिलौने, चप्पलें, शायद कभी किसी मेज-कुर्सी का हिस्सा रहे लकड़ी के टुकड़े, कपड़ों के चिथड़े, अजीब लगने वाली बोतलें और टूटी हुई टोकरियां थीं जिन पर विदेशी भाषा में कुछ लिखा था। रेत पर पड़ी कई अन्य चीजों के मलबे को देखने से यह पता नहीं चल पा रहा था कि दरअसल वह किन चीजों का अवशेष था। ऐसा लग रहा था जैसे वहां ध्वस्त चीजों की बहुत बड़ी दूकान मौजूद हो। वह समुद्री-तूफान इन सभी चीजों को बहुत दूर से उठाकर यहां ले आई होगी। समुद्र-तट की रेत पर चलते हुए जब भी हमारी निगाह किसी असामान्य चीज पर पड़ती तो हम उसे उठाकर हर कोण से देखते। जब हम उसे वापस रेत पर रख देते तो 'क' का कुत्ता आकर उस चीज को अच्छी तरह सूंघता।

'हमें यह करते हुए पांच मिनट से ज्यादा नहीं हुए होंगे जब मुझे यह अहसास हुआ कि अब लहरें हमारे पास तक पहुंचने लगी थीं। बिना किसी आवाज या चेतावनी के अचानक समुद्र ने अपनी लंबी, चिकनी जीभ वहां तक फैला दी थी, जहां मैं खड़ा था। ऐसा नजारा मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा था। हालांकि मैं बच्चा था, पर मैं समुद्र-तट को देखते हुए बड़ा हो रहा था। समुद्र कितना भयावह हो सकता है, यह बात मैं अच्छी तरह जानता था। समुद्र बिना किसी घोषणा के कभी भी बेहद बर्बर तरीके से वार कर सकता था इसलिए सावधानीवश मैं लहरों के समुद्र-तट पर पहुंचने वाली जगह से काफी पीछे था। इसके बावजूद लहरें सरकती-सरकती मेरे खड़े होने की जगह से कुछ ही इंच दूर तक पहुंच गई थीं। और फिर अचानक बिना किसी आवाज के पानी वापस समुद्र में बहुत पीछे लौट गया-- और वहीं रहा।

'जो लहरें मुझ तक आई थीं, वे निरंतर आ रही थीं-- जैसे रेतीले समुद्र-तट को वे हल्के-से धो रही हों। लेकिन मैं यह महसूस कर सकता था कि उन लहरों में कुछ अनिष्ट-सूचक था-- जैसे उन में किसी सरी-सृप की त्वचा की छुअन जैसा कुछ था। और इससे मेरी देह में सिहरन-सी दौड़ गई। जैसे मेरा डर पूरी तरह आधारहीन होते हुए भी पूरी तरह वास्तविक हो। अपने सहज ज्ञान से मैं जान गया कि ये लहरें जैसे जीवित और सक्रिय थीं। जी हां, ये लहरें जीवित और सक्रिय थीं। वे जानती थीं कि मैं वहां मौजूद था और वे मुझे पकड़ लेना चाहती थीं। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई विशाल आदमखोर जंगली जानवर किसी घास के मैदान में घात लगाए बैठा हो, उस पल की प्रतीक्षा करते हुए जब वह छलांग लगाकर मुझे दबोच लेगा और अपने पैने दांतों से मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देगा। मेरा वहां से भाग जाना जरूरी था।

'मैं यहां से जा रहा हूं,' मैंने चिल्ला कर 'क' से कहा। वह समुद्र-तट पर मुझसे शायद दस गज दूर रहा होगा। उसकी पीठ मेरी ओर थी, वह पलथी मारकर रेत पर बैठा हुआ था और किसी चीज को देख रहा था। मुझे पक्का यकीन था कि मैंने बहुत जोर से चिल्लाकर उसे आवाज दी थी, पर लगता था जैसे मेरी आवाज उस तक नहीं पहुंच पाई थी। यह भी हो सकता है कि कुछ देखने

में वह इतना मगन हो गया था कि मेरी आवाज का उस पर कोई असर नहीं हुआ। 'क' तो ऐसा ही था। वह किसी भी काम में इतना डूब जाता था कि बाकी सब कुछ भूल जाता था। या यह भी हो सकता है कि मैं उतनी जोर से नहीं चीख पाया हूंगा जितना मैंने सोचा था। अब मुझे याद आ रहा है कि मुझे अपनी ही आवाज बेहद अजीब-सी लगी थी, जैसे वह मेरी आवाज न होकर किसी और की रही हो।

'फिर मुझे एक तेज गर्जन सुनाई दिया। ऐसा लगा जैसे धरती थरथरा रही हो। दरअसल इस गर्जन को सुनने से ठीक पहले मुझे एक और आवाज सुनाई दी। यह एक विचित्र गड़गड़ाहट थी, जैसे जमीन के किसी छेद में से बहुत सारा पानी तेजी से ऊपर आ रहा हो। यह आवाज कुछ देर तक सुनाई देती रही, फिर बंद हो गई। इसके बाद मुझे वह तेज गर्जन सुनाई दिया। लेकिन उन आवाजों को सुनकर भी 'क' ने मुड़कर नहीं देखा। वह अभी भी रेत पर पलथी मारे बैठा था और अपने पैरों के पास पड़ी किसी चीज को गहरी एकाग्रता से देख रहा था। शायद उसे वह गर्जन सुनाई ही नहीं दिया। मुझे पता नहीं कैसे वह धरती को हिला देने वाला ऐसा भयावह गर्जन भी नहीं सुन पाया। यह अजीब लगता है, पर संभवतः वह ऐसी आवाज रही होगी जिसे केवल मैं ही सुन पाया हूंगा- कोई विशेष प्रकार की आवाज। 'क' के कुत्ते ने भी उस आवाज का कोई संज्ञान नहीं लिया, हालांकि आप जानते हैं कि कुत्ते कितने संवेदनशील होते हैं।

'मैंने खुद से कहा कि मुझे 'क' के पास जाकर, उसे पकड़कर वहां से दूर ले जाना चाहिए। अब केवल यही काम किया जा सकता था। मुझे यह अहसास हो गया था कि एक विशाल लहर हमारी ओर आ रही थी, जबकि 'क' इस बात से अनभिज्ञ था। हालांकि मेरे जहन में यह बात स्पष्ट थी कि ऐसे समय में मुझे क्या करना चाहिए था, पर मैंने खुद को अकेले ही पूरी गति से उलटी दिशा में भागता हुआ पाया-- पत्थरों की दीवार की ओर। मुझे पक्का यकीन है कि मैंने डर जाने की वजह से ऐसा काम किया होगा-- एक ऐसा डर जिसने मेरे जहन को जकड़कर मेरी आवाज मुझसे छीन ली थी और मेरे पैरों को अपने-आप गतिमान बना दिया था। मैं तट की नरम रेत में धंसते-गिरते किसी तरह पत्थरों की दीवार तक पहुंच गया। वहां पहुंचकर मैं पीछे मुड़ा और मैंने चिल्लाकर 'क' का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहा।

'भाग 'क'! वहां से जल्दी निकल! एक बहुत बड़ी लहर आ रही है!' इस बार मेरी आवाज की तीव्रता सही थी। मैंने पाया कि गर्जन अब बंद हो चुका था, और अब अंत में 'क' ने मेरे चिल्लाने की आवाज सुन ली और ऊपर देखा। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। डंसने के लिए अपना फन काढ़े किसी विशाल सर्प जैसी एक बड़ी लहर समुद्र-तट की ओर दौड़ी चली आ रही थी। मैंने अपने जीवन में ऐसी भयावह चीज पहले कभी नहीं देखी थी। वह लहर किसी तिमंजिला इमारत जितनी ऊंची थी। बिना किसी आवाज के (कम-से-कम मेरी स्मृति में उसकी छवि बेआवाज है) वह विशाल लहर 'क' के पीछे उठ खड़ी हुई और उसने आकाश को ढंक लिया। 'क' कुछ पलों तक मेरी ओर देखता रहा, जैसे उसे कुछ भी समझ नहीं आया हो। फिर, जैसे उसे कुछ महसूस हुआ हो, वह लहर की ओर मुड़ा। उसने विपरीत दिशा में दौड़ने की कोशिश की पर अब दौड़ने का समय नहीं बचा था। अगले ही पल वह दैत्याकार लहर उसे साबुत निगल चुकी थी। वह लहर उससे इतनी तेज गति से टकराई जैसे वह पूरी रफ्तार से दौड़ रही किसी रेल-गाड़ी का इंजन हो।

'वह लहर समुद्र-तट से टकरा कर लाखों छोटी-छोटी लहरों में बदल गई। वे लहरें हवा में उछलीं और पत्थरों की दीवार के ऊपर वहां से निकल गईं जहां मैं खड़ा था। लहरों की मार से बचने के लिए मुझे नीचे झुककर उस दीवार से चिपकना पड़ा। मेरे सारे कपड़े भीग गए, पर और कुछ नहीं हुआ। मैं उठ कर पत्थरों की उस दीवार पर चढ़ गया। और मैंने दूर तक समुद्र-तट का मुआयना किया। तब तक वह लहर मुड़ चुकी थी और एक वहशी आवाज के साथ वापस समुद्र में लौट रही थी। यह सब ऐसा था जैसे धरती के दूसरे कोने पर मौजूद किसी अति-शक्तिशाली हाथ ने किसी बहुत बड़ी कालीन को झटककर अपनी ओर खींच लिया हो। मुझे समुद्र-तट पर कहीं भी 'क' या उसके कुत्ते का कोई चिह्न नजर नहीं आया। वहां केवल भीगी हुई खाली रेत पड़ी थी। वापस लौटती हुई उस लहर ने इतना ज्यादा पानी अपने साथ पीछे खींच लिया था कि ऐसा लग रहा था जैसे समुद्र का पूरा तल नजर आ रहा हो। मैं पत्थरों की उस दीवार पर भौंचक्का-सा खड़ा था।

'पूरे परिदृश्य पर स्तब्धता छा गई थी-- चारों ओर एक भयंकर चुप्पी थी, जैसे किसी ने सारी आवाजों को धरती से उखाड़ फेंका हो। वह दैत्याकार लहर 'क' को निगलकर दूर कहीं गायब हो गई थी। मैं वहां सन्न-सा खड़ा था। क्या करूं, कुछ सूझ ही नहीं रहा था। क्या मैं दोबारा समुद्र-तट पर जाऊं? संभवतः 'क' वहीं कहीं रेत में दबा पड़ा हो... पर मैंने पत्थरों की दीवार के उस पार नहीं जाने का फैसला किया। अपने अनुभव से मैं जानता था कि दैत्याकार लहरें अकसर दो या तीन के समूहों में आती थीं। मुझे नहीं पता, कितना समय बीता होगा-- शायद वे भयावह खालीपन के दस या बीस सेकेंड रहे होंगे। तभी जैसा मैंने अनुमान लगाया था, अगली दैत्याकार लहर आ गई। एक और भयावह आवाज से समुद्र-तट कांप उठा, और उस आवाज के मंद पड़ते ही सर्प जैसी एक दैत्याकार लहर डंसने के लिए उठ खड़ी हुई। उस बेहद ऊंची लहर ने आकाश को ढंक लिया, गोया वह कोई भयावह, खड़ी चट्टान हो लेकिन इस बार मैं भागा नहीं। मैं जैसे सम्मोहित-सा उस लहर के हमले की प्रतीक्षा में पत्थरों की उस दीवार से चिपका खड़ा रहा। अब भागने से क्या फायदा होने वाला था, मैंने सोचा, जबकि मेरे मित्र 'क' को साबुत निगल लिया गया था। या शायद मैं भय की वजह से वहीं जड़ हो गया था। मुझे पक्का पता नहीं कि वह क्या चीज थी जिसने मुझे वहीं खड़ा रखा।

'दूसरी लहर भी पहली लहर जैसी दैत्याकार थी-- शायद वह पहली लहर से भी बड़ी थी। मेरे सिर के बहुत ऊपर से वह नीचे गिरने लगी। वह अपना आकार ऐसे खोने लगी जैसे ईंटों की कोई बहुत ऊंची दीवार धीरे-धीरे ढहने लगती है। वह लहर इतनी विशाल थी कि अब वह किसी वास्तविक लहर जैसी नहीं लग रही थी। जैसे वह कोई और ही चीज हो-- दूर-दराज की किसी और ही दुनिया से आई हुई कोई और ही चीज, जिसने एक विराट् लहर का रूप धारण कर लिया था। मैं खुद को उस पल के लिए तैयार करने लगा जब अँधेरा मुझे अपने आगोश में ले लेगा। मैंने अपनी आँखें भी बंद नहीं की। मुझे याद है, एक अविश्वसनीय स्पष्टता के साथ मैं अपने हृदय की धमक को सुन सकता था।

'जिस पल वह दैत्याकार लहर मेरे सामने आई, वह अचानक जैसे रुक-सी गई। ऐसा लगा जैसे उस लहर ने अपनी सारी ऊर्जा खो दी थी, आगे बढ़ने की अपनी गति खो दी थी, और अब वह केवल वहां मंडराते हुए चुपचाप ढह रही थी। और उस लहर के शिखर पर, उसकी क्रूर, पारदर्शी जीभ पर

मुझे 'क' मौजूद दिखा।

'आप में से कुछ इसे अविश्वसनीय और असम्भव कहेंगे। यदि ऐसा हुआ तो मैं आपको दोष नहीं दूंगा। स्वयं मेरे लिए आज भी इस सच्चाई को स्वीकार कर पाना मुश्किल है। मैं इससे ज्यादा अच्छी तरह से आपको नहीं बता सकता कि मैंने उस लहर में क्या देखा। लेकिन वह मेरा भ्रम कतई नहीं था। उस पल वहां क्या हुआ था यह मैं आपको पूरी ईमानदारी से बता रहा हूं। यह वाकई हुआ था। उस लहर की जिह्वा के आगे के हिस्से पर 'क' की एक ओर झुकी हुई देह उतरा रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी पारदर्शी खोल में पड़ा हुआ था लेकिन केवल यही बात नहीं थी। 'क' जैसे मुस्कुराते हुए सीधा मेरी ओर ही देख रहा था। वहां, ठीक मेरे सामने-- इतने करीब कि मैं हाथ बढ़ाकर उसे छू लूं-- मेरा मित्र, मेरा प्रिय मित्र 'क' मौजूद था। वह 'क' जिसे कुछ ही पल पहले एक दैत्याकार लहर निगलकर अपने साथ ले गई थी। और मेरा वह मित्र मेरी ओर देखकर जैसे मुस्कुरा रहा था लेकिन वह सामान्य मुस्कान नहीं थी। वह एक बेहद चौड़ी मुस्कान थी। और उसकी ठंडी, जमी हुई आँखें मुझ पर केंद्रित थीं। वह जैसे मेरा परिचित मित्र 'क' नहीं था। और उसके दोनों हाथ मेरी दिशा में फैले हुए थे, जैसे वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने पास खींच लेता लेकिन मुझे पकड़ने से चूक जाने पर उसने मुझे एक बार और पहले से भी ज्यादा चौड़ी मुस्कान दी।

'लगता है, यह देखकर मैं बेहोश हो गया था। जब मुझे होश आया तो मैं अपने पिता के चिकित्सालय में बिस्तर पर पड़ा था। जैसे ही मुझे होश आया, नर्स मेरे पिता को बुलाने के लिए भागी। मेरे पिता दौड़ते हुए मेरे पास आए। उन्होंने मेरी नब्ज जांची, मेरी आँखों की पुतलियों का मुआयना किया और मेरे माथे पर अपना हाथ रखा। मैंने अपनी बांह हिलानी चाही पर मैं ऐसा नहीं कर सका। मुझे तेज बुखार था और मेरा मन-मस्तिष्क उस भयावह घटना के आघात से संतप्त था। जाहिर है, तेज बुखार से जूझते हुए मुझे कुछ दिन हो चुके थे।

'तुम पिछले तीन दिनों से सोए हुए थे,' मेरे पिता ने मुझसे कहा। उस पूरे दृश्य को देखने वाले हमारे एक पड़ोसी ने मुझे समुद्र-तट से उठाकर घर पर पहुंचाया था। बहुत ढूंढ़ने पर भी उन्हें 'क' का कोई नामो-निशान नहीं मिला। मैं अपने पिता से कुछ कहना चाहता था। मुझे उनसे कुछ कहना ही था। लेकिन मेरी सुन्न और सूजी हुई जीभ शब्दों को स्वर नहीं दे सकी। मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा मुंह किसी जीव की गिरफ्त में था। मेरी यह हालत देखकर मेरे पिता ने मुझसे मेरा नाम पूछा लेकिन इससे पहले कि मैं वह याद कर पाता, अँधेरे ने मुझे अपने आगोश में ले लिया। मैं फिर से बेहोश हो गया।

'मैं लगभग एक हफ्ते तक बिस्तर पर पड़ा रहा। इस दौरान मुझे केवल द्रव वाला पथ्य ही दिया गया। मुझे कई बार उल्टी हुई और मुझे प्रलाप के दौरे पड़ते। बाद में मेरे पिता ने बताया कि मेरी हालत बहुत खराब थी। वे डर गए थे कि कहीं इस सदमे और तेज बुखार की वजह से मेरी तंत्रिकाएं स्थायी रूप से क्षति-ग्रस्त न हो जाएं। जैसे-तैसे मैं शारीरिक रूप से दोबारा ठीक हो गया। पर मेरा जीवन अब पहले जैसा नहीं रहा। इस घटना ने मुझे बुरी तरह हिला दिया।

'उन्हें 'क' का शव कभी नहीं मिला। न ही उन्हें उसके कुत्ते की लाश ही मिली। आम तौर पर जब उस इलाके में डूबने से किसी की मौत हो जाती तो कुछ दिनों के बाद समुद्र-तट पर पूर्व की ओर मौजूद खाड़ी के मुहाने के पास उसका शव उतराता हुआ दिख जाता। किंतु 'क' का शव

वहां कभी नहीं पहुंचा। दरअसल वे दैत्याकार लहरें उसके शव को दूर कहीं गहरे समुद्र में ले गई थीं। इतनी दूर कि वहां से वह शव समुद्र-तट तक नहीं लौट सकता था। जरूर उसकी देह डूबकर समुद्र-तल पर पहुंच गई होगी जहां वह मछलियों का निवाला बन गई होगी। स्थानीय मछुआरों की मदद से 'क' के शव की खोज बहुत समय तक चलती रही, पर अंत में सब थक-हारकर बैठ गए। शव के बिना कभी उसे विधिवत् दफ्न नहीं किया जा सका। अर्द्ध-विक्षिप्त हो गए उसके माता-पिता हर दिन समुद्र-तट पर इधर-उधर भटकते रहते। या फिर वे कई-कई दिनों तक अपने घर में बंद हो कर निरंतर बौद्ध-सूत्रों का पाठ करते रहते।

'हालांकि 'क' के माता-पिता के लिए उसकी मृत्यु एक असहनीय आघात थी, उन्होंने कभी मुझे इस बात के लिए नहीं डांटा कि मैं उनके बेटे को समुद्री-तूफान के बीच में समुद्र-तट पर क्यों ले गया था। वे जानते थे कि मैं हमेशा 'क' को मुसीबतों से बचाता था, और उससे इतना प्यार करता था जैसे वह मेरा सगा छोटा भाई हो। लेकिन मुझे तो सच्चाई पता थी। मैं जानता था कि यदि मैं कोशिश करता तो उसे बचा सकता था। संभवतः मैं दौड़ कर उसे पकड़ सकता था और घसीटकर उसे उस दैत्याकार लहर के चंगुल से दूर किनारे पर सुरक्षित ला सकता था। हालांकि यह काफी नजदीकी मामला होता, लेकिन मैं जब उस पूरे घटना-क्रम की समयावधि को स्मृति में दोहराता तो मैं हमेशा इसी नतीजे पर पहुंचता कि मैं 'क' को बचा सकता था। जैसा मैंने पहले भी कहा था, बहुत ज्यादा डर जाने के कारण मैंने उसे मरने के लिए वहीं छोड़ दिया और केवल खुद को बचाने पर ही पूरा ध्यान दिया। मुझे इस बात से और भी दुःख पहुंचता कि 'क' के माता-पिता ने मुझे दोषी नहीं ठहराया था। बाकी लोगों ने भी सावधानी बरतते हुए कभी भी मुझसे इस बात का जिक्र नहीं किया कि उस दिन समुद्र-तट पर क्या हुआ था। इस भावनात्मक आघात से उबरने में मुझे बरसों लग गए। कई हफ्तों तक मैं स्कूल भी नहीं जा पाया। इस दौरान मैं बहुत कम खाता-पीता था, और सारा दिन बिस्तर पर पड़े हुए छत को घूरता रहता था।

'क' की वह अंतिम छवि मेरे मन-मस्तिष्क में सदा के लिए अंकित हो गई-- उस दैत्याकार लहर की जिह्वा के आगे के हिस्से पर लेटा, मेरी ओर देखकर मुस्कुराता और मेरी दिशा में अपने दोनों हाथ फैला कर इशारा करता 'क'। मैं जहन पर दाग दी गई उस छवि से कभी मुक्त नहीं हो पाया। और बड़ी मुश्किल से जब मुझे नींद आती तो वह छवि सपनों में भी मुझे पीड़ित करती बल्कि मेरे सपनों में 'क' उस दैत्याकार लहर से कूदकर मेरी कलाई पकड़ लेता ताकि वह मुझे घसीटकर अपने साथ वापस उस लहर में ले जा सके।

'और फिर एक और सपना आया। मैं समुद्र में तैर रहा हूं। वह ग्रीष्म ऋतु का एक सुंदर दिन है और तट से दूर मैं आसानी से तैर रहा हूं। मेरी पीठ पर धूप पड़ रही है, और मुझे पानी में तैरने में मजा आ रहा है। तभी अचानक पानी में कोई मेरा दायां पैर पकड़ लेता है। मुझे अपने टखने पर एक बर्फीली जकड़ महसूस होती है। वह जकड़ इतनी मजबूत होती है कि मैं उससे नहीं छूट पाता हूं। अब कोई मुझे पानी में नीचे घसीटकर लिए जा रहा है। और वहां मुझे 'क' का चेहरा दिखाई देता है। उसके चेहरे पर वही चौड़ी मुस्कान है और वह मुझे घूर रहा है। मैं चीखना चाहता हूं पर मेरे गले से कोई आवाज नहीं निकल रही। घबराहट में मैं ढेर-सा पानी निगलने लगता हूं जिससे मेरे फेफड़ों में समुद्र का पानी भरने लगता है। ठीक इसी समय मेरी नींद खुल जाती है। अँधेरे में मैं पसीने से लथपथ

हूं और मेरी सांस चढ़ी हुई है। डर के मारे मैं चीख रहा हूं।

'आखिर साल के अंत के समय मैंने अपने माता-पिता से गुहार लगाई कि वे मुझे किसी दूसरे शहर में जाकर बसने की इजाजत दें। मैं लगातार उस समुद्र-तट को देखते हुए नहीं जी सकता था जहां वह दैत्याकार लहर 'क' को लील गई थी। मेरे दुःस्वप्न रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। यदि मैं वहां से कहीं और नहीं जाता तो मेरे दुःस्वप्न मुझे पागल बना देते। मेरे माता-पिता मेरी स्थिति को समझ गए और मेरा कहीं और रहने का बंदोबस्त कर दिया। जनवरी में मैं कोमोरो इलाके के नगाना शहर के पास स्थित एक पहाड़ी गांव में अपने पिता के परिवार के पास रहने के लिए चला आया। मैंने प्राथमिक स्कूल की अपनी शिक्षा नगानो में ही पूरी की। मैं अपने माता-पिता के पास वापस कभी नहीं गया, छुट्टियों में भी नहीं बल्कि अकसर मेरे माता-पिता ही मुझसे मिलने मेरे पास चले आते।

'आज भी मैं नगानो में ही रहता हूं। मैंने नगानो शहर के एक शिक्षण संस्थान से ही अभियांत्रिकी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। मैं इसी इलाके में सूक्ष्म औजार और उपकरण बनाने के एक कारखाने में काम करने लगा। आज भी मैं यहीं नौकरी करता हूं। जैसा कि आप देख सकते हैं, मेरे जीवन में कुछ भी असामान्य नहीं। हालांकि मैं ज्यादा लोगों से नहीं घुलता-मिलता हूं, लेकिन मेरे भी कुछ मित्र हैं जिनके साथ मैं घूमने के लिए पहाड़ पर जाता हूं। जब मैं अपने बचपन के शहर से दूर चला गया तो मुझे निरंतर आने वाले दुःस्वप्न बेहद कम हो गए, हालांकि वे मेरे जीवन का हिस्सा बने रहे। अब ये दुःस्वप्न मुझे यदा-कदा ही आते, जैसे वे दरवाजे पर खड़े कारिंदे हों। जब मैं उस त्रासद घटना को लगभग भूलने लगता, तभी यह दुःस्वप्न मुझे फिर से उस घटना की याद दिला जाता। और हर बार वही सपना होता, अपने एक-एक ब्योरे में बिलकुल पहले जैसा और पसीने से लथपथ मैं उसी तरह चीखता हुआ नींद से जग जाता।

'शायद इसी वजह से मैंने कभी शादी नहीं की। मैं अपने बगल में सोने वाली किसी युवती को बीच रात में अपनी चीखों की वजह से जगा कर परेशान नहीं करना चाहता था। इन बरसों के दौरान मुझे कई युवतियों से प्यार हुआ, किंतु मैंने कभी उनमें से किसी के साथ भी रात नहीं बिताई। उस घटना से उपजा भय तो मेरी हड्डियों में बस गया था। यह एक ऐसी बात थी जिसे मैं कभी किसी से साझा नहीं कर सका।

'मैं चालीस बरस से ज्यादा समय तक अपने बचपन के शहर से दूर रहा। मैं उस या अन्य किसी भी समुद्र-तट पर फिर कभी नहीं गया। मैं डरता था कि यदि मैंने ऐसा किया तो मेरा दुःस्वप्न कहीं हकीकत में न बदल जाए। तैराकी मुझे हमेशा से अच्छी लगती थी लेकिन बचपन की उस घटना के बाद मैं कभी किसी तरण-ताल में भी नहीं गया। नदियों और गहरी झीलों में जाने का सवाल ही नहीं उठता था। मैं नाव पर चढ़ने से भी कतराता था। यहां तक कि मैंने विदेश जाने के लिए कोई विमान-यात्रा भी नहीं की। सभी तरह के बचाव करने के बाद भी मैं दुःस्वप्न में आते अपने डूबने की छवि से मुक्त नहीं हो पाया। 'क' के ठंडे हाथों की तरह ही इस भयावह पूर्वाभास ने मेरे जहन को जकड़ लिया और छोड़ने से इनकार कर दिया।

'फिर पिछली वसंत ऋतु में मैं अंततः उस समुद्र-तट पर दोबारा गया जहां बरसों पहले दैत्याकार लहर ने 'क' को मुझसे छीन लिया था।

'एक साल पहले कैंसर की वजह से मेरे पिता की मृत्यु हो गई थी और मेरे भाई ने हमारा वह पुश्तैनी घर बेच दिया था। कुछ बंद संदूकों को खोलने पर उसे मेरे बचपन की कई चीजें मिली थीं, जिन्हें उसने मेरे पास नगानो भेज दिया था। अधिकांश चीजें तो बेकार का कबाड़ थीं, लेकिन उसमें खूबसूरत चित्रों का एक गट्ठर भी था जिन्हें 'क' ने बनाया था और मुझे तोहफे में दिया था। शायद मेरे माता-पिता ने उसे 'क' की निशानी के रूप में मेरे लिए संजोकर रखा। किंतु उन चित्रों ने मेरे पुराने भय को पुनः जीवित कर दिया। उन चित्रों को देखकर मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे 'क' की आत्मा मुझे सताने के लिए लौट आएगी इसलिए मैंने उन तसवीरों को दोबारा बांध कर रख दिया। मेरा इरादा उन्हें कहीं फेंक देने का था। हालांकि, मैं ऐसा नहीं कर सका। कई दिनों तक अनिश्चितता के भंवर में उतराते रहने के बाद मैंने उन तसवीरों को दोबारा खोलकर उन्हें ध्यान से देखने का मन बनाया।

'उनमें से अधिकांश तसवीरें तो जाने-पहचाने भू-दृश्यों की थीं। इनमें समुद्र-तट और देवदार के जंगल भी थे। सभी तसवीरें स्पष्टता से एक विशिष्ट रंग-चयन को दर्शाती थीं, जो 'क' की चित्रकारी की खासियत थी। बरसों बीत जाने के बाद भी उनका चटख रंग बरकरार था और उन्हें बेहद बारीकी और कुशलता से बनाया गया था। जैसे-जैसे मैं ये तसवीरें पलटता गया, 'क' की स्निग्ध यादों ने मुझे घेर लिया। ऐसा लग रहा था जैसे 'क' अब भी अपनी तसवीरों में मौजूद था और अपनी स्नेहिल आँखों से दुनिया को देख रहा था। जो चीजें हम साथ-साथ करते थे, जिन जगहों पर हम साथ-साथ घूमते थे-- ये सारे पल बड़ी शिद्दत से मुझे दोबारा याद आने लगा। और मैं समझ गया कि मैं भी दुनिया को वैसी ही स्नेहिल आँखों से देखता था जैसी मेरे मित्र 'क' के पास थीं।

अब मैं हर रोज काम के बाद शाम को घर लौटने पर 'क' की एक तसवीर का अपनी मेज पर ध्यान से अध्ययन करता। मैं उस की बनाई किसी तसवीर को देखते हुए घंटों बैठा रहता। उन में से हर तसवीर में मुझे अपने बचपन के वे सुंदर भू-दृश्य दिखाई देते थे जिन्हें अब मैं भूल चुका था। 'क' की बनाई उन तसवीरों को देखते हुए मुझे ऐसा अहसास होने लगा था जैसे कोई जानी-पहचानी चीज मेरी धमनियों और शिराओं में घुलती जा रही है।

'शायद एक हफ्ता ऐसे ही निकल गया होगा जब एक शाम अचानक मेरे जहन में यह विचार कौंधा कि कहीं इतने बरसों में मैं एक बहुत बड़ी गलती तो नहीं कर रहा था। जब 'क' उस दैत्याकार लहर की जिह्वा पर लेटा था, तो वह निश्चित ही घृणा या क्रोध से मुझे नहीं देख रहा था। वह मुझे अपने साथ घसीटकर नहीं ले जाना चाहता था। और मुझे घूरते हुए उसने जो चौड़ी मुस्कान दी थी, वह भी संभवतः प्रकाश और छाया के किसी कोण का नतीजा थी। यानी 'क' जानबूझकर ऐसा नहीं कर रहा था। तब तक तो शायद वह बेहोश हो चुका था, या यह भी संभव है कि वह हमारी चिरकालिक जुदाई की वजह से मुझे एक उदास मुस्कान दे रहा था। मैंने उसकी आँखों में जिस गहरी घृणा की कल्पना की थी, वह जरूर उस अथाह भय का नतीजा थी जिसने उस पल मुझे जकड़ लिया था।

उस शाम मैंने जितना ज्यादा 'क' के चित्रों का अध्ययन किया, उतने ही अधिक विश्वास से मैं अपनी नई सोच में यकीन करने लगा। ऐसा इसलिए था क्योंकि 'क' के चित्रों को देर तक देखते रहने के बाद भी मुझे उनमें केवल एक बच्चे की कोमल और मासूम आत्मा ही नजर आई।

'मैं बहुत देर तक बैठ कर मेज पर पड़े 'क' के चित्रों को उलटता-पलटता रहा। मैं और कुछ नहीं कर सका। बाहर सूर्यास्त हो गया और शाम का फीका अँधेरा कमरे में भरने लगा। उसके बाद रात का गहरा सन्नाटा आया, जैसे वह सदा के लिए हो। पर आखिर रात बीत गई और पौ फटने लगी। नए दिन के सूर्योदय ने आकाश को गुलाबी रंग में रंग दिया और चिड़ियां जगकर गीत गाने लगीं।

'तब मैं जान गया कि मुझे जरूर वापस जाना चाहिए।

'मैंने एक थैले में अपनी कुछ चीजें डालीं, अपने दफ़्तर को अपनी अनुपस्थिति के बारे में सूचित किया, और अपने बचपन के शहर जाने वाली रेलगाड़ी में जा बैठा।

'वहां पहुंचने पर मुझे अपनी स्मृति में मौजूद समुद्र-तट पर बसा शांत शहर नहीं मिला। साठ के दशक के तेज विकास के दौरान पास में ही एक औद्योगिक शहर बस गया था, जिससे पूरे इलाके में बहुत से बदलाव आ गए थे। उपहार का सामान बेचने वाली एक छोटी-सी दुकान अब एक बड़े मॉल में परिवर्तित हो चुकी थी। शहर का एकमात्र सिनेमा-घर अब एक बड़े बाजार में बदल चुका था। मेरे मकान का अस्तित्व समाप्त हो चुका था। कुछ माह पहले उसे ध्वस्त कर दिया गया था, और अब वहां नाम-मात्र के अवशेष रह गए थे। अहाते में उगे सारे पेड़ काट दिए गए थे और अब वहां झाड़-झंखाड़ ही बचे थे। 'क' का पुराना मकान भी अपना अस्तित्व खो चुका था और अब वहां कारें रखने की जगह बना दी गई थी। ऐसा नहीं है कि मैं बेहद भावुक हो गया था। यह शहर तो बरसों पहले से मेरा नहीं रहा था।

'मैं चलकर समुद्र-तट पर पहुंचा। फिर मैं पत्थरों की दीवार पर जा चढ़ा। हमेशा की तरह दूसरी ओर विशाल अबाधित समुद्र दूर तक फैला था जहां क्षितिज एक अटूट सीधी रेखा था। समुद्र-तट भी पहले जैसा ही था-- ढेर-सी रेत, छोटी-बड़ी लहरें, और पानी के किनारे टहलते हुए बहुत-से लोग। दोपहर बाद के चार बज रहे थे, और पश्चिमी क्षितिज की ओर बढ़ते ध्यानस्थ सूर्य की कोमल रोशनी उस ढलती दुपहरी में जैसे सबको गले लगा रही थी। मैंने अपना थैला रेत पर रखा और उस शांत परिदृश्य को सराहते हुए वहीं बगल में बैठ गया। इस शांत भू-दृश्य को देखते हुए यह कल्पना करना कठिन था कि कभी यहां एक भयावह समुद्री-तूफान आया था, कि एक दैत्याकार लहर यहीं मेरे प्रिय मित्र 'क' को निगल गई थी। निश्चित ही उस त्रासद घटना को याद रखने वाला कोई और नहीं बचा था। ऐसा लगने लगा जैसे यह सारी घटना भ्रामक थी जिसे मैंने अपने सपने में विस्तार से देखा था।

'और तब मैंने महसूस किया कि इस घटना से जुड़ी मेरे भीतर मौजूद सारी नकारात्मक कालिमा जैसे सदा के लिए गायब हो गई थी। यह अचानक हुआ था। वह नकारात्मकता जैसे अचानक आई थी, वैसे ही अचानक चली गई थी। मैं रेत पर से उठ खड़ा हुआ। बिना अपने जूते उतारे या नीचे से अपनी पतलून मोड़े, मैं फेन भरे पानी में चला गया ताकि लहरें मेरे टखनों को धो सकें। ऐसा लगा जैसे मेरे बचपन में समुद्र-तट पर आने वाली लहरें ही अब मेल-मिलाप के माहौल में मेरे पैरों, जूतों और पतलून के निचले हिस्से को स्नेह से भिगो रही थीं। एक लहर धीमी गति से आती, फिर एक लंबा विराम होता, जिसके बाद एक और लहर उसी धीमी गति से आती। बगल से गुजरते लोग मुझे मुझे अजीब निगाहों से देख रहे थे, पर मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। आखिरकार मेरे मन

को दोबारा शांति मिल गई थी।

'मैंने ऊपर आकाश की ओर देखा। कपास के टुकड़ों जैसे कुछ सफेद बादल वहां बिना-हिले-डुले लटके हुए थे। मुझे ऐसा लगा जैसे वे मेरे लिए ही वहां पड़े हुए थे, हालांक मैं यह नहीं जानता कि मुझे ऐसा क्यों लगा। मुझे वह घटना याद आई जब बरसों पहले मैंने इसी तरह अपनी आँखें ऊपर उठाकर आकाश में उस भयावह समुद्री-तूफान के केंद्र को ढूंढ़ना चाहा था। और तब जैसे मेरे भीतर समय का अक्स तेजी से हिल उठा। चालीस लम्बे साल किसी खंडहर हो चुकी इमारत-से नष्ट हो गए। ऐसा लगा जैसे अतीत और वर्तमान आपस में गुंथकर गड्ड-मड्ड हो गए। सभी आवाजें मंद पड़ गईं और मेरे चारों ओर मौजूद रोशनी जैसे थरथराई। मैं अपना संतुलन खो बैठा और लहरों में गिर गया। मेरे दिल की धड़कन धौंकनी-सी चल रही थी, पर मेरे हाथ-पैरों में कोई अनुभूति नहीं रही। मैं बहुत देर तक औंधे मुंह लहरों में गिरा पड़ा रहा और नहीं उठ पाया। लेकिन मैं भयभीत नहीं था। नहीं, बिलकुल नहीं। अब मैं किसी चीज से नहीं डर रहा था। वह समय अब जा चुका था।

'अब मुझे वे दुःस्वप्न आने बंद हो गए हैं। अब मैं बीच रात में चीखते हुए नहीं उठता हूं। और अब मैं बिना किसी भय के अपना जीवन नए सिरे से दोबारा जीने का प्रयास कर रहा हूं। नहीं, मैं जानता हूं कि शायद अब नए सिरे से दोबारा जीवन जीने के लिए बहुत देर हो चुकी है। शायद अब मेरे जीने के लिए ज्यादा बरस भी नहीं बचे हों। देर से ही सही, पर मैं कृतज्ञ हूं कि अंत में मैं अपने भय से मुक्त हो सका, दोबारा संभल सका। हां, मैं कृतज्ञ हूं। यह भी हो सकता था कि बिना भय-मुक्ति के ही मेरे जीवन का अंत हो जाता और अँधकारमय भय की कुंडली में मैं चीखता-चिल्लाता रह जाता।'

इतना कहकर सातवां आदमी चुप हो गया और बारी-बारी से उसने हम सबकी ओर देखा। हम सब बिना हिले-डुले, बिना कुछ बोले बैठे रहे, जैसे हम सब सांस लेना भी भूल गए हों। हम सब कहानी के पूरे होने की प्रतीक्षा में बैठे थे। बाहर हवा थम गई थी और कहीं कुछ भी हिल-डुल नहीं रहा था। सातवां आदमी दोबारा अपने हाथ को अपनी कमीज के कॉलर तक ले गया जैसे वह बोलने के लिए शब्द ढूंढ़ रहा हो।

फिर उसकी आवाज हवा में गूंज उठी- 'वे कहते हैं कि आपको केवल अपने भय से डरना चाहिए, लेकिन मैं यह नहीं मानता।' एक पल रुककर वह फिर बोला-- 'डर तो लगता ही है। वह अलग-अलग समय पर कई रूपों में हम पर हावी हो जाता है। ऐसे समय में जो सबसे डरावनी बात हम कर सकते हैं वह यह है कि हम अपनी आँखें मूंद लें या उसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हों। तब हम अपने भीतर की सबसे कीमती चीज को 'कुछ और' के हवाले कर देते हैं। मेरे मामले में 'कुछ और' वह दैत्याकार लहर थी।'

●

जर्मनी

अदृश्य संग्रह

(जर्मनी में महंगाई के दौर का एक वाकया)

मूल : स्टीफन स्वाइग
अनुवाद : ओमा शर्मा

ड्रेसडेन के बाद वाले पहले स्टेशन पर एक बुजुर्गवार हमारे डिब्बे में घुसे, सबको देख मुस्काए और मेरी तरफ खास तवज्जो से सिर हिलाया जैसे कोई पुरानी पहचान हो। मेरे चेहरे को उड़ता देख उसने अपना नाम बतलाया। अरे, उसे तो मैं खूब जानता था! वह बर्लिन का सबसे मशहूर पारखी और कला-विक्रेता था। जंग से पहले मैंने अकसर उसकी दुकान से ऑटोग्राफ और नायाब किताबें खरीदी थीं। वह मेरे सामने की खाली सीट पर बैठ गया और कुछ देर तक यूं ही इधर-उधर की बातें करने लगा। फिर बातों का रुख मोड़ते हुए वह बतलाने लगा कि वह कहां से क्या करके लौट रहा है। उसने बताया कि पिछले सैंतीस सालों से कला का कारोबार करते उसे ऐसा अजीब तजुर्बा पहले कभी नहीं हुआ। चलिए, उसका तार्रुफ बहुत हो गया। मैं अब आपको उसकी कहानी उसी की जुबानी बिना कोई टीका-बिंदी लगाए बता रहा हूं।

'आप जानते हो जब से पैसे के मोल ने खड्डे की राह पकड़ी है तब से मेरे कारोबार में क्या हो रहा है?' उसने कहा। जंग के मुनाफाखोरों को पुराने उस्तादों (मैडोना जैसे दूसरे) का स्वाद यूं लग गया है कि वे उनसे फर्नीचर और पालनों को सजाते हैं। उनकी मांग पूरी करना मुश्किल है। मेरे जैसा आदमी जो सबसे बढ़िया चीजों को खुद के इस्तेमाल और आनंद के लिए सहेजकर रखता है, उसके लिए भी मुश्किल होता जा रहा है कि घर का क्या कुछ न निकाल दिया जाए। उनका बस चले तो वे मेरी कमीज की कफलिंक और लिखने की मेज का लैम्प भी खरीद डालें। बेचने लायक कोई माल ढूंढना मुश्किल हो रहा है। माफ करना, मैं तुम्हारे सामने 'माल' शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूं। लेकिन यह मैंने इधर के नए ग्राहकों से सुना है। कैसी दुष्ट बात है कि सदियों पहले वेनिश की किसी प्रेस में छपी एक नायाब किताब को मैं ऐसे ही देखने लगा हूं जैसे कोई शोहदा किसी ओवरकोट को देखता है... अलां-फलां सौ डॉलर... और गुएरचीनों के जीवंत स्कैच का मोल भी कुछ हजार नोटों से ज्यादा कुछ नहीं।

अपने लालच में इन लोगों के पैसा फूंकने की लगी रहती है। कल रात मैं अपनी दुकान का मुआइना कर रहा था तो मुझे लगा कि मेरे पास बेचने लायक कुछ खास रहा ही नहीं है जिसका

कोई मोल हो और जिसके लिए दुकान खुली रखनी पड़े। मेरे बाप-दादा का शुरू किया यह कारोबार पहले क्या खूब रवां हुआ करता था। और अब तो इस दुकान में ऐसा कबाड़ आ पसरा है जिसे सन 1914 से पहले कोई फेरीवाला भी हाथ न लगाता।

इस कशमकश में मैं अपनी पुरानी बही के कुछ पन्ने पलट रहा था। मेरा खयाल था कि जिन ग्राहकों ने खुशहाली के दिनों में चीजें खरीदी हैं, शायद अब वे उन्हें बेचना चाहें। इस तरह के खरीददारों की फेहरिस्त, जंग के मैदान में अटी पड़ी लाशों जैसी लगती है। और बहुत जल्द मुझे महसूस हुआ कि अपनी फर्म के गुलाबी दिनों के खरीददार या ग्राहक या तो मर-खप गए होंगे या ऐसी खस्ताजान हालत में होंगे कि उनके पास जो भी कुछ मोल लायक होगा, पहले ही निकाल बेचा होगा। इसी दरम्यान मुझे एक आदमी की चिट्ठियों का पुलिंदा हाथ लगा जो शायद सबसे बूढ़ा होगा, बशर्ते जिन्दा हो। लेकिन वह इतना बूढ़ा था कि मैं उसे भूल चुका था क्योंकि सन 1914 की गर्मियों में हुई जंग के दिनों से ही उसने कुछ नहीं खरीदा था। लेकिन था वह बहुत बूढ़ा। उसके शुरुआती खत तो कोई आधी सदी से ज्यादा पुराने थे जब हमारा कारोबार मेरे दादाजी संभालते थे लेकिन अपने कारोबार में सक्रियता के सैंतीस बरसों के दौरान मुझे उससे निजी रूप से मिलने का कुछ याद नहीं पड़ रहा था।

हालात के मद्दे-नजर यह जाहिर हो रहा था कि यह बुढ़ऊ उन चन्द सनकियों में रहा होगा जो जर्मनी के कस्बों में ही बचे रह गए। लिखावट उसकी साफ-शफ्फाक थी और दिए जाने वाले ऑर्डर के हरेक नग के नीचे लाल लकीर खिंची रहती थी। गलतफहमी की कोई गुंजाइश न हो इसलिए हर चीज की कीमत शब्दों और अंकों दोनों में दी हुई होती। इन अजीबो-गरीब बातों के साथ-साथ लिखावटी कागज बड़े सस्ते किस्म का और उसी तरह के लिफाफे में आया होता जिससे अंदाज हो रहा था कि ये मियां जरूर देसी ठाठ का होगा। उसके दस्तखत के बाद हमेशा उसी अदा में उसका ओहदा लिखा होता। 'फॉरेस्ट रेंजर और आर्थिक पार्षद, सेवा निवृत्त, फर्स्ट क्लास लोह-चक्र विजेता'। जाहिर है वह सन 1870-71 के युद्ध का जांबाज होगा। पक्का, अस्सी को तो छू रहा होगा।

उसकी तमाम कंजूसी और सनकों के बावजूद लग रहा था कि छापे और नक्काशी की चीजों का यह सलीकेदार संग्राहक बेहद चालाक और जहीन होगा। उसके आदेशों को ध्यान से देखने पर पता लगा कि शुरू में चाहे उसने बहुत छुटपुट चीजें ही खरीदी हों लेकिन इस गामडू ने काष्ठ की ऐसी नक्काशियां संजो ली थीं जो आज के जंग के मुनाफाखोरों का रंग उतार दें। दशकों के दौरान उसने हमसे ही जो चीजें खरीद रखी थी, आज उनका ही मोल ठीक-ठाक हो गया होगा और फिर ऐसा भी नहीं कि वह हमारे अलावा दूसरे किसी से नहीं खरीदता था! तो क्या उसका संग्रह इधर-उधर हो गया होगा? कला के कारोबार से जुड़े होने के कारण मुझे यह पता था कि खजाना जब भी एक से दूसरे हाथ जाता है, मुझे भनक हो जाती थी। और अगर वह ऊपर वाले को प्यारा हो गया हो तो उसका खजाना उसके वारिसों के हाथ महफूज होगा।

सारा मामला मुझे इतना दिलचस्प लग रहा था कि मैं अगले ही रोज यानी कल शाम जाक्सोनी के उस नामालूम से कस्बे की तरफ चल पड़ा। छोटे से रेलवे स्टेशन से निकलकर जब मैं मुख्य सड़क की तरफ बढ़ने लगा तो यह सोचना ही नामुमकिन था कि इस साधारण सी जगह के किसी बाशिन्दे के पास रैम्ब्रां के आलीशान रेखांकन, ड्यूरर के बेमिसाल काष्ठशिल्प और मांटेग्नस का समूचा संग्रह

होगा। मैंने पोस्ट ऑफिस जाकर पता किया तो मुझे हैरानी हुई कि एक समय फॉरेस्ट रेंजर और आर्थिक पार्षद रहे जनाब अभी जिन्दा हैं। उन्होंने मुझे उसका घर ढूंढने का रास्ता भी बताया। सच कह रहा हूं कि रास्ता चलते हुए तो मेरा दिल बड़ी जोर से धड़क रहा था। अभी दोपहर होने में थोड़ा वक्त था।

अपने जिन पारखी महाशय को मैं ढूंढ रहा था, वे एक खस्ता-हाल इमारत के दूसरे माले पर रहते थे। पिछली सदी के छठे दशक में इस तरह के घर इफरात में बनाए गए थे। पहले माले पर एक दर्जी रहता था, दूसरी मंजिल के बायीं तरफ लगी नाम-पट्टी स्थानीय ऑफिस के मैंनेजर का पता दे रही थी तो दायीं तरफ के दरवाजे के ऊपर चीनी मिट्टी की लगी पट्टी मेरी मंजिल का। यानी मैंने उसे ढूंढ लिया! मैंने घंटी बजाई तो सफेद बालों वाली एक बूढ़ी औरत दरवाजे पर आई जिसने सर पर काली लेश वाली टोपी चढ़ा रखी थी। मैंने उसे अपना कार्ड पकड़ाया और पूछा कि क्या मालिक घर पर ही हैं। उसने बद्‌गुमानी से पहले मुझ पर नजर फिराई, फिर कार्ड को देखा और एक बार फिर मुझे देखा। खुदा के पिछवाड़े बसे इस कस्बे में किसी शहरी का आना ही बड़ी खलबली का सबब था। फिर भी उसने बड़े दोस्ताना लिहाज से मुझे हॉल में ही दो घड़ी इंतजार करने को कहा और अंदर चली गयी। पहले फुसफुसाहट और बाद में जोर से बड़ी मर्दाना आवाज आयीः ‘ क्या बोली, बर्लिन से जनाब राकनर, वही मशहूर पुरानी चीजों का कारोबारी? अरे, मैं उससे बाखुशी मिलूंगा।’ उसके बाद वह बूढ़ी औरत वापस आयी और मुझे अंदर लिवा ले गयी।

मैंने अपना ओवरकोट उतारा और उसके पीछे-पीछे हो लिया। बड़ी साधारण सी सजावट वाले उस कमरे में खड़े एक शख्स ने मेरी आगवानी की। वह बूढ़ा था, मगर था ठीक-ठाक। उसकी झबराली मूंछें थीं और एक झालरदार घिसी-पिटी जैकेट पहन रखी थी। बड़े आत्मीय लहजे से उसने दोनों हाथ मेरी ओर बढ़ाए। हाव-भाव सहज था और कुछ भी ओढ़ा हुआ सा नहीं था जो उसके मिजाज की सख्ती के एकदम उलट था। उसने मेरी तरफ अपने कदम नहीं बढ़ाए, जिसके कारण मुझे उससे हाथ मिलाने के लिए उसकी तरफ बढ़ने को मजबूर होना पड़ा। इससे मुझे जरा चिढ़ भी हुई मगर तभी मैंने गौर किया कि वह मुझसे हाथ नहीं मिला रहा था; बल्कि मेरे द्वारा हाथों को कसे जाने का इंतजार कर रहा था। और तब मुझे उस मामले की भनक लगी वह अँधा था।

मैं जब छोटा बच्चा था तभी से अँधे लोगों के बीच असहज हो जाता हूं। कोई ऐसा इनसान जो बाकी हर लिहाज से तो ठीक-ठाक और दुरुस्त हो लेकिन फिर भी अपनी इंद्रियों को इस्तेमाल न कर सकता हो, ऐसे लोगों से मिलकर मेरे भीतर बड़ी शर्म और बेचैनी हो उठती है। मुझे लगता है कि मैं उसका कुछ बेजा इस्तेमाल कर रहा हूं। उसकी सफेद चमकती भौहों के नीचे एकटक खुली पुतलियों को देखकर मैं इसी बात से एहसासजदा था लेकिन उस अँधे शख्स ने मुझे असहज रहने का ज्यादा मौका ही नहीं दिया। वह तो अपने जोरदार ठहाकों में रम गयाः

‘अरे वाह, आज तो बड़ी खुशी का दिन है। यह तो कोई अजूबा सा ही है कि बर्लिन का कोई इतना बड़ा इनसान मेरे यहां आए। हमारे जैसे कस्बाइयों को तो संभलकर ही रहना पड़ता है, जब तुम्हारे जैसा कारोबारी ऐसे निकल पड़े। हमारे यहां एक कहावत हैः ‘जब जिप्सी लोग आस-पास हों तो घर के दरवाजे और जेबें बंद कर लो’। मैं कयास लगा सकता हूं कि तुमने क्यों आने की जहमत की है। मेरे सुनने में आया है कि आजकल धंधा कोई खास नहीं चल रहा है। ग्राहकी या तो है ही नहीं या बहुत थोड़ी रह गयी है, इसलिए लोग पुराने ग्राहकों को ढूंढ रहे हैं लेकिन भाई,

मेरे से तुम्हें कुछ नहीं मिल पाएगा। हम पेंशनयाफ्ता इसी में खुश हैं कि अभी कम से कम दो जून रोटी तो मिल रही है। अपने वक्त में मैं संग्राहक रहा हूं लेकिन अब मैं वह सब नहीं करता। मेरे खरीदने के दिन लद गए।'

मैंने उसे फौरन बताया कि वह गलत समझ रहा है और यह भी कि मैं उसके पास कुछ खरीद-फरोख्त करने नहीं आया। मेरा इधर पड़ोस में आना हुआ था तो सोचा कि क्यों न अपने एक पुराने और इज्जतदार ग्राहक से दुआ-सलाम कर ली जाए जो सबसे अजीम जर्मन संग्राहकों में माना जाता है। मैंने बमुश्किल यह बात कही होगी कि बुढ़उ के हावभाव एकदम बदल गए। वह वहीं कमरे में तन के खड़े हो गया, चेहरे पर रौनक आ गयी और शख्सियत में गुरूर सा भर गया। उसने मुड़कर उस तरफ देखा जिधर उसके अंदाजे से उसकी पत्नी बैठी होगी और यूं गर्दन हिलाई जैसे कह रहा हो, 'सुना तुमने?'। और फिर मेरी तरफ मुखातिब होकर कहने लगा (अब उसका तेवर पहले जैसे शुष्क और फौजीनुमा न होकर बड़ा कोमल और शरीफाना था) : 'अरे कितना अच्छा हुआ जो तुम आए, अफसोस तो मुझे होगा अगर तुम एक बेकार के बुढ़उ से निजी मेल-मुलाकात के अलावा यहां आकर कुछ ले ना जा पाओ। लेकिन जो भी हो, मैं तुम्हें ऐसी चीजें तो दिखा ही दूंगा जो तुमने बर्लिन में नहीं देखी होंगी, वियना के अल्बर्टिना या यहां तक कि लूव्र (पेरिस का अजाब!) में भी नहीं देखी होंगी। मैंने पिछले पचास साल से कितनी मेहनत-मशक्कत और सलीके से ऐसा खजाना संजोया है जो हर गली-नुक्कड़ पर नहीं ही मिलने वाला। अरे लिस्बेथ, जरा मुझे आलमारी की चाबी तो दो।'

तभी एक अजीब सी बात हुई। उसकी पत्नी जो मंद-मंद मुस्काते हुए बातें सुन रही थी, अचक गई। उसने हाथ जोड़कर मेरी तरफ इशारा किया और इधर-उधर सिर हिलाया। इन हाव-भावों का क्या मतलब है, यह मेरी समझ के परे था। तभी वह अपने पति के पास गयी और कंधा सहलाकर बोली : 'फ्रांज डियर, तुम तो हमारे मेहमान से ये पूछना भी भूल गए कि उनको कहीं और तो नहीं जाना; और अब तो वैसे भी, माफ करना, खाने का वक्त हो चुका है।' मेरी तरफ देख उसने अपनी बात जारी रखी। 'किसी अचानक आए मेहमान लायक हमारे घर में पूरा न पड़े। तुम बेशक सराय में ही खाना खा लेना लेकिन उसके बाद हमारे साथ एक कॉफी जरूर पीना। कुछ देर में मेरी बेटी ऐना मारिया आ जाएगी जिसे पोर्ट-फोलियो की चीजों के बारे में मुझसे बेहतर मालूमात हैं।'

उसके बाद उसने मुझे बड़ी लाचारी से देखा। जाहिर था कि वह चाह रही थी कि मैं उसी वक्त उस संग्रह को देखे जाने के प्रस्ताव को नकार दूं। उसकी बात भांपते हुए मैंने कहा कि दरअसल खाने के लिए मुझे गोल्डेन स्टेग रेस्त्रां जाना है और वहां से मैं तीन बजे लौट आऊंगा। तब मेरे पास वक्त ही वक्त होगा और तब क्रोनवेल्ड साब जो दिखाना चाहें, शौक से दिखा सकते हैं। छः बजे से पहले तो मुझे जाना भी नहीं है।

वह बुढ़उ यूं तिलमिला उठा जैसे किसी बच्चे से उसका प्रिय खिलौना छीन लिया हो।

'अरे भाई, मैं जानता हूं कि तुम बर्लिन वालों को वक्त की कितनी मारा-मारी रहती है। फिर भी मैं सोचता हूं कि तुम मेरे लिए चंद घंटे जरूर निकालोगे। तुम्हें दिखाने के लिए मेरे पास दो या तीन प्रिंट नहीं, पूरे सत्ताईस पोर्ट-फोलिओ हैं... हर उस्ताद के लिए एक अलग और एक से एक नायाब। मगर तुम ठीक तीन बजे आ गए तो छः बजे तक पूरा हो जाएगा।'

उसकी बीबी मुझे बाहर छोड़ने आई। बाहर का दरवाजा खोलने से पहले गलियारे में ही वह

फुसफुसाकर बोली :

'आपको बुरा तो नहीं लगेगा अगर आपके लौटने से पहले ऐना मारिया होटल में आपसे मिलने आए? यही ठीक रहेगा क्योंकि बहुत सी बातें हैं जिन्हें मैं अभी नहीं समझा सकती हूं।'

'अरे जरूर, खुशी से। मैं खाने पर अकेला ही हूं। इसलिए आप लोगों के खाना खाने के बाद आपकी बेटी मजे से सीधे मेरे पास आ सकती है।'

जब खाना खाने के बाद मैं गोल्डेन स्टेग के पार्लर में आया तो ऐना मारिया क्रोनवेल्ड आ पहुंची थी। वह सादे लिबास में मुरझाई हुई अधेड़ औरत थी। मुझे देखते ही वह झिझक सी गयी। मैंने उसे आराम से रहने की खूब कोशिश की और कहा कि हालांकि मुलाकात के वक्त में अभी देरी है लेकिन अगर उनके पिता उतावले हो रहे हों तो मैं तुरंत चलने को तैयार हूं। सुनते ही उसका चेहरा लाल हो गया। वह पहले से भी ज्यादा पसोपेश में पड़ गयी और हकलाते हुए अपनी जरा सी बात सुनने की गुहार करने लगी।

'कृपया बैठ जाइए। मैं आपकी बात सुनने के लिए हाजिर हूं।' मैंने जवाब दिया।

कहने के लिए उसके बोल ही नहीं फूट रहे थे। उसने हाथ और होठ फड़फड़ा रहे थे। जैसे-तैसे उसने बात शुरू कीः

'मेरी मां ने मुझे भेजा है। हमें आपकी मदद चाहिए। आप यहीं से लौट जाइए, पिताजी आपको अपना संग्रह, वो संग्रह...संग्रह। खैर, अब उसमें बचा ही कितना है।'

उसकी सांस चलने लगी, रूआंसी हो उठी और फिर सांस भरकर बोलीः

'मैं आपसे साफ-साफ कहूंगी... आप तो जानते ही हैं कि हम कैसे मुश्किल दौर से गुजर रहे हैं। आप समझते भी होंगे। जंग छिड़ने के थोड़े दिन बाद ही मेरे पिता पूरी तरह अँधे हो गए थे। उनकी रोशनी पहले से ही जा रही थी। घबड़ाहट के कारण शायद और बढ़ गयी थी। हालांकि उनकी उम्र सत्तर पार कर चुकी थी लेकिन फिर भी वे मोर्चे पर जाना चाहते थे। उन्हें अपनी पिछली जंग की याद थी, जिसमें उन्होंने अरसा पहले भाग लिया था। जाहिर है अब वे किसी काम लायक नहीं बचे थे। जब हमारी सेनाओं को नकेल दिया गया तो उनका दिल बैठ गया। डॉक्टरों ने यही सोचा कि शायद इसी वजह से उनके अंधेपन के आने की शुरुआत हो गयी हो। आपने गौर किया होगा कि बाकी बातों में वे खूब भले-चंगे हैं। सन 1914 तक वे लम्बी सैर पर जाते थे और निशानेबाजी भी कर लेते थे। जब से उनकी आँखें चली गई हैं, यह संग्रह ही उनका शगल रह गया है। वे रोजाना उसे निहारते हैं।' 'इसे देखो' वे कहते हैं, हालांकि उन्हें दिखता कुछ नहीं है। दोपहर बाद वे रोजाना अपना पोर्ट-फोलिओ मेज पर सजा लेंगे और हर प्रिंट को उंगलियों से छूकर देखते हैं। और यह बरसों से यूं हो रहा है कि सब हस्बेमामूल हो गया है। उन्हें इसके अलावा किसी चीज में दिलचस्पी नहीं। मुझसे नीलामियों की रिपोर्ट पढ़वाते हैं; जितनी ज्यादा कीमत लगती है, उतना ही उनका हौसला बुलंद होता है।'

'हालात का एक डरावना पहलू भी है। पिताजी को महंगाई के बारे में नहीं पता है... कि हम बर्बाद हो गए हैं... उनकी महीने की पेंशन एक दिन का पेट भरने के लायक नहीं रही है। अलावा इसके कुछ और लोग भी हमारे मोहताज है। मेरी बहन के पति की फेरदुन में मौत हो गयी थी और उनके चार बच्चे हैं। इन तमाम माली परेशानियों से उन्हें अलग रखा गया है। हम जितना हो सकता है उतना, अपने खर्चों में कटौती करते हैं लेकिन गुजारा करना फिर भी नामुमकिन हो रहा है। इनके

अजीज संग्रह को हाथ लगाए बगैर हमने छिटपुट चीजें, जैसे हथकंगन वगैरह, बेचनी शुरू कर दीं। बेचने लायक थोड़ा-बहुत ही कुछ था क्योंकि गुजारे के बाद जो भी थोड़ा-बहुत बचता था, पिताजी हमेशा उसे काष्ठ शिल्प, तांबे की पट्टी जड़ी नक्काशियां जैसी चीजों पर उड़ा देते थे। संग्राहक का फितूर! आखिर में सवाल उठा कि संग्रह को हाथ लगाएं या इन्हें भूखा मरने दें। हमने इनकी मर्जी भी नहीं पूछी। उससे क्या फायदा होता? इन्हें तो वहम-ओ-गुमान में भी नहीं पता कि पेट भरना कितना मुश्किल हो गया है। इन्होंने कभी सुना ही नहीं है कि जर्मनी की मात हो गयी थी और उसे अलसाक-तोरां छोड़ने पड़े थे। अखबारों से ऐसी-वैसी खबरें हम उनको पढ़कर सुनाते भी नहीं है!

पहली कलाकृति जो हमने बेची, बड़ी बेसकीमती थी, रेम्ब्रां का रेखांकन। खरीददार ने हमें बढ़िया रकम यानी कई हजार मार्क दिए। हमने सोचा इससे तो हमारे कई सालों का गुजारा हो जाएगा लेकिन आप तो जानते ही हैं कि सन 1922 और 1923 के दिनों में पैसा किस कदर मिट्टी हो रहा था। अपनी फौरी जरूरतों को जुटाने के बाद हमने बाकी रकम बैंक में जमा करा दी और दो महीने के भीतर वह सफाचट भी हो गयी! हमें एक और नक्काशी बेचने की नौबत आ गयी और उसके बाद और-और। महंगाई का वह सबसे जालिम दौर था। हर बार डीलर पैसे देने में टाल-मटोल करता। कई बार तो इतनी देर लग जाती कि अदायगी के समय मिली रकम का मोल घटकर दसवां या सौवां हिस्सा भर रह जाता। हमने नीलामी-घरों में भी आजमाइश की और वहां भी ठगे गए। हालांकि बोली तो लाखों के हिसाब से बढ़ा दी जाती मगर हमारे हाथ में जब लाखों-करोड़ों के बंडल आते तो उनकी अहमियत रद्दी के कागजों जैसी होती। रोजी-रोटी का जुगाड़ करने के लिए हमें संग्रह को दांव पर लगाना पड़ा और फिर भी पूरा नहीं पड़ रहा था।

'इसलिए जब आप आए तो मम्मी इतनी भयभीत हो उठी। अगर पोर्ट-फोलिओ को सीधे खोल लिया गया तो हमारी पाक धोखाधड़ी की कलई खुल जाएगी। वे हर कलाकृति को छूकर जान जाते हैं। आपको बताऊं कि हर कृति को बेच देने के बाद हम फौरन उसी की तरह, उसी आकार और मोटाई के कोरे कागज को वहां जड़ देते जिससे कि उन्हें, हाथ लगाने के बाद कोई अंतर पता ही न चले। उन्हें एक-एक को गिनकर और छूकर लगभग वैसा ही आनंद आता है जैसे वे उन्हें वास्तव में देख रहे हों। वे कभी किसी को ऐसे नहीं दिखाते क्योंकि यहां उन सबको देखने लायक कोई पारखी है ही नहीं। लेकिन वे एक-एक को इस कदर दिल से चाहते हैं कि अगर उन्हें पता चल जाए कि हमने उन्हें निकाल बेचा है, तो उनका दिल बैठ जाएगा। पिछली मर्तबा उन्होंने ये सब बरसों पहले गुजरे ड्रेसडेन के आदमी को दिखाई थी जो तांबे की नक्काशियों का पारखी था।'

'मैं आपके हाथ जोड़ती हूं।' उसकी आवाज रूंध गयी कि 'आप उनका भरम ना टूटे, उनके यकीन को ठेस न लगे कि जिस खजाने का बखान वे आपसे करेंगे, उसे आप देख रहे हैं। इस नुकसान का इल्म उनसे बर्दाश्त नहीं होगा। शायद हमसे गलती हुई है लेकिन हम कर भी क्या सकते थे, जीना तो पड़ता है। पुरानी कृतियों की बजाय लावारिस बच्चे ज्यादा जरूरी हैं। और एक बात हर दोपहर अपने उस हवाई खजाने के साथ वे तीन घंटे ऐसे बिताते हैं जैसे हर कृति दोस्त सरीखी हो। यही उनकी जिंदगी और उनकी खुशियां हैं। रोशनी जाने के बाद से आज का दिन उनके लिए सबसे खुशी का होगा। अपने खजाने को किसी पारखी को दिखाने के लिए वे कब से तरसते रहे हैं। क्या आप इस बहकावे में शरीक होंगे...

अपनी रामधुन में मैं बता नहीं सकता कि उसकी गुहार कितनी मार्मिक थी। अपने कारोबारी जीवन में मैंने बहुत सी ओछी चीजें देखी हैं। महंगाई की मार के मारे लोगों को कैसे मिट्टी के मोल अपने खजाने बेचने पड़े, ये सब मैं बड़ी नामर्दी से देखता रहा हूं लेकिन उसकी कथा सुनकर तो मैं एकदम पसीज गया। मुझे बताने की जरूरत नहीं कि मैंने भौंदू बने रहने की हामी भर दी।

हम साथ ही उसके घर गए। रास्ते में मैं यही जानकर सोगवार(मगर हैरान नहीं) होता रहा कि इन नादान और रहमदिल औरतों को उन बेहद बेशकीमती और कुछ तो नायाब कलाकृतियों की एवज कैसी टुच्ची रकमें पकड़ा दी गयी होंगी। इससे मैंने मन में ठान लिया कि मेरे वश में जो भी मदद होगी, करूंगा।

जैसे ही हम सीढ़ियां चढ़ने लगे वैसे ही एक बड़ी खुशगवार आवाज आयी, 'आ जाओ, आ जाओ'। नेत्रहीन लोगों की सुनने की अतिरिक्त क्षमता के कारण उन्होंने हमारे कदमों की आहट पहचान ली थी। वे कब से हमारी राह देख रहे थे।

'दोपहर के खाने के बाद फ्रांज अमूमन थोड़ी झपकी ले लेते हैं लेकिन आज तो बेकरारी के कारण जगे ही रहे' बुढ़िया ने मुस्काते हुए हमारी आमद में कहा। अपनी लड़की को आँख भर देखने से वह समझ गई कि मामला ठीक है। पोर्ट-फोलिओ का अंबार मेज पर रखा था। अंधे संग्रहक ने मुझे बांह पकड़कर जकड़ लिया और वहीं रखी कुर्सी पर मुझे धसका दिया।

'चलो फटाफट शुरू करते हैं, वक्त थोड़ा ही है और देखने को चीजें बहुत सारी। पहले पोर्ट-फोलिओ में ड्यूरर की सारी चीजें हैं। उसका लगभग पूरा सेट है। तुम्हें खुद देखो कि क्या एक से एक बारीक कृतियां हैं। क्या शानदार चीजें हैं, तुम खुद अंदाजा लगाओ।'

उन्होंने पोर्ट-फोलिओ को खोला और बताना शुरू कर दिया :

'हम 'महाविनाश' शृंखला से शुरू करते हैं, ठीक है'

और उन्होंने बड़ी नाजुकी और हौले से, जैसे नाजुक कीमती चीजों को पकड़ते समय होता है, उन्होंने खुरदरे से कागज के उस करीने में लगे बंडल से पहला कोरा-कागज मेरी रोशन और अपनी नाबीनी आँखों के सामने खुशमिजाजी से आगे कर दिया। उनकी नजरों में ऐसा जोश-ओ-खरोश था कि यकीन नहीं हो रहा था कि वे देख नहीं सकते होंगे। मुझे पता था कि यह मेरे मन का भरम है, फिर भी उनके झुर्रीदार चेहरे में जो पहचान की चमक निकल रही थी, उस पर शक करना मुश्किल था।

'क्या तुमने इससे ज्यादा बारीक प्रिंट कभी देखा है? इसकी छाप कितनी महीन है। हर चीज कैसी क्रिस्टल सी साफ है। मैंने ऐसी ड्रेसडेन में देखी थी जो बेशक बहुत अच्छी थी लेकिन जो आप देख रहे हैं उसके मुकाबले तो वो 'धुंधली' थी। और मेरे पास तो इसके बाद की भी बहुत हैं।'

उन्होंने सीट को पलटा और इत्मिनान से उसकी तरफ इशारा किया कि अनचाहे ही मुझे उस नामौजूद अभिलेख को पढ़ने के लिए आगे झुकना पड़ा।

'नागलर की मुहर लगा ये खजाना बाद में 'रैमी' और 'ऐसडायले' के पास चला गया। मेरे इन मशहूर पूर्ववर्तियों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि उनका ये खजाना कभी इस दबड़ेनुमा कमरे में सजेगा।'

कागज की उस कोरी सीट पर यूं फिदा होते उस नादान को देख मैं दहल गया। जब उन्होंने ठीक उसी जगह अपनी उंगली रखी जहां गुजर चुके पूर्वज ने कथित रूप से छेड़ लगा दी थी तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। वह सब ऐसा भुतहा था, गोया जिन आदमियों का वे जिक्र कर रहे थे उनकी भटकती रूहें कब्र छोड़कर सामने आ खड़ी हों। मेरी जुबान तालू से जा लगी। इसी दरम्यान मेरी निगाह क्रोनवेल्ड

की पत्नी और बेटी से जा टकराई। मैंने अपने को संभाला और वापस अपने किरदार में जुट गया।

'आप बिलकुल सही कर रहे हैं। ये कृति तो बेजोड़ है।'

मैंने जानबूझकर हार्दिक उत्साह दिखाया।

इस पर तो उनकी बांछें खिल गईं।

'लेकिन यह तो कुछ भी नहीं है।' वे शुरू हो गए। 'इन दोनों को देखो, ये 'मैलंकोलिया' और ये 'पैशन' का चमकदार प्रिंट। बाद वाली का तो बिला शुबहा कोई मुकाबला ही नहीं। इसके रंगों की ताजगी तो देखो! बर्लिन में तुम्हारे संगी-साथी या कलादीर्घाओं के मालिकों ने इसे देख लिया तो डाह से जल मरेंगे।'

मैं आपको ब्यौरों से बोर नहीं करना चाहता। पूरा पोर्ट-फोलिओ दिखाते हुए उनकी विजयगाथा दो घंटे से ऊपर चली। उन दो-तीन सौ कोरे कागजों को ऐसे उठाते-रखते हुए और बीच-बीच में तारीफ के पुल बांधना बड़ा नाजुक धंधा हो चला था... उस अँधे संग्राहक के लिए तो सब कुछ इतना वास्तविक था कि उसे देख मेरा यकीन जाग उठा। शायद वही मेरा मोक्ष था।

सिर्फ एक मर्तबा संकट के बादल मंडराए। वे मुझे रेम्ब्रां की 'एंटियोपी' का पहला प्रारूप 'दिखा' रहे थे जो यकीनन बेशकीमती रही होगी और जिसे कौड़ियों के मोल बेच दिया गया था। वे एक बार फिर उस प्रिंट की बारीकियों के बारे में बढ़-चढ़कर बताने लगे। लेकिन जब वे अपनी उंगलियों को हल्के से किनारे की तरफ सहलाते हुए ले जा रहे थे तो उन्होंने कुछ अनपहचाना महसूस किया। उनका चेहरा बिगड़ सा गया और मुंह लरजने लगा। वे बोले 'जरूर, पक्का यही 'एंटियोपी' है? काष्ठ शिल्पों और रेखांकनों को मेरे अलावा तो कोई छूता नहीं है, वह कहां इधर-उधर हो सकती है।'

'अरे यही तो 'एंटियोपी' है क्रोनवेल्ड साहब,' मैंने कहा। मैंने उस प्रिंट को जल्दी से उनके हाथों से लिया और इसकी बारीकियों के बारे में जो कुछ मुझे याद पड़ सकता था, उस कोरे कागज के बारे में उड़ेल दिया। उनकी हकबक थोड़ी ठंडी पड़ी। मैं जितनी ज्यादा तारीफ करता वे उतना ही विभोर हो उठते और भीतर से खुशी से झूमते हुए उन दोनों औरतों की तरफ मुखातिब होकर बोलेः

'देखा, इन जनाब को एक-एक चीज की खबर है! तुम लोग कुनमुनाते थे कि मैं इस संग्रह पर पैसा 'बर्बाद' कर रहा हूं। ये ठीक है कि आधी सदी से भी ऊपर मैंने अपने को बियर, वाइन, तंबाकू, यात्राएं, थिएटर और किताबों से महरूम रखा और सब कुछ इन चीजों को खरीदने में न्यौछावर कर दिया जिसको तुम लोग बेकार समझते रहे। देखो, राकनर साहब ने मेरे फैसले पर मुहर लगा दी है। जब मैं इस दुनिया को छोड़कर चला जाऊंगा तो तुम इस कस्बे में हर किसी से ज्यादा अमीर होओगे, ड्रेसडेन के बिगड़े अमीरों जैसे, और तब तुम मेरी इस 'खब्त' के बारे में अपने को बधाई दोगे लेकिन जब तक मैं जिंदा हूं, इस संग्रह को बचाकर रखना होगा। एक बार मेरा तीया-पांचा हो जाए तो ये जनाब या कोई और बेचने में तुम्हारी मदद कर देगा। बेचना ही पड़ेगा क्योंकि मेरे मरने के बाद पेंशन तो चली जाएगी।'

जब वे बोल रहे थे तो उनकी उंगलियां उस बिखरे हुए पोर्ट-फोलिओ को सहला रही थीं। यह बड़ा मार्मिक और दिल-तोड़ था। मैंने बरसों से और सन 1914 से ही किसी जर्मन शहरी के चेहरे पर ऐसी पुरनूर खुशी नहीं देखी थी। उनकी बेटी और पत्नी पनियल आँखों से उन्हें देख रही थीं। मगर उनमें एक खुशी भी थी, जैसी पुराने वक्त में जेरूसलम की दीवार के बाहर के बगीचे में एक

पत्थर लुढ़कने के बाद कुछ औरतों को हुई होगी। लेकिन तारीफों से बुढ़ऊ का पेट ही नहीं भर रहा था। वह एक पोर्ट-फोलिओ के बाद दूसरा, एक प्रिंट उसके बाद दूसरा प्रिंट मेरे लफ्जों को जज्ब करते हुए, तब तक दिखाते रहे जब तक कि थककर चूर ना हो गए। मुझे खुशी हुई जब उन खाली कोरे कागजों को उन खानों में रख दिया गया। और कमरे की मेज पर हमें कॉफी प्रदान कर दी गयी।

थका-मांदा लगने के बजाय मेरे मेजबान तो जवां हो चले थे। अपने उस विशाल खजाने को जमा करने के बारे में मुझे बताने की उनके पास पच्चीसों कहानियां थीं। कभी तो वे अपनी बात कहने के लिए फिर से एक बार उस कागज को उठा लेते। जब मैंने, उनकी पत्नी और उनकी बेटी से जोर देकर कहा कि अगर यही सब और चलता रहा तो मेरी ट्रेन छूट जाएगी, तो वे थोड़े मुरझा गए। आखिर में, मुझे रुखसत करने के लिए उन्होंने अपने दिल को मना लिया और हमने अलविदा की।

'तुम्हारे पधारने से मुझे बहुत खुशी हुई,' वे कांपती आवाज में बोले। 'आखिरकार एक काबिल आदमी जो चीजों का जानकार है, उसे अपना संग्रह दिखाने में मुझे क्या खूब आनंद आया। एक अँधे बूढ़े के यहां पधारकर तुमने जो इज्जत-अफजाई की है, उसके लिए मैं जरूर कुछ न कुछ करता हूं। मैं अपनी वसीयत में यह लिखवा दूंगा कि मेरे संग्रह की जब नीलामी हो तो वह तुम्हारी फर्म के हाथों ही हो जिसकी ईमानदारी जग-जाहिर है।'

उनके हाथ बड़े प्यार से उन दो कौड़ियों के पोर्ट-फोलियो को सहलाने लग गए।

'तुम मुझसे वायदा करो कि इन सब चीजों को एक खूबसूरत कैटलॉग नसीब करवाओगे। मुझे तुमसे और कोई इबारत नहीं चाहिए।'

मैंने उन दोनों औरतों की तरफ देखा जो उसके तेज कानों से अपनी कंपकपाहट छिपाने के डर से अपने ऊपर भरसक नियंत्रण कर रही थीं। मैंने उस नामुमकिन को करने का वायदा किया और उन्होंने जवाब में मेरे हाथों को दबाया।

उनकी पत्नी और बेटी दरवाजे तक मेरे साथ आयीं। वे कुछ बोल नहीं पा रही थीं लेकिन गालों पर आंसू ढुलके जा रहे थे। मेरी खुद की हालत भी कमोबेश वैसी थी। मैं कला का कारोबारी, लेन-देन करने आया था लेकिन हालात ने जैसी करवट ली तो उस बुढ़उ को खुश रखने के फ्राड में यूं शामिल हो गया जैसे मैं कोई फरिश्ता होऊं। झूठ बोलकर मैं शर्मिंदा होता हूं लेकिन मैं खुश था कि मैंने झूठ बोला। मैंने वहां खुशी की एक लहर जगा दी थी जो इस गमजदा दौर में इतनी मुश्किल हो चुकी है।

जैसे ही मैं सड़क पर आया मुझे एक खिड़की खुलने की आवाज आयी और मेरा नाम पुकारा गया। बुढ़उ हालांकि मुझे देख नहीं सकता था लेकिन उसे पता था कि मैं किस दिशा में जाऊंगा। उसकी नाबीनी आँखें उसी तरफ लगी थीं। वह बाहर इतना ज्यादा झांकने को हो आया कि उसके घर वालों ने बचाने के लिए उसे अपनी बाजुओं में भर लिया। रुमाल को हवा में लहराते हुए उसके बोल आए 'राकनर साहब आपका सफर सलामत हो।'

उसकी आवाज में एक बच्चे की सी मिठास थी। उस खुशनुमा चेहरे को मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा जो गली के राहगीरों के निचुड़े हुए चेहरों से एकदम अलहदा था। मेरे कारण बने उसके भरम से उसकी जिंदगी खुशगवार हो उठी थी।

'संग्रहकर्ता सुखी जीव होते हैं'?

●

कैरिबियन

छोरी

मूल : जमैका किंकेड

प्रस्तुति एवं अनुवाद : यादवेंद्र

कैरिबियन द्वीप समूह में एंटीगुआ एक छोटा सा देश है- मुश्किल से 280 वर्ग किलोमीटर की भूमि पर 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग अस्सी हजार लोग यहां रहते थे। 1493 में कोलम्बस वहां पहुंचने वाला पहला अमेरिकी यात्री था और उसने वहां के अनेक द्वीपों के नाम रखे। इसके करीब डेढ़ सौ साल बाद अंग्रेज उपनिवेशवादी वहां पहुंचे और शासक बन कर रहने लगे। इतिहास बताता है कि संक्रामक बिमारियों और भुखमरी से द्वीप के मूल निवासियों की बड़ी आबादी अकाल मृत्यु की चपेट में आ गयी। गन्ना और तंबाकू जैसे नगदी फसल को यहां भरपूर बढ़ावा दिया गया और अफ्रीकी देशों से बड़ी संख्या में लोग इन खेतों में काम करने के लिए बंधुआ मजदूर बना कर लाए गए। अमानवीय स्थितियों में काम कराने की नीतियों का स्थानीय निवासियों द्वारा विरोध करने के अनेक उदाहरण यहां हैं जिनमें लोगों ने एकाधिक बार विद्रोह के स्वर बुलंद किए- दुर्भाग्य से शासकों की शक्ति के सामने वे टिक नहीं सके।पर दुनिया भर के सैलानियों के बीच अत्यंत लोकप्रिय इस छोटे से द्वीप को वेस्टइंडीज के विवियन रिचर्ड जैसे महान खिलाड़ी के नाम से जाना है।

एक अफ्रीकन भारतीय मां और एंटीगुआ के स्थानीय पिता की संतान जमैका किंकेड 1949 में एलेने पॉटर रिचर्डसन के नाम से जन्मीं और गरीबी में रहकर एंटीगुआ में स्कूली पढ़ाई अव्वल रहते हुए पूरी की। शुरू में अपनी मां से बेहद अंतरंग रहने के बाद भाइयों का जन्म हुआ और मां और बेटी के बीच दूरी बढ़ती गयी जो बाद में किंकेड के लेखन में निरंतर मुखर होती रही। सोलह साल की उम्र में वे घर का कामकाज करके जीविका चलाने के उद्देश्य से अमेरिका आ गयीं और एक के बाद दूसरे काम करती रहीं। अपनी मां को किताबों की संगत में देखकर उनमें पढ़ने का शौक हुआ और वह शौक ऐसा परवान चढ़ा कि वे किताबें चुराने और किताबें खरीदने के लिए पैसे चुराने तक से परहेज न करतीं। पढ़ने लिखने का शौक उन्हें अमेरिका में कॉलेज और यूनिवर्सिटी तक खींच लाया। एक पत्रकार मित्र की मार्फत वे प्रतिष्ठित पत्रिका 'न्यूयॉर्कर' के संपादक से मिलीं और उनकी लेखन प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी पत्रिका में नियमित स्तंभ लेखन का काम सौंपा- बतौर एक कथाकार उनकी शुरू के दौर की लगभग सभी कहानियां 'न्यूयॉर्कर' में ही छपी

हैं। एंटीगुआ में बिताए सालों और परिवार के साथ उनके कटु अनुभव थे सो वे अपने मूल नाम और देश से छुटकारा चाहती थीं- उन्होंने अपना नाम बदलकर एलेने पॉटर रिचर्डसन से जमैका किंकेड रख लिया। अपने लेखन को वे जीवन के लिए अनिवार्य मानती हैं और साथ साथ यह कहती हैं कि जब भी मैं कुछ लिखती हूं तो सोचती हूं यह मेरे वर्तमान को बदल देगा- यह मुझे वह बिलकुल नहीं रहने देगा जो दरअसल मैं हूं। लिखना उनके जीवन में इतना महत्वपूर्ण है कि वे कहती हैं सिर के नीचे मेरे शरीर में कुछ नहीं है- मैं जो भी जीती हूं बस अपने सिर के अंदर जीती हूं। रेस और कालेपन जैसे विषयों पर बेहद मुखर होकर लिखने बोलने वाली किंकेड की बेबाकी को अकसर उनका गुस्सा मान लिया जाता है- अपनी आलोचना के संदर्भ में वे कहती हैं कि 'जब किसी गोरी चमड़ी के व्यक्ति को कहा जाएगा कि दुनिया भर में आपने जो किया वह सिरे से गलत था तो जाहिर है उसको अच्छा नहीं लगेगा।' उपनिवेशवाद जैसे विषयों पर उनका कहना है कि 'गुस्सा दमन का कुदरती जवाब है- प्रतिक्रिया।' वे स्पष्ट तौर पर कहती हैं कि वे सत्य का बयान करती हैं, किसी को खुश या दुःखी करने के लिए नहीं लिखतीं। 'मैं अपने किए से बाज नहीं आने वाली.... जितना ही लोग मेरे लिखे और किए से असहज होंगे उतना ही मैं वैसा और करूंगी। मैं एक अच्छी लेखक हूं और लोगों को यह कहना पड़ेगा कि जमैका किंकेड एक अच्छी लेखक है।' किंकेड का कहना है कि आज तक कभी उन्होंने अपने से ज्यादा शक्तिशाली किसी इनसान से डरना नहीं सीखा।

यहां प्रस्तुत छोटी-सी पर लेखक की सबसे ज्यादा संकलनों में शामिल कहानी 'गर्ल' को एक ही वाक्य वाली कविता कहा गया है- एक मां अपनी स्त्री होती बेटी को जीवन जीने के सलीके समझा रही है जो लगभग एकालाप है, सिवा दो बार बेटी के हस्तक्षेप करने के। यह कहानी 1978 में 'न्यूयॉर्कर' में छपी थी और उनके पहले संकलन 'ऐट द बॉटम ऑफ द रिवर' से ली गयी है।

छोरी :

सफेद कपड़े सोमवार को साफ करो और पत्थर पर सूखने को फैलाया करो; अगले दिन यानी मंगलवार को रंगीन कपड़े धुलो और उन्हें तार पर सूखने को टांग दो; जब सूरज सिर पर हो तो नंगे सिर घर से बाहर मत निकलो; कद्दू की बड़ियां जब तेल खूब गर्म हो जाए तब कड़ाही में डालकर भुनना; अपने अंदर पहने कपड़े बदन से उतारते ही साबुन वाले पानी में भिगो दिया करो; अपने लिए ब्लाउज का कपड़ा जब खरीदो यह ध्यान रखना कि उसमें कलफ ज्यादा न हो क्योंकि पहली धुलाई में ही यह उतर जाएगा और कपड़ा लुगदी जैसा रह जाएगा; खारे पानी की मछली को पकाने से पहले रात भर पानी में जरूर भिगोकर रखना; क्या यह सच है कि इतवार को तुम स्कूल में खूब धमाचौकड़ी मचाकर गाना-बजाना (कैलिप्सो) करती हो? ध्यान रहे, अपना खाना हमेशा इस तरह खाना चाहिए जिस से आस-पास बैठे किसी और का पेट न खराब हो जाए; इतवार को लोगों के बीच भली औरत की तरह चलना फिरना आवारा औरत की तरह नहीं हालांकि तुम्हारे सारे लच्छन तो बिलकुल वैसे ही हैं; और हां इतवार को स्कूल में कैलिप्सो मत गाया करो; बंदरगाहों पर काम करने वाले आवारा लड़कों को मुंह मत लगाया करो, यहां तक कि जब वे कहीं का रास्ता पूछें तब भी बोलना नहीं; और हां सड़क पर खड़े होकर कभी कोई फल मत खाना- मक्खियां सूंघते हुए फौरन वहां पहुंच जाएंगी; पर मैं तो इतवार को कभी गाना बजाना नहीं करती हूं, स्कूल के अंदर भी नहीं; देखो बटन इस तरह

टांका जाता है... और जो बटन अभी तुमने टांका उसके लिए काज इस तरह बनाया जाता है; कपड़े सलीकेदार लगें इसलिए उनमें इस्तरी करना जरूरी है, देखो इस्तरी ऐसे किया जाता है; कपड़े यूं ही झोल झाल और फूहड़ दिखेंगे तो लोग तुम्हें आवारा औरत समझ लेंगे हालांकि तुम्हारे सारे लच्छन तो बिलकुल वैसे ही हैं; और देखो अपने पापा की खाकी कमीज पर ढंग से इस्तरी करना, ऐसा न हो कि कहीं कोई सलवट छूट जाए; उनकी खाकी पैंट पर भी इस्तरी इसी सावधानी के साथ करनी होगी।

भिंडी ऐसे उगानी होगी पर घर से थोड़ी दूरी रखकर नहीं तो उन पर अड्डा बनाने वाले लाल चींटे घर के अंदर घुस आएंगे; कुछ पकवान ऐसे होते हैं जिनमें भरपूर पानी डालकर पकाना पड़ता है नहीं तो गले में खुजली होने लगती है; घर में और आंगन में झाड़ू ऐसे लगाना है; जो इनसान तुम्हें खास पसंद नहीं है वह सामने पड़ जाए तो इस ढंग से मुस्कुराना है, जो बिलकुल ही नहीं सुहाता उसको देखकर ऐसे मुस्कुराना है.... और जिस पर तुम जान छिड़कती हो वह मिले तो एकदम खास अदा से मुस्कुराना है; जब किसी को चाय पर बुलाओ तो टेबल ऐसे सजायी जाती है; डिनर के लिए थोड़े अलग ढंग से सजायी जाती है टेबल; और डिनर पर कोई खास मेहमान आ रहा हो तब अलग ढंग से; लंच के लिए अलग और नाश्ते के लिए अलग ढंग से टेबल लगानी पड़ती है; जिन मर्दों को तुम बहुत अच्छी तरह से नहीं जानती उनके साथ इस तरह सुलूक करना; इस तरह बर्ताव करोगी तो उन्हें तुम्हारे आवारा चाल-चलन का आसानी से पता नहीं चलेगा, जिसके बारे में मैं तुम्हें कितनी बार आगाह कर चुकी हूं; हर रोज नहाने में कोई कोताही मत बरतना, पानी न मिले तो कोई बात नहीं थूक तो है न; बीच सड़क पर बैठकर कंचे मत खेलने लगना, तुम्हें मालूम तो है न कि तुम लड़का नहीं हो; किसी की फुलवारी से फूल मत तोड़ना- कहीं कुछ काट न ले; गाने वाली काली चिड़ियों पर पत्थर मत मारना, कहीं वे और कुछ न निकल जाएं; ब्रेड पुडिंग ऐसे बनायी जाती है; दूकोना बनाने का ढंग ये है; काली मिर्च का डिब्बा ऐसे लगाना होता है; सर्दी जुकाम लग जाए तो उसकी दवाई ऐसे बनायी जाती है; और जब पेट में बच्चा आ जाए तो उसके हाथ पांव बनें उससे पहले छुटकारा पाने की अचूक दवाई ऐसे बनानी होती है; मछली पकड़ने का कारगर ढंग ये है; और जो मछली तुम्हें अच्छी नहीं लगती उसको पानी में वापस ऐसे फेंकते हैं; ऐसा करोगी तो तुम्हारे ऊपर किसी का बुरा टोटका नहीं ठहरेगा; किसी मर्द को धमकाना हो तो ऐसे धमकाना; और जब कोई मर्द तुम्हें धमकाएगा तो इस तरह धमकाएगा; मर्दों को प्यार करने का ढंग ऐसा होना चाहिए; और जब यह ढंग कारगर न हो तो दूसरे बेहतर तरीके भी हैं; जब वे भी मनचाहा असर न करें तो उनसे दूर हो जाना ही मुनासिब है, इसको लेकर हाय तौबा मत मचाना; जब कभी मन करे तो हवा में थूक ऐसे उछाल देना; और फुर्ती से वहां से खिसक जाना जिससे वह तुम्हारे ऊपर न गिरे; अपने दोनों शाम के दाना-पानी का जुगाड़ ऐसे करना; ब्रेड खरीदने जब भी जाओ उसको अच्छी तरह से छूछाकर देख लो कि यह ताजी है या बासी; पर जब बेकर मुझे ब्रेड को हाथ न लगाने दे तब क्या करूंगी? क्या तुम्हारा मतलब ये तो यही तो नहीं कि तुम ऐसी औरत बनने की राह पर हो जिसको बेकरी वाला अपनी दुकान के आस पास फटकने भी न दे?

●

पुर्तगाली

दारियु के प्रति

मूल : रूदाल्तोन ट्रेविसों
अनुवाद : गरिमा श्रीवास्तव

दारियु जल्दी-जल्दी चलकर आ रहा था, बाएं हाथ में छाता लिए, रास्ते के कोने में थोड़ा मुड़कर धीरे-धीरे एक घर की दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। उसके बाद बारिश से भीगे फुटपाथ पर पीठ दीवार से टिकाए-टिकाए ही, हाथ का पाईप वहीं जमीन पर रख वह धप्प से बैठ गया। दो-तीन राहगीरों ने उसे घेर लिया, वे जानना चाहते थे कि क्या उसकी तबियत खराब है? दारियु ने मुंह खोला, एक जोड़ा होंठ हिले भी लेकिन उन्हें कोई उत्तर सुनाई नहीं पड़ा। सफेद कपड़े वाले एक सज्जन ने कहा, 'जरूर दिल का दौरा पड़ा है'। दारियु अलसाकर एक ओर लुढ़क गया था, अब वह दीवार के पास से सरककर फुटपाथ पर आ चुका था, पाइप बुझ चुका था। एक ग्वालेनुमा व्यक्ति ने लोगों से कहा कि वे जरा हटकर खड़े हों, जिससे दारियु सांस ले सके। दारियु की जैकेट, बेल्ट, टाई, जूते सब खोलकर अलग कर दिए गए थे; अभी वे जूते खोल ही रहे थे कि दारियु के गले से एक विचित्र किस्म की घरघराहट की आवाज के साथ उसके मुंह के किनारे से बजबजाता हुआ सफेद झाग बाहर निकल आया। वहां पर मौजूद प्रत्येक व्यक्ति भीड़ से उचक-उचक कर देखने की कोशिश कर रहा था पर दारियु को कोई देख नहीं पा रहा था। उस मुहल्ले के सभी रहनेवाले अब इसी विषय पर बातचीत कर रहे थे, बच्चों को कच्ची नींद से जगाया जा चुका था, लोग जैसे-तैसे, मुड़े-तुड़े कपड़ों में अपनी खिड़कियों के पास आकर खड़े हो गए थे। एक मोटा आदमी दारियु अब भी दीवार से टेक लेकर बैठा था और उसके पाइप से अब भी धुआं निकल रहा था।

लेकिन अब उसका पाइप या छाता कहीं दिखाई नहीं दे रहा था।

पके सफेद बालों वाली एक बूढ़ी एकाएक चिल्लाई कि देखो वह मर रहा है। कई लोग उसे उठाकर सड़क के किनारे खड़ी टैक्सी के पास लेकर गए। उसकी देह के आधे से अधिक भाग को जब टैक्सी के भीतर डाला जा चुका था तभी चालक ने प्रतिवाद किया कि यदि यह बीच रास्ते में ही मर गया तो! अब तय किया गया कि एम्बुलेंस बुलाई जाए। दारियु को किसी तरह से उठा-पठाकर फिर से दीवार से टिकाकर बैठा दिया गया था।

उसके जूतों का जोड़ा और मोती-जड़ा टाईपिन अब नहीं था।

एक आदमी ने सूचना दी कि बगल वाले रास्ते पर दवा की दुकान है। दारियु को सड़क के किनारे से इतनी दूर लेकर नहीं जाया जा सकता था क्योंकि दवा-दुकान ब्लॉक के अंतिम सिरे पर

थी और इसके अलावा दारियु का शरीर वजनी भी तो बहुत था। उसे बीच की दुकान के दरवाजे के सामने सुला दिया गया जहां एक घंटे के भीतर ही मक्खियों के झुंड के झुंड ने उसके चेहरे को लगभग ढंक लिया था। मक्खियों को भगाने का कोई उपक्रम उसमें नहीं देखा गया। इस घटना के दर्शकों से आसपास के कैफे की, अब तक खाली पड़ी मेजें भर गयी थीं। अब वहां रात के विशेष खान-पान का आनंद लिया जा रहा था। जिस तरह से दारियु को रख दिया गया था, वह वैसे ही दुकान की सीढ़ी के नीचे गुड़ी-मुड़ी होकर पड़ा रहा।

हाथ की घड़ी अब नहीं थी।

एक तीसरा आदमी दारियु के सभी कागज-पत्तर देखने की बात करने लगा। उसके जेब से सारे कागज-पत्तर निकाल कर उसकी सफेद कमीज पर सजा कर रख दिए गए। सभी उसके नाम, उम्र, आँखों के रंग, पहचान-चिह्न आदि से परिचित होने लगे। लेकिन उसके पहचान-पत्र पर पता किसी दूसरे शहर का था। लगभग दस लोगों के कौतूहल भरे समूह ने उसे रास्ते पर घेर रखा था, अब रास्ता और फुटपाथ मिलकर एक हो गए थे। तभी उनके बीच हलचल दीखी- पुलिस आ गयी थी- भीड़ को चीरती काली वैन मानो तैरती हुई-सी आ गयी थी। बहुत से लोग आपस में टकराते, दारियु के शरीर के ऊपर गिरते-पड़ते पीछे हटने लगे। कितनी ही बार कितने पांवों से दारियु का शरीर कुचला जाने लगा। पुलिस वालों ने आगे बढ़कर मृत देह को देखा लेकिन उसकी शिनाख्त नहीं हो सकी। उसकी जेब खाली थी, बची रह गयी थी उंगली में पहनी हुई शादी की अंगूठी जिसे साबुन के बिना निकाल पाना संभव नहीं था। तत्क्षण निष्कर्ष निकाला गया कि यह हिंसा की वारदात है। बचे हुए लोगों में से किसी ने कहा कि वह मर गया है। मर गया है। अब धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी। मरने में दारियु को लगभग दो घंटे का वक्त लगा था। किसी को विश्वास नहीं हुआ कि वह उसका अंतिम समय था।

अब सभी को उसमें मृतक के लक्षण ही दिखाई पड़ने लगे।

एक सहृदय आदमी ने दारियु की जैकेट खोल उसके सिरहाने डाल दी और दोनों बांहें उसकी छाती पर रख दी, पर कोशिश करके भी दारियु की आँखें या मुंह बंद नहीं कर पाया। मुंह से निकला झाग अब सूख चुका था, दारियु अब एक मृतक मात्र था। भीड़ जल्द ही छंटने लगी, कैफे की मेजें पहले की मानिंद खाली हो चुकी थी। कई लोग जो अपनी खिडकियों में हाथ को सहारा देने के लिए तकिए लेकर खड़े थे, अब भी खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे।

एक काला बच्चा नंगे पैर मृत शरीर के पास एक मोमबत्ती जलाकर रख गया। ऐसा लग रहा था मानो दारियु वर्षों पहले मर चुका है- अनगिनत बारिशों में भीगे हुए लुटे-पिटे मृत मनुष्य की एक छवि।

एक-एक करके सारी खिड़कियां बंद हो चुकी थीं।

तीन घंटे बाद भी दारियु किस हिंसा की प्रतीक्षा में है-- सिर पर पत्थर, जैकेट गायब, उंगली अंगूठी विहीन और मोमबत्ती, जो फिर से शुरू हुई बारिश की पहली बूंद से अधजली ही बुझ चुकी थी।

●

फारसी

यहया

मूल : सादिक चूबक
अनुवाद : अजीज महदी

सादिक चूबक (1916-1998 ई.) ईरान के मशहूर लेखकों में से एक थे। उनकी लघुकथाओं की तुलना फारसी लघु चित्रकला के साथ की जाती है। चूबक एक प्रकृतिवादी व्यक्ति थे और उनकी कथाएं समाज के उस अँधेरे पहलू को दर्शाती थीं, जिसके बारे में बाकी लोग चर्चा करने से कतराते थे।

यहया ग्यारह साल का था और वह पहला दिन था कि वो डेली न्यूज अखबार बेचना शुरू करना चाहता था। अखबार के दफ्तर में मैनेजर और खुद उसकी उम्र के कई बच्चों ने जो कि उसी की तरह अखबार बेचते थे- कई बार 'डेली न्यूज' नाम का उच्चारण करके उसको सुनाया और वह भी बहुत ही फुर्ती से उस नाम को सीख गया; उसकी नजरों में वह नाम दीजी जैसा ही था। उसने कई बार बिना झिझक के मन ही मन दोहराना शुरू किया : 'डेली न्यूज! डेली न्यूज! डेली न्यूज!' और उस नाम को दोहराते हुए अखबार के दफ्तर से बाहर आ गया।

उसने गली में पहुंचते ही भागना शुरू कर दिया। वह जोर-जोर से चिल्ला रहा था 'डेली न्यूज! डेली न्यूज!' वह अपने आस-पास किसी और चीज पर भी ध्यान नहीं दे रहा था। सिर्फ अपना काम करने में पूरी तरह से मग्न था। वह उस नाम को जितना भी दोहराता था और लोग उससे वह अखबार खरीदते थे; वह उतना ही अपने आप से खुश होता चला जाता था। उसने अखबार की कई प्रतियां बेच भी दीं और उसे वह नाम अभी तक याद था। उस समय जब उसने पांच रियाल का बकाया पैसा एक आदमी को दिया और दस पैसे छुट्टे ना होने पर उस आदमी ने वह पैसे उसको रख लेने को कहा और चला गया और वह भी खुशी से फूला नहीं समा रहा था; ठीक उसी समय उसने अपने दिमाग पर जितना भी जोर डाला, लेकिन अखबार का नाम उसे याद ही नहीं आया। वह अखबार का नाम पूरी तरह से भूल चुका था।

अचानक एक अजीब से डर ने उसे घेर लिया था। वह कुछ पल के लिए एक जगह खड़ा रहा और सड़क की ओर निगाहें गड़ाए गौर से देखता रहा। उसने दुबारा दौड़ना शुरू कर दिया। उसके बिना आवाज लगाए और चिल्लाए हुए, लोगों ने अखबार की कई प्रतियां उससे खरीद लीं। लेकिन अखबार का नाम वह पूरी तरह से भूल चुका था।

यहया उन लोगों के मुंह की तरफ गौर से देखता था जो उससे अखबार खरीद रहे थे; इस उम्मीद

के साथ कि शायद अखबार का नाम उनमें से किसी एक खरीदार के मुंह से सुनाई दे जाए। लेकिन उन सभी लोगों के चेहरे उखड़े हुए और गंभीर थे; और वह लोग यहया की सूरत की तरफ देखे बिना ही उससे अखबार लेकर अपने रास्ते चले जाते थे।

बेचारे यहया को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? उसने अपने आस पास नजर दौड़ाई कि शायद उसके उन साथी बच्चों में से कोई उसे दिख जाए और वह अखबार का नाम उससे पूछ सके; लेकिन अफसोस कोई भी दिखाई नहीं दिया। उसे कई बार 'दीजी' शब्द अपनी आँखों के सामने कलाबजियां खाता हुआ दिखाई दिया; लेकिन वह उससे भी कुछ समझ नहीं पा रहा था। सड़क के फुटपाथ पर बहुत सारी 'दीजी' उसके सामने परेड करती हुई नजर आ रही थीं और शायद एक दो बार तो अखबार का नाम भी एक चिंगारी की तरह उसके दिमाग में चमका, लेकिन उसने जैसे ही उसे पकड़ना चाहा, चिंगारी बुझ गयी।

उसने अपना सिर नीचे लटका रखा था और धीरे धीरे पैदल चल रहा था। अखबार के पुलिंदे को भी उसने अपने बगल में छिपाकर जोर से दबा रखा था। उसे इस बात का डर था कि क्योंकि वह अखबार का नाम भूल गया था, शायद वह अखबार उससे छीन लिए जाएं। उसे रोना आ रहा था लेकिन आँसू की एक बूंद भी उसकी आँखों से बाहर नहीं आ रही थी। वह सड़क पर चलते किसी व्यक्ति से पूछना चाहता था कि अखबार का नाम क्या है लेकिन उसे यह काम करने में शर्म तो आ ही रही थी और साथ ही साथ वह यह काम करने से डर भी रहा था।

अचानक उसके चेहरे का रंग बदल गया और एक बड़ी सी मुस्कुराहट उसके होंठों पर आ गयी। वह खुशी के मारे फूला नहीं समा रहा था और उसके चेहरे पर यह खुशी साफ दिखाई दे रही थी। उसने फिर से दौड़ लगाना और चिल्लाना शुरू कर दिया।

'प्रिमूस! प्रिमूस!'

आखिरकार उसे अखबार का नाम याद आ गया था।

●

बल्गारियाई

तार पर

मूल : योर्दान योवकोव
अनुवाद : इलियाना आंगेलोवा

उसे कुत्तों के आक्रमण से बचाते हुए पेतर मोकानिना जान गया था कि यह अपरिचित किसान रास्ते से उसके यहां ऐसे ही नहीं आया है बल्कि इसके पीछे कोई न कोई कारण जरूर है। इसीलिए कुत्तों को डांटकर उसने चुप कराया और फिर किसान की ओर देखा। उस किसान के लाल कपड़ों से यह मालूम पड़ता था कि वह देलिओर्मान प्रांत में रहने वाली तोर्लाक जाति का है। वह किसान लंबा चौड़ा था लेकिन यह भी दिख रहा था कि वह पैदाइशी गरीब है। उसके लिबास में ढेर सारे पैबंद थे, कमरबंद फटा-चिथड़ा था और पतलून भी। वह नंगे. पांव भी था। वैसे तो देखने में वह पहाड़ जैसे लग रहा था लेकिन मन ही मन में उसे तौलते हुए मोकानिना जल्दी ही इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि वह किसान उन कोमल और विनम्र लोगों में से एक है जिनके बारे में कहा जाता है कि वे चींटी को भी रास्ता दे देते हैं।

'नमस्कार, आप कैसे हैं? सब ठीक-ठाक तो है?' किसान ने कहा पर यह साफ तौर पर दिख रहा था कि वह कुछ और सोच रहा है। उसकी आँखों में एक खास परेशानी झलक रही थी। सामने देखते हुए उसने हाथ दिखाकर पूछा- 'क्या इसी ओर मंजिलारि गांव है? वहां पहुंचने में कितना समय लगेगा?'

मोकानिना ने उसे रास्ता बताया और तभी देखा कि रास्ते पर एक घोड़ागाड़ी रुकी हुई है। वह किसान मोकानिना के यहां इसी घोड़ागाड़ी से आया था। गाड़ी में एक औरत तिरछे होकर बैठी थी जिसके हाथ उसके कपड़ों के अंदर थे। उसने सिर पर जो जब्रादका[1] लगाया था उसके किनारे नहीं बांधे गए थे ताकि वह उस औरत को ज्यादा हलका लगे। यों तो मौसम गरम ही था लेकिन मोकानिना को मालूम था कि जब औरतें अपनी जब्रादका को इस तरह नहीं बांधती हैं तो उनको मौसम से नहीं बल्कि कोई दूसरी परेशानी होती है? घोड़ागाड़ी में औरत के पीछे एक दूसरी छोटी सी लड़की लेटी हुई थी जो चेर्गा[2] से आधा ढकी थी और उसके सिर के नीचे काले तकिये लगे थे। वह लड़की कहीं दूर देख रही थी और उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ रहा था।

तभी मोकानिना ने पूछा. 'भाई, शायद तुम्हारा कोई बच्चा बीमार है?'

'हां भाई, ऐसा ही है। मेरी लड़की बीमार है।'

किसान ने चरागाह के बीचोंबीच लेटी हुई भेंड की ओर देखा। उसकी निगाहें उन्हें देख रही थीं परंतु वह फिर भी वह उन्हें नहीं देख रहा था। चिंता से भरी उसकी नजर चारों ओर घूम रही थी।

उसने कहा- 'हमारा हाल क्या है, मत पूछो भाई!'

मोकानिना ने उससे पूछा- 'तुम यहां के रहने वाले तो नहीं हो पर कहां के हो?'

'किचुक अहमाद नामक गांव का हूं मैं। अब इसे नदेज्दा कहते हैं, चट्टानों के पास है यह। मैं यहां कई बार आया हूं। मैं गांव-गांव में घूम-घूम कर हूमा[3] बेचता हूं हमारे गांव में अच्छी हूमा बनती है। बहुत अच्छी, इसीलिए उसे औरतें खरीदती हैं। जब मैं उधर सागर की ओर जाता हूं, तब बेचने के लिए मछली या अंगूर या कोई दूसरी चीज लेकर आता हूं। भगवान की कृपा से हमारी दाल रोटी चल जाती है। पर अब यह बदनसीबी हमारे परिवार पर पड़ गई है।'

जमीन पर बैठकर उसने तंबाकू से भरी हुई चमड़े की एक थैली निकाली और सिगरेट बनाने लगा। मोकानिना ने उसके पास बैठे हुए देखा कि सिगरेट बनाते समय उस किसान की मोटी उंगलियां जोर-जोर से कांप रही थीं। तभी उसने कहा- 'हमारे बच्चे नहीं बचने पाते। हमारे दो-तीन नन्हें-नन्हें बच्चे गुजर चुके हैं। सिर्फ यही बेटी बची है।' उसने गाड़ी की ओर देखा। 'हम आँखों के तारे की तरह उसकी देखभाल करते थे। अपने खाने-पीने से अधिक उसका खयाल रखते थे ताकि दूसरों को अधिक सुखी देख उसे दुःख न हो। यों ही भगवान की कृपा से अभी तक हमने उसकी रक्षा की पर कुछ समय से उसे कोई बीमारी लग गई है। वह बिना किसी कारण के मुरझाती जा रही है। मैंने सुना कि अपनी मां से वह ये कह रही थी कि उसे इसलिए दुःखी हैं कि उसकी सहेलियों की शादी होती जा रही है लेकिन उसकी शादी अभी तक नहीं हुई है। मैं उसको समझाया करता हूं, 'दुःखी क्यों रहती हो बिटिया, तुम्हारा भी नसीब जागेगा। दूसरों के बारे में क्यों सोच रही हो। वे अमीर हैं। आज के लड़के ऐसे ही हैं। वे अमीर लड़कियों से शादी करना चाहते हैं। तुम्हारी शादी भी हो जाएगी, अभी तुम जीवन का आनंद लो, तुम्हारी उम्र भी तो इतनी अधिक नहीं है न?'

'कितनी है उसकी उम्र?' मोकानिना ने पूछा।

'लगभग बीस की है। देवी माता के दिन पर उसकी ठीक बीस होगी।'

'लड़की तो युवा ही है!'

'हां युवती ही है।'

किसान ने चुप होकर फिर भेड़ों की तरफ नजर डाली लेकिन उन्हें नहीं देख सका। कहीं पास में किसी चिड़िया की चीख सुनाई दे रही थी।

'अब गर्मियों में मुझसे यह प्रार्थना करने लगी कि पिताजी मुझे काम करने दीजिए। हम गरीब तो हैं ही, हमें भी जरूरत पड़ती है लेकिन उसे कमजोर और बीमार देखकर उसको जाने देने की इच्छा नहीं थी मेरी। वह कहती रही- 'पिताजी, कृपया जाने दीजिए, लड़कियों के साथ जाने की मेरी बड़ी इच्छा है। 'तो इसी हालत में मैंने उसे जाने दिया।'

'फिर क्या हुआ?'

'वहां मैं नहीं था, मुझे क्या मालूम। वह खेत में ही सोती थी, वहीं खेत पर काम करती थी। जो उसने जो बताया, मुझे तो उतना ही पता है। एक बार दिन भर काम कर लड़कियों ने शाम को खाना खाया फिर हँसी मजाक भी हुआ और गीत भी। इसके बाद सब सो गए। मेरी बेटी नोनका

भी लेटकर सो गयी। उसने मुझे बताया कि वह फसल के ढेर के बीच लेट गई ताकि उसे हवा और ठंड न लगे। उसने कपड़े भी लपेटे और सो गयी। तभी उसने महसूस किया कि कोई भारी और ठंडी चीज उसकी छाती से चिपटी हुई थी। उसने आँखें खोलकर देखा, वह सांप था!'

'अरे, सांप!'

'हां! हां! सांप। वह कुंडली मारकर उसकी छाती पर बैठा हुआ था। उसने चीख मारी और डरते हुए उसे पकड़कर फेंक दिया।'

'फेंक दिया। फसलों की कटाई में ऐसा ही होता है। मैंने सुना है, सांप तो किसी महिला के मुँह पर भी चढ़ जाता है। लेकिन उसने लड़की को डंसा तो नहीं न?'

'नहीं, डंसा नहीं। वह केवल सीने पर बैठा हुआ था। मेरी बेटी ने उसे पकड़कर फेंक दिया। ऐसा ही उसने मुझे बताया। अब यह सपना था या सच में ऐसा हुआ था, मुझे नहीं मालूम। तब से ही बेटी की हालत अच्छी नहीं है। उसे देखो तो कैसे सूखी डाली की तरह मुरझा गयी है। उसके सीने में लगातार दर्द हो रहा है। वह कहती है, 'जहां पर सांप लेटा हुआ था वहीं पर दर्द हो रहा है पिताजी।'

मोकानिना ने आश्चर्य से पूछा- 'और अभी उसे कहां लेकर जा रहे हो? हकीम के पास?'

'हकीम? कितने हकीमों से तो मिल चुके हम। अभी तो उसे ले जाता हूं, क्या कहूं, वे मुझ पर ही निर्भर हैं। मैं उनका कोई विश्वास तो नहीं करता हूं लेकिन वे महिलाएं हैं, फिर वह बीमार है, बच्ची है।'

उसकी आवाज कांप उठी और वह चुप हो गया और दूसरी ओर देखने लगा। बिना किसी जरूरत के उसने न केवल मूंछों पर बल्कि दाढ़ी पर भी हाथ फेरा। उसने कई दिनों से दाढ़ी नहीं बनाई थी इसीलिए वह कड़ी थी। उसमें बहुत सारे सफेद बाल थे। मोकानिना को किसी को यह बताने की कोई जरूरत नहीं थी कि हर सफेद बाल उसकी किसी न किसी परेशानी का प्रतीक था।

किसान ने आगे कहा- 'कल शाम हमारे गांव के कई लोग जो दूसरे गांव में काम करने के लिए गए थे, वापस आए। उन्होंने जो कुछ कहा वह मुझे तो मालूम नहीं। उन्हें कोई परेशानी भी नहीं थी, वे मजाक भी कर सकते थे। फिर हमारे घर में स्तोयान की पत्नी भागी-भागी आई। वह हमारी धर्म माता है। जैसे तालू से जीभ लगी रहती है। उसे सब कुछ मालूम है। वह दरवाजे से ही चिल्लाकर बोलने लगी।

'गुंचो, तुम्हारा भाग्य खुल गया है, नोनका का भी। भगवान की कृपा से तुम सब खुशनसीब हो गए हो!'

मैंने पूछा-'क्या बात है?'

'दूसरे गांव में काम पर गए हुए सिदेर के घरवाले, निकोला और पेंचो, वापस आ चुके हैं। वे कहते हैं कि मंजिलारि नामक गांव में अबाबील दिखाई दी है-एक सफेद अबाबील! बिलकुल बर्फ-सी सफेद।'

'तो इससे क्या होगा?'

उसने बताया- 'सफेद अबाबील को देखने का मतलब तुम्हें नहीं मालूम क्या कि वह सौ साल में एक बार ही दिखाई देती है? और जो आदमी उसे देख लेता है उसे कोई भी बीमारी हो तो वह

आदमी तुरंत स्वस्थ हो जाता है। तुम्हें तो जाना है गुंचो, एक ही मिनट भी देर करना ठीक नहीं। नोनका को जरूर वहां पर ले जाओ!'

'बस, फिर क्या था, मेरी बेटी तो रो उठी, उसकी मां भी प्रार्थना करने लगी और देखो न, हम अबाबील ढूंढ़ते हुए यहां तक आ गए।'

मोकानिना ने चिल्लाकर पूछा- 'क्या यह सच है? तो कहाँ दिखाई दी यह अबाबील?'

'मैंने तो कहा न, यहीं मंजिलारि में।'

'बिलकुल सफेद?'

'हां, बिलकुल सफेद।'

आश्चर्यचकित होकर मोकानिना ने इधर-उधर ताका और रास्ते की ओर नजर डाली। प्रत्येक दिन दोपहर को वह भेड़ों के झुंड को आराम करने के लिए इसी चरागाह में रोका करता था परंतु तार पर बैठी अबाबीलों की बड़ी संख्या पर मानों आज ही उसका ध्यान गया। वास्तव में उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। पतझड़ आ रहा था और इसी समय अबाबील और लकलकर इकट्ठे होकर दक्षिण की ओर जानेवाले थे। अबाबीलें इतनी सारी थीं और एक दूसरे के इतने निकट बैठी थीं कि बिजली का तार माला की तरह लटका हुआ और भारी था। वहां बहुत-सी अबाबीलें थीं लेकिन सब काली थीं।

किसान ने ज्यादा हिम्मत जुटाकर कहा- 'तो इसीलिए मैं आया हूं। सोचा कि तुमसे पूछूं, तुमने उसे देखा होगा या इसके बारे में सुना होगा।'

'नहीं भाई, नहीं सुना है मैंने। सफेद अबाबील? न देखा है, न ही सुना है।' मोकानिना ने मन ही मन सोचा परंतु तभी उसे लगा कि अगर वह ऐसा कहेगा तो शायद उसकी बातें इन लोगों को निराश कर देंगी और तब उसने कहा-

'हां, यह संभव है। दुनिया में सफेद बैल, सफेद चूहा और सफेद कौए तो होते ही हैं। सफेद अबाबील भी हो सकती है। और वह जरूर होगी यदि ऐसा सुना गया है तो।'

किसान ने गहरी साँस छोड़ते हुए कहा- 'किसको मालूम? मैं ऐसा कोई विश्वास नहीं करता लेकिन वे तो औरतें ही हैं।'

वह जाने के लिए उठा। दुखी मोकानिना भी किसान को गाड़ी तक पहुंचाने और लड़की से मिलने के लिए उठा। जब वे घोड़ागाड़ी के पास पहुंचे तब मां जो बिलकुल पीली और दुबली हो गयी थी, अपने पति को दूर से ही देखने लगी मानो वह उसका चेहरा देखकर यह पता लगाना चाहती हो कि उसने अबाबील के बारे में क्या सुना है। लड़की अब भी दूसरी ओर मुड़ी हुई थी और तार पर बैठी हुई अबाबीलों को देख रही थी। किसान ने कहा- 'इन्होंने बताया है कि मंजिलारि गांव तो काफी नजदीक है।'

अपने पिता की आवाज सुनकर लड़की उनकी ओर मुड़ी। वह बेहद दुबली-पतली थी। रोग के कारण उसका दुबला शरीर कपड़ों के नीचे बड़ी मुश्किल से दिखाई दे रहा था। उसका चेहरा मोम की तरह सफेद था लेकिन उसकी आँखें रोशनी से भरी हुई, जवान और मुस्कुराती हुई थीं। वह कभी अपने पिता को और कभी मोकानिना को देख रही थी।

'नोनके, इस आदमी ने अबाबील को देखा है।' यह कहकर किसान ने मोकानिना की ओर

देखा। 'वहीं थी उस गांव में। भगवान करे कि हम भी उसे देख लें!'

'क्या हम भी उसे देख पाएंगे, चाचाजी?' लड़की बोल उठी और उसकी आँखें और चमकने लगीं।

मोकानिना को महसूस हुआ मानो उसके सीने पर कोई भारी बोझ रखा है जो उसकी साँसें रोक रहा है और उसकी आँखें भर आयीं।

वह ऊंची आवाज में बोलने लगा- 'देखोगी बेटी, जरूर देखोगी। मैंने उसे देखा है, तुम लोग भी उसे देखोगे। मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है। वह सफेद थी, बिलकुल सफेद। तुम भी उसे देखोगी। भगवान करे बिटिया कि उसे देखकर तुम पूरी तरह स्वस्थ हो जाओ। तुम तो जवान हो न। मेरा विश्वास है कि तुम उसे जरूर देखोगी। देखोगी और स्वस्थ हो जाओगी बेटी, बिलकुल मत डरना।'

उसकी मां आँखें बंद करके रोने लगी। लंबे चौड़े किसान को खांसी आ गई और वह घोड़े की लगाम पकड़कर उसे आगे ले चला।

उनके पीछे चिल्लाते हुए मोकानिना कह रहा था- 'भगवान तुम्हें स्वस्थ्य कर दे! गांव तो काफी नजदीक है। तार पर, तार के नीचे चलो!'

वह देर तक रास्ते पर खड़ा रहा और घोड़ागाड़ी को देखता रहा। वह देखता रहा मां और उसकी काली जब्रादका को, मां के सामने लेटी हुई लड़की को, उस लंबे किसान को जो तिरछा हुआ जा रहा था और छोटे घोड़े को पकड़े हुए चल रहा था। उनके ऊपर तार के हर दो खंभों के बीच में से अबाबीलें उड़ने लगती थीं फिर वापस आ जाती थीं और तार पर बैठती थीं।

गहरी सोच में पड़ा हुआ मोकानिना अपनी भेड़ों के पास वापस गया और फिर अपना काम करने लगा। वह घोड़े की कच्ची खाल से त्सर्वुलि[4] बना रहा था।

वह सोच रहा था, 'क्या सफेद अबाबील जैसा कोई पक्षी है?' लेकिन उसके सीने पर कोई भारी बोझ था जो उसे सता रहा था। और तभी अपनी छोटी-सी कटार को फेंककर उसने आसमान की ओर देखा और चिल्लाया-

'हे भगवान, कितना दुःख है इस दुनिया में, कितना दुःख!'

और फिर ओझल होती घोड़ागाड़ी को देखने लगा।

संदर्भ :

1. ज्ब्रादका- सिर पर बांधा जाने वाला पारंपरिक स्कार्फ।
2. चेर्गा - पारंपरिक बल्गारियाई कंबल।
3. हूमा - चेहरे की सुंदरता को बढ़ाने के लिय लगाई जाने वाली मिट्टी।
4. त्सर्वूलि- चमड़े के पारंपरिक जूते।

●

अंक के रचनाकार

- **आकांक्षा पारे-** 605 महागुन मोजेक, फेज-1, सेक्टर-4, वैशाली, गाजियाबाद (उ.प्र.)
- **अजय नावरिया-** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025 9910827330
- **अभिज्ञात-** सन्मार्ग 160 बी, चित्तरंजन एवेन्यू, कोलकाता-700007 (प.बं.) 9830277656
- **अमिता नीरव-** 27-28 श्रीविहार कॉलोनी, आसाराम आश्रम के सामने, खंडवा रोड, इंदौर-452017 (म.प्र.) 9827288818
- **अतिताभशंकर राय चौधरी-** सी, 26/35-40, ए, रामकटोरा, वाराणसी-221001 (उ.प्र.) 9455168359
- **बसंत त्रिपाठी-** 62, वैभव नगर, दिघोरी, उमरेड, नागपुर-440034 (महा.) 9850313062
- **बाबूराम त्रिपाठी-** प्रोफेसर हिंदी विभाग, सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ हायर तिब्बती अध्ययन सारनाथ, वाराणसी-221007 (उ.प्र.) 9598070524
- **चित्रा मुद्गल-** जी-57, मेधा अपार्टमेंट, मयूर विहार फेस-1, विस्तार, दिल्ली-110091 9873123237
- **धीरेन्द्र अस्थाना-** डी2/162 देवतारा अपार्टमेंट, मीरा सागर कॉम्प्लेक्स, रामदेव पार्क रोड, मीरा रोड (पूर्व) ठाणे-401105 (महा.) 9137315543
- **दामोदर खड़से-** बी-503-504, हाई ब्लिस, कैलाश जीवन के पास, धायरी, पुणे-411041 (महा) 9850088496
- **गीताश्री-** 1142 गौर ग्रीन एवेन्यू, अभय खंड इंदिरापुरम, लखनऊ-226010 (उ.प्र.) 9818246059
- **हरीश पाठक-** एच-37, हैदराबाद एस्टेट, नैपियन सी रोड, मुंबई-26, (महा.) 9532731770
- **जयनंदन-** ए-4/6, चंद्रबली उद्यान, रोड नं. 1, काशीडीह, साकची, जमशेदपुर-831001 (झारखंड) 9431328758
- **कबीर संजय-** द्वारा संजय कुशवाहा- प्लाट नंबर ए-22, फ्लैट नंबर 101, नन्हें पार्क, ए-ब्लाक, उत्तम नगर, दिल्ली-110059 8800265511
- **मनीषा कुलश्रेष्ठ-** द्वारा-ग्रुप कैप्टन ए.के. कुलश्रेष्ठ, 240/3 चेतक कॉम्प्लेक्स, एयर फोर्स स्टेशन, महाराजपुर, ग्वालियर (म.प्र.) 9911252907
- **मनोज कुमार पांडेय-** हिंदी समय डॉट कॉम, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महा.) 8805405327
- **मनीष वैद्य-** 11-ए, मुखर्जी नगर, पायनियर चौराहा, देवास-455001 (म.प्र.) 9826013806
- **मनीष कुमार सिंह-** एफ-2/4/273, वैशाली, गाजियाबाद-201010 (उ.प्र.) 8700066981
- **नवनीत मिश्र-** ई-4, सौभाग्य अपार्टमेंट्स, गोपाल नगर, लखनऊ-226023 (उ.प्र.) 9450000094
- **निर्मला तोदी-** 6/1/3, क्वीन्स पार्क, मुकुंद अपार्टमेंट्स, कोलकाता-19 (प.बं.) 9831054444

- **पंकज सुबीर-** पी.सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर-466001 (म.प्र.) 09977855399
- **प्रज्ञा-** ई-112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स, सैक्टर-18, रोहिणी, दिल्ली-89, 9811585399
- **राजेंद्र लहरिया-** ईडब्ल्यूएस-395, दर्पण कॉलोनी, ग्वालियर-474011 (म.प्र.) 9827257351
- **राकेश तिवारी-** ए-9, इंडियन एक्सप्रेस अपार्टमेंट, मयूर कुंज, मयूर विहार-1, दिल्ली-110096, 9811807279
- **राकेश कुमार सिंह-** कंचनप्रभा, जयप्रकाश नगर (कतीरा), आरा-802301, भोजपुर (बिहार) 9431852844
- **राकेश मिश्र-** सहायक प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-802301 (महा.) 9970251140
- **रिजवानुल हक-** सहायक प्राध्यापक, उर्दू, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, श्यामला हिल्स, भोपाल-462013 (म.प्र.)
- **संजीव-** 22-सी, न्यू डी.डी.ए. जनता फ्लैट्स, चिल्ला, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091 8587832148
- **संतोष श्रीवास्तव-** 505 सुरेन्द्र रेजिडेंसी, दाना-पानी रेस्टोरेंट के सामने, बावड़ियां कलां, भोपाल-462039 (म.प्र.) 9769023188
- **सुषमा मुनीन्द्र-** द्वारा श्री एम.के. मिश्र, जीवन विहार अपार्टमेंट, द्वितीय तल, फ्लैट नं. 7, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवां रोड, सतना-485001(म.प्र.), 7898245549
- **संजय कुंदन-** द्वारा- सी-301, जनसत्ता अपार्टमेंट, सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012 (उ.प्र.) 09910257915
- **संदीप मील-** द्वारा श्री वीरसेन, 165 गांधी नगर, जयपुर-302015 (राज.) 9116038790
- **तेजिन्दर-** लोट्स-202, अमलतास लैट्स, मौलश्री विहार, वी.आई.पी.रोड, पोस्ट-रविग्राम, रायपुर-492006 (छत्तीसगढ़) 9893062464
- **उर्मिला शिरीष**- ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल-462003 (म.प्र.) 9303132118
- **उषा शर्मा-** एन.9/87 डी-77, जानकी नगर, पोस्ट-बजरडीह, वाराणसी-211009
- **उपासना चौबे-** द्वारा- भारती फाउंडेशन, भारती एयरटेल, प्लाट नं.-74-78, फेज-1, बोरूंदा इंड्रस्ट्रियल एरिया, जोधपुर-342012 (राज.) 9571887733
- **राधावल्लभ त्रिपाठी-** 21 लैंडमार्क सिटी निकट, भेल संगम सोसाइटी, भोपाल-462023 (म.प्र.) 9399223097
- **बलराम शुक्ल-** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007, 9818147903
- **गजनफर-** बुशरा, हमजा कालोनी, न्यू सर सैयद नगर, अलीगढ़ (उ.प्र.)
- **फरहत कमाल-** 1997, गली कासिम जान, लाल कुआँ, दिल्ली-110006 9910974912
- **दीपध्वज कासोदे-** 21, मैत्रेय, श्री कॉलोनी, उप-जिला अस्पताल के समीप, मुक्ताई नगर-425306 जिला-जलगांव (महा.) 9423954640
- **भगवान वैद्य 'प्रखर'-** 30 गुरुछाया कालोनी, साईंनगर, अमरावती-444607 (महा.) 9422856767

- **एस.तंकमणि अम्मा-** मणिमंदिरम्, आनयरा, तिरुवनंतपुरम-695029 (केरल) 9349193272
- **पारमिता सतपथी-** आयकर आयुक्त, आयकर अपीलीय अधिकरण, दिल्ली, सातवां तल, लोकनायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली-100003 9437012627
- **राजेंद्र प्रसाद मिश्र-** केड़िया कॉम्पेक्स, पो-रायरंगपुर, जिला-मयूरभंज-757043 (ओड़िसा), 9650990245
- **हिमांशी शेलत-** 18, 'सख्य', मणिबाग अब्रामा (वलसाड़)-396007 (गुज.)
- **मालिनी गौतम-** 4/574, मंगल ज्योत सोसाइटी, संतरामपुर, जिला-महीसागर-389260 (गुज.) 9427078711
- **जिन्दर-** 984, राजपूत नगर, निकट-सुरिंदर वैल्डिंग वर्क्स, मॉडल हाउस, जालंधर-144003 (पंजाब) 09814803254
- **सुभाष नीरव-** डब्ल्यू जैड -61ए/1, दूसरी मंजिल, गली नंबर-16, वशिष्ठ पार्क, पंखा रोड, नई दिल्ली-110046 9810534373
- **सुशांत सुप्रिय-** 5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201014, (उ.प्र.) 8512070086
- **ओमा शर्मा-** 357, इनकम टैक्स टावर, सेंट्रल रेवेन्यू कालोनी, रेसकोर्स, वडोदरा-390007, (गुज.) 9408790051
- **यादवेंद्र पांडेय-** द्वारा- डॉ. आलोक नाथ त्रिपाठी, 72, आदित्य नगर कॉलोनी, जगदेव पथ, बेली रोड, पटना-14 (बिहा.) 9411100294
- **गरिमा श्रीवास्तव-** प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 8985708041
- **अजीज महदी-** ई-11/80, हौजरानी, न्यू कालोनी, मालवीय नगर, दिल्ली-110017
- **देवप्रकाश चौधरी-** एसएफ-4, प्लाट नं. 3, सेक्टर-1, वैशाली, गाजियाबाद-201110 (उ.प्र.)